नोबेल पुरस्कार-प्राप्त

प्रसिद्ध नाट्यकार

जॉन गाल्सवर्दी

की

चार अमूल्य रचनाएँ

१—न्याय—'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक—श्रीयुत प्रेमचंद। मूल्य २।)

२—हड़ताल—'स्ट्राइफ़' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक—श्रीयुत प्रेमचंद। मूल्य २)

३—धोखाधड़ी—'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक—श्रीयुत ललिताप्रसाद शुक्ल, एम्० ए०। मूल्य १।।)

४—चाँदी की डिबिया—'सिल्वर बॉक्स' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक—श्रीयुत प्रेमचंद। मूल्य १।।)

सभी पुस्तकों पर सुंदर सुनहरी कपड़े की मज़बूत जिल्दें हैं।

प्रकाशक

हिंदुस्तानी एकेडेमी,

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

विज्ञान हस्तामलक

चित्र १—इन्द्र-धनुष

जहां-कहीं जल-सीकर-राशि पर सामने से सूर्य्य-किरणें पड़ती हैं, वहीं इन्द्र-धनुष बन जाता है। आकाश में कभी-कभी इन्हीं कारणों से दीखता है। प्रत्येक सीकर, त्रिपार्श्व कांच की तरह, श्वेत किरण को सातों रंगो की किरणों में विभक्त कर देता है। सफेद किरण वस्तुतः असंख्य विविध रंगों की किरणों से बनी हुई है।

[विज्ञान हस्तामलक, पृ० १७ के सामने] [सौर-परिवार से

विज्ञान हस्तामलक

अर्थात्

सीधी-सादी भाषा में रोचक क्रम से अठारह
विज्ञानों की कहानी

लेखक
श्रीकाशी हिन्दू-विश्वविद्यालय और गुरुकुल-कांगड़ी के
भूतपूर्व रसायनाचार्य तथा "विज्ञान" के
प्रधान सम्पादक

रामदास गौड़, एम्० ए०

"विज्ञान ब्रह्म"
—तै० उ०।३।५

प्रयाग
हिन्दुस्तानी एकेडमी
१९३६

मूल्य { सजिल्द ६॥)
{ बिना जिल्द ६)

मुद्रक—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव्य
कायस्थ पाठशाला प्रेस
इलाहाबाद

श्रीसीतारामाभ्या नमः

प्रस्तावना

यस्यैवायोगयोगौहि कारणं बन्धमोक्षयोः
विज्ञानं तमहं वन्दे तपसा विद्यया धृतम्

विज्ञान एक ऐसा महासागर है जिसका वारपार नहीं है, जिसकी गहराई की थाह आज तक नहीं मिली। मोती की खोज मे मरजीवे नित्य डुबकियां लगाते रहते है। पार की तलाश में कितने जहाज मारे-मारे फिरे। वह आज भी चक्कर में फँसे हुए है। इधर-उधर बरसो की यात्रा करके उनपर के सवार इसी किनारे लौट आते हैं। मरजीवो के साहस की हम सराहना करते है, उनके मोती के आब को देख अचरज करते है, गुणग्राहक उनका आदर करते है, परंतु सैर करनेवालो मे यह हिम्मत कहां कि गहराई में जायँ और मोती लावे। वह तो माला की शोभा देखकर ही सुखी होते है। सागर के ऊपरी तल पर जहां-जहां चक्कर का भय नहीं है, जहां भयानक जलजंतु नहीं है वहां-वहां घूमकर सैर कर सकते हैं। दूर से ऐसे तमाशे भी देख सकते है जिनके पास न जाकर भी उनका कुछ आनंद मिल सकता है। यह पुस्तक पाठकों की इसी तरह की सैर के लिये बजरा-स्वरूप तैयार है।

हाथ मे आँवला हो तो उलट-पलटकर जैसे-चाहे-वैसे उसके बाहर-बाहर का तल आदमी देख सकता है। उसी तरह इस पोथी से विज्ञान का ऊपरी विस्तार कुछ समझ में आ जाता है। कुछ थोड़ा-बहुत तह के भीतर का भी अनुमान हो जाता है। इसी लिये यह "विज्ञान हस्तामलक" है।

इस पोथी का यह दावा नहीं है कि इसके पढ़नेवाले को किसी विशेष विज्ञान का संपूर्ण ज्ञान हो जायगा, क्योंकि किसी एक शाखा का संपूर्ण ज्ञान हो उसे भी नहीं होता जो अपना जीवन उसके संपादन मे निछावर कर देता है। इस पोथी से अवश्य ही अनेक विज्ञानो का इतना थोड़ा-थोड़ा ज्ञान हो जायगा कि पढ़नेवाले को यह समझ में आ जाय कि अब तक मनुष्य कहां तक उन्नति कर सका है और उसके ज्ञानवृक्ष की भिन्न-भिन्न शाखाएं किस तरह आपस मे मिली-जुली हैं और किस तरह सब के मूल का मार्ग एक ही तना है जिससे सभी शाखाएं निकली हुई हैं। पाठक इस पोथी मे विज्ञान के विविध अंगो को यथा-स्थान देखेंगे और उनके प्रायः पूरे शरीर का एक साथ दर्शन करेंगे। यह सुभीता उन्हे किसी विश्व-विद्यालय मे नही मिल सकता।

विद्यालयों में पढ़नेवाले यदि इस पोथी को पढ़ेंगे तो उनकी विद्या-संबंधी संस्कृति का वर्त्तमान काल के अनुरूप विकास हो जायगा, संसार के संबंध मे उनकी दृष्टि अधिक दूरगामी और विस्तृत हो जायगी। यह पोथी सांस्कृतिक शिक्षा के लिये अत्यंत उपयोगी होनी चाहिये। विज्ञान के विद्यार्थी भी जितना कुछ पढ़ते है, उसी मे उनका ज्ञान सीमित रहता है। मुझे दृढ़ आशा है कि आनुषंगिक विज्ञानों के बोध की इच्छा वे इस पुस्तक द्वारा सहज मे पूर्ण कर सकेंगे। जिन्होंने पन्द्रह-बीस बरस पहले वैज्ञानिक शिक्षा पायी है वह इधर के वैज्ञानिक विकास की जानकारी इस पुस्तक से प्राप्त कर के वर्त्तमान काल से सम्बन्ध जोड़ लेंगे।

विश्वविद्यालय की शिक्षा के दो उद्देश्य होते है। पहला यह कि थोड़ा-थोड़ा सभी विषयों को मनुष्य जाने, दूसरा यह कि किसी एक विषय को पूर्णतया जाने। यह पोथी पहले उद्देश्य को दृष्टि मे रखकर लिखी गयी है।

इस पोथी मे सृष्टि की वह कहानी है जो मनुष्य ने उसी की जबानी सुनी है। इसमे पहले तो यह बताया गया है कि सब विश्वों मे हमारे विश्व की क्या स्थिति है, फिर उस विश्व मे हमारी दुनिया की क्या हैसियत है। उसमें क्या-क्या है, उसमें की शक्ति के क्या-क्या रूप हैं और वह कैसे-कैसे काम करती है। उसमें वस्तु की क्या दशा है और उसके क्या-क्या रूप है, मनुष्य की परिस्थिति कैसी है, स्वयं मनुष्य क्या है, कैसा है, किस तरह की उसकी मनोवृत्ति है, वह किस तरह परिस्थिति के साथ विकास करता रहा है। वह अपनी परिस्थिति पर कितना काबू कर पाया है। उसने किस तरह जल, स्थल, और आकाश पर विजय पायी है और उसने पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को कैसे अपने वश मे कर लिया है। विकास के क्रम से जितनी बातें विज्ञान को अब तक पक्की तौर से मालूम हो चुकी है, उन्हीं को सिलसिलेवार रोचक और सुबोध रूप मे इस पोथी मे वर्णन करने की कोशिश की गयी है।

थोड़े मे इस पुस्तक मे निम्न-लिखित अठारह मुख्य विषयों की ऐसी चर्चा की गयी है कि पाठक को उन विषयो का स्थूल ज्ञान अवश्य हो जाय—

१ ज्यौतिष	१० सापेक्षवाद
२ भौतिक भूगोल	११ रसायन-शास्त्र
३ भूगर्भ-विज्ञान	१२ सागर-विज्ञान
४ जीव-विज्ञान	१३ अंतरिक्ष-विज्ञान
५ विकास-शास्त्र	१४ जीवाणु-विज्ञान
६ मानव-शरीर-विज्ञान	१५ वनस्पति-शास्त्र
७ मानोविज्ञान और मनोविश्लेषण	१६ शिपल शास्त्र
८ मरणोत्तर-जीवन-विज्ञान	१७ स्वास्थ्य-विज्ञान
९ भौतिक विज्ञान	१८ विज्ञान-विधान

फिर भी इसमें गणित-विज्ञान, तर्क-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, इतिहास-शास्त्र. स्थित्यंक-शास्त्र आदि आवश्यक शास्त्रो का समावेश नहीं हो सका है।

ऐसी पुस्तक लिखने की मेरी बहुत काल से अभिलाषा थी। इसके प्रकाशन की व्यय-साध्यता ही मेरे मार्ग मे भारी बाधा थी। मेरे कभी के शिष्य और अब योग्य मित्र डाक्टर ताराचन्द जी प्रेरणा के लिये कृतज्ञता के पात्र है और हिन्दुस्तानी अकेडेमी अपने इस साहस के लिये बधाई के योग्य है।

जहां तक मुझे मालूम है, इस ढंग की पुस्तक अभी तक किसी भारतीय भाषा में प्रकाशित नही हुई है।

अंग्रेजी मे टामसन की "औटलैन आफ सायंस" और "हार्म्सवर्थ पाप्युलर सायंस" इसी तरह की अच्छी पुस्तके हैं। विषय-क्रम निर्धारण मे इन्ही पुस्तको का आदर्श रखा गया है। हिन्दी पाठको के लिये विदेशी भाषा मे होने से ये ग्रंथ दुर्गम और दुर्लभ है। प्रस्तुत पोथी ने हिन्दी मे एक साथ अठारह विषयो को सुलभ कर दिया है। इन मे से अनेक विषयो पर अलग-अलग पोथियां हिन्दी मे भी छप चुकी है, परंतु एक तो उनका ढंग रोचक और सुबोध नही है, दूसरे उन से विज्ञान के अलग-अलग अंगों का दर्शन होता है। सब अंगों को यथास्थान जोड़कर विज्ञान-शरीर का पूरा ढांचा एक साथ दिखाने का किसी भारतीय भाषा मे शायद यह पहला प्रयास है।

इस कार्य्य में मैंने अनेक ग्रंथो से सहायता पायी है। उन मे से प्रमुख का स्थान-स्थान पर उल्लेख है। यहाँ विस्तार-भय से सब का नामोल्लेख न करके मै संसार के सभी वैज्ञानिको के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ। विषय सभी औरो के है, शब्द-योजना मेरी है। फूल सभी विज्ञान-वाटिका के है, चुनाव मेरा है, और अपनी भाषा और भाव के सूत्र मे उन्हे गुंफित करके सुविज्ञ पाठको की भेट करने की धृष्टता मेरी है।

इस पुस्तक मे विषय को हृदयंगम कराने के लिये आवश्यक चित्र भी दिये गये है।

मै सब से अधिक विज्ञान-परिषत् का कृतज्ञ हूँ जिससे इस ग्रंथ के लिये बहुत से चित्रो के ब्लाक मिले है। मंगलाप्रसाद-पारितोषिक विजेता मेरे प्रिय शिष्य मित्रवर डा० त्रिलोकीनाथजी वर्म्मा ने अपने अनुपम ग्रंथ "हमारे शरीर की रचना" से यथेष्ट चित्रो के लेने की सहर्ष अनुमति और कई अत्यंत उपयोगी परामर्श दिये इसके लिये मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। पंडित-प्रवर विद्याभूषण श्री दीनानाथ शास्त्री चुलैट का मैं चार नकशो के लिये आभारी हूँ। "सौर-परिवार" तो अकेडेमी परिवार की चीज है और मंगलाप्रसाद-पारितोषिक विजेता मित्रवर डा० गोरखप्रसाद जी एक कुटुंबी सदृश है। उनसे तो अपनापे के नाते मै ने बहुत सारे चित्र ले लिये है। एतदर्थ मै उनका कम कृतज्ञ नहीं हूँ।

विदेशी प्रकाशको का भी मैं ऋणी हूं। एक चित्र के लिये मकमिलन का. दो चित्रों के लिये विलियम्स-ऐंड-नारगेट का, तीन चित्रो के लिये सीली-सर्विस कम्पनी का. और एक दर्जन से अधिक चित्रों के लिये ज्यार्ज-न्यूस का भी मैं अनुगृहीत हूँ। ये परोक्ष चित्र प्रायः सभी अनुवर्त्तन मे, कुछ परिवर्त्तन के साथ, चित्रकार द्वारा फिर से तैयार कराये गये और इस सम्बन्ध मे सारा व्यय प्रकाशक ने किया। रेलवे इंजन के रंगीन चित्र के लिये, जब वह विज्ञान मे छपनेवाला था, मेरे मित्र पं० ओकारनाथ शर्म्मा ने रेलवे-बोर्ड से विशेष आज्ञा ले ली थी। उसके ब्लाक परिषत् की कृपा से मिले।

पाठक इस पुस्तकमे वर्त्तनी की असमानता एवं अनेक छापे की भूले पावेंगे। उसके कारण कई है। अकेडेमी के अपने नियम इस सम्बन्ध मे और है और मेरा अपना चालीस बरसो का अभ्यास उनसे नितान्त भिन्न है इस के अतिरिक्त विशेष प्रकार के टाइपो की अपर्य्याप्तता भी एक कठिनाई थी। इन सब बातों के सिवा मेरी आंखो की कमजोरी, निश्चित अवधि में छपवाने की उतावली, प्रूफ-संशोधन मे सहायता का अभाव, और मेरी मानव-सुलभ सब तरह की दुर्बलताएं, भूलो के लिये जिम्मेदार है। यह सब होते हुए भी मैनेजर श्री श्यामसुन्दरजी श्रीवास्तव्य एवं उनके अधीन प्रेस के कर्म्मचारियो ने दिन और रात निरन्तर काम करके इस पुस्तक को अवधि के भीतर निकाल देने के लिये जो जीतोड़ परिश्रम किया है उसके लिये मै कृतज्ञ हूं और रहूंगा। एक अपरिचित प्रेस से इस कोटि की सहकारिता की आशा न थी।

गणिताचार्य मित्रवर स्वर्गीय डा० गणेशप्रसाद साहब कई महत्त्व की सलाहो के लिये, भौतिकाचार्य मित्रवर प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव, एम० एस-सी०, कई तरह की सहायता के लिये, भौतिकाचार्य मित्रवर प्रोफेसर चंद्रीप्रसाद जी एम्०, ए०. बी० एस्-सी०, विद्युद्वाणी संबंधी कई ताजे नोटो के लिये, एवं परम मित्र और प्रिय शिष्य पंडित महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव्य, बी० एस्-सी०, एल्० टी०. विशारद, आर्य्यभट की जीवनी के लिये, अत्यंत कृतज्ञता-पूर्वक स्मरणीय है।

अन्ये च बहवो विज्ञाः ज्ञानविज्ञानपारगाः।
पथप्रदर्शका ये स्युः तेभ्योऽपीह नमो नमः॥

बडी पियरी, बनारस शहर
कुशोत्पाटिनी ३०, १९९२

रामदास गौड़

विषयानुक्रमणिका

पहला खंड
विश्व-विज्ञान

दूसरा खंड
जीवन-विज्ञान

तीसरा खंड

जीव-विद्या और मानव-शरीर-विज्ञान

चौथा खंड

मनोविज्ञान

पांचवां खंड

शक्ति-विज्ञान और सूक्ष्म प्रकृति के रहस्य

छठा खंड

रसायन-विज्ञान

सातवां खंड
परिस्थिति-विज्ञान

आठवां खंड
परिस्थिति पर विजय

पहला खंड

विश्व-विज्ञान

चित्र २—मार्गशीर्ष मास की रात का दृश्य

[परिपत्र की

चित्र ३— फाल्गुन मास की रात का दृश्य

[परिषत् की कृपा

पहला अध्याय

विश्व-दर्शन

१—हमारी जानकारी

ससार-भर मे सब से सुंदर, सब से अद्भुत और सब से बड़ा तमाशा हमारी आखो के सामने होता रहता है, पर नित्य की बात होने से हम उस पर ध्यान कम देते हैं। उषा काल की अपूर्व शोभा, सूर्य का तड़के उदय होना, उस की मनोमोहक किरणो का दशो दिशाओ मे छिटिकना, उस का तेजोमय रूप, तरणि की तरुणाई, फिर दिन का ढलना, सूर्य का अस्त होना, सायकाल की विचित्र छवि, फिर चाद और तारो से सजी सजायी रात का आना और अपनी छटा दिखाना—यह सब नित्य का तमाशा है जो प्रकृति मे हमारे सामने होता रहता है। तारो से जड़े हुए आकाश का परदा तो बराबर बदलता रहता है। घटाओ का छा जाना, बिजली का कौंदना, बादल की गरज, इन्द्रधनुष की छवि, उत्तरी दक्षिणी विद्युन्माला की आभाए, वर्षा, कुहरा आदि नये-नये दृश्य बदलते रहते हैं। उस का तमाशा नित्य नये ढग पर परतु बड़े नियम और नाप से होता रहता है।

मनुष्य यह तमाशा अनादि काल से देखता आया है। उस ने काल का अनुमान और हिसाब इन्हीं परदो मे होनेवाले फेर-फार से किया है। इसी लिये यह कोई अचरज की बात नहीं है कि उस ने इन तारो और चद्रमा और सूर्य के बारे मे भाति भाति की कल्पनाए की हैं और तरह तरह के विचार पक्के किये हैं। अधिक विचार और विवेक वालो ने इन को समझने के लिये बारीक से बारीक हिसाब लगाये हैं। इन की जाच के लिये विविध यंत्र बनाये हैं। भारत मे तो अत्यत प्राचीनकाल से, और भारत के बाहर के देशों में भी बहुत काल से इस विषय की खोज होती आयी है। हिसाब करने के लिये भारत मे अनेक मानमदिर, यत्रमदिर, और वेधशालाए बनीं। युरोप और अमेरिका मे भी बड़े बड़े विशालकाय दूरबीन, दूरदर्शक यत्र, लगाये गये, और इधर तो कई सौ बरसों से पच्छाह के देशों ने बड़ी उन्नति की और ज्योतिष विद्या की खोजों मे उस भारत

को भी पीछे छोड़ दिया जो पहले संसार में ज्योतिष का सब से बड़ा जानने वाला गिना जाता था।

सब से पहला विज्ञान यही है। देश काल और वस्तु का ज्ञान इसी विद्या से आरंभ हुआ। मान और गणना ज्योतिष ने ही आरम्भ किया और इसी ज्योतिष के आधार पर भारत में मनुष्य के वैदिक और लौकिक सारे काम अवलम्बित हुए।

संसार के सभी सभ्य देशों के विद्वानों ने आकाश-मंडल को नित्य देखते हुए, खगोल को नापने के उपाय किये। सारे खगोल को सत्ताईस नक्षत्रों में बांटा जिसमें महीने भर में चंद्रमा घूमता है और बारह राशियों में बांटा जिसमें साल भर में सूरज चक्कर लगाता है। ३६० अंशों में बांटा जिस के ३०-३० अंशों की एक-एक राशि हुई। राशियों और नक्षत्रों के रूपों की भी कल्पना देखने के सुभीते के लिये की। पाश्चात्यों और प्राच्यों की रूप-कल्पना में बहुत सादृश्य है, फिर भी भेद है। आज भी उन कल्पनाओं और नामों से काम लेते हैं। उदाहरण की भांति हम मेष राशि और श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों के काल्पनिक चित्र देते हैं।

चित्र ४—मेष-राशि [विज्ञान-परिषत् की कृपा से

इन्हीं राशियों और नक्षत्रों में ग्रहों और उपग्रहों के प्रवेश और यात्रा से भारतीय पञ्चाङ्ग में दिन, तिथि, नक्षत्र, योग और करण की गणना हुई। अनादि काल से इस प्रकार की गणना चली आ रही है। संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ वेदों में इनकी चर्चा है और ज्योतिष विद्या वेद के छः अंगों में से एक प्रधान अंग समझी जाती है।

संसार के सभी पुराणों ने इसी विज्ञान के आधार पर सृष्टि और लय की भांति भांति की

कल्पनाएं की हैं। वह आज हमें चाहे कैसी ही लगें परतु ये नित्य नियम वाले दृश्य हमारे लिये उतने ही अद्भुत हैं जितने कि करोड़ों बरस पहले हमारे पूर्वजों के लिये थे।

आज पच्छाँही ज्यौतिप विज्ञान ने जितनी उन्नति कर रखी है उस से यह न समझना चाहिये कि वह विज्ञान की पराकाष्ठा को पहुँच चुका। बेशक, उस ने बहुत सी उलझनें सुलझायी हैं, परतु अनेक समस्याएँ हैं जिनका हल होना बाकी है, और शायद उतनी ही या उस से भी अधिक उलझनें आज ऐसी हैं जो अछूती पडी हैं। सब से महत्त्व का प्रश्न उस के सामने यह है कि इस विश्व की रचना कैसे हुई है और यह कब तक बना रहेगा। जिस रूप मे विश्व आज है क्या वही रूप बराबर बना रहेगा या बदलेगा, या इस में उस के विनाश के बीज मौजूद हैं, और कभी वह नष्ट भी हो जायगा, अथवा आज जिस रूप में है उससे धीरे धीरे अथवा कभी बड़े भयानक वेग से बदल कर बिलकुल भिन्न आकार प्रकार का हो जायगा? यह प्रश्न बड़े पुराने हैं और इनके उत्तर के लिये कल्पनाओं से आरभ

४—श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र [विज्ञान-परिषत की कृपा से

कर के आजकल के बारीक से बारीक प्रयोगों से काम लिया गया है। परतु अब तक इन प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर नहीं मिल सका है। अभी तक जो कुछ मालूम हुआ है अधिकाश उन थोड़े से आकाश पिंडों के बारे मे जाना गया है जिन से हमारा दूर या पास का ही कोई सबध अवश्य है।

हम जिन वस्तुओं को जानते और समझते हैं उनका सबध हम अपनी दुनिया से लगाते हैं। आकाश मे हम दो तरह के पिंड मानते हैं। एक तो ग्रह हैं दूसरे तारे। हम

ग्रह उन पिंडों को कहते हैं जो बराबर सूरज के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। सूरज का अत्यंत बड़ा और भारी पिंड जिस मंडल का अधीश्वर है उस के सदस्य के रूप से जो पिंड ग्रहण किये जाते हैं उन्हें हम "ग्रह" कहें तो उचित ही है। सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। हमारी धरती भी ऐसा ही एक ग्रह है। जितने बड़े बड़े पिंड सूरज की परिक्रमा करते हैं और अब तक जाने गये हैं इस पृथ्वी को छोड़ कर आठ हैं। उनके नाम हैं बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, उरण, (इंद्र), वरुण और कुबेर। यह सब क्रम से सूर्य से अधिकाधिक दूरी पर हैं। इन में से बुध का दिखाई पड़ना अत्यंत कठिन है क्योंकि यह सूर्य-मंडल के बहुत पास है। इसी तरह वरुण और कुबेर का पिंड भी आँखों से नहीं दीखता क्योंकि ये सूर्य से सब से अधिक दूर हैं। उरण भी अदृश्य सा ही है। पृथ्वी ग्रह शुक्र की अपेक्षा सूर्य से अधिक दूर है और मंगल की अपेक्षा सूर्य के पास है। पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा परिक्रमा करता रहता है। पृथ्वी के एक ही चंद्रमा है परंतु और ग्रहों के कई कई हैं। बृहस्पति के चार चंद्रमा हैं, शनि के दस हैं, और मंगल के दो। जिन जिन ग्रहों के जो चंद्रमा हैं उन उन ग्रहों की परिक्रमा करते हैं। सूर्य, ये नव ग्रह, और इन ग्रहों के चंद्रमा यह सब पिंड एक ही कुटुंब के से हैं जिस का सब से बड़ा कर्त्ता धर्त्ता और मालिक सूर्य है। हमारी दुनिया का इन सब से आपस का घना संबंध है।

इतना घना संबंध होते हुए भी इनकी आपस की दूरी बहुत है। इनका चक्कर सूर्य के चारों ओर अंडाकार लगता है, इस से कभी यह सूर्य से कुछ अधिक दूर हो जाते हैं और कभी अधिक पास। सबसे पास का चक्कर लगाने वाला बुध है, सब से दूर का और बड़ा चक्कर लगाने वाला कुबेर ग्रह है। इस के चक्कर के एक ओर से अगर तोप से एक गोला चला दिया जाय तो दूसरी ओर तक सीधे पहुँचने में उसे सात सौ बरस से कम न लगेंगे। इतनी बड़ी दूरी के भीतर ही भीतर सूर्य और उसका सारा परिवार चक्कर काटता रहता है। परंतु यह दूरी भी इस विस्तीर्ण आकाश मंडल के भीतर बहुत नहीं है।

हमारी आँखों के सामने आकाश में अनगिनत तारे दीखते हैं। यह छोटे छोटे तारे कितनी कितनी दूरी पर हैं, इस बात की कल्पना भी कठिन है।

हमारे सूर्य-मंडल से सबसे समीप जो तारा जाना गया है मूल नक्षत्र का आल्फा-केंटारी है। वही तोप का गोला जो पाँच सौ बरसों में वरुण के चक्र को आर-पार कर लेता, करोड़ों बरसों में कहीं आल्फाकेंटारी तक पहुँच सकेगा। मतलब यह कि सूर्य-परिवार का

---

* भारतीय ज्यौतिषी उरण (इन्द्र) और वरुण इन दो ग्रहों को नहीं जानते थे। वह चंद्रमा के दोनों पातों को राहु और केतु नाम देकर दो ग्रह गिनते हैं। सूर्य और चंद्रमा को भी "ग्रह" मानते हैं। भारतीय ज्यौतिषी का ग्रह शब्द व्योमचारित्व से कोई संबंध नहीं रखता। यहाँ ग्रह शब्द इस लिए आया है कि फलित के विचार से दुनियाँ के प्राणियों की दशा को यह अपने अधिकार में रखते हैं, "ग्रहण" करते हैं। भिन्न अर्थों में एक ही शब्द के लिये जाने से भारतीय और पाश्चात्य ज्यौतिष में कोई विरोध नहीं है।

मडल बहुत बड़ा है, सही, पर उस के चारो ओर बहुत विशाल देश खाली पड़ा है। सब से पास का एक तारा ढाई नील मीलो की दूरी पर है। श्रवण नक्षत्र का प्रधान तारा

सौर ब्रह्मांड

चित्र ६—[वास्तविक चक्र अंडाकार है। इन का स्केल के अनुसार बनाया जाना असंभव है]

८ नील १० खरब मील है। स्वाती लगभग १४॥ नील मील है। अभिजित सवा तेईस नील मील है। यह ह‥ निकट से निकट वाले तारे हैं। सूर्य्य मडल से इन्हीं की दूरी अनत सी लगती है। और तारो की दूरी की तो क्या कथा है। उनकी दूरी तो अकगणित की बड़ी से बड़ी सख्या के बाहर है, कल्पना मे आ नहीं सकती।

२—अनंत दूरी

फिर यह छोटे छोटे तारे जो नित्य टिमटिमाया करते हैं क्या हैं? यह वह बड़े बड़े पिड हैं जो सूर्य्य से कहीं अधिक ज्योति और ताप रखने हे और कई तो इतने बड़े हैं

कि उनके सामने हमारा सूर्य्य एक कण सा होगा। इनकी दूरी का तो हिसाब ही नहीं लग सकता। प्रकाश एक सेकंड मे एक लाख छियासी हजार मील चलता है। साठ सेकंडो का एक मिनट, साठ मिनटो का एक घंटा और २४ घंटो का एक दिन रात होता है। ३६५ दिनो का हम एक साल मानते हैं तो एक साल मे प्रकाश साढे सत्ताइस खरब मील से भी अधिक दूरी तय करता है। आल्फाकेंटारी से प्रकाश के आने मे नव बरस से अधिक लगते है। अनेक तारे आकाश मे ऐसे हैं जिनका प्रकाश हमारी धरती पर लाखो करोड़ो बरसो मे पहुँच पाता है। यह तो इतनी बड़ी दूरी हुई कि इस की दूरी मीलो मे गिनायी नही जा सकती। इस लिये मीलो की गिनती की परिपाटी तारो के संबंध मे उठ गयी है। अब कहने का ढंग यह है कि अमुक तारा हम से इतने प्रकाश-वर्षो की दूरी पर है। आल्फाकेंटारी हम से नौ प्रकाश वर्षों की दूरी पर है।

ऐसे विशाल आकाश देश मे दूरी कल्पना के बाहर हो जाती है। इस दूरी के सामने काल भी कल्पना से बाहर चला जाता है। देश और काल के इस अनंत विस्तार मे यह छोटे छोटे तारे आपस मे कितनी दूरी पर है? इस प्रश्न का उत्तर भी सहज नही है। देखने मे जो तारे एक दूसरे से सटे से जान पडते हैं उन मे परस्पर की दूरी इतनी अधिक हो सकती है कि सूर्य्य और उसके पास के आल्फाकेंटारी की दूरी भी उसके सामने कुछ नहीं के बराबर हो सकती है। यह तारे बड़े भारी भारी सूर्य्य है। हमारा सूर्य्य भी वास्तव मे एक छोटा सा तारा है। कही हम आल्फाकेंटारी पर चले जाय तो ग्रह तो देख न पड़ेंगे और हमे सूर्य्य भी दीखेगा तो आकाश गंगा मे एक अत्यंत नन्हा सा मंद ज्योति का तारा दीखेगा।

यह बहुत संभव है कि धरती से जो नन्हे नन्हे तारे दीखते है वह केवल अत्यंत बड़े बड़े सूर्य्य ही नहीं बल्कि हमारे सूर्य्य की तरह उनके भी अनेक ग्रहो और उपग्रहो के परिवार हो जो दूरी के कारण हमे बिल्कुल नहीं दीखते और जिस तरह अंडाकार वृत्त मे हमारे सूर्य्य के चारो ओर उसके ग्रह घूमते है, उसी तरह उन के चारो ओर भी उन के ग्रह चक्कर लगाते रहते हो। फिर, जैसी धरती हमारी है, और जिस तरह असंख्य और अनंत प्राणी इस धरती पर रहते है उसी तरह उनकी भी दुनिया हो। परंतु यह कोरी कल्पना है। निश्चय रूप से हमे इस संबंध मे कोई ज्ञान अब तक नही हुआ है।

३—सृष्टि में हमारा पता ठिकाना। अनंत देश

दूरबीन के सहारे जब इन तारो को देखते है तो भी सिवाय कुछ अधिक तेज के इन का आकार बढा हुआ नहीं दीखता, क्योकि यह दूरबीन के लिये भी अत्यंत दूर हैं। दूरबीन के सहारे एक और तरह के पिंड भी दीखते है जो तारो की तरह बिंदु के आकार के नहीं है। बल्कि फैले हुए ज्योति समूह की तरह लगते हैं। किसी किसी का आकार कुंडली का सा है जिसके चारो ओर असंख्य नन्हे नन्हें तारे भी दीखते है। इस समूह को नीहारिका

चित्र ७—ज्येष्ठ मास की रात का दृश्य

[परिषत् की कृपा
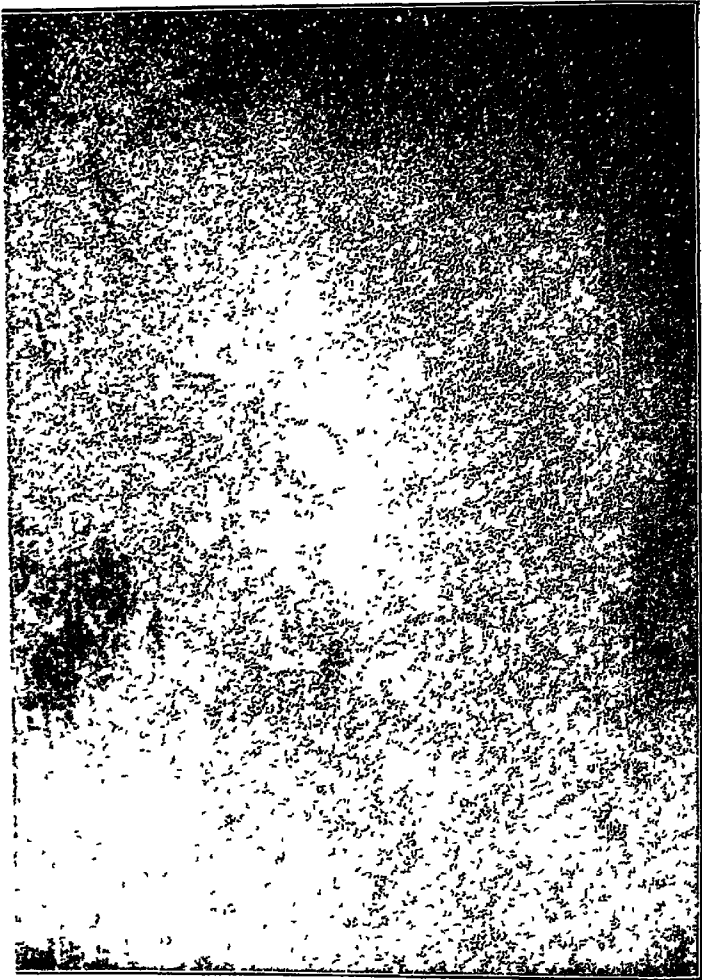
चित्र ८—आकाश-गंगा

गलिज वेधशाला]   [सौर-परिवार से
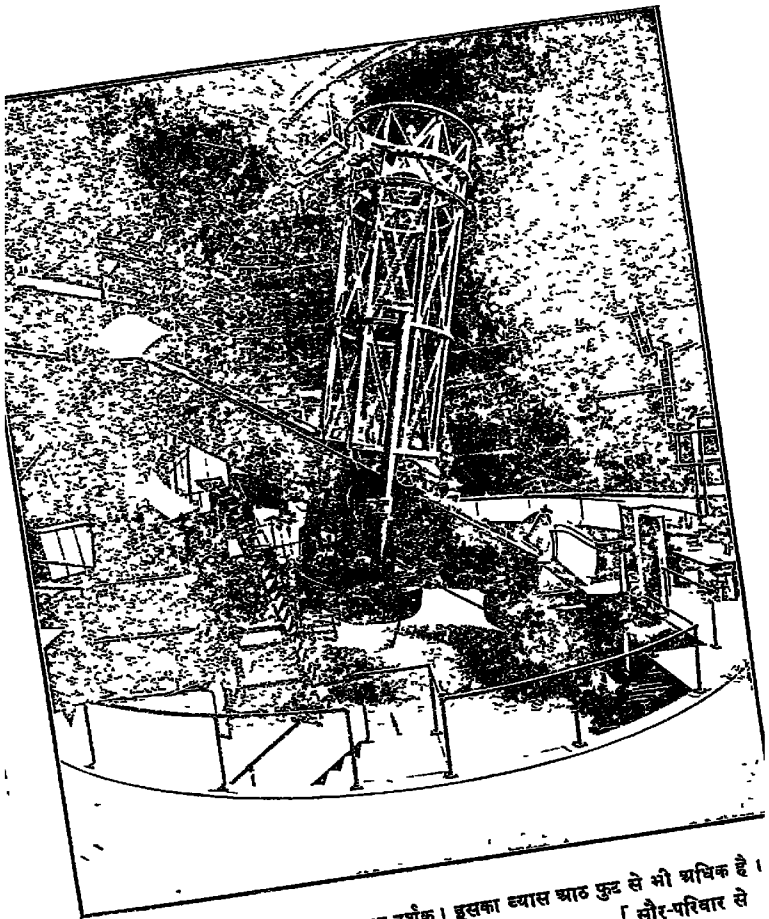
चित्र ६—संसार का सब से बड़ा दूर-दर्शक। इसका व्यास आठ फुट से भी अधिक है। [सौर-परिवार से माउंटविल्सन वेधशाला]

कहते हैं। इन्द्रमाला तारा-समूह में ऐसी एक नीहारिका कभी-कभी नंगी आँखों से भी देख पडती है जो कुंडली के आकार की है। जिस उजले डहर को आकाश-गंगा कहते हैं वह भी एक विशाल नीहारिका ही है। रात को उत्तर से दक्खिन की ओर पसरी हुई तारों भरी दूध के रंग की पगडंडी दो हैं जो एक दूसरे से मिली हुई हैं और एक दूसरे के आमने-सामने जान पडती हैं। यह एक समय में एक ही दीखती है। जान पड़ता है कि हमारा सौर-मंडल इसी आकाश-गंगा वाली नीहारिका के बीच में कहीं स्थित है। उस के दोनों ओर आकाश-गंगा है। अनेक ज्योतिर्विज्ञानियों का अनुमान है कि यह आकाश-गंगा भी एक नीहारिका की कुंडली का अंश है जो हमें भीतर से देख पड़ता है। हम किसी कुंडली के भीतर घूमने वाले एक बिंदु हों तो कुंडली का घेरा हम को दोनों ओर से उसी तरह घूमा हुआ दीखेगा जैसे आकाश-गंगा की दोनों धाराएं दीखती हैं। यह भी अनुमान किया जाता है कि इसी तरह की जो कुंडलियां हम को दूर-दूर कहीं-कहीं दीखती हैं, वह उसी तरह तारों और सूर्य-मंडलों का समूह हैं, जैसे हमारा आकाश-

चित्र १०—हमारी धरती और चंद्रमा की तुलना। [सौर-परिवार से
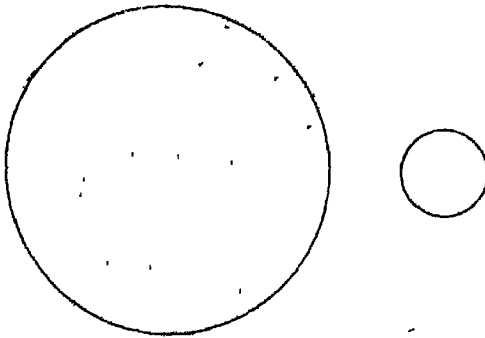
-गंगावाला समूह। रात में जो तारा-मंडल हम सारी दिशाओं में बिखरा हुआ देखते हैं, वह सब आकाश-गंगावाली कुंडली के भीतर का है, और वास्तव में जैसे एक सूर्य-मंडल से दूसरे सूर्य-मंडल की दूरी कम से कम कई खरब मील की है, उसी तरह एक कुंडली से दूसरी कुंडली की दूरी तो अनंत देश है, जिन में एक से दूसरे तक प्रकाश के पहुँचने में भी असंख्य वा अनंत प्रकाश-वर्ष लगते हैं। हम अगर आकाश-गंगाओं से घिरे अनंत व्योम देश को अपना एक विश्व मानें तो अन्य नीहारिका-कुंडलियां अन्य विश्व मानी जा सकती हैं। इस तरह हम व्योम-मंडल में अनेक विश्वों का दर्शन कर लेते हैं। साधारणतया
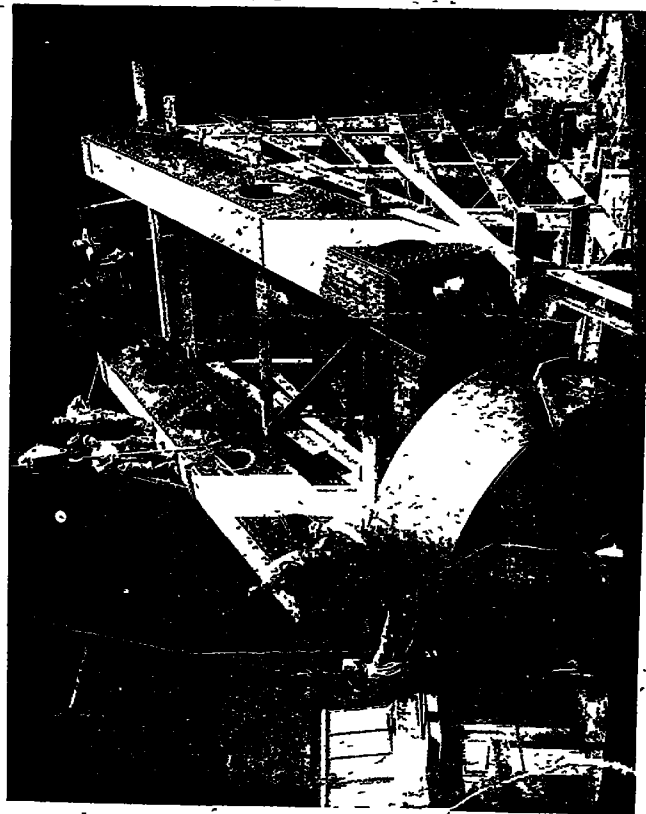
चित्र १० अ—संसार के सब से बड़े दूरदर्शक को धुरी स्थापित की जा रही है। इस बड़े भारी यंत्र की डील-डौल का अनुमान मनुष्यों के चित्र से किया जा सकता है। [सौर-परिवार से मौंट विल्सन वेधशाला]
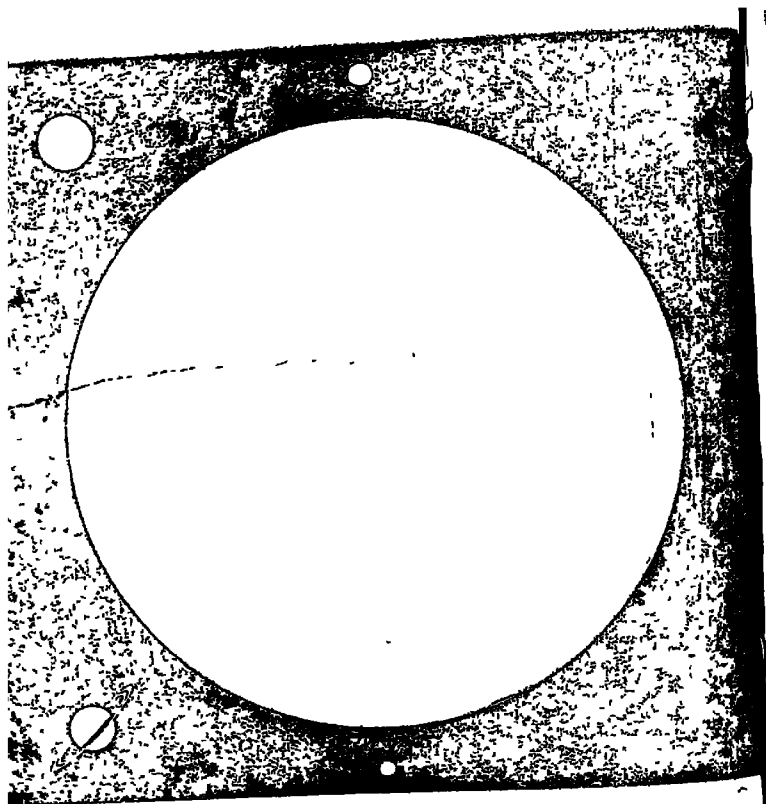
चित्र १३—ग्रहों के सापेक्ष छुटाई-बड़ाई। सूर्य बीच में है। ऊपरवाले दाहिने कोने मे बृहस्पति और बायें में शनि हैं। इन से नीचे पृथ्वी और शुक्र हैं।

[सौर-परिवार से

देखने मे नीहारिकाए तो असख्य नहीं जान पड़ती, परतु असल मे अनत नीहारिकाए हैं, और दूरी के कारण नही देख पड़ती या अब तक हम लोगो के पास उन के प्रकाश के पहुँचने की नौबत नहीं आयी। दूरबीन से देखने पर तारो की तरह नीहारिकाए भी असख्य जान पड़ती हैं।

इस तरह हम जिस तारो-भरे आकाश को स्वच्छ रात्रि मे देखते हैं, वह वस्तुतः अनत देश है। इस अनत देश मे अनत विश्व है। इन्हीं विश्वो मे से एक विश्व आकाश-गगा नाम की नीहारिका से घिरा हुआ है। इस आकाश-गगावाले विश्व मे भी अनत ब्रह्माड हैं। हर एक ब्रह्माड का नायक कोई सूर्य है। हमारा ब्रह्माड उन सब मे से एक है जिस का नायक विवस्वन् है। इसी ब्रह्माड मे हमारी यह धरती है जिसपर खड़े खड़े अनत विश्वो और अनत ब्रह्माडो का हम तमाशा देख रहे हैं।

इस अनत देश मे, इन विश्वो के असख्य समूह मे, इन अनत ब्रह्माडो के बीच मे हमारा ब्रह्माड है जिस मे नौ पिंड सूर्य के चारो ओर चक्कर लगा रहे हैं, जिस मे से बुध से गिनते हुए हमारी धरती तीसरा पिंड है, जिसे हम अपनी दुनिया या जगत या ससार कहते हैं।

४—हमारी दुनियां । पृथ्वी का पिंड

साधारणतया जब आँधी नहीं चलती होती तब यह भू-मडल हमारे लिये एक अत्यत शात जगत जान पड़ता है। रात को जब बादल नहीं होते और शुद्ध स्वच्छ आकाश दिखाई देता है उस समय रात-रात आकाश का तमाशा देखनेवाले के लिये एक अद्भुत बात सामने आती है। वह यह है कि धीरे-धीरे बड़ी निश्चित गति से यह अनत विश्वाकाश पच्छिम की ओर बढता जाता है और पूरब की ओर से परदे का नया नया हिस्सा आखो के सामने आता जाता है। आकाश की इस गति को मनुष्य अनादि काल से देखता आया है। यह गति ऐसी नियमित है कि इसी के आधार पर मनुष्य ने काल का हिसाब लगाया और इसी निरीक्षण के बल पर ससार मे ज्यौतिष-शास्त्र का आरभ हुआ। पच्छिम के पुराने लोगो ने भी समझा था कि आकाश घूमता है परंतु भारत के प्राचीन और युरोप के पीछे के ज्योतिर्विदो ने इस सबध मे जो अनुमान किया वह आज-कल के ज्यौतिष-शास्त्र की सब से पहली खोज है। वह यह है कि सारा विश्व-मडल जो पूरब से पच्छिम की तरफ निरतर घूमता हुआ दिखाई पड़ता है, उस का कारण यह है कि हमारी धरती अपने धुरे पर बराबर पच्छिम से पूरब की ओर घूमा करती है[1]। सूर्य और

---

[1] हिंदू ज्यौतिषी आर्यभट्ट ने, जो विक्रम की छठी शताब्दी में हुआ था, अपने ग्रंथ 'आर्यभटीय' में पृथ्वी की अपने धुरे पर दैनिक गति पच्छिम से पूरब की ओर मानी है। हाल की खोजों से यह भी पता चला है कि तीन लाख बरस पहले वैदिक ऋषियों ने यह देख कर कि नक्षत्रो की पारस्परिक स्थिति अनंतकाल तक एक सी बनी रहती है और

दूसरे तारे पृथ्वी की परिक्रमा नहीं कर रहे हैं। पृथ्वी ही चौबीस घंटे में बड़े वेग से अपने धुरे पर एक बार घूम जाती है। इस विचार-परिवर्तन से हिसाब मे अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि यह समझ का ही फेर है। सापेक्ष गति मे परिवर्त्तन नहीं है।

धरती की इस चाल के सिवाय सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने वाली चाल भी है। पृथ्वी एक मिनट मे एक हजार मील के ऊपर के वेग से सूर्य के चारों ओर घूमती है। साल भर में यह चक्कर अट्ठावन करोड़ मील के लगभग होता है। पृथ्वी से सूर्य का पिंड तीन लाख तैंतीस हजार गुना अधिक भारी है। इस लिये पृथ्वी के पिंड पर सूर्य के पिंड का बहुत भारी खिंचाव पड़ता है। इसी से पृथ्वी बराबर तीन सौ पैंसठ दिन के चक्कर लगाती रहती है। पृथ्वी की गति में बाहर फेंके जाने की बड़ी भारी प्रवृत्ति है। एक क्षण के लिये भी सूर्य अपना खिंचाव बंद कर दे तो पृथ्वी सीधी रेखा में आकाश के अनंत देश में सीधे उड़ती चली जाय। सूर्य के खिंचाव और पृथ्वी के भागने की प्रवृत्ति दोनों के बीच ऐसी समान गति स्थापित है कि पृथ्वी एक विशेष वृत्त मे निरंतर घूमती रहती है। इसी तरह और आठों ग्रह भी घूमते रहते हैं।

जैसे पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है, वैसे ही चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है। कभी कभी इसी परिक्रमा में सूर्य और पृथ्वी के बीच में चंद्रमा आ पड़ता है। इस से सूर्य की किरणें रुक जाती हैं और 'सूर्य-ग्रहण' लग जाता है। जैसे सूर्य की रोशनी धरती पर पड़ती है उसी तरह चंद्रमा पर भी धूप पड़ती है। इसी धूप को हम चंद्रमा की रोशनी समझते हैं। जब कभी चंद्रमा और सूर्य के बीच में पृथ्वी पड़ जाती है अर्थात् चंद्रमा पृथ्वी की छाया के भीतर आ जाता है तभी 'चंद्र-ग्रहण' लग जाता है। उसी तरह जब धरती और सूर्य के बीच चंद्रमा आ जाता है तो 'सूर्य-ग्रहण' लग जाता है।

उरण
वरुण
शनि
बृहस्पति
अवांतर ग्रह
मंगल
पृथ्वी
बुध शुक्र

चित्र १४—ग्रहों की सापेक्ष दूरी
[सौर-परिवार से

सूर्य, चंद्रादि ग्रहों की स्थिति निश्चित समयों पर बदला करती है, आकाश के इस यथार्थ को आजकल की घड़ी के चेहरे की तरह अचल और सूर्य चंद्रादि को घंटे और मिनिट की सुइयों की तरह चल मान कर "सुपर्णचिति" नामक शाश्वत पंचांग की रचना की। देखिये, पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट रचित "वेदकाल-निर्णय", पृ० ७६-६१ (हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर, सं० १९८७)।

सूर्य का पिंड इतना विशाल है कि नवों ग्रहों को और उपग्रहों को इकट्ठा कर लिया जाय तो भी सूर्य के पिंड की बराबरी को सब मिल कर नहीं पहुँच सकते। यह ग्रह इतने
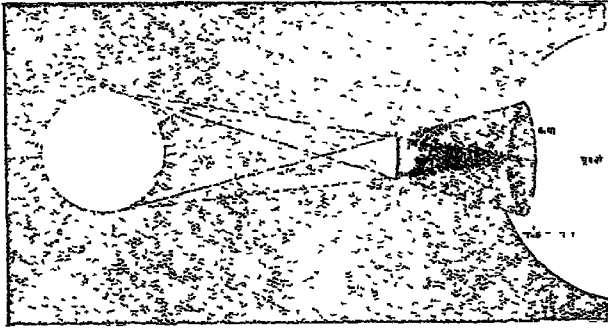
चित्र १६—चंद्रमा की प्रच्छाया और उपच्छाया [सौर-परिवार से

छोटे है तोभी इन का महत्व बहुत है क्योंकि हमारी दुनिया से इन से बहुत कुछ मेल है और शायद हमारा-सा जीवन इन पिंडो मे भी पाया जा सके।

५—दूरी नापने की विधि

पृथ्वी से सूर्य की औसत दूरी सवा नौ करोड़ मील के लगभग है। इस का यह मतलब है कि आज से छः महीने मे पृथ्वी साढे अट्ठारह करोड मील की दूरी पर चली जायगी। अब यदि हम आकाश के किसी भाग की फोटो आज लें और फिर छ महीने बाद उसी भाग की फोटो ले तो हम साढे अट्ठारह करोड़ मील दूर के दो विंदुओं से तारों की स्थिति देखते हैं। इस तरह निरीक्षण करके देखा जाता है तो जो तारे हम से बहुत निकट हैं वह कुछ तनिक-सा खसके हुए दीखते हैं। इसी खसकने के द्वारा सब से पासवाले तारों की दूरी नापी गयी है। अभी हाल मे एक तारे का पता लगा है जो साढे बाईस नील मील की दूरी पर है। अब तक कुल तीस तारे ऐसे देखे गये हैं जो एक पद्म मील की दूरी के भीतर-भीतर के हैं।

इस प्रकार नापने से भी बहुत काम नहीं चलता। पाच पद्म मीलों की दूरी के भीतर-भीतर दो चार सौ तारों से अधिक नहीं हो सकते। इतनी दूरी का हिसाब करना बहुत मुश्किल है क्योंकि खसकने की मात्रा इतनी कम है कि निश्चित अक नहीं मिलते। इस लिये ज्योतिषी को दूसरा उपाय करना पडता है। वह तारों की भिन्न-भिन्न प्रकार से जाच करता है और उन की ज्योति की कमी और वेशी से थोडा बहुत अटकल कर लेता है

कि कौन तारा कितनी दूर होगा। उस के पास ज्योति को नापने के लिये यंत्र है। इस क्षेत्र में तीस बरस तक काम करने के बाद अब यह मालूम हो गया है कि आकाश-गंगा के रहने वाले तारे सूर्य से कम से कम दस लख मील की दूरी पर हैं।
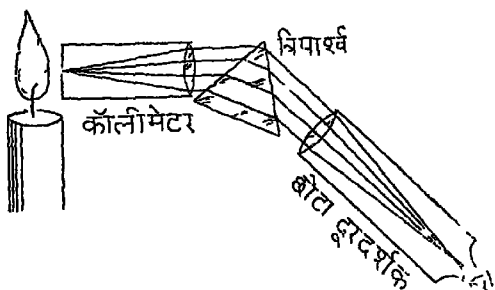
चित्र १६—रश्मि-विश्लेषक यंत्र की बनावट। [सौर-परिवार से

आकाश-गंगावाले विश्व में हमारा सूर्य बीचो-बीच के लगभग है। अगर ठीक बीच में नहीं है तो ठीक केंद्र से दस बीस पद्म मीलों से ज्यादा दूरी पर न होगा। बाक़ी जितने तारे हैं हमारे सूर्य-मंडल से बाहर विश्व में चारों ओर फैले हुए हैं। इन का फैलाव इतना विशाल है कि एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलने में प्रकाश की एक किरण को पचास हजार बरस से कम नहीं लगेंगे। हमारे विश्व का विस्तार इतना समझना चाहिये।

६—पिंडों की जांच के लिये यंत्र

हमने अपनी धरती से सूर्य का संबंध समझा और सूर्य से अपने विश्व का संबंध समझने की कोशिश की। अब यह देखना है कि सूर्य की तथा उस के परिवार वालों की क्या दशा है, आपस में कैसा संबंध है? कहां कैसा जीवन है या हो सकता है? प्रत्येक का जीवन कितना है?

सूर्य और तारों में हर तरह की अवस्था के पिंड हैं। ग्रहों में भी यही तारतम्य है। इन बातों को बारीकी से जानने के लिये ज्यौतिषी रश्मि-मापक यंत्र से काम लेता है। इस यंत्र में एक तिपहला कांच लगा रहता है।

लोगों ने देखा होगा कि तिपहले कांच से [देखो चित्र १६] जब सूर्य की रोशनी निकलती है तो इंद्र-धनुष के सात रंगों में बँट जाती है। सूरज की किरणों में यही सात रंगों की किरणें हैं। इंद्र-धनुष ही क्या है? [देखो मुख-पृष्ठ का रंगीन चित्र] जब सूरज के सामने की दिशा में कहीं बारीक बूंदे पड़ती रहती हैं और सूरज की रोशनी सामने से आती है तो पानी की हर बूंद तिपहले कांच का काम करती है और हर किरण को

इन्हीं सात रगो मे बाट देती है। किरणे गोलाकार पिड से आती हैं इस लिये आकाश मे धनुष का आकार दिखाई पड़ता है। चद्र-मडल भी इसी तरह बनता है। एक ओर रश्मि रेखाओ को समानातर करने वाली नलिका (कालिमेटर) लगा देते हैं और दूसरी ओर किरण-मापक य त्र मे एक तिपहला काच लगा कर उस के सामने एक छोटी दूरबीन लगा देते हैं। समरश्मिकनलिका (कालिमेटर) के लबे धज्जीनुमा छिद्र या शिगाफ के सामने तेज़ जलती हुई दशा मे कोई गैस रक्खी जाय या दीपशिखा रहे तो य त्र के भीतर किरणों का चित्र आता है। उसमे भिन्न-भिन्न रगो के पट पर कम या अधिक
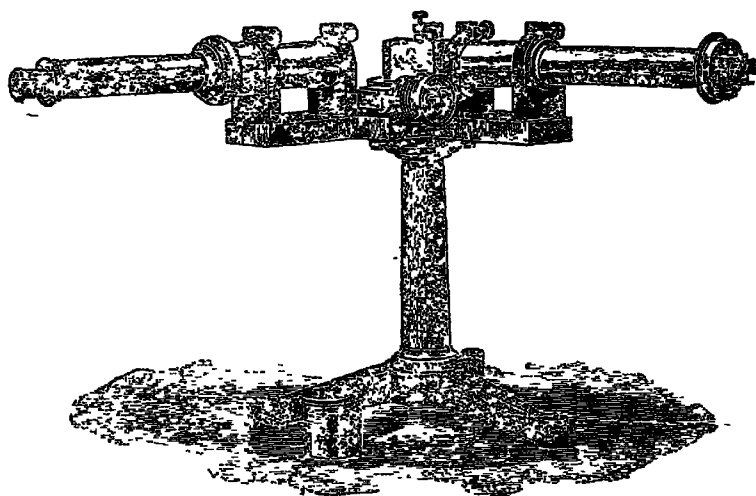
चित्र १७—रश्मि-विश्लेषक यंत्र [सौर-परिवार से

दूरी पर विशेष चमकीली रेखाए देख पड़ती हैं। हर धातु की रेखाए विशेष रग की और विशेष स्थानो मे पायी जाती हैं। जितने मौलिक पदार्थ इस विश्व मे हैं उन मे से हर एक की रेखाए अलग-अलग रग की और किरणो के पट पर अलग-अलग सदा अपने विशेष स्थानो पर ही दिखाई पड़ती हैं। जब एक तेज जलती हुई शिखा की किरणे उसी पदार्थ की ठडी दशा मे से होकर निकलती हैं तो किरण-पट पर रगीन और चमकीली रेखाओं के बदले काली रेखाए देख पड़ती हैं। इस यत्र मे जब सूर्य की किरणो की जाच की जाती है तो पता लगता है कि जितने पदार्थ हमारे धरती पर हैं सब अत्यत उत्तप्त और मूल-पदार्थ के रूप मे सूर्य के पिड मे भी मौजूद हैं। जब सूर्य का सर्वग्रहण लगता है और हम इस यत्र के सहारे देखते है तो हमे सूर्य के बिंब से ऊपर उठती हुई लाल-लाल शिखाए देख

पड़ती हैं। रश्मि-यंत्र हम को यह बताता है कि यह उज्ज्वल वायु की शिखाएं हैं जो खटिकम की वायु से मिल कर लाल-लाल बन कर सूर्य के पिंड से बहुत ऊंचे कभी-कभी पांच-पांच लाख मील तक उठती हैं। यद्यपि सूर्य का पिंड हमसे नौ करोड़ मील से ज्यादा दूर है तो भी इस यंत्र के सहारे हम यह जान लेते हैं कि सूर्य का पिंड किन-किन पदार्थों से मिल कर बना है। आकाश में जितने पिंड प्रकाश देते हैं वह सब किन-किन मसालों को मिला कर
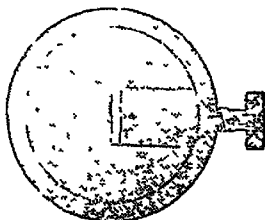
चित्र १८—शिगाफ जो रश्मि-विश्लेपक यंत्र मे प्रकाश देने वाली वस्तु के सामने पड़ता है [सौर-परिवार से

बनाये गये हैं यह बात इस यंत्र से मालूम होती है। दूरबीन से हम दूरी नाप सकते हैं, बहुतों की चाल की कुछ अटकल कर सकते हैं। परंतु यह नहीं जान सकते कि ये पिंड किन किन चीज़ों के बने हुए हैं। किरण-मापक यंत्र से तो उन तारों के बारे में भी हम यह पता लगा सकते हैं कि वह पिंड किन वस्तुओं के बने हुए हैं जिनकी दूरी और चाल का पता दूरबीन आदि किसी और साधन से नहीं लगता।

७—सृष्टि और लय

ज्यौतिषियों ने यह भी अनुमान किया है कि यह सारा विश्व जो आकाश-गंगा के अंतर्गत है कभी किसी अत्यंत सुदूर और अनंत काल में बना होगा। सृष्टि-रचना के संबंध में उन के अनुमान अद्भुत हैं और वह अनुमान भी दिखी हुई घटनाओं के आधार पर हैं। उन्हों ने कभी-कभी किसी नये तारे का जन्म भी देखा है। ज्यौतिषी लोग अक्सर नये तारे के देखे जाने की सूचना छपवाया करते हैं। आकाश-मंडल में संवत् १९८० में एकाएकी एक तारा निकल पड़ते देखा गया। वह नित्य-नित्य चमक में बढ़ने लगा और थोड़े ही दिनों में सैकड़ों गुना ज्यादा तेज हो गया। यंत्रों के द्वारा जांचते और नापते हैं तो पता लगता है कि इस की रोशनी जो आज हमारे पास पहुँची है तीन सौ बरस पहिले उस तारे के पिंड से चल चुकी थी। जब हम यह सोचते हैं कि रोशनी एक सेकंड में एक लाख छियासी हज़ार मील के वेग से चलती है तो उस तारे की दूरी कितनी अनंत होगी
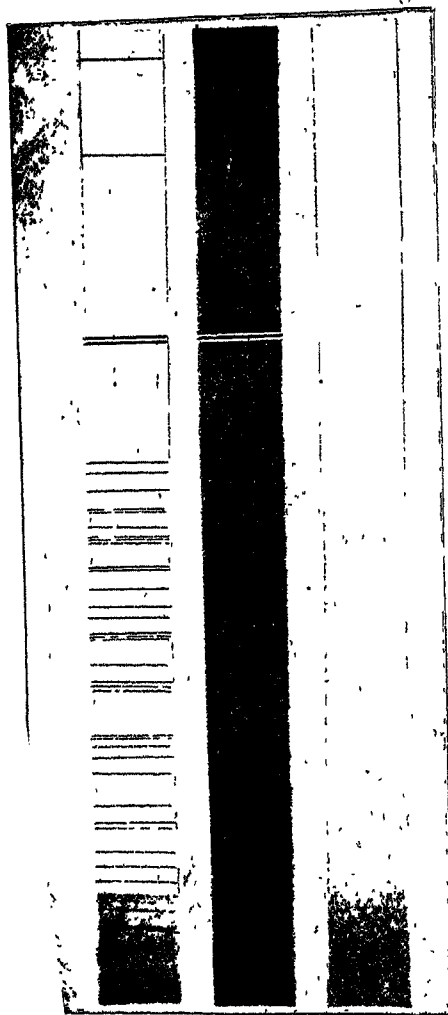
चित्र १९—रश्मि-चित्र

नीचे मोम बत्ती के प्रकाश का रश्मि चित्र है, बीच में सोडियम प्रकाश का, और ऊपर सौर प्रकाश का। जहां सोडियम रश्मि चित्र मे दो चमकदार पीली रेखाएं हैं, ठीक वहीं सौर रश्मि-चित्र में दो काली रेखाएं हैं। इससे सूर्य्य मे सोडियम का होना सिद्ध है।

[सौर-परिवार से

[विज्ञान हस्तामलक पृ० ३९ के सामने]

जहां से रोशनी को चल कर वहां पहुँचने मे तीन सौ बरस लगते हैं* । पर इस से भी अधिक अचरज की बात यह है कि हम अपनी जगह पर बैठे-बैठे तीन सौ बरस पहले हो चुकी

चित्र २०—दो तारे चलते-चलते पास पहुचे और खिचाव से

घटनाए आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं, पर और भी अधिक कुतूहल की बात यह है कि हम असल में एक नये सूर्य की सृष्टि देख रहे हैं । हमारे अनत विश्व के किसी भाग मे कोई शिथिल
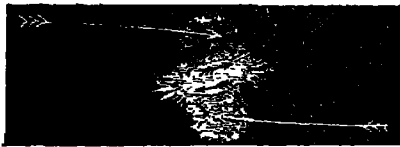
चित्र २० क—दोनों लड गये [सौर-परिवार से

मरा हुआ ज्योतिहीन और शक्तिहीन पिड था, जिसने किसी और ऐसे ही पिड से अनत देश की अधी यात्रा मे टक्कर खायी और दोनों के घिस-पिस जाने से एक प्रज्वलित और
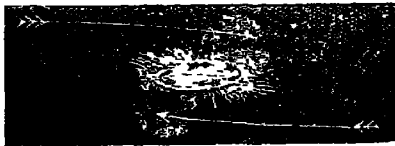
चित्र २० ख—तीसरा पिड बनने लगा [सौर-परिवार से

सजीव सूर्य उत्पन्न हो गया । जिस व्योमदेश मे यह घटना हुई होगी उस मे अरबो मील के चौगिर्दे मे महा भयानक शब्द हुआ होगा और वह प्रचड प्रकाश हुआ होगा कि सूर्यो की

---

* हिसाब से इस तारे की दूरी हमारी धरती से लगभग तिरासी नील मीलों के होती है ।

आखे चौंधिया गयी होगी और वह भीषण ताप निकला होगा जिस मे पास के अनेक ग्रह और तारे पिघल कर और खौल कर हवा हो गये होगे। कई दिनो में उस की रोशनी जो बढ़ती

चित्र २० ग—तीसरा पिंड अलग हो गया [सौर-परिवार से

[चित्र २०, २० क, २० ख, २० ग सौर-परिवार में ए० डबल्यू० विकरटन की पुस्तक "बर्थ अफ वर्ल्ड्स ऐंड सिस्टम्स" से लिये गये हैं]

गयी वह उसी भारी घटना का पता दे रही थी, और हमारे लिये जो एक मामूली सी बात थी, वही तीन सौ बरस पहिले हो चुकी किसी ब्रह्माड की सृष्टि थी।

ज्योतिषियों का अनुमान है कि जो अत्यत सूक्ष्म ज्योतिर्मय पदार्थ नीहारिकाओं (नेब्युली) के भीतर देख पड़ता है उसी से नीहारिकाओ का आरभ होता है। [देखो नीहारिकाओं के चित्र] यह ज्योतिर्मय पदार्थ अनत देश मे बहुत दूर-दूर तक पसरा और फैला हुआ रहता है। किसी अज्ञात कारण से इस अत्यत सूक्ष्म पदार्थ के भीतर आदोलन पैदा होता है, और बड़े वेग से यह पदार्थ चक्कर खाने लगता है और घना होने लगता है। यह भयानक चक्कर जो अनत देश मे फैल जाता है अत मे कुडली का आकार ग्रहण करता है। इस आकार के ग्रहण करने मे जितना समय लगता होगा उस के लिये हम महाशख महाकल्प की इकाई मान कर भी कहना चाहें तो गिनती द्वारा बता नहीं सकते। इस कुडली का बनना विश्व का बनना हुआ। इस विश्व के भीतर अनगिनती सूर्य-मडलो की रचनाए, उन का विकास और उन का महाप्रलय होता रहता है। विश्व बना रहता है और यह सूर्यमडल बनते बिगड़ते है। इस विश्व का महाप्रलय कब और कैसे होता है, इसका पता नहीं है।*

---

* पच्छाही सृष्टि-पुराण मे लिखा है कि ईश्वर की आत्मा नारा पर बह रही थी और अंधकार छाया था। हिन्दू पुराणों मे प्रायः सभी जगह सृष्टि की कथा कुछ इस तरह पर दी हुई है। अनंत और अपार क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर नारायण शयन कर रहे हैं। उन की नाभि से कमल निकलता है और कमल पर चतुर्मुख ब्रह्मा प्रकट होते हैं। कमल-नाल की जड़ का पता लगाने के लिये ब्रह्मा जी कमल से नीचे उतरते है। हजारों बरस तक नीचे उतरते चले जाते हैं परंतु नाभि तक नही पहुँच पाते। लौट कर फिर कमल पर आते हैं। फिर तपस्या करते हैं। इसी समय मधु और कैटभ दो भीषणाकार दानव
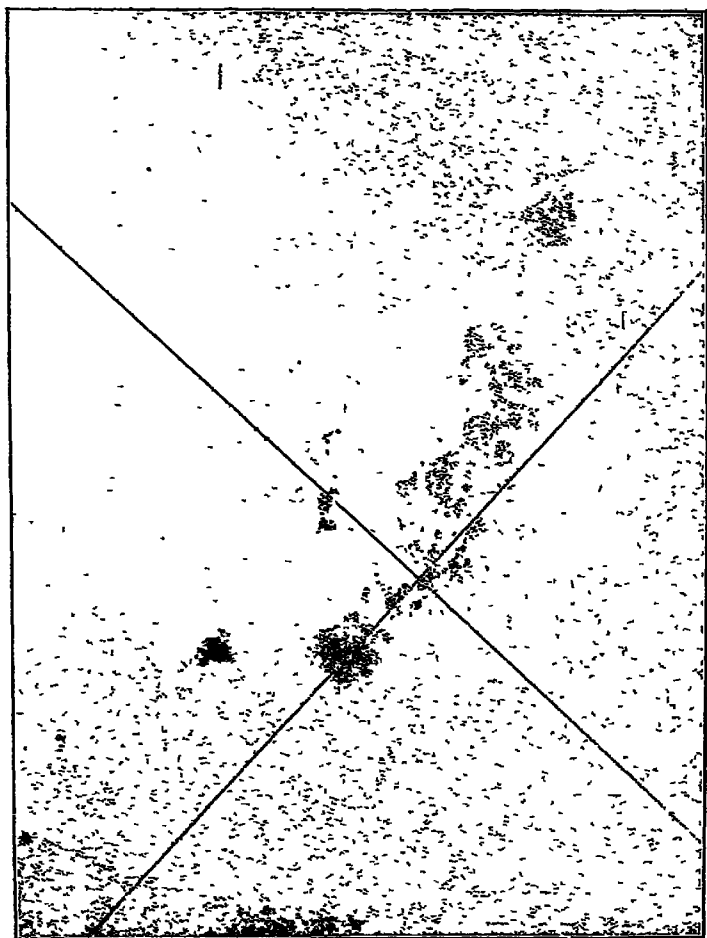
इस विश्व के भीतर हमारे सूर्य के परिवार की तरह अनगिनतियो परिवार हैं। हमारे सूर्य की गिनती उन में से बहुत छोटे सूर्यों मे है। हम नही जानते कि और तारों के भी, जिन में से प्रत्येक अपने-अपने मडल का सूर्य है,—उसी तरह ग्रह और उपग्रह हैं जैसे हमारे सूर्य के गिर्द घूमने वाले हे, क्योंकि वह तारे इतनी दूरी पर है कि बड़ी से बडी दूरबीन से भी हम उन्हे नहीं देख सकते। जो तारा हमारे लिये सब से पास है वहा से अगर दूरबीन के द्वारा हमारे सौर-मडल को वहा का कोई आदमी देखे तो वह भी हमारे सूर्य के परिवार के सब से बडे ग्रह बृहस्पति को भी नही देख सकेगा। परतु ऐसा नही हो सकता कि विश्व भर मे केवल हमारे ही सूर्य के पास ग्रहो का परिवार हो और उस मे भी केवल हमारी धरती पर ही प्राणियो की बस्ती हो और इस सारे विश्व मे केवल हम ही लोग इसे आबाद करते हो और बाकी सारा अनत देश सूना हो। ऐसा अनुमान करना बुद्धि के अनुकूल नहीं मालूम होता। इस लिये हम देखते भी नहीं, तो भी हमारा पक्का अनुमान है कि हर तारे के चारो ओर उस के ग्रह और उपग्रह चक्कर लगाया करते है और उन ग्रहो और उपग्रहो मे से किसी-किसी मे तो अवश्य ही प्राणियो की आबादी होगी।

हमारे सूर्य के चारो ओर जितने ग्रह और उपग्रह चक्कर लगाते हैं सब ही अडाकार घूमते ह। सूर्य को मध्य मे मान कर वरुण और कुबेर ग्रह को अतिम चक्कर लगाने वाला देख कर हम यह कह सकते हे कि विश्व के भीतर हमारे सूर्य का परिवार इस अनत देश मे अडाकार स्थान घेरता है। हम इस सपूर्ण परिवार के चक्कर लगाने के देश को और उस देश मे चक्कर लगाने वाले पिंडो के समूह को ब्रह्माड कह सकते हैं और हमारे सूर्य का नाम यदि विवस्वन् माना जाय तो हम अपने ब्रह्माड को वैवस्वत ब्रह्माड कह सकते है। जैसा हमारा ब्रह्माड है वैसा ही ब्रह्माड हर एक तारे का है और जिस तरह हमारे विश्व मे असख्य तारे हैं उसी तरह असख्य ब्रह्माड भी हैं। हम रात को जो आकाश मे दोनो आकाश-गगाओं के बीच और आस-पास तारो को देखते हैं तो सचमुच अगणित ब्रह्माडो के नायक सूर्यो के दर्शन करते हैं। और जिन-जिन नीहारिकाओं को हम देखते हैं हम वस्तुतः अपने विश्व के सिवाय और बाहर के विश्वो की एक झलक देख लेते हैं। आकाश-गगा मे स्थित इस विश्व को हम क्षीराब्धि-विश्व कह सकते हैं।

प्रकट होते हैं। शक्ति भगवती की माया से वह दोनो लड कर मर जाते हैं। उन के मेद से मेदिनी बनती है। आज कल के ज्योतिषियों के अनुमानो को पुराणों की इन कथाओं से मिलाना बड़ा कौतूहल-जनक है। आधुनिक ज्योतिर्विद् भी नीहारिका की कुडली के भीतर ही विश्व-निर्माण का अनुमान करता है, और तमोमय पिडों के लड जाने पर नये पिंड की रचना बताता है। साथ ही इस कुडली का विस्तार भी अनत और अपार दिखाता है। सृष्टि के गूढ़ तत्व पुराण के इन रूपको मे प्रतिध्वनि रूप से निहित है।
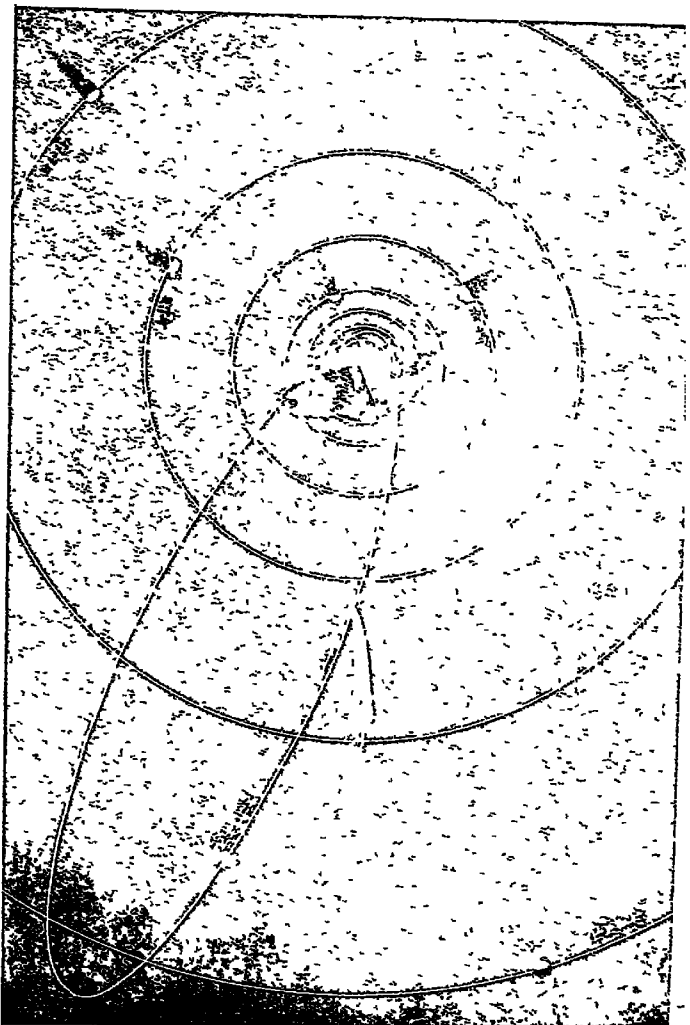
चित्र २२—सौर परिवार । इसमें डेढ़ हज़ार के लगभग नन्हें-नन्हें अवांतर ग्रह भी हैं, जो दिखाये नहीं जा सके हैं [सौर-परिवार से

दूसरा अध्याय

हमारा ब्रह्मांड

१. सूर्य

हम ने यह देखा कि इस अनन्त सृष्टि मे हमारी क्या स्थिति है। अब यह देखना है कि इस ब्रह्माड मे सूर्य के परिवार के लोगो की क्या दशा है।

पहले सूर्य को ही लीजिये। सूर्य एक अत्यत विशाल गोला है जिस का व्यास ८,६६,४०० मील है। इस के ऊपरी तल का क्षेत्र फल २३ खरब ६० अरब वर्ग मील है। इस का घनफल २४ शख घन-मील के लगभग है। सूर्य के पिड के भारी होने का अनुमान करने की कोशिश मे दिमाग चकरा जाता है। थोड़ी देर के लिए मान लीजिये कि ऐनक और घड़ी लगाये पृथ्वी का एक भला मानुस जो वजन मे डेढ मन होगा सूर्य के पिंड पर पहुच गया है। सूर्य पर अब उस का वज़न बयालीस मन हो गया। उस के एक-एक हाथ का वज़न जो पृथ्वी पर दो-दो सेर रहा होगा तो सूर्य पर डेढ-डेढ मन के लगभग हो जायगा और उस की कलाई मे अगर लगभग आधी छटाक के वजन की रिस्ट वाच हुई तो वह भी साढे तीन पाव के लगभग भारी हो जायगी। एक तोले वज़न की ऐनक डेढ पाव के लगभग हो जायगी। अगर वह हाथ उठाना चाहेगा तो उसे डेढ मन वज़न उठाना पड़ेगा। वह संयोग-वश गिर पड़ा तो फिर उठ न सकेगा।

परतु उस के पहुंचने ही की बात लीजिये। पृथ्वी से सूर्य ९।। करोड़ मील दूर है। पृथ्वी से ८ करोड़ मील चलने पर ही वह आच से घबड़ाने लगेगा। आगे बढने मे कुशल नहीं है, क्योंकि उस का शरीर आच से जलने लगेगा। जब दो लाख मील की दूरी रह जायगी तभी उस का शरीर जल कर और पिघल कर परमाणु-परमाणु अलग हो चुका रहेगा। लगभग १७ प्रकार के परमाणु मनुष्य के शरीर मे सयुक्त दशा मे है। वह सब के सब अलग हो चुके रहेगे। और प्राण ? उस की तो बात ही न पूछो। वह तो कभी का निकल चुका होगा। धरती पर कुछ वायव्यों को और सोना आदि धातुओ को छोड़ सभी पदार्थ सयुक्त दशा मे हैं। परतु सूर्य पर इतनी प्रचड आच है कि सयुक्त दशा मे कोई पदार्थ रह नहीं सकता। घन दशा मे भी

चित्र २३—सूर्य के भवर जो विशेष यंत्र से ही देखे जा सकते हैं [सौर-परिवार से

किसी पदार्थ का रहना असंभव है। उस में जितने पदार्थ हैं सब के सब मौलिक हैं। सभी वायु-रूप में हैं और वह वायु भी ऐसे प्रचंड ताप पर है कि आंच के कारण ज्योतिर्मय हैं। जो कुछ हमें सूर्य का ऊपरी तल मालूम होता है उस का तापक्रम पांच हजार से लेकर सात हज़ार शतांश तक आंका गया है। उसकी आंच का यह हाल है कि सर्वग्रहण के समय में उस के किनारों पर पांच लाख मील की ऊंचाई तक प्रज्वलित उज्जन वायु की लाल शिखाएं लहराती रहती हैं। यह शिखाएं लाल इस लिये हैं कि इस में खटिकम धातु से वायव्य की शिखा साथ ही साथ मिली-जुली लहरा रही है। साधारण समय में यह दिव्य दर्शन नहीं हो पाता क्योंकि उस की सफेद चमक इतनी तेज होती है कि इन लाल शिखाओं को छिपा लेती है।

इसी चमक के कारण साधारणतया यह समझ में नहीं आता कि सूर्य का पिंड कैसा होगा। दूरबीन से देखने में कभी-कभी सूर्य के बिम्ब के ऊपर काले काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। ये धब्बे काले होते हैं और खसकते हुए भी मालूम होते हैं। अनुमान किया जाता है कि तेज सफेद रोशनी सूर्य के पिंड के ऊपर के अग्निमय बादलों से आती होगी और पिंड का भीतरी भाग काला होगा जो बादलों के फट जाने से काले धब्बे सा दीखने लगता है। अनुमान है कि भीतरी भाग भी प्रचंड तापमय है परन्तु वह भी वायव्य पदार्थ का बना हुआ है। बड़ी तेज आंच पर हवाई चीज़ के होते हुए भी गैस इतनी घनी होगी कि यहां के सीसे से भी ज्यादा उसकी घनता अनुमान की जा सकती है। यही प्रचंड ताप और प्रकाशवाला वायव्यों का महापिंड जो आत्यंतिक वेग से अपनी धुरी के चारों ओर घूम रहा है और अपने महाकाय के खिंचाव से करोड़ों मील की दूरी पर के ग्रहों को अपने चारों ओर नचा रहा है, सूर्य का पिंड है। यही सूर्य अपने प्रचंड ताप को लगातार अपने ब्रह्मांड भर में बिखेरता रहता है। करोड़ों नहीं शायद अरबों बरस से बिखेरता आया है। तब भी इस के ताप में कोई कमी नहीं दीखती। इस का प्रकाश घटता नहीं दीखता। यह अक्षय तेज़ कहां से आया? इस संबंध में कई मत हैं। अगर कहा जाय कि सूर्य बहुत धीरे-धीरे ठंढा हो रहा है, इतने धीरे कि हमें पता नहीं लगता, तो इस दलील की गुंजाइश इस लिये नहीं है कि अगर ठंढे ही होने की बात है तो सूर्य जैसे पिंड के ठंढे होने में लाखों बरस नहीं लग सकते। इस लिये यह नहीं कहा जा सकता कि सूर्य बहुत धीरे-धीरे ठंढा हो रहा है। पृथ्वी पर अनेक ऐसी धातुएं हैं जो सूर्य में भी पायी जाती हैं जिन की आयु निश्चित रूप से सात आठ अरब बरस से कई गुना अधिक है। इस से अनुमान होता है कि जिस मसाले के ये पिंड बने हुए हैं वे चाहे जहां से आये हों पर हैं बहुत पुराने। यदि सूर्य अरबों नहीं, केवल करोड़ों ही बरस से इस ब्रह्मांड का नायक होता तो भी कब का ठंढा हो चुका होता। इस लिये वैज्ञानिकों का कहना है कि सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति जो बड़ी प्रचंड है उसे सुकड़ा रही है। सुकड़ने से ही उस में से बराबर आंच निकलती आती है। यदि प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणु को गुरुत्वाकर्षण से खींचता है और यदि सूर्य का व्यास चारों ओर से इस तरह एक मील सुकड़ जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि अरबों मन पदार्थ चारों ओर से केंद्र की ओर एक मील के लगभग डूब गया, परंतु बात इतनी ही नहीं है। एक मील नीचे का अरबों मन पदार्थ भी अपने से और नीचे एक मील से कुछ कम डूब
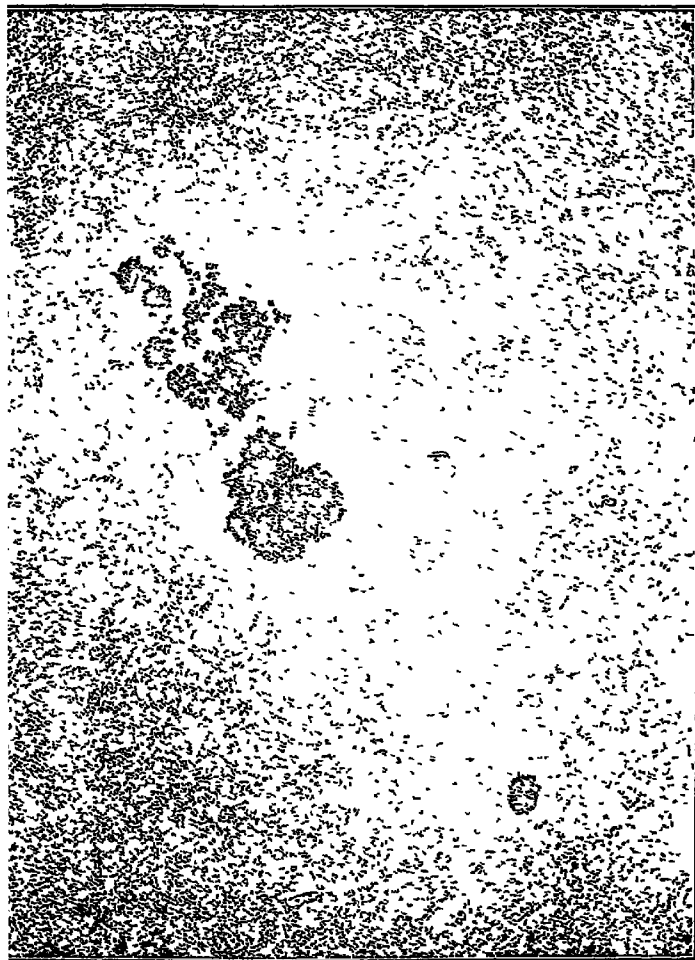
चित्र २४—सूर्य का तल। इस पर अनेक चमकीले दाने और दो चार बड़े बड़े कलंक दिखाई पड़ते हैं [सौर-परिवार से

गया होगा। इसी तरह केंद्र तक कुछ थोड़ा-थोड़ा घटते हुए परिमाण में सुकड़न होगी। यह सुकड़न अरबों बरस तक अत्यंत धीरे-धीरे होती हुई भी, और प्रचंड ताप देते हुए भी समाप्त न होगी।

कोई तीस बरस हुए इसी धरती पर ऐसे अनेक पदार्थों का पता लगा है जिन के परमाणु खंड-खंड होते रहते हैं और इस क्रिया में लगातार आँच निकलती रहती है और हिसाब लगाया गया है कि कोई कोई पदार्थ ऐसे भी हैं जिन के परमाणुओं का खंड अरबों बरस तक बराबर होता रहेगा और लगातार आंच निकलती रहेगी। इस तरह के पदार्थ सूर्य में भी बहुत भारी परिमाण में पाये जाते हैं। इन से लगातार ऐसी आँच निकल सकती है जो असंख्य कल्पों तक क्षीण न होगी। बहुत संभव है कि सूर्य का भीतरी पिंड इन्हीं पदार्थों का बना हो और इसी लिये सूर्य का तेज कभी क्षीण नहीं होता।

सूर्य के पिंड के भीतर इतना प्रचंड ताप है कि दोनों बातें संभव हैं। परमाणुओं का बनना भी संभव है और उन का खंड-खंड होना भी संभव है। वह खंड-खंड होते हों तो अपरिमित काल तक आँच में कमी नहीं हो सकती।

२—और ग्रह

सूर्य से सब से पास बुध है और सब से दूर वरुण और कुबेर हैं। पिछले दोनों तो शायद इतना तप रहे हैं कि उन के बारे में विचार करना व्यर्थ है। बुध उतने ही दिनों में अपने धुरे की परिक्रमा करता है जितने में सूर्य की, इस लिये उस का एक ही भाग सदा सूर्य के सामने बना रहता है। बुध के पिंड पर जिधर धूप बनी होगी उधर निरंतर धूप रहती होगी। कभी न तो सूर्य का उदय होता होगा, न अस्त। बुध की दूसरी ओर लगातार रात ही बनी रहती होगी। कभी दिन हुआ ही न होगा। बुध के जिस भाग में लगातार के रात और दिन का मेल होता होगा अर्थात् लगातार साँझ बनी रहती होगी वहीं शायद कोई प्राणी रहते होंगे। क्योंकि जिस देश में बराबर धूप रहती होगी वह ऐसा तपता होगा कि वहां धरती के से प्राणी रह न सकेंगे। और जिधर लगातार रात बनी रहती है उधर इतना ठंढा होगा कि वहां भी कोई प्राणी रह न सकेगा। बुध के कोई चंद्रमा नहीं है इस लिये वहां चाँदनी रात भी नहीं हो सकती। धूप की ओर तो इतनी गरमी होगी जिस से कि पानी खौलता रहता होगा और रात वाली ओर बरफ से दो तीन सौ दरजा नीचे की सरदी होगी।

बुध के बाद सूर्य से सब से अधिक पास शुक्र है। हम लोग बुध को तो मुश्किल से कभी देख सकते हैं पर शुक्र तो सवेरे तड़के या शाम को रात में बहुत चमकीला दिखाई पड़ता है। इस का पिंड लगभग पृथ्वी के ही बराबर है। शुक्र का वायुमंडल भी अच्छा ही है। उसके ऊपर निरंतर बादल घिरे रहते हैं। इस लिये उसका ऊपरी तल कभी दिखाई नहीं देता और यह पता नहीं लग सकता कि वह अपने धुरे पर कितने समय में घूमता है। कुछ ज्योतिषी समझते हैं कि हम ने पता लगा लिया है कि वह बुध की तरह अपनी धुरी के

चित्र २६—सूर्य-सर्वग्रहण
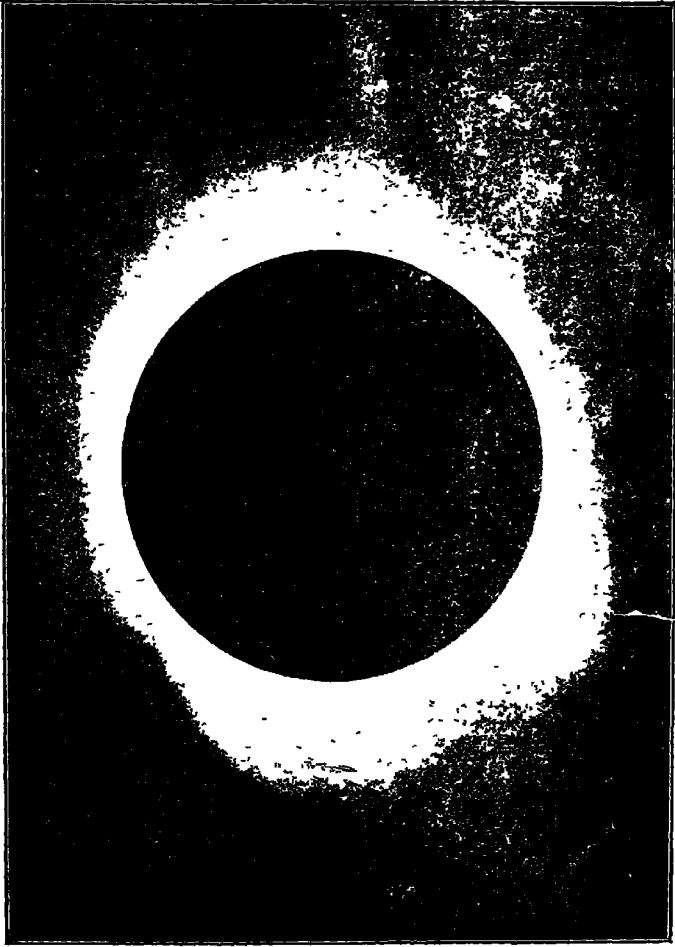
चारों ओर उतने दिनों में घूमता है जितने दिनों में सूर्य की परिक्रमा करता है। अगर यह ज्यौतिषी ठीक कहते हैं तो शुक्र की दशा भी सब बातों में बुध की सी होगी। परंतु अधिकाश ज्यौतिषी इस मत के नहीं हैं।

मगल ग्रह पृथ्वी से बहुत छोटा है और इसी लिये यह माना जाता है कि इस का पिड पृथ्वी की अपेक्षा जल्दी ठढा हुआ होगा। जिस पिंड पर पानी को उबालने वाली आँच हो उस पर पृथ्वी पर रहने वाले सरीखे प्राणी न हो सकते है और न जी सकते हैं। इस लिये ज्यौतिषियो का अनुमान है कि मगल पर प्राणियों का निवास और विकास पृथ्वी से लाखो बरस पहिले हो चुका होगा और इस समय जो प्राणी मौजूद होंगे उन्हें अपने विकास में मनुष्यों से कहीं अधिक आगे बढा-बढा होना चाहिये। इस तरह का अनुमान कर के जो वैज्ञानिक मगल ग्रह पर खोज करते है वह यह भी कहते हैं कि मगल ग्रह पर का जीवन पृथ्वी पर के जीवन से जरूर भिन्न होगा क्योंकि वहा वायु और जल की इस समय उतनी काफी मात्रा नहीं है, जितनी पृथ्वी पर के से जीवन के लिये चाहिए।
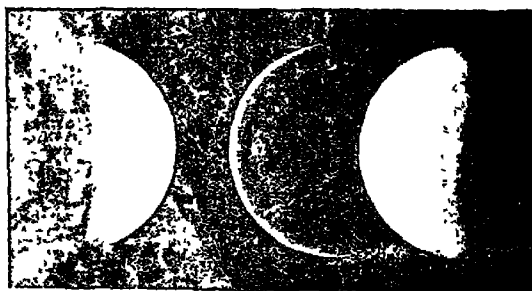
चित्र २८—बुध

चित्रकार ग्रेटर] [सौर-परिवार से

प्रोफेसर लोवेल ने दूरबीन से देखा कि मगल के पिड पर सैकड़ो सीधी रेखाए बनी हुई है, जिस के लिये उन्होंने अनुमान किया कि ये नहरे होगी जिन से खेतो की सिचाई होती होगी। मगल के धुरो पर सफेद सफेद बरफ की तहें जमी हुई देखी गयी हैं जिस से जल का अनुमान किया जाता है। परंतु मगल के वायुमडल मे कहीं बादल या जलवाष्प नहीं दीखता।

हमारे दूरबीनों से इन बातो का ठीक फैसला नही हो सकता क्योंकि मगल ग्रह पृथ्वी से तीन करोड चालीस लाख मीलो से कम फासले पर नहीं रहता और यह नज़दीकी पद्रह या सत्रह बरसों में एक बार ही होती है। बडे बड़े दूरबीनो से मगल ग्रह की जो फोट

चित्र २१—शुक्र की कलाएं
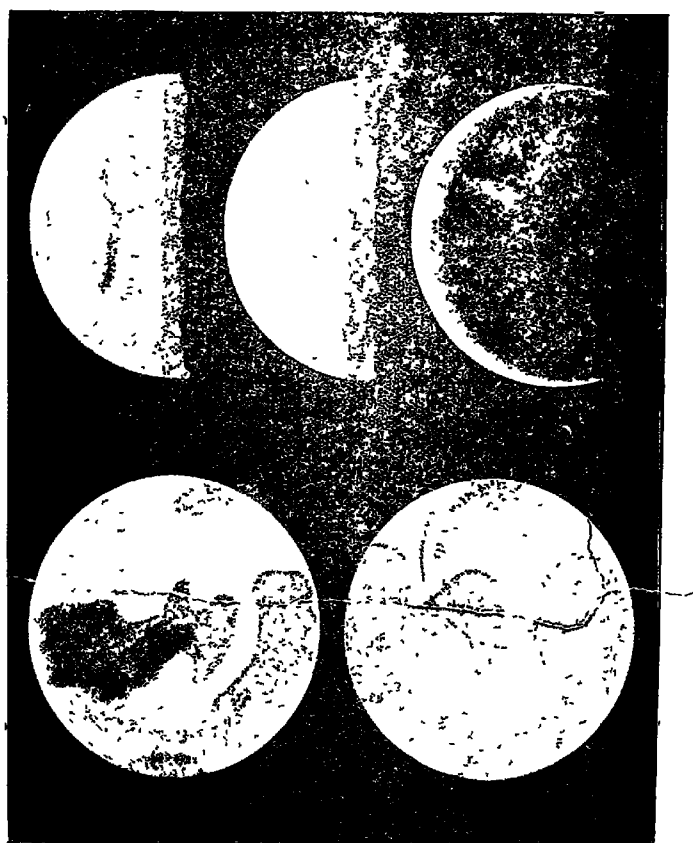
खींची जाती है वह अत्यन्त छोटी होती है। आँखें फोटो के ताल से ज्यादा अच्छा देख लेती हैं। इस लिये यह झगड़ा आसानी से सुलझ नहीं सकता। हम तो भी देखते हैं कि हमारी धरती पर अफरीका के सहारा जैसे मरुस्थल में और ध्रुवप्रदेश जैसी ठंडी से ठंडी जगह में प्राणी होते हैं और रहते हैं। उसी तरह जहां अनुकूल जलवायु नहीं, है वहां भी प्राणियों का होना बहुत संभव है।

यदि मंगल ग्रह में प्राणियों का निवास है तो उन की रातें बड़ी मजेदार होती होंगी, क्योंकि मंगल के दो चन्द्रमा हैं और साथ ही साथ और कभी एक के बाद दूसरे चन्द्रमा का उदय होता होगा, जिससे रात की रमणीयता बढ़ जाती होगी।
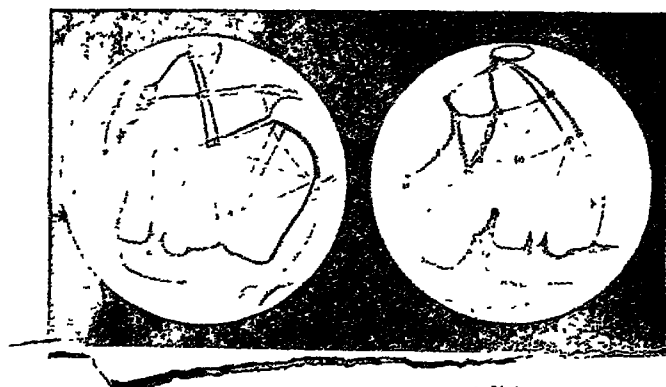
चित्र ३०—मंगल का दृश्य बड़ी दूरबीनों से

शाप्परेली] [सौर-परिवार से

बृहस्पति इस परिवार में सब से बड़ा ग्रह है। मंगल और बृहस्पति के बीच में लगभग तीस करोड़ मील के आकाश-मंडल खाली-सा है। कोई बड़ा ग्रह इस बीच में नहीं है। आज-कल के ज्योतिषियों ने इस विस्तृत व्योम-देश में लगभग नौ सौ के छोटे-छोटे ग्रहों का पता लगाया है। इन में से जो बहुत छोटे हैं, उनका व्यास पांच मील से ज्यादा नहीं है और जो सब से बड़े हैं उन का व्यास पांच सौ मील से ज्यादा नहीं है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बृहस्पति सरीखे विशालकाय पिंड के पास होने के कारण विश्व के इस व्योम भाग में जो पदार्थ बिखरा हुआ था मिल कर कभी एक पिंड न बन पाया।

इस विशालकाय पिंड के भार का खिंचाव चारों ओर आकाश में बहुत बड़ा प्रभाव डालता होगा, क्योंकि यह पृथ्वी से तेरह सौ गुना बड़ा है। इस के नौ चन्द्रमा हैं जिन में से सब से बाहर वाले उल्टी दिशा में उस की परिक्रमा करते हैं। अनुमान होता है कि बृहस्पति

के पिंड पर अभी तक प्राणियों का निवास नही हुआ होगा क्योंकि अभी तक धरती का ठोस चिप्पड़ वृहस्पति पर बना हुआ नही जान पड़ता। इस की फोटो मे यह बराबर बादलो से या भाफ से घिरा मालूम होता है। इस का पिंड आच से लाल मालूम होता है। पिछले पचास बरसो से इस के भीतर एक लाल धब्बा सा दिखाई पड़ रहा है जो लगभग २४ हजार मील लबा होगा। इस का अतर्हृदय सभव है कि ठोस या द्रव हो पर यह समूचा पिड अभी वायव्य दशा मे जान पड़ता है। इस पिड के भिन्न भिन्न देश भिन्न वेगो से अपने धुरो की
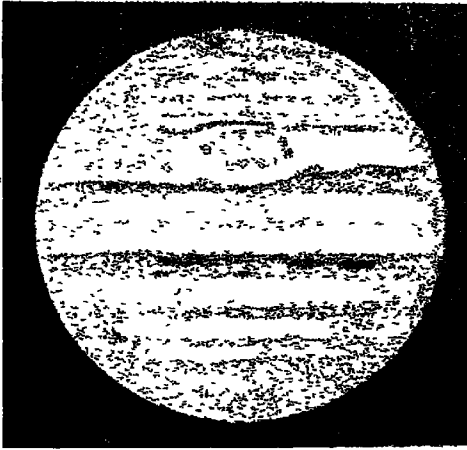
चित्र ३२—बृहस्पति

एन्टोनिआडो] [सौर-परिवार से

रिक्रमा करते हैं। इस का औसत वेग दस घटा है। तो भी यह ग्रह अपने तेज से नही ऋता। आकाश मे वृहस्पति और शुक्र बड़े चमकीले है, पर यह तेज सूर्य का है।

शनि की भी वैसी ही दशा है। उस के ऊपर वाले हिस्से मे भाफ के बादल हैं और भीतर के पिड मे प्रचड ज्वाला है। इतनी तेज़ आच है कि पानी जमा नही हो सकता। यह भी दस घटे मे अपने धुरे पर घूम जाता है।

दूरबीन मे शनि बड़ा ही सुदर दिखाई पड़ता है। जान पडता है कि सफाचट मुड़े हुए सिर पर महाजनो की सी पगड़ी रक्खी हुई है। उल्काओं के झुड के झुड निरतर एक ही तल मे बड़े वेग से उसके चारो ओर घूमते रहते हैं, इसी कारण ऐसा मालूम होता है। शनि के दस चद्रमा हैं। सूर्य से अत्य त दूर होने के कारण उस पर सूर्य की आच का

कम प्रभाव पड़ता है। तो भी उल्का के झुंडो के ऊपर जो धूप पड़ती है उसी से यह पगडी सा मालूम होता है। यह पदार्थ-समुद्र कई मील गहरा है और इस पिंड के ऊपरी तल से लेकर बाहर की ओर एक लाख बहत्तर हजार मील तक पसरा हुआ है। कुछ ज्योतिषियो का कहना है कि इसी ग्रह के पिड मे से ज्वालामुखी पर्वतो के फटने से इस के चारो ओर छल्ला सा बन गया है। औरो का कहना है कि ग्यारहवा चन्द्रमा बननेवाला पदार्थ चन्द्रमा न
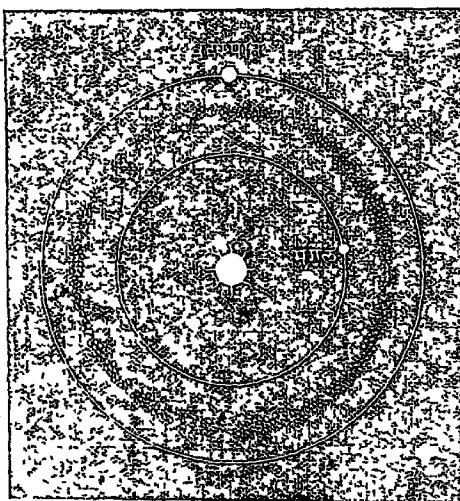
चित्र २२—मगल और गुरु के बीच असंख्य छोटे अवांतर ग्रह हैं [सौर-परिवार से

बन पाया बल्कि इसी तरह बिखरा हुआ चक्कर लगा रहा है। इस ग्रह की दशा ऐसी है कि इस पर भी हमारी धरती के से प्राणियो का होना सम्भव नही है। शनि की अपेक्षा अधिकाधिक दूरी के चक्कर लगाने वाले क्रम से उरण, वरुण और कुवेर ग्रह हैं। उरण और वरुण का पता तो युरोप वालो ने पहले लगाया था परतु अभी सवत् १९८८ मे कुवेर का पता लगा है जो हमारे ब्रह्मांड की सीमा को कुछ और बढा देता है। चित्र मे कुवेर ग्रह भी दिखाया गया है।

३—उपग्रह

मगल और शुक्र यही दो ग्रह हमारी धरती के सिवा ऐसे मालूम होते हैं जिन पर इस दुनिया के से प्राणियों के होने की सभावना है। परतु इन दोनो मे से भी शुक्र पर फिर

चित्र ३९--चंद्रमा। अमावस्या के बारह दिन बारह घंटे बाद का चित्र

पेरिस वेधशाला] [सौर-परिवार से

भी कम है। अब रही इन के चादों की बात। उरण के चार चद्रमा हैं। वरुण के एक ही है, मगल के दो हैं। पृथ्वी के एक है और बुध और शुक्र के कोई चद्रमा नहीं है। मगल के चद्रमा दस दस मील से अधिक व्यास के न होंगे। परतु बृहस्पति और शनि के एक एक चद्रमा तीन तीन हज़ार मील व्यास के हैं, अर्थात् बड़ाई मे सब से छोटे ग्रह बुध के बराबर हैं जिस का व्यास तीन हजार तीस मील है। समव है कि इन बड़े बड़े चद्रमाओं मे हमारी धरती के से प्राणी रहते हों। हम इस बात पर अपने चद्रमा को ही उदाहरण रूप लेकर विचार करगे।

कहा जाता है कि इसी पृथ्वी के बहुत उत्तप्त दशा मे किसी प्राचीन युग मे इस के दक्षिण भाग से कुछ चिपड़ सा पदार्थ कटकर दूर हो गया और वही पृथ्वी का चद्रमा हुआ। यही बात है कि पृथ्वी के गोले मे उत्तर ध्रुव की ओर सूखी धरती का भाग बहुत ज्यादा है और दक्षिण ध्रुव की ओर गहरे समुद्र का ही भाग ज्यादा है। परतु जान पड़ता है कि पृथ्वी का पिड बहुत बड़ा होने से बहुत काल मे सिकुड़ा और आज कल की दशा तक ठडा हुआ। परतु चद्रमा का पिंड तो बहुत छोटा था इस लिये यह बहुत जल्दी सिकुड़ गया और ठडा हो गया। यह पिड शायद उस दशा मे पृथ्वी से अलग हुआ है कि जब पृथ्वी के तल पर जल नहीं बना था क्योंकि चद्रमा के पिड पर जल का अभाव मालूम होता है।

चद्रमा ही एक आकाश पिड है जो पृथ्वी से बहुत पास है और दूरबीन के द्वारा जिसे हम बहुत अच्छी तरह देख सकते हैं। एक तरह से दूरबीन से चद्रमा इतने पास हो जाता है कि मानो उसे हम पचीस कोस की दूरी ही से देख रहे हो। अगर चद्रमा पर कोई विशाल हवाई जहाज चलता होता तो हम उसे उस के तल पर चलते हुए विन्दु की तरह से देखते। परतु चद्रमा पर कोई चलता हुआ पदार्थ हम नहीं देख पाते। इस से जान पडता है कि इस पिड पर कोई इस तरह का बड़ा काम नहीं होता होगा। कुछ ज्यौतिषियो का अनुमान है कि चद्रमा के ऊपर किसी तरह के जीवन के चिन्ह जरूर मिलते हैं। प्रोफेसर पिकरिंग का ख्याल है कि चद्रमा के ऊपर ज्वालामुखी पर्वत फटा करते हैं। उन का यह भी ख्याल है कि चद्रमा पर हरियाली के भी मैदान हैं। परतु यह हरियाली काई आदि की तरह नीच प्रकार की होगी, और चद्रमा की धरती मे कुछ नमी भी होगी क्योंकि वहा के पतले वायु-मडल मे कभी कभी बरफ भी गिरता है और कुछ प्रकार के परिवर्तन भी उस के तल पर होते रहते हैं।

हवा इतनी पतली है कि चद्रमा पर शब्द बहुत कम होते होगे। शायद न होते होगे। क्योंकि वायु की तरग ही शब्द है। वहा धूल नहीं हो सकती, गन्ध नहीं हो सकती। आकाश घोर काला होगा और तारे दिन और रात दोनो मे दिखाई देते होगे। सूर्य का लाल मडल और उठती हुई ज्वालाए जो हम केवल सूर्य-ग्रहण में कठिनाई से देखते हैं वहा बराबर दिन मे दिखाई पड़ते होंगे। चद्रमा पर हमारे एक पाख का दिन और एक पाख की रात होती है। परतु दिन मे पड़ने वाली धूप चद्रमा के ऊपरी तल को इतना गरम भी नहीं करती होगी कि बरफ को पिघला सके क्योंकि आच तुरत निकल जाती होगी। रात

समय ज्वालामुखी गैसो के फूट पड़ने से यह गोल गोल बड़े बड़े छेद बन गये हैं, और बहुतेरे यह समझते हैं कि ये ज्वालामुखी के मुख हैं जो शात हो गये हैं। इन मे से सब से बड़े का व्यास एक सौ तेईस मील है।

चद्रमा पर के पहाड़ बहुत उँचे हैं और बड़े ही ऊबड़-खाबड है। कोई कोई २६।२७ हजार फीट ऊचे हैं। हमारी धरती के पहाड़ पानी और बरफ की क्रियाओ से टूटते और बदलते रहते हैं पर वहा के पहाड़ ज्यो के त्यो बने रहते हैं। जान पड़ता है कि चद्रमा एक प्रकार का मृत पिंड है। सभव है कभी इस मे जीवन रहा हो पर अब मर गया है।

हम ने देखा कि सूर्य मे पिंड की विशालता के कारण हमारे यहा की एक छटाक की चीज़ सूर्य मे सत्ताईस छटाक की हो जाती है। परतु चद्रमा में उस के पिंड के छोटे होने के कारण यहा की भारी से भारी चीज वहा हलकी से हलकी हो जायगी। सूर्य मे गिर कर उठना मुश्किल है। चद्रमा मे इस दर्जे की हलकाई आ जायगी कि एक आदमी सहज मे उछल कर गगा पार कर सकेगा।

हम ने अपने ब्रह्माड मे देखा कि उरण वरुण शनि और बृहस्पति सरीखे ऐसे ग्रह हैं जो इतने ठढे नहीं हुए हैं कि उन के ऊपरी तल पर जल रह सके। वे ठढे हो रहे हैं और शायद लाखो बरस मे हमारी पृथ्वी की तरह प्राणियो के रहने के योग्य हो जायँगे। हम ने देखा कि बुध और शुक्र की दशा हमारी धरती की दशा के लगभग है। हमारी धरती मे लाखो बरस पहिले से प्राणियो का निवास है। मगल ग्रह मे जो दशा हमारी धरती के प्राणियो की आज है वह लाखों बरस पहिले हो चुकी होगी। मगल की जो दशा शायद लाखो बरस बाद होगी चद्रमा की वही दशा वर्तमान समय मे है। सूर्य के इस परिवार मे सभी अवस्थाओं के कुटुम्बी हैं उन में से उरण,वरुण, शनि और बृहस्पति होनहार बच्चे हैं। बुध, शुक्र, पृथ्वी और मगल मध्य अवस्था के प्राणी हैं। और सत्ताईसो चद्रमा प्रायः मरे लोक है अथवा इस समय मर रहे होंगे।*

४—धूम्रकेतु और उल्कापात

आकाश मे कभी-कभी हम टूटते हुए तारे देखते हैं। एका-एकी एक जगह से दूसरी जगह को ज्योति की एक रेखा सी दौड़ जाती है। यह रेखा किसी छोटे से पिड के कारण दिखाई पड़ती है। बाहरी आकाश से जब यह छोटा सा पिड हमारे बायुमडल मे प्रवेश करता है तो वायु से रगड़ खाकर जल उठता है। बीस या तीस मील प्रति सेकड के वेग

* हिंदू पुराणों में चंद्रमा में पितरों का अर्थात् मरे हुए लोगों का निवास बताया जाता है। बृहस्पति और गुरु दोनों नाम साभिप्राय हैं। दोनों का अर्थ है बड़ा और भारी। बृहस्पति ऐसा ही पिड है।

चित्र ४१—ऊंचे से ऊंचा पहाड़ ५ मील ऊंचा है। परंतु साधारण से साधारण उल्काएं ४१ मील से भी अधिक ऊंचाई की होती है। [सौर-परिवार से

से वह चला आ रहा था। धरती से ७०।८० मील पहिले ही वह सुलग कर चमकने लगा और ज्यो ज्यो वह घने वायुमडल मे आता गया उस की आच बढती गयी। धरतीतक पहुंचने को २०।२५ मील ही रह गये तभी वह आच से गैस बनकर उड़ गया। लगभग एक करोड से लेकर दस करोड तक इस तरह के टूटते तारे नित्य हमारे वायुमडल में प्रवेश करते हैं और जल कर समाप्त हो जाते हैं। उन मे से बहुतेरे तो छटाक आधी छटाक से ज्यादा नहीं होते और दिखाई भी नही पड़ते परतु कुछ २५।३० मन तक के होते है जो हमारे वायुमडल के जाल मे फॅस कर समाप्त हो जाते है। वह प्रायः छोटे-छोटे टुकड़ो मे बॅट कर विना कोई हानि पहुंचाये धरती पर गिर जाते है। जान पड़ता है कि इस ब्रह्माड के भीतर जितनी जगह ग्रहो और उपग्रहों से खाली है उस मे ये छोटे-छोटे पिड भरे हुए है। यह उसी तरह झुड के झुड है जैसे समुद्र मे मछलिया होती है। बहुतेरे अकेली रहनेवाली मछलियो की तरह भी है। उल्कापात या टूटते हुए तारे इसी तरह के अकेले घूमने वाले पिड है। नन्हे-नन्हे पिंड जो झाड़ू या पुच्छल तारे के अग मे पसरे हुए है झुड मे चलने वाली मछलियों की तरह है।

धूम्रकेतु क्या है? इन की भी कथा सुनिये। हमारे विश्व मे ऐसे छोटे बड़े असख्य पिडो का झुड-का-झुड चक्कर मारता हुआ कहीं दूर से चला आ रहा है। इस मे लोहा पत्थर आदि पदार्थ हैं। यह झुड कभी कभी हजारों मील चौड़ाई का होता है। जब हमारे ब्रह्माड के सूर्य के आकर्षण के प्रभाव मे पड़ता है तब उसे सूर्य की परिक्रमा करनी पड़ती है। तब तक यह पुच्छल तारा धूम्रकेतु या झाड़ू नहीं है क्योंकि इस के पूछ नहीं होती।
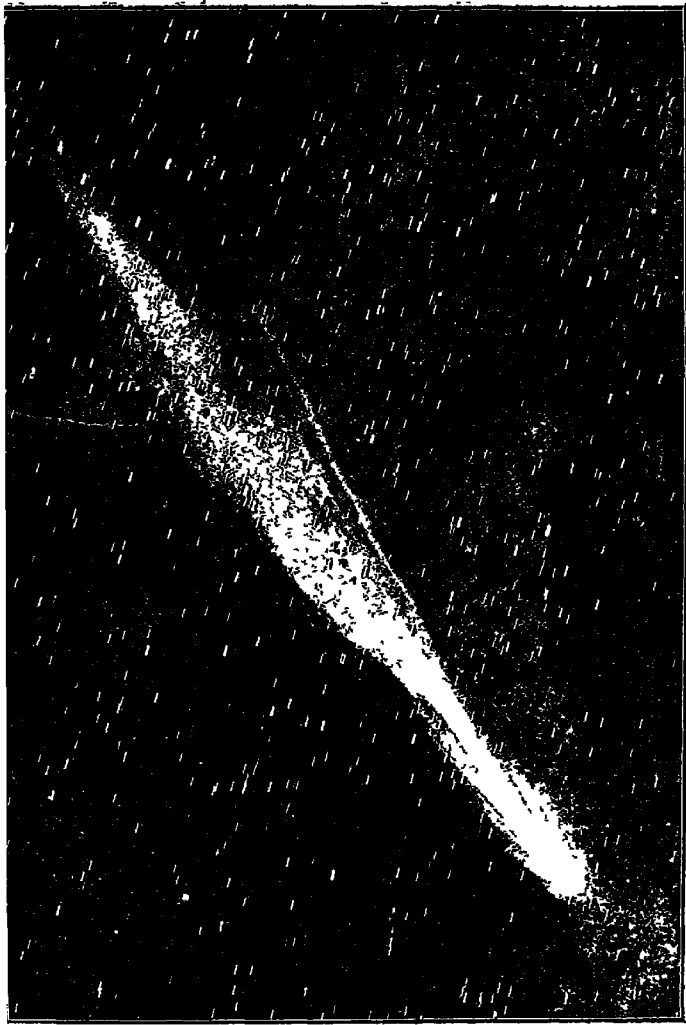
बारनार्ड] चित्र ४४—केतु का छाया चित्र लेते समय सभी तारे लम्बोतरे से चित्रित हो जाते हैं [सौर-परिवार से

परन्तु जब यह झुंड सूर्य के पास पहुंचता है और इस का वेग बढ़ता है तो आपस में यह पिंड रगड़ खाते हैं। इस से एक बहुत बड़ा भाग आंच से तप उठता है और प्रचंड ताप से सफेद चमकने लगता है। इस से बहुत सूक्ष्म भाफ सा पदार्थ इस में से निकलने लगता है और सूर्य से बड़ी तेज़ रोशनी इस के ऊपर आकर पड़ती है तो इस की भाफ को एक लंबी पूछ की शकल में प्रगट कर देती है। पुच्छल तारा चाहे जिस दशा में यात्रा कर रहा हो उस की पूछ सूर्य से सदा दूर की दिशा में जाती हुई दिखाई पड़ती है। ज्यों ज्यों वह सूर्य के पास जाता है त्यों त्यों उस की पूछ की लंबाई बढ़ती जाती है। संवत् १९०० विक्रमी में जो पुच्छल तारा दिखाई दिया था उस की पूछ बीस करोड़ मील लंबी थी। परन्तु पूछ जिस वाष्प की बनी होती है उस की सूक्ष्मता कल्पना में नहीं आ सकती। वह इतनी सूक्ष्म है कि शायद किसी बिजुली की ही शक्ति से उस में चमक है। जो हो धूम्रकेतु बहुधा तीन चार सौ मील के वेग से सूर्य का चक्कर लगा कर हमारे ब्रह्मांड से फिर बाहर चला जाता है। फिर कुछ काल या बहुत काल के बाद यही झुंड इस ब्रह्मांड के नायक की परिक्रमा करने आता है। इस तरह केतुओं की परिक्रमा भी समय समय पर हुआ करती है परन्तु यह सूर्य के परिवार के लोग नहीं हैं। ये ब्रह्मांड के बाहर से यात्रा करते हुए आते हैं और कुछ दिन मेहमानी करके लौट जाते हैं।

ग्रहों से सूर्य का दर्शन
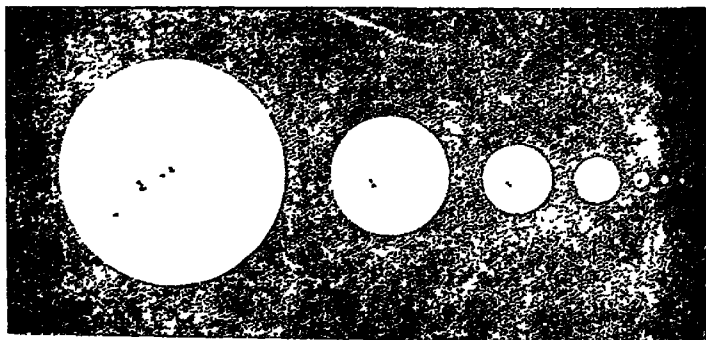
बुध से शुक्र से पृथ्वी से मंगल से गुरु से शनि से उरण से

चित्र ४९—विभिन्न ग्रहों से सूर्य का सापेक्ष आकार। [सौर-परिवार से

तीसरा अध्याय

हमारी धरती

१—पृथ्वी-पिंड का दिग्दर्शन

हमारी पृथ्वी नजदीकी मे सूर्य से तीसरा ग्रह है। इस का व्यास ध्रुव से ध्रुव तक, जहा दोनो ओर कुछ चिपटी हो गयी है, ७८९९ मील है। मध्य मे उस की लपेट पर पूर्व-पश्चिम का व्यास लें तो वह २७ मील और होगा। उस का घेरा लगभग २५००० मील के है। उस के भीतर जो कुछ पदार्थ है उस का औसत घनत्व पानी का पच गुना है। इस के मुकाबिले मे अगर शनि और वरुण का घनत्व लें तो उन का पदार्थ इतना हलका ठहरेगा जैसे पानी पर काग। बृहस्पति पृथ्वी से इतना बड़ा है जितना मटर के सामने एक कद्दू हो सकता है। अपने ५८ करोड़ मीलों के चक्कर को वह ३६५ दिनो मे पूरा करती है। इस तरह सूर्य की परिक्रमा वह बड़े भयानक वेग से कर रही है अर्थात् १ सेकेंड मे १८ मील चलती है। बन्दूक की गोली से ५० गुनी और डाकगाड़ी से हजार गुनी ज्यादा तेज है। बड़ा वेग है! परतु शुक्र और बुध पृथ्वी से भी ज्यादा तेज चलते हैं। और स्वाती नाम का तारा तो लगभग २०० मील प्रति सेकेंड चलता है। पृथ्वी की परिक्रमा चद्रमा करता है। और सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी करती है। सूर्य भी अपने धुरे के चारों ओर तो घूमता ही है पर शायद वह भी किसी परिक्रमा मे ही लगा हुआ है। वह अपनी परिक्रमा मे पृथ्वी की अपेक्षा सुस्त है अर्थात् १० मील प्रति सेकेंड। इस समय जान पडता है कि वह अभिजित नक्षत्र की तरफ बडे वेग से बढता जा रहा है। परतु अनुमान किया जाता है कि इस व्योम मडल मे वह कृत्तिकाओ की परिक्रमा करता होगा। वह करोडो बरस मे शायद अभिजित के पास पहुच जाय। यह पता नहो है कि वह इस रास्ते पर कितने दिनो से चल रहा है। वह हर साल तीस लाख मील के लगभग अपनी राह मे आगे बढ जाता है। ये नक्षत्र ग्रह और तारे एक दूसरे के खिंचाव के सहारे अनत देश मे चक्कर लगा रहे हैं।

पृथ्वी का धुरा उस के परिक्रमा की रेखा से कुछ झुका हुआ है। इसी से इस बडी परिक्रमा मे वसत ऋतु और शरद् ऋतु मे जब कि भूमडल सूर्य के ठीक सामने पड़ जाता है

दिनरात बराबर हो जाते हैं। और समयों में ऐसा नहीं होता। धुरे के झुके होने से कभी उत्तर ध्रुव सूर्य के अधिक पास होता है कभी दक्खिन। जिस ध्रुव के पास सूर्य होता है
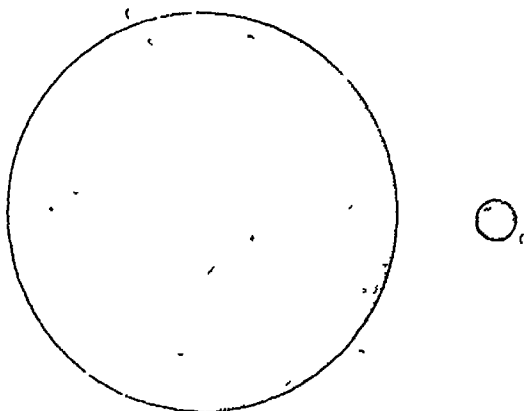
चित्र ४६—बृहस्पति और पृथ्वी की तुलना। पृथ्वी कितनी छोटी है! [सौर-परिवार से

उस की ओर पृथ्वी पर गरमी ज्यादा पड़ती है और जिस से दूर होता है उधर कम। इसी से पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न ऋतुएं होती हैं और दिन-रात के परिमाण बदलते रहते हैं। जैसे लट्टू अपने धुरे पर घूमता है तो साथ ही साथ कुछ जरा सा मडलाता भी है, उसी तरह पृथ्वी घूमती हुई मडलाती भी है। पुराने हिंदू ज्यौतिषियों ने इस मडलाने का हिसाब लगाया था कि पृथ्वी २६ हज़ार बरसों में मडलाने वाला एक चक्कर लगा लेती है। आजकल के कुछ ज्यौतिषियों ने इस काल को २१ हजार बरस ठहराया है। इस भेद का कारण यह भी हो सकता है कि मडलाने के वेग में कमी बेशी भी होती रहती है।

सूर्य के चारों ओर पृथ्वी का चक्कर ठीक वृत्त के रूप में नहीं है। वह एक प्रकार का दीर्घवृत्त बनाती है जिस की एक नाभि पर सूर्य को ठीक स्थित समझा जा सकता है। इस तरह से वह कभी सूर्य के पास आती है और कभी दूर चली जाती है। जब सब से पास होती है तो नव करोड़ साढे बारह लाख मील होती है और जब सब से दूर होती है तो नव करोड़ पैंतालीस लाख मील होती है। यह हम वर्तमान काल की गणना बताते हैं, क्योंकि बृहस्पति और शुक्र के खिचाव से अंतर पड़ जा सकता है। दो दो तीन तीन लाख बरसों में ऐसे अंतर पड जाते हैं कि सब से दूर और सब से पास की स्थितियों में डेढ करोड़ मील तक का अंतर पड सकता है। सूर्य की दूरी के घटने बढने से जाड़े और गरमी पर असर नहीं पड़ता। पृथ्वी के धुरे के झुकने से इस तरह का अंतर पड़ता है।

इन तीनों गतियो के कारण पृथ्वी पर की गरमी मे घटबढ होता रहता है। वायु-मडल की गति मे भी अतर पडता रहता है। इसी लिये जाड़ा गरमी बरसात बसत शरद और
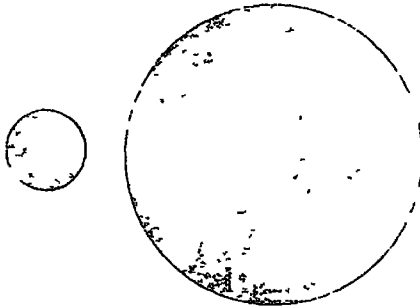
चित्र ४७—पृथ्वी और वरुण (इंद्र) की तुलना। पृथ्वी कितनी छोटी है!
[सौर-परिवार से

शिशिर आदि ऋतुओ के भेद ही नहीं पडते बल्कि बिजली और चुम्बकत्व मे भी तथा प्रकाश और रसायन की क्रिया मे भी बडी अनुकूलता आ जाती है। और हम इस भूतल पर बड़ी
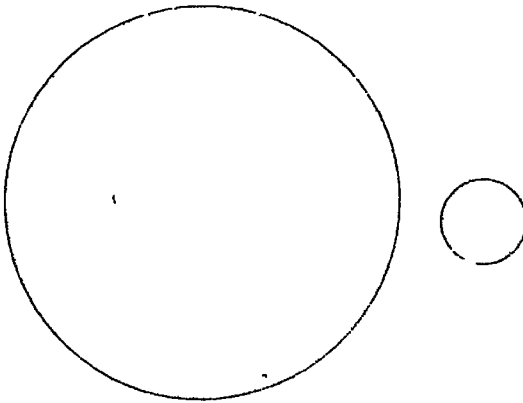
चित्र ४८—वरुण और पृथ्वी की तुलना-वरुण बहुत बड़ा है [सौर-परिवार से

सुहावनी फुलवाड़िया, वन, पर्वत आदि के सुदर दृश्य देखने हैं। और अनत प्रकार के प्राणियों का जन्म विकास और मरण होता रहता है। यह बाते और ग्रहो पर नहीं मालूम

होती क्योंकि वर्तमान काल में परिस्थिति की ऐसी अनुकूलता और किसी पिंड पर नहीं दीखती। हम वर्तमान काल इसलिये कहते हैं कि इस ग्रह परिवार में बहुत से ग्रह अभी बच्चे हैं उन में भविष्य के लिये तैयारियां हो रही है और लाखों करोड़ों बरस बाद जब शायद पृथ्वी शांत हो चुकी होगी तब इन आजकल के तप्त पिंडों के ऊपर भी हमारे सरीखे प्राणियों के जीवन के अनुकूल परिस्थितियां बन गयी रहेंगी। किसी समय इन बच्चे ग्रहों की तरह पृथ्वी को भी आबाद दुनिया बनने की उम्मेदवारी करनी पड़ी होगी।

२—पिंड का आरंभ

वैज्ञानिकों ने इस संबंध में कल्पना के घोड़े बहुत दौड़ाये हैं कि पृथ्वी कैसे बनी और कब बनी, परंतु आज तक कोई सिद्धांत ठहराया नहीं जा सका है। इस में तो संदेह नहीं कि किसी समय धरती बिलकुल वायव्य के रूप में थी, जब उस का पिंड सिकुड़ा न था और उस में आंच बहुत प्रचंड थी। उस समय शायद इस का पिंड लग भग उतना बड़ा रहा हो जितना बड़ा आज सूर्य का पिंड है। यद्यपि सूर्य का पदार्थ जितना घना इस समय है उतना घना पृथ्वी का पदार्थ उस समय न होगा बल्कि घनत्व उसी तरह कम रहा होगा जिस तरह आज कल वरुण या शनि का है। इस वायव्य पिंड में बड़ी भयानक आंच रही होगी और इस की परिक्रमा का वेग भी उस समय भयानक रहा होगा। आज कल की पृथ्वी अपने उस समय के आकार से कई लाख गुनी छोटी हो गयी है।

पृथ्वी के आरंभ के संबंध में वैज्ञानिकों का विचार इसी वायव्य के गोले से शुरू होता है परंतु यह गोला कहां से आया और किस तरह बना, कोई नहीं कह सकता। आकाशमंडल में इसी विश्व में सर्वथा शून्य देश कहीं नहीं है। मरे हुए जगत और नष्ट ब्रह्मांडों के शांत ठंढे और निर्जीव सूर्य जिन में न आंच है न ज्योति है और उन्हीं के वह ग्रह उपग्रह जो बिलकुल बरबाद हो चुके हैं, निरंतर बेठिकाने परंतु आकर्षण शक्ति के सहारे लगातार घूमते रहते हैं। उल्कापातों और धूम्रकेतुओं के वर्णन में हम इसी तरह के पदार्थों की चर्चा कर चुके हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि इस तरह के शिथिल और मृत पिंडों के आपस में टकरा जाने से ऐसी भयंकर आंच निकल सकती है जिस से कि दोनों पिंडों से निकले हुए ठोस पत्थर और लोहा गलकर द्रव और द्रव से हवा के रूप में बदल गये और इसी टक्कर का परिणाम एक नया वायव्य पिंड बन गया। यह बहुत संभव है कि उस समय नीहारिका की कुंडली में मौजूद पदार्थ के पिंडों के सब ओर से खिंचाव होने के कारण ऐसा बना हुआ पिंड किसी तरह का चक्कर लगाने लगा हो। इसी प्रकार के मृत पिंडों के संघर्ष से ही सूर्य और उस के और ग्रहों की रचना हो गयी होगी। नीहारिका जब तक कुंडली के आकार में नहीं आयी है, जब तक वह केवल किसी मरे हुए या महाप्रलय के बाद के विश्व के मसाले का बिखरा हुआ क्षेत्र है, तब तक समझना चाहिये कि वह नये विश्व के निर्माण के लिये सामग्री का गोदाम है। जैसे कोई किला या बहुत बड़ा महल तोड़वा दिया जाय और उस की सामग्री इधर उधर बेकार कहीं कम कहीं अधिक गँजी पड़ी हो और आसपास कहीं इमारत बनने के लिये उस का मसाला ढुलवाकर जाने लगे और कोई दूसरा महल बनने
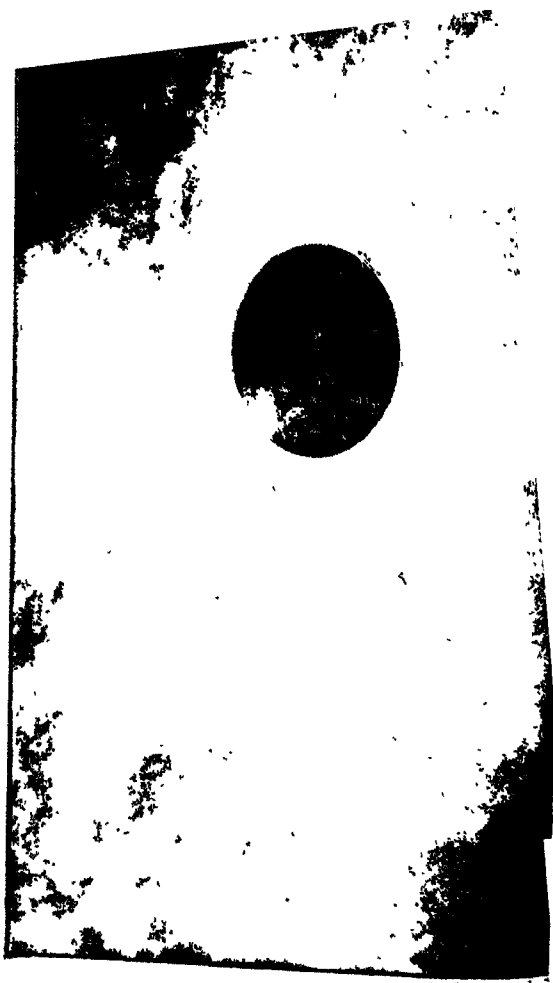
चित्र २७—सूर्य का सर्वग्रहण, ८ जून, १९१० ।

कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस की कृपा] [सौर-परिवार से

दृश्य में कारोना और रक्त ज्वालाएं बड़ी सुन्दर रीति से अंकित हैं । आकाश के हलके बादलों ने दृश्य की शोभा बढ़ा दी है। चित्रकार श्री बटलर ने ओरीगन अमेरिका में इसे देखा था ।

[विज्ञान हस्तामलक पृ० ६७ के सामने]

लग जाय तो देखते ही देखते उस खडहर के तो पुराने ढूहे गायब होने लगेंगे और नयी इमारतें देखने में आने लगेंगी। सूर्य, पृथ्वी और दूसरे ग्रहों का निर्माण कुछ ऐसे ही ढग पर हुआ होगा। [चित्र २०-२० ग]

इस तरह की घटना हुए कितने बरस हुए होंगे यह कौन कह सकता है ? स्वय यह घटनाए जिन मे भिन्न भिन्न ग्रहो की उत्पत्ति शामिल है, बहुत सभव है कि करोड़ो या अरबों बरस मे हुई हो। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मांड के प्रसव होते होते करोड़ों या अरबों बरस लग गये होंगे।*

---

*पुराणों में सृष्टि की कथा बडी विलक्षण है। भगवान के नाभिकमल पर बैठे ब्रह्मा इस विचार में मग्न होते है कि मैं कौन हूं कहाँ हूं और किस लिये आया हूं कि इतने मे भगवान के कानों के मैल से दो विशाल शरीरवाले दानव उत्पन्न होते है। आपुस में लड जाते है और दोनों मर जाते हैं। उनके शरीर का मैल उसी क्षीरसमुद्र में जल में बहता है और उसी से मेदिनी बनती है। इस मेदिनी से कुछ काल पीछे मंगल नामक एक ग्रह उस का पुत्र उत्पन्न होता है और बहुत काल पीछे मेदिनी के समुद्र का मंथन होता है और उस में से चंद्रमा निकलते हैं। यह चंद्रमा समुद्र के पुत्र हैं। इस तरह यह पृथ्वी तो आरंभ मे मधुकैटभ के मेद से बनी और इसके पिंड से मंगल और चंद्रमा धीरे धीरे अलग हो गये। ब्रह्मा ने पृथ्वी की रचना नहीं की। उन्होंने मरीचि और भृगु नाम मानसिक पुत्र उत्पन्न किये। मरीचि के पुत्र कश्यप ने सूर्य को उत्पन्न किया। मरीचि के बृहस्पति नाम का पुत्र भी उत्पन्न हुआ। और भृगु के शुक्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सूर्य के शनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बृहस्पति की पत्नी तारा के औरस से चंद्रमा ने बुध को उत्पन्न किया। इस तरह ग्रहों के परिवार की उत्पत्ति बतायी गयी है। हम पहिले भी क्षीरसागर मे नारायण के शयन करने और कमल और ब्रह्मा की उत्पत्ति की बात टिप्पणी में दे चुके हैं। क्षीरसमुद्र शायद दूध सरीखा चमकनेवाला वह पदार्थ है जो नीहारिकाओं और आकाशगंगाओं मे देख पडता है। इस तेजोमय पदार्थ का नाम नारा है। शेषनाग की कुंडली अनंत देश मे पसरी हुई नीहारिकाओं की कुंडली है जिस पर भगवान शयन करते हैं।

सोना अकर्मण्य अवस्था बताता है। नारायण की नाभि से कमल उत्पन्न होता है जिस के दल चारों ओर फैले हुए हैं। केंद्र से नीहारिका के भीतर बड़े वेग की गति आरंभ होकर सब दिशाओं में छिटकती है। कान के मैल से दो दैत्यों का निकलना अनंत देश की या आकाश की किसी गुहा से दो मरे हुए पिंडों का निकल कर टक्कर खाना है और उन के मेद से अर्थात् टक्कर की प्रचंड आंच से पिघले हुए पदार्थ से मेदिनी बन जाती है। मेदिनी से ही लगभग उस के बराबर का टुकड़ा टूटकर मंगल उस का पुत्र उत्पन्न होता है। बहुत काल पीछे समुद्र के मंथन से चंद्रमा उत्पन्न होता है अर्थात् पृथ्वी का एक टुकड़ा निकलकर अलग हो जाता है। इसी तरह यदि हम पुराणों में

इस बात मे सभी वैज्ञानिको का अनुमान एक सा है कि इस दुनिया की सृष्टि के आरभ मे हमारी पृथ्वी का पिड वर्तमान काल के हमारे सूर्य के पिंड सरीखा अत्य त विशाल धधकता गोला रहा होगा और उस मे बड़ी उत्तप्त दशा में पत्थर और धातुए भी वायु रूप मे रही होगी। ज्यो ज्यो अनत देश मे उस समय आच बिखरती जाती थी त्यो त्यो पिड सिकुड़ता और घना होता जाता था। वैज्ञानिको का अनुमान है कि एक अरब बरस से अधिक हुए होगे कि पृथ्वी से एक भाग कट के निकलकर चद्रमा बन गया।*

उस समय पृथ्वी गले पदार्थो की,नासपाती की शकल की,धधकती हुई एक विशालकाय चीज़ थी जो इस से पहिले बन चुके सूर्य के पिंड के चारो ओर भयानक वेग से घूम रही थी। एकाएकी सूर्य के भयानक खिंचाव से नासपाती का नुकीला हिस्सा इस महापिंड से चुंथकर अलग हो गया और धरती मे कोई २७ मील गहरा गड्ढा हो गया जिस के भीतर आज महासागर लहरा रहा है। उस समय तो जल का कही नाम न था। उस की जगह गली हुई धातुओ और पत्थरो का ही तरल द्रव था और उसी की भाफ के धधकते हुए बादल थे। पृथ्वी भयानक वेग से चक्कर मारती थी। दो दो चार चार घटो के दिन रात होते थे। इस लिये टूटते हुए चद्रमा को भी वही वेग मिला। वह भी दिन रात मे छः छः बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने लगा। उस समय चद्रमा देखने में बहुत बड़ा सा दीखता होगा क्योंकि पृथ्वी से केवल दस हजार मील की दूरी पर था। यदि उस समय मनुष्य होते तो वह चद्रमा पर की ज्वालामुखियो की धधकती शिखाओ को देख सकते। आज हम को चद्रमा के एक ही ओर का भाग देख पड़ता है परतु उस समय चद्रमा का दूसरा भाग भी दिखाई पड़ता था। चद्रमा के पास रहने से उस समय अग्नि के समुद्र का ज्वारभाटा अत्य त ऊचा होगा। सर राबर्ट बाल ने हिसाब लगाया है कि ६०० फुट से ज्यादा ऊची लहरे उठती होंगी। अब तो चद्रमा २ लाख ३८ हजार मील दूर है।

बताथी सृष्टि का अनुमान करें तो पुराणों की कथा बहुत जगह विज्ञानियों के अनुमान से मेल खा जायगी। अनुमान कितना ही साधारण हो फिर भी अनुमान ही है। पुराणों के रूपकों में भी इसी तरह सृष्टि की सच्ची घटनाओं का अनुवाद हो सकता है।

* हिंदुओं की कल्पना है कि वर्तमान ब्रह्मांड के तैयार हुए कम से कम दो अरब बरस जरूर गुज़र गये हैं और चंद्रमा आदि पिंडों के निर्माण में जो कल्प के उदय के काल में बहुत पहले ही हुआ होगा अवश्य ही बहुत काल लगा होगा। प्रोफेसर रेले के अनुसार तो इस भूतल पर जीवन का उदय हुए एक अरब बरस के लगभग हो गये और चंद्रमा के अलग हुए था और पिंडों के बने तो कई अरब बरस हो चुके हैं। हिंदुओं के अनुसार सृष्टि के हुए आधे कल्प के लगभग हुए। क्योंकि वर्तमान काल सातवें मन्वंतर का अट्ठाईसवां कलियुग है। यह कुछ कम दो अरब बरस होता है, जो रेले के अनुमान के निकटतम है।

उसके ज्वालामुखी पर्वत बुझ गये हैं। फ़ुरसत से चलता है। ज्वारभाटा बहुत साधारण उठाता है।*

४—जलस्थल का आरंभ

जब पृथ्वी इतनी ठंडी हो गयी कि उस के ऊपरी तल पर केवल १२०० दर्जे की आंच रही तो उस के ऊपर ठोस चिप्पड़ बनने लगे और जब आंच घटते घटते ३७० दर्जे तक पहुँची तो भयानक दबाव के कारण उस समय के वायुमंडल से जल की भाफ कुछ कुछ घनी होने लगी और पानी बनने लगा। यह भी बड़े भयानक दिन थे। सारी धरती गली हुई धातुओं का एक महा भीषण कड़ाहा था जिस की धधकती हुई आंच आकाश में बहुत ऊंचे तक पहुँचती थी। जगह जगह बिजली कौंद रही थी। बादल कड़क रहे थे। धरती कांप रही थी।† ज्वालामुखी उबले पड़ते थे। ज्यों ज्यों आंच घटती जाती थी त्यों त्यों धातुओं के बादल द्रव बनकर बरसने लगते थे। धरती आधे गले हुए पत्थरों और चट्टानों की बनी हुई थी और उसी दह[illegible] के ऊपर पिघली हुई धातुओं और पत्थरों की मूसलाधार अग्निवर्षा होती [illegible] आज [illegible]व कुछ और घटी तब आजकल हम जिसे पानी कहते हैं उस की बूंदें धरती प[illegible] लगा शुरू हुई, परंतु ज्यों ही गिरती थीं त्यों ही भाप बनकर उसी तरह उड़ जाती थीं जैसे आज भी लाल तपते हुए तवे पर पानी की बूंदें गिरती हैं और उड़ जाती हैं। धीरे धीरे धरती की आंच और भी घटी और किसी जगह जहां गलते हुए चट्टानों ने बहुत ही विस्तीर्ण गड्ढा कर दिया था वहां शतांश के १२५ और १५० दर्जों पर भयानक रीति से खौलते हुए जल का पहिला विशाल समुद्र बना। इतनी भारी आंच पर भी जल द्रव के रूप में बना रहा। उस का कारण यही है कि उस समय का वायुमंडल ऐसा घना था और उस का दबाव ऐसा भयानक था कि सौ दर्जे के बदले १५० से लेकर २०० दर्जे पर पानी उबलता था। यह समुद्र धीरे धीरे घटती हुई आंच के साथ बढ़ता गया और बढ़ते बढ़ते सारी धरती में फैल गया और पृथ्वी के समस्त ऊपरी तल को उस ने ढक लिया। इस समय जल अत्यंत उत्तप्त अवस्था में था। हर जगह पर लगातार उबल रहा था और मेघ धरती पर निरंतर छाये रहते थे, और बराबर बरसते रहते थे। लाखों बरस तक इसी तरह जल के उबलने और बरसते रहने से आंच धीरे धीरे घटती गयी। धरती के ऊपर अत्यंत उत्तप्त अवस्था में रहनेवाले सभी पदार्थों के ऊपर अत्यंत गरम जल जो ढके हुए

---

* यदि खौलते अश्मद्रव से पृथ्वी के एक खंड का निकल कर अलग होना ही समुद्र के मथन से चंद्रमा का निकलना कहा समझा जाय तो चंद्रमा की पौराणिक उत्पत्ति यथार्थ मानी जा सकती है।

† ज़मीनज़ तपोलर्ज़ः आमद सितोह। फ़रोकोफ़्त बर दामनश मेख़े कोह। (बोस्तां-सादी)। ताप और कंपन से धरती घबड़ा गयी, तो (ईश्वर ने) इस के अंचल में पहाड़ का खूंटा ठोक दिया (कि वह स्थिर रहे)।

था बराबर अपने में सैकड़ों चीजें घुलाता जाता था। पदार्थों में हजारों तरह के फेर बदल कराता जाता था और इस तरह अनेक जगह धरती सुकड़कर नीची होती जाती थी और बहुत जगह धरती बढ़कर ऊंची भी होती जाती थी। अनत देश में धरती की आंच बड़ी तेजी से बिखरती जाती थी, परंतु साथ ही सुकड़ने के कारण प्रचंड आंच धरती के तल पर बढ़ती जाती थी। यह क्रिया आज तक जारी है, परंतु दोनों क्रियाएं आज परिमाणतः बहुत घटी हुई हैं। उस समय दोनों क्रियाएं अत्यंत उग्र थीं।

इस तरह आंच घटती जा रही थी, परंतु बहुत धीरे-धीरे। बहुत काल पीछे धीरे-धीरे जल के ऊपर थल भी दिखाई पड़ने लगा। इस समय बड़ी भयानक आंधियों और तूफानों का कुछ ठिकाना न था। जैसे बादल लगातार छाये रहते थे और बरसते रहते थे वैसे ही आंधी और तूफान लगातार धरती पर स्वच्छंद विचरते थे।

जिस समय धरती से चंद्रमा अलग नहीं हुआ था उस समय इस के विचित्र वायु मंडल का दबाव ६०-७० मन प्रति वर्ग इंच रहा होगा। ज्यों ज्यों आंच घटती गयी त्यों त्यों दबाव भी घटता गया। यही दबाव घटते घटते आज ७॥ सेर प्रति वर्ग इंच रह गया। उस समय की आंच जो दो हजार दर्जों से कम न रही होगी घटते घटते वह औसत २०दर्जे की हो गयी है। जिन दिनों पृथ्वी अश्मद्रव से ढकी हुई थी उन दिनों में भाप और बादल छाये हुए रहते थे, इसी से सूर्य का दर्शन दुर्लभ था। जल के बन जाने पर भी यही दशा बनी रही।

धीरे-धीरे भूकंप ज्वालामुखी और लगातार की वर्षा घटी और सूखी भूमि कड़ी पड़ने लगी और नयी गीली भूमि निकलने लगी। बार-बार के सुकड़ने से और ऊपर के तल के अनेक पदार्थों के न घुल सकने से ऊंचे और कड़े चट्टान पैदा हो गये। उस समय यह नहीं जाना जा सकता था कि यह उबलते हुए जल के छिछले तालों से ढकी धरती और ऊबड़-खाबड़ चट्टानें जो इधर उधर निकली हुई हैं, इन से ही बड़े बड़े गहरे महासागर और ऊंचे ऊंचे पहाड़ों की चोटियां बन जायंगी। यह सब चीजें बनीं परंतु बहुत धीरे-धीरे बनीं और करोड़ों बरसों के समय में बनीं।

धरती बराबर सुकड़ती गयी। पहिले तो दूध पर की मलाई की तरह धरती की तह पर एक चिप्पड़ जमा। फिर वही धीरे-धीरे मोटा होता गया। उस के भीतर दहकती हुई आग पिघली हुई [illegible] चट्टान और बिलकुल गर्भ के भीतर को अत्यंत घनी और उत्तप्त लोहे की वायु भरी हुई रह गयी, जिस में कि निरंतर महाभयानक तूफान उठते रहते हैं, जिन से आज भी धरती का ऊपरी चिप्पड़ कहीं-कहीं और कभी-कभी कांप जाया करता है और कहीं-कहीं ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ा करता है।

सूखी धरती धीरे-धीरे बढ़ने लगी। ऊंचे-ऊंचे चट्टानों पर वर्षा होने से जल की धारा बड़े वेग से नीचे की ओर बहती थी और उसी के साथ-साथ चट्टानें कट-कट कर बालू और मिट्टी बहती हुई चट्टान के नीचे समुद्र में पहुंच जाती थी। भूगर्भ विद्या के खोजियों ने सोलह हजार फीट की ऊंचाई पर हिमालय की पर्वत-माला में, घोंघे, शंख और सीपियों का पता लगाया है। इस से सिद्ध होता है कि किसी युग में धरती का वह भाग

चित्र २६—मंगल

छोटा सा सफेद भाग बर्फ से ढका दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश है। कुछ ज्योतिषियों का अनुमान है कि नहरों द्वारा यहां के बरफ का पानी और भागों में जाता है।

[विज्ञान हस्तामलक पृ० ७१ के सामने] [सौर-परिवार से

समुद्र के नीचे था। उस समय नदियों का बहाव शायद ठीक उसी दिशा मे न होगा जिस मे आज है। उन की सख्या भी कम रही होगी।

५—धरातल का विकास

धरातल का विकास बहुत धीरे-धीरे और अत्यत सुदीर्घ-काल मे हुआ है। विज्ञानियों का अनुमान है कि पृथ्वी पर एशिया या जम्बूद्वीप ही सब से प्राचीन महाद्वीप है जिस पर जीवन की सृष्टि आरभ हुई। जिसे पौराणिक पाताल कहते आये है और जो एशिया या जम्बूद्वीप के ठीक दूसरी ओर इसी धरती के गोले पर का स्थल है, जो आज अमेरिकन महाद्वीपों के नाम से प्रसिद्ध है, जम्बूद्वीप की ही तरह आदि युग से ही परिवर्त्तन शील रहा होगा, परतु उस के सबध मे प्रागैतिहासिक काल की बाते बहुत कम मालूम हो पायी है।

धरातल का परिवर्त्तन तो वास्तव मे निरतर होता रहता है। सृष्टिकाल से लेकर आज तक परिवर्त्तन होता आया है और होता रहेगा। परतु यह इतने धीरे-धीरे होता रहता है कि लाखो बरस लग जाते है और मनुष्य इतने बृहत्काल के इतिहास को भूल जाता है। अनेक जातियो का उत्थान विकास और पतन देखनेवाला तो उन से भी अधिक आयु का होना चाहिये। फिर भी चट्टानो पर प्रकृति की कलम से अकित कथा हमे कुछ पता बताती है और प्राचीन जातियो के पुराणो से उन का समर्थन भी होता है।

जब धरती इतनी दृढ हो गयी कि समूचा गोला एक साथ अपनी धुरी पर पच्छिम से पूरब की ओर, या घड़ी की सुई की उलटी दिशा मे, घूमने लगा, उस समय यद्यपि उस का पूरा घूर्णन लगभग चौबीस घटे का होने लगा था। तो भी उस की मडलानेवाली गति के कारण सभी देशो और कालो मे दिन रात सदैव एक ही मान के नहीं हो सकते थे। लट्टू जिस तरह मडलाता है उसी तरह यह धरती भी मडलाती है। इस मडलाने की क्रिया इतनी सूक्ष्म है कि इस का चक्कर आजकल की गति के हिसाब से छब्बीस हजार बरसो मे पूरा होना चाहिये। इतने दीर्घकाल का इतिहास भी मानव जाति के पास कहा है और यह पता कैसे लगे कि इस मडलाने से इस भूतल पर क्या क्या परिवर्त्तन हुए? सौभाग्य से भूतल पर के चिह्न, पत्थर पर के अकन और वैदिक और पौराणिक साहित्य इन का पता देते हैं।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अब से आठ दस लाख बरस पहले जम्बूद्वीप मे अफ्रिका, अरब, शाम पूर्व दक्खिणी युरोप का अश तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन, भारतीय द्वीप समूह बरमा आदि सभी देश एक मे मिले हुए महाद्वीप थे। [देखो मानचित्र स० ४६] इस समय भारत के उत्तर मे समुद्र नहीं था। किंतु बहुत दूरी पर अक्षाश ५५ तक धरती थी। उस के उत्तर मे ध्रुव तक समुद्र था। ज्यौतिष की गणना से पता लगता है कि उस काल मे सूर्य की परमक्रान्ति ८० अश से अधिक होगी और इसी कारण सारे भूतल पर छ महीने की रात और छः महीने का दिन होता होगा। आज कल का मगोलिया, सैबेरिया, मञ्चूरिया युरोप आदि देश महासागर की तली मे थे।

इस काल के बाद छः लाख वर्ष का धरती का नक्शा बदला हुआ था। भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय प्रदेश उत्तरी महासागर का तट था। मंगोलिया का उत्तरी अंचल और साइबेरिया का दक्षिणी भाग उभरकर स्थल बन गया था। पूरा तिब्बत और चीन का अधिकांश सागर के अंदर था। मंचूरिया उभर ही रहा था। इस समय भारत में जो नदियां
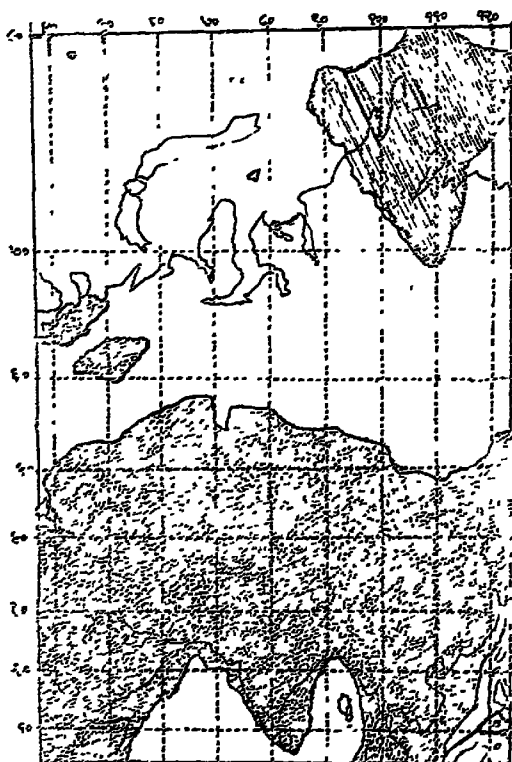
चित्र ४६—जंबू द्वीप, दस लाख से आठ लाख वर्ष पूर्व तक

[वेद-काल-निर्णय से ग्रंथकार की कृपा]

हिमालय से निकलकर दक्षिणी समुद्रों में गिरती हैं वे शायद उस समय उत्तर समुद्र में गिरती होंगी। यह हिमप्रलय के पहले की अवस्था है। इस काल में जम्बूद्वीप में अहोरात्र का मान २४ घंटों के लगभग आ रहा होगा। परंतु उत्तरी प्रदेशों में छः-छः मास का अहोरात्र होता होगा। इस काल का आनुमानिक मान चित्र सं० ४६ में दिखाया गया है।

हिमप्रलय से पहले हिमालय पर्वत कम ऊँचा रहा होगा। यह उत्तरगिरि कहलाता होगा और इस के उत्तर मे समुद्र होगा। इसका प्रमाण ब्राह्मण ग्रन्थो मे भी मिलता है।
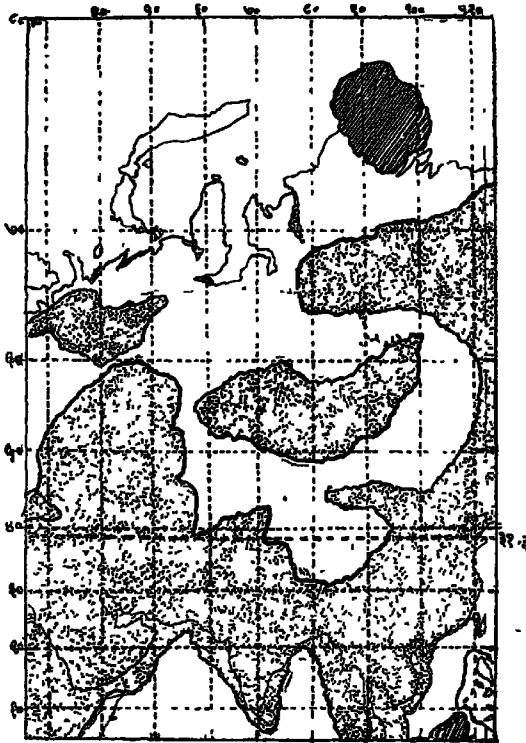
चित्र १०—जबू द्वीप आठ लाख से दो लाख वर्ष पहले तक

ग्रथकार की कृपा] [वेद-काल-निर्णय से

अब से अस्सी हजार से लेकर दो लाख बरस पहले तक जैसे जैसे हिमालय के उत्तर का समुद्र सूखता गया वैसे ही वैसे उस पर बरफ गिरती गयी। यह भूमंडल कुछ ऐसी स्थिति मे पहुँचा कि सारा उत्तर गिरि बरफ से ढक गया। इसी समय इसी उत्तर गिरि का उभार भी हुआ होगा जिस से इ[illegible] की ऊचाई बढ गयी होगी और तिब्बत का प्रदेश ऊँचा उठकर समुद्र के ऊपर हो गया होगा। उसके भी उत्तर की ओर समुद्र का अश बडे लम्बे चौडे सरोवर की तरह रह गया होगा जिस की जगह आज गोबी का बालुका

समुद्र है। इसी बालुका समुद्र का वर्णन महाभारत में आया है, जिससे पता चलता है कि बीस हजार बरस पहले यह महा सरोवर भी सूख चुका था।

ये परिवर्तन नक्शा ४९ और ५० में दिखाये गये हैं।
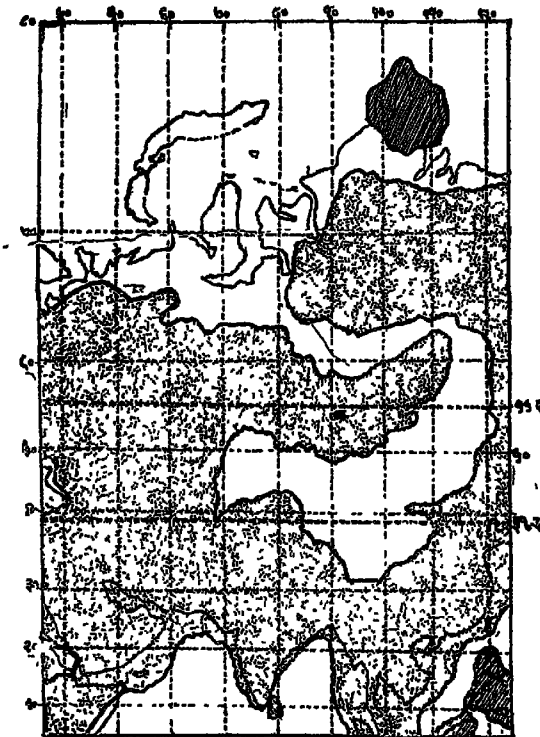
ग्रंथकार क-५१-जंबू द्वीप दो लाख से अस्सी हजार बरस पहले तक

[वेद-काल-निर्णय से

अब से पचीस हजार ब॰॰

हिमप्रलय के बाद का है जब कि आं॰ मी हजार बरसों तक का समय अंतिम

है। अस्सी हजार बरस पहले के समय मे ॰र का समय पुराणों मे बतलाया जाता

कर आजकल की सी ऊचाई का हो गया ॰ परिवर्त्तन हुए होंगे। हिमालय उभर

के दक्षिण का मैदान धँसकर नीचे

चला गया होगा। राजस्थानवाली धरती भी नीचे चली गयी होगी। सारा भारत जलमय हो गया होगा। ससार का पूरा नक्शा बदल गया होगा। भारत मे सरहिद के आस-पास की धरती उभर कर ऊँची हो गयी होगी। जब जलप्लावन और हिमप्रलय बीतने पर आया तब
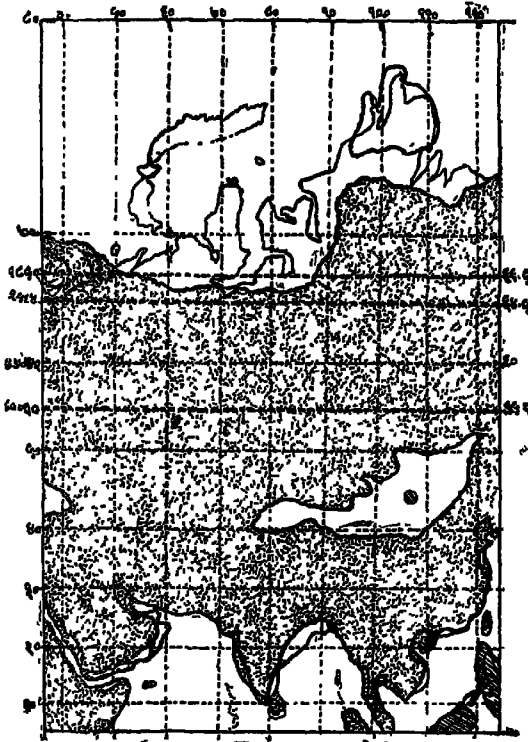
चित्र ५२—जंबूद्वीप अस्सी हजार से ८।। हजार बरस पहले तक

अंधकार की कृपा] [वेद-काल-निर्णय से

भी हिमालय के दक्षिण का मैदान जल से भरा था और गगा जी कही हरद्वार से नीचे ही समुद्र से मिलती थी। मथुरा, अयोध्या, प्रयाग, काशी आदि तीर्थ समुद्र के गर्भ मे थे। आज से सत्तर हजार बरस पहले यह समुद्र भी प्रायः बालू से भर गया होगा। गगा जमुना आदि नदिया फिर से अपने पुराने बहाव के क्षेत्रों से बहने लगी होगी। उधर राजस्थान

जिस प्रदेश में है वहा विशाल झील होगा जो धीरे धीरे सूख रहा होगा। सरस्वती और दृषद्वती नदिया उसी में जाकर गिरती होगी। हिमप्रलय से पहले यह सरस्वतीप्रयाग में गगा जमुना से मिलती होगी, परतु बाद को सरहिंदवाले प्रदेश के उभार से इस का रुख बदल कर पश्चिम-दक्षिण-गामी हो गया होगा। यही सरस्वती कोई दो-तीन हजार बरस में उस बड़े सरोवर के साथ ही साथ सूखनी गयी होगी। हमारा अनुमान है कि अब से ६०,००० बरस पहले सरस्वती-दृषद्वती का लोप हो गया होगा और राजस्थान का बालुका क्षेत्र बन कर साभर नाम का एक विशाल सरोवर बन गया होगा। उस समय ही हिमालय के दक्षिण का मैदान नदियों से लाये हुए रेते से पटकर मैदान हो चुका होगा। सयुक्त प्रात और बिहार का प्रदेश नये सिरे से वनमय हो गया होगा। पुराणों से पता लगा कर अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थ फिर से बसे होंगे। बहुत सभव है कि आज जिस भूखड पर यह बसे हैं ठीक ठीक वे ही भूखड न हों जिन पर वे पहले बसे थे। बगाल का पूर्व-दक्षिण भाग तो महाभारत-काल में भी सूखा स्थल न था जिस को कि सब से नयी खोज आज से २१,००० बरस पहले ठहराती है जो लगभग दो मानव चतुर्युगियों से कुछ ही कम समय होता है।

भूविज्ञानियों का अनुमान है कि दो महाद्वीपों को अलगानेवाली पर्वतमालाए इस प्रकार बनी हैं। पहले दो महाद्वीपों के बीच बहुत बड़ा भूभाग गहरा सपाट हो जाता है। सैकड़ों, हजारों मील की लबाई चौड़ाई में यह खड्ड बनता है जैसा कि चित्र ५३ में दिखाया गया है।

चित्र ५३—दो महाद्वीपों के बीच की गहराई

इस समुद्र में नदिया गिरती हैं और पत्थर बालू आदि ला-लाकर इस गहराई को पाटती चलती हैं। इस में लाखों बरस लग जाते हैं। फिर धीरे-धीरे पानी के दबाव से यह कड़ी चट्टानें बन जाती हैं और परतीली हो जाती हैं। ये परत बड़े कड़े और ऊँचे ऊँचे लहरीले आकार के बन जाते हैं।

काल पाकर ये परतीली चट्टाने शिखर के पास अधिक नोकदार और तेज ढलवा हो जाती हैं और ऊपर को अधिक उभर आती हैं, ऊची हो जाती हैं।

फिर धीरे-धीरे काल पाकर ये परत टूट-टूटकर शिखरों में गोलाई आ जाती है और ऊचाई में कुछ कमी आ जाती है। फिर इसी दशा से धीरे-धीरे उभाड़ होता है और ऊंचाई

फिर बढती है। इस क्रिया से जो पहले गहरा समुद्र था अब ऊँचा पहाड़ बन जाता है। परतु फिर भी उस का उभरना जारी रहता है। धरती के भीतर का वडवानल उसे उभारता रहता है जिस से बारबार भूचाल आता रहता है।

चित्र ५४-बालूपत्थर आदि से पट रही है

यह तो पहाडो की वृद्धि की क्रिया हुई। ह्रास भी बराबर जारी रहता है। हवा पानी से रासायनिक परिवर्त्तन होकर पत्थर घुलता रहता है, पानी जमकर उसे तोड़ता रहता है, हिमसरिता अपने किनारो को तोड़कर बहाती रहती है।

चित्र ५५-कई परतोंवाली चट्टाने बन रही है

पर्वतो के बनने का यह एक ही क्रम नही है। ज्वालामुखी से धरती की सामग्री सिमटकर इकट्ठी हो जाती है। पहाड इस तरह भी बनते है। धरती के उभाड से भी पहाड़ बन जाते है। चित्र ५८ मे कई तरह के पहाड़ो के नमूने दिखाये गये है।

चित्र ५६-चट्टानों का अधिक उभार

कुछ भूविज्ञानियों का अनुमान है कि भारत मे जो नदिया आज हिमालय से उतर कर पूरब और पच्छिम की ओर बहकर सागर मे जा गिरती है वे पहले हिमालय से उत्तर

की ओर पश्चिम पूरब दिशाओं में बहकर उत्तर समुद्र में गिरती थीं। जब उधर धरती उभरी और समुद्र ने बदलकर ऊँचे मैदान का रूप धारण किया तो नदियों का रुख भी उलट गया। गंगा-जमुना आदि उलटकर अब दक्खिन की ओर चली आयीं। हमारे मत

चित्र ९७ शिखर गोलहोकर मिल रहे हैं

में ये वैज्ञानिक उलटी गंगा बहाते हैं। गंगा जमुना आदि नदियों के उलटे बहने की आवश्यकता नहीं है। हिमालय के दक्षिण में गहरे समुद्र होने के प्रमाण से और वैदिक प्राक्प्रलेय प्रमाणों से उनके अनुमान निराधार ठहरते हैं। हां, ब्रह्मपुत्र महानद का उलट
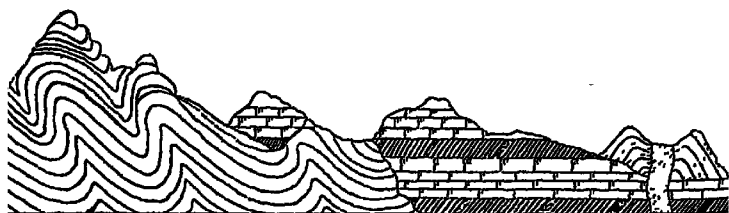
चित्र ९८-कई प्रकार के पहाड़ों के नमूने। बायीं ओर से पहले परतीले पहाड़ हैं। इनके धँसने से नये पटतल बने। फिर उभार होने से ऊँचा पठार जिसके विभक्त होने से भी पहाड़ बने। फिर परतीले पहाड़ दाहिनी ओर दिखाई देते हैं जो कभी जलमग्न नहीं हुए। अंत में दाहिने किनारे पर ज्वालामुखी से बना हुआ पहाड़ दिखाया गया है।

कर इधर बहने लग जाना ज़रूर सम्भव है। इसी तरह हिमालय का नया पर्वत होना भी निराधार सिद्ध होता है। यों तो सभी पर्वतों के बनने का इतिहास अलग-अलग है, परंतु किसी भूखंड का उभरने और धँसने की क्रिया का कोई निश्चित क्रम नहीं है, और न काल का ठीक अनुमान किया जा सकता है। अटकलपच्चू जो अनुमान किये जाते हैं, उन का भरोसा हम नहीं कर सकते।

हमारा यह भी अनुमान है कि अंतिम हिमप्रलय के लगभग भूतल में जो-जो परिवर्त्तन हुए होंगे वे परिवर्त्तन पहले-पहल नहीं हुए होंगे। ऐसे अनेक परिवर्त्तन पूर्व महा-युगों में अनेक बार हो चुके होंगे। पृथ्वी धँसी होगी और उभरी भी होगी। सृष्टि और प्रलय का इतिहास बारबार दोहराया जाता है। इसी लिये हमारा अनुमान है कि इस विशाल भारतवर्ष देश में सृष्टि के आदि युग में किसी समय सरहिंद और सहारनपुर से लेकर कलकत्ते तक की उपजाऊ धरती समुद्र के भीतर थी। एक ओर से हिमालय और

चित्र ४१ क—उत्तरीय विद्युज्ज्योति जो सुमेरु खंड की लम्बी रातों में उजाला रखती है।

रायल सोसैटी] [सौर-परिवार से

दूसरी ओर से विन्ध्यगिरि समुद्र के दो किनारे थे। सारा संयुक्त प्रांत उस युग में भी समुद्र के भीतर था। इस महाविशाल गड्ढे को भरने का काम गंगा-जमुना आदि महानदियों ने तब भी किया होगा। नदियाँ ही आज भी बंगाल की खाड़ी के उत्तरी किनारे के सुंदर-बन की जमीन को बढ़ाती जाती हैं और जल में निकाल कर थल रचती जाती हैं। सचमुच नदियों ने ही इस संसार को बसाया है और रहने के योग्य बनाया है। जिस समय नदियाँ आजकल की मिट्टीवाली धरती बना रही

थी उसी समय तिब्बत से उत्तर में रहनेवाले बालुका समुद्र या गोबी का मरुस्थल भारत के राजस्थान और अरबस्थान के मरुस्थल और अफ्रीका का सहारावाला महामरुस्थल स्थल से चारों ओर घिरा हुआ समुद्र रह गया था जो लाखों बरस में धीरे-धीरे सूख कर बालुका समुद्र बन गया है। ससार के बहुत बड़े-बड़े समुद्र इसी तरह से घिरे हुए जलाशय हैं जो

चित्र २६ ख—उसी विद्युज्ज्योति का दूसरा रूप।
रायल सोसैटी] रूप क्षण-क्षण बदलता रहता है। [सौर-परिवार से

सिकुड़ते-सिकुड़ते आज झील का कम रुतबेवाला नाम पाये हुए हैं। जिस तरह आज समुद्र का जल भाफ बनकर आकाश की मेघमाला का पोषण करता है और मेघमाला बरसकर नदियो का पोषण करती है, और नदिया फिर समुद्र का पोषण करती हैं, ठीक यही क्रम कई लाख बरसो से धरती की रचना में सहायक हो रहा है।

६—पृथ्वी के भीतर भूगर्भ विज्ञान

ऊपर के पिण्ड के निर्माण की क्रिया तो हम ने देखी पर हमें पिण्ड के भीतर का भी हाल जानने की कोशिश करनी चाहिये।

फ्रांस के प्रसिद्ध ज्योतिषी महाशय फ्लामारियां ने भूगर्भ की वास्तविक अवस्था जानने के लिये पांच मील गहरा और साढ़े तीन सौ गज के व्यास का एक छेद धरती में
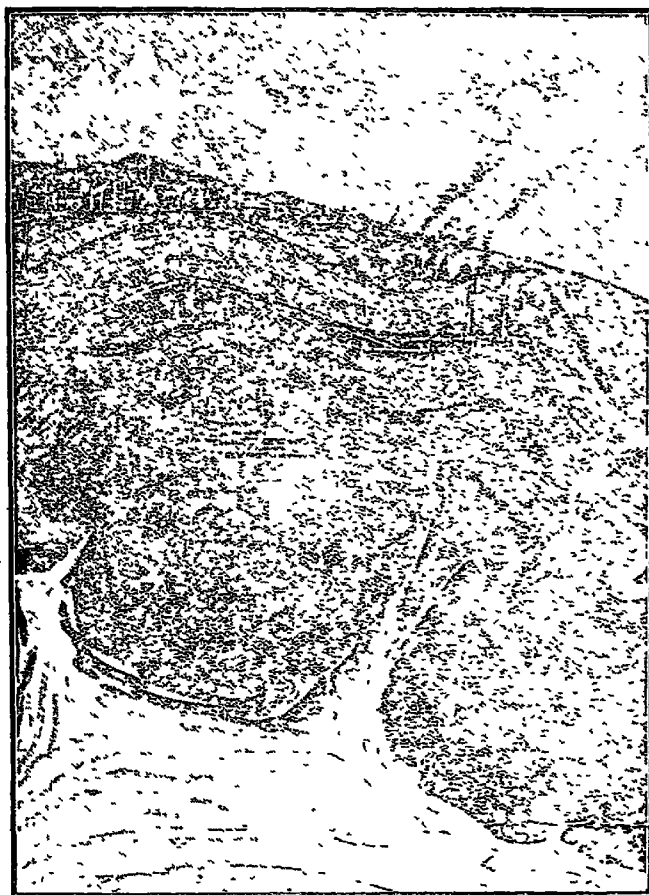
चित्र ६०—पचास मील गहराई की काटका काल्पनिक दृश्य

तैयार करने की योजना बनायी थी। इस घडी तक सब से गहराई का गड्ढा जो धरती में खोदा गया है एक मील से कुछ अधिक का है। इस लिये फ्लामारिया के पचगुने गहरे गर्त की तैयारी मे बहुत बरसों का समय और करोडो रुपयों का खर्च लग जायगा। फ्लामारिया का तो कहना है कि यह शुद्ध वैज्ञानिक काम है, इस मे बैठे-ठाले रहनेवाले ससार के लोग लगा दिये जाने चाहिये। परतु यह योजना अभी तक काम मे नहीं आयी है। तौ भी स्वीडन के प्रसिद्ध रासायनिक स्वाते अरीनिउस ने हिसाब लगाकर और इस विषय पर पूरा विचार करके यह निश्चय किया है कि धरती धातु का एक भारी गोला है, भीतर प्रचड आच से उत्तप्त है और गर्भ मे वायव्य रूप मे है। उस के अत्यत गहरे भागो मे भार के खिचाव से खिच कर सोना चादी प्लेटिनम आदि धातुए जमा हो गयी हैं। नीलों और पद्मो

ठोस धरती के भीतर का काल्पनिक दृश्य

चित्र ६१—पृथ्वी-मात्र की खड़ी काट (काल्पनिक)

[मार्टिन का अनुवर्तन

मन सोना धरती के केंद्र मे इस तरह खिचकर बढ गया है। फारसी-अरबी सभ्यतावाले कहते हैं कि कारू अपने खजाने को लेकर धरती मे धस गया है और दिनों-दिन धसता जाता है। ठीक यही क्रम कई लाख बरस... चमत्त्व यही है। इस कारू के खज़ाने के चारों ओर बहुत बडा ... खजाना ... भी यह फौलाद या ईस्पात से विस्तार वायव्य रूप मे लोहे का है। वायव्य रूप मे है। भी अधिक घना है। इसी फौलादी सेफ या तिजोरी के भीतर कारू का खजाना बंद है। पृथ्वी का लगभग आधा पिंड लोहे का है। जिन लोगों ने तातानगर में लोहा गलानेवाले भट्ठे की उजली धधकती हुई आच देखी होगी उन लोगों को समझना चाहिये कि भूगर्भ के भीतर की आच के सामने वह कुछ भी नहीं है। इस आच के कारण तो लोहा भूगर्भ मे वायव्य दशा मे रहता है। परतु महाभयकर दबाव के कारण यह वायु इतनी घनी हो जाती है कि फौलाद भी उसके सामने दब जाता है। पृथ्वी के आठ हजार मील के व्यास मे ६ हजार मील

के लगभग इस वायव्य लोहे का, अयोऽनिल का, मडल है। इस के ऊपर छः सौ मील मोटा चट्टानो के वायव्यो का स्तर है। इस के ऊपर १६० मील मोटा धधकती आच से सफेद गले हुए पत्थरो का तल है। इन सब के ऊपर अधिक-से-अधिक सौ मील और कम-से-कम पचीस-तीस मील मोटा चिप्पड है जिस पर हम लोग रहते हैं। हमारे चिप्पड के ऊपरी तल पर कुल दस-ग्यारह मील की ऊचाई नीचाई है, जिस मे से ऊचे-से-ऊचे पहाड गौरीशकर की ऊचाई ५ मील है और समुद्र की साधारण गहराई ५।६ मील है।

६—ऊपरी तल

नदिया बहुत काल तक बहती-बहती गड्ढो को पाटती रहीं, परतु साथ ही पानी एक और जरूरी काम बराबर करता रहा। बडे-बड़े चट्टानो को पीस कर भुरभुरी मिट्टी और रेत तैयार करता रहा। इस काम मे आदि के ससार के केचुए सरीखे असख्य बेरीढवाले उभय-चारी और स्थलचर रेगनेवाले प्राणियो ने बडी सहायता की। यह नमको के लिये चट्टानो को रेजे-रेजे कर कर के खाते जाते थे और महीन मिट्टी बीट करते थे। इस से नरम मिट्टी ऊपरी तल पर जमा होती गयी। अब पहाडो की ऊची चोटियो पर बहुत काल पीछे बरफ गिरना शुरू हो गया। मेघ से बरसने वाला पानी चट्टानो की दरारो मे समाया और छोटी छोटी गुहा-गह्वरो मे भर गया। परतु अब सरदी पडने लगी थी। इसी सरदी के कारण पानी जमकर बरफ हुआ। बरफ का आयतन पानी से अधिक होता है अर्थात् बरफ अधिक स्थान लेता है। इसी लिये गुहाओ के भीतर जब बरफ जमा तो उस ने एकाएक चट्टान को तोड़कर चूर-चूर कर डाला और अपने निकल भागने की राह बना डाली।

इस तरह पहाड से बडी मथर गति से, जो देखने मे गति मालूम नहीं होती, बरफ के टुकडो की धारा बह चली। यही बडी दूर पहुँचकर गल-गलकर पानी की धारा बनती गयी। बडी-बडी पहाडी नदियो का, जो कभी नहीं सूखतीं, इस प्राणी के भी भावी विकास सिला जारी रहता है। बहुत काल पीछे जब ऐसा का काल जब समाप्ति पर आया और दूसरे दुनिया हरी-भरी रजी-पुजी थी, पूरी हुई तो दूसरा प्रलय आरभ हुआ। यह दूसरा प्रलय सारा ससार जल से ढक गर अपो के कारण हुआ होगा जो बाहर के सूर्य से और धरती की बडी भारी आबादी भी बच थोड़े ही काल मे इस धरती पर का सर्वनाश हो गया होगा से जगत का नगे। इस तरह फिर लौटकर वहीं खड़ा कर दिया गया होगा जहा पहले आबाद थे, होते हैं। ये आदि प्रकार सृष्टि के साठ करोड़ वर्ष बीत गये होंगे।
तक विघु नहो बच रही हैं हुत समय तक रहा। वड़वानल के शात होने पर समुद्र के रही। वे मे फिर से नयी बुनियाद फिर से रखी गयी, और फिर सृष्टि उसी क्रम से प्रलय। ठीक मार्ग से अनुभव की कसौटी पर कसकर प्रकृति ने अभ्यास कर लिया
वार पहले के से लने मे उसे पहले की अपेक्षा कम ही समय लगा। इस वार कधक वेग से चलने र ही प्रलयकाल की अवधि बीत गयी और प्राथमिक जीवो का शीघ्र प्राथमिक उद्भिज्ज वनस्पतियो का जल मे आरभ हुआ और इस काल के बाद स्थल के

होगा और पूर्व काल मे किस-किस दशा मे हो सकता था। इन्हीं खोजियो के आधार पर हम ने इस धरती की कथा इन पृष्ठो मे सक्षेप से दी है।

यद्यपि यह अटकल आनुमानिक है और आगे चलकर समय की गणना मे बहुत कमी-वेशी पड सकती है, तथापि धरती के विकास का क्रम तो पत्थर के चट्टानो से स्पष्ट होता है, मानो पत्थर पर लिखा है। काल मे मतभेद हो सकता है, परतु सृष्टि और विकास के क्रम मे मतभेद नहीं हो सकता। पढने और अर्थ लगाने मे विद्वानो मे मतातर हो सकते हैं, परतु क्रम तो पत्थर की लीक है, उसे कौन मिटा या बदल सकता है। पत्थर के वरको पर लिखे हुए इसी वर्णन को विज्ञान प्रमाण मानता है, क्योंकि मनुष्य बहुत पीछे पैदा हुआ है, उसकी पोथिया पहले का इतिहास नहीं बना सकतीं। फिर भी प्रत्येक मत या सप्रदाय के पुराणो ने सृष्टि का वर्णन किया है। इन वर्णनो से मिलान करना बडा ही रोचक होगा।

७—सृष्टि का क्रम। विज्ञान और पुराण का समन्वय

सृष्टि-क्रम के सबध मे सृष्टि-विज्ञानियो का जहा प्रायः मतैक्य है वहा उस के युग परिमाण और काल के सबध मे अब तक विचारो का विकास होता चला आया है। ईसाई तो सृष्टि को कुल छः हजार बरस की समझता था। मिस्र और बाबुल देश की खुदाइयो और इतिहास के परिशीलन से यह अवधि बढ गयी। भूतत्त्ववादियो ने इस कालावधि को लाखो की सख्या मे गिनना शुरू किया। भौतिक विज्ञानियो ने धरती के सुकड़ने, ताप के निकलने और बढने, समुद्र मे नमक के घुलने, धरती के विविध स्तरो के बनने आदि का लेखा लगाकर इसे और बढाया। उनके सिरमौर लार्ड केल्विन ने दो करोड़ बरस धरती की आयु बतायी। उनके बाद रश्मि विकीरक तेजोमय धातुओं का पता लगा जिन से पृथ्वी [illegible] अत्यत बढ़ गयी। अब तो यह सभावना समझी जाती है कि धरती अधिकाधिक

चित्र ६१—पृथ्वी-मात्र की [illegible] के सवत् १९७८ वि० के व्याख्यान मे प्रोफेसर

[illegible] बरस पहले से जीवन का होना हमारे

[illegible] बनना तो इस के दो तीन या

मन सोना धरती के केद्र मे इस तरह खिचकर बढ गया है। [illegible] इस पौराणिक कथन से कहते हैं कि क्रारू अपने खजाने को लेकर धरती मे धस गया है और [illegible] का पूरा समन्वय [illegible] सचमुच यही है। इस कारू के खज़ाने के चारो आदि से लेकर विस्तार वायव्य रूप मे लोहे का है। वायव्य रूप मे होते हुए भी यह फौलाद या है। अहर्गण भी अधिक घना है। इसी फौलादी सेफ या तिजोरी के भीतर कारू का खजाना बंद है। प्राचीन का लगभग आधा पिड लोहे का है। जिन लोगो ने तातानगर मे लोहा गलानेवाले की उजली धधकती हुई आच देखी होगी उन लोगों को समझना चाहिये कि भूगर्भ के [illegible] की आच के सामने वह कुछ भी नहीं है। इस आच के कारण तो लोहा भूगर्भ मे वाष्पियों दशा मे रहता है। परतु महाभयकर दबाव के कारण यह वायु इतनी घनी हो जाती है [illegible] फौलाद भी उसके सामने दब जाता है। पृथ्वी के आठ हजार मील के व्यास मे ६ हजार मील

इन के बाद तीन महायुग आते हैं, जिन में सामुद्रिक प्राणियों से लेकर मानव प्राणियों के आरभ तक की सृष्टि आती है। सातवा युग वही मानव सभ्यता का युग है जिस में हम मौजूद हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक भी उसी तरह सात अतरो की कल्पना करता है जैसे एक कल्प में हिंदू पौराणिक सात मन्वतरो की कल्पना करता है।

वैज्ञानिक सृष्टि-काल विभाग समान नहीं है, परतु हिंदू-सृष्टि-काल-विभाग समान है। वैज्ञानिक रेले का कहना है कि जीवन का आरभ हुए एक अरब बरस के लगभग बीता होगा और भूपिड की रचना कई अरब बरस पहले से आरभ हुई होगी तब यह धरती जीवन के उदय के लिये उपयुक्त हुई होगी। सृष्टि के आरभ से अत तक चार अरब बत्तीस करोड़ बरसो का समय पौराणिक बतलाता है परतु वर्त्तमान सृष्टि से अब तक का काल अहर्गणों के हिसाब से एक अरब पौने निन्नानवे बरसो का हो चुका है। सूर्योदय से सूर्योदय तक का काल एक "सावन" दिन कहलाता है। अहर्गण सावन दिनो की गणना है और यह तभी से सभव है, जब लगभग चौबीस घटो का अहोरात्र होने लगा था। यह उसी समय सभव है जब धरती का ऊपरी चिप्पड़ सारे धरातल पर समान रूप से दृढ हो गया और पृथ्वी का घूमना नियमित और इकट्ठा एक पिंड की तरह होने लगा। इस समय सागर जल से भर गया होगा परंतु तप्त रहा होगा। जीवन का आरभ इस घटना के बहुत बाद हुआ होगा। यदि रेले के कथन का समन्वय पुराण के साथ किया जाय तो हम कह सकते हैं कि जीवन का आरभ धरती पर २४ घटे के अहोरात्र होने लगने के तीस करोड़ बरसों के भीतर ही भीतर हुआ होगा, जब स्वाय भुव मन्वन्तर की समाप्ति होती है। इस तरह आदिम जीव लगभग पौने दो अरब बरस हुए प्रकट हो चुका होगा।

आदिम जीवों से बहुत धीरे-धीरे बे-रीढवाले बड़े प्राणियो का विकास हुआ अभाग समुद्र ही पहले-पहल इन प्राणियो से बसा होगा। जलचरो रेगाकर पहला मानवाकार रीढवाली मछलिया बनी होगी। यह समय पहले [illegible] मिलता-जुलता था। परतु इस मे के अन और आदि का समय प्रलय कर धारण करके इस प्राणी के भी भावी विकास अग्निवर्षा, हिमवर्षा बहुत काल तक [illegible] बरसा का काल जब समाप्ति पर आया और दूसरे हो जाते हैं। गहरे समुद्रो मे हूरी हुई तो दूसरा प्रलय आरभ हुआ। यह दूसरा प्रलय छिछले अशो से भाग कर अपा के कारण हुआ होगा जो बाहर के सूर्य से और धरती वे ही गहरे समुद्रो मे भी बच थोड़े ही काल मे इस धरती पर का सर्वनाश हो गया होगा कर लिये गये होगे। इस तरह फिर लौटकर वही खड़ा कर दिया गया होगा जहा पहले जीव कह सकते हैं। ये आदि प्रकार सृष्टि के साठ करोड़ वर्ष बीत गये होगे।
वही ईंटे नहीं बच रही हैं द्रुत समय तक रहा। बड़वानल के शात होने पर समुद्र के के पैजावे में फिर से नयी बुनियाद फिर से रखी गयी, और फिर सृष्टि उसी क्रम मे सकेगी। ठीक मार्ग से अनुभव की कसौटी पर कसकर प्रकृति ने अभ्यास कर लिया एक बार पहले के से [illegible]लने मे उसे पहले की अपेक्षा कम ही समय लगा। इस बार अधिक वेग से चलने [illegible] ही प्रलयकाल की अवधि बीत गयी और प्राथमिक जीवो का शीघ्र प्राथमिक [illegible] वनस्पतियों का जल मे आरभ हुआ और इस काल के बाद स्थल के

उद्भव और विकास-निदान सारे जल-समुद्र का विविध प्राणियों से बस कर फिर से रँजा-पुँजा हो जाना बहुत सभव है। इसे हम दूसरा मन्वतर कहेगे। जब रीढ़ो और बेरीढ़ो का पूर्ण विकास हो लेता है तब फिर पुराणों का मत्स्यावतार होता है। यह वह मत्स्यावतार नहीं है जो प्रलयकाल मे होता है। यह वह है जो शखासुर को मार कर वेदोद्धार करता है। रीढवाले प्राणी बेरीढवालों को परास्त कर के विकास रूपी वेद-मार्ग की स्थापना करते हैं। इसी अवतार से विकास की रुकी हुई गाड़ी आगे बढती है।

प्रलय की लबी सधि के अत मे जब स्थल के फिर से दर्शन होते हैं, छिछले जल की आबादी रेग कर धीरे-धीरे स्थल पर आती है, और उभयचरो और स्थलचरो का इस बार साथ ही विकास शुरू होता है। कछुए, ह्वेल आदि उभयचरों मे और कीड़े-मकोड़े आदि पतली कमरवाले एव रेगनेवाले साप और छिपकली आदि स्थलचर प्राणियो तक का विकास होने मे चार करोड़ बरस और लग जाते हैं। कूर्म्मावतार इसी समय मे होता है। परतु यह वह कूर्म्मावतार नही है, जिस की पीठ पर मदराचल को टिकाकर देवासुरो ने समुद्र का मथन किया था। वह तो चद्रमा के पृथ्वी से अलग होने के समय का रूपक है, जब आठ दस ही घटो का अहोरात्र होता था। इस कूर्म्मावतार ने मुख्य चरित चाहे जो किये हों, परतु उभयचर प्राणियों के विकास की यह अतिम सीमा थी।

धरती पर रेगनेवाले छोटे जीवो का अब दो दिशाओं मे विकास हुआ। प्रकृति ने कीटों को सपक्ष कर के पतगो की उत्पत्ति कर ली थी, और पखो से वायु-समुद्र मे कैसे जीवन विताया जा सकता है, सीख लिया था। रेगने वालों को पहले पेट के बल चलाया, और यह परीक्षा की कि मुख दोनो ओर रखा जाय कि एक ओर। फिर टागे निकालीं, फिर लेखो ल टागे बना कर देखा, फिर चार-चार टागे रखीं, लबाई ऊचाई बढायी। फिर विकास की आयु बनायी। उनके क स्थलचारी दूसरा व्योमचारी।

— — — आयन बढ़ गयी। अब तो यहू वनस्पतियो का विकास हो पाया था, परतु स्थल

चित्र ६१—पृथ्वी-मात्र की खेंचाग्शन कें थी। जब स्थल का उभार हुआ, तब घास

[अ -पहले फूल नही होते थे। वनस्पति-

सेत हुआ जब उस के फैलानेवाले

मन सोना धरती के केद्र मे इस तरह खिचकर बढ गया हैपे बढे। फूल और फल होने कहते हैं कि कारू अपने खजाने को लेकर धरती मे धस गया' मे ही बहुत ऊंचे-ऊचे आकाश है कि यु कारू का खजाना सचमुच यही है। इस कारू के खट की ऊचाई के अत्यत घने विस्तार वायव्य रूप मे लोहे का है। वायव्य रूप मे होते हुए भी ही उरग भी इतने ऊचे कद भी अधिक घना है। इसी फौलादी सेफ या तिजोरी के भीतर कारू गा कर आसानी से चुग लेते का लगभग आधा पिड लोहे का है। जिन लोगों ने तातानगर मे छुकि आदि महानागों का की उजली धधकती हुई आच देखी होगी उन लोगो को समझना चार्यवाची शब्द ही नही हैं, की आच के सामने वह कुछ भी नहीं है। इस आच के कारण तो लोन के विकास काल मे ही दशा मे रहता है। परतु महाभयकर दबाव के कारण यह वायु इतनी वारी पशु विविध आकारों फौलाद भी उसके सामने दब जाता है। पृथ्वी के आठ हजार मील के व्यास मे हो बनी रहीं,

परतु आगे की दोनो टागो ने डैने का रूप धारण कर लिये और पर जमे। प्रकृति ने कीटो पतगो के पाव अलग रखे थे और पर भी निकाले थे। उस परीक्षा पर विकास करके उस ने पावो मे किफायत की और डैनो पर पर लगाकर उड़ने की क्रिया मे सुभीता कर दिया स्थलचारियो की पूछ गति मे विशेष सहायक न थी। परतु पक्षिया की पूछ बड़े काम की चीज बनी। पक्षियों का विकास बहुत दूर तक हुआ। इसी जाति मे गरुड और हस के अवतार हुए। निदान, व्याला और पक्षियो का विकास प्रायः एक ही युग मे हुआ। यह सब साढे-चार करोड़ बरसो मे हुआ होगा।

स्थलचारियो मे उरग और उरगो से विकसित पक्षी शाखावाले प्राणी अडज होते आये, परतु स्थलचारियो का विकास भिन्न ढग पर हुआ। माता अपने भ्रूण का विकास अडा के रूप मे अपने शरीर से अलग अब नही करती। अब वह अपने भ्रूण को गर्भाशय के भीतर रखकर पूरा-पूरा विकास करने देती है, तब उसे बाहर निकालती है। बाहर आने पर भी अपने स्तन के दूध से कुछ काल तक बच्चे का पालन करती है। यही पिडज हुए। पिंडजो के विकास तक का आरभ-काल ऊपर बतलाये हुए साढे चार करोड बरसो के अत का काल समझना चाहिये। इन की अतिम सीमा को सूचित करनेवाली पिंडज जातियो मे महावराह शरीरवाले प्राणियो को समझना चाहिये। वराहावतार का यही समय होगा।

अगले डेढ करोड़ बरसो मे पिडजो का विकास और भी वेग से हुआ होगा। इसी युग के मध्यकाल मे प्रकृति ने चाहा कि वन के सब से बडे बलवान पिंडज सिह से मनुष्य का विकास किया जाय। इसी कोशिश मे नृसिह-जाति के प्राणियो की रचना हुई। इस भयकर जाति का ही प्रतिनिधित्व करनेवाले भगवान नृसिह का अवतार इसी बात की सूचना देता है। फिर भी प्रकृति का यह प्रयोग सफल नही हुआ। उस ने और भी प्रयोग किये। उस ने पहले-पहल मानव प्राणियो के निर्म्माण मे हाथ लगाकर पहला मानवाकार प्राणी जो बनाया वह बहुत छोटा था, वानर के आकार से मिलता-जुलता था। परतु इस मे भी सफलता न मिली। पुरुष ने वामनावतार धारण करके इस प्राणी के भी भावी विकास का रूपक दिखाया। यह भी डेढ करोड़ बरसो का काल जब समाप्ति पर आया और दूसरे स्वारोचिष मन्वतर की अवधि भी पूरी हुई तो दूसरा प्रलय आरभ हुआ। यह दूसरा प्रलय सभवत. अग्नि की प्रचड ज्वालाओ के कारण हुआ होगा जो बाहर के सूर्य से और धरती के गर्भ से निकली होगी। इस से थोडे ही काल मे इस धरती पर का सर्वनाश हो गया होगा और प्रकृति के विकास का रथ फिर लौटकर वहीं खड़ा कर दिया गया होगा जहा पहले मन्वतर के आरभ मे था। इस प्रकार सृष्टि के साठ करोड़ वर्ष बीत गये होगे।

यह प्रलयकाल बहुत समय तक रहा। बड़वानल के शात होने पर समुद्र के भीतर ही नये जीवन की बुनियाद फिर से रखी गयी, और फिर सृष्टि उसी क्रम से चली। जिन कामो को अनुभव की कसौटी पर कसकर प्रकृति ने अभ्यास कर लिया था उन्हें फिर से कर डालने मे उसे पहले की अपेक्षा कम ही समय लगा। इस बार एक करोड़ बरस के भीतर ही प्रलयकाल की अवधि बीत गयी और प्राथमिक जीवो का शीघ्र ही विकास हुआ और वनस्पतियो का जल मे आरभ हुआ और इस काल के बाद स्थल के

उभरते ही घास और बड़े पौधे प्रकट हुए। स्थलचरों, उभयचरों, कीटों, पतगो, फूलवाले पौधों और बड़े-बड़े कीटों का आरंभ हुआ। फिर ७ करोड़ बरसो के बीच ही इन का विकास हुआ। पहले सात करोड़ बरसो में मत्स्यावतार दूसरे सात करोड़ बरसों में कूर्म्मावतार हुआ। तीसरे सात करोड़ बरसों में महोरग, पक्षी, आदि पिडज, फूलवाले पौधे और बड़े-बड़े कीड़े हुए और बढे। इसी काल में वासुकी, गरुड़ और हंसावतार हुए। इस के बाद के चार करोड़ बरसों में पिंडजों का विकास हुआ और इस बार विशालकाय विचित्र मानवाकार दैत्य, दानव, गधर्व यक्ष, वेताल आदि उपजे और इन का विकास हुआ। ये ही मानवाकार प्राणी उस समय जीवन-विकास के शिखर पर समझे गये। इन्हीं आठ करोड़ बरसों में क्रम से वराह नृसिंह वामन और परशुराम तक के अवतार हुए। इसी अवधि या युग के अत में परशुराम के द्वारा संहार के अनतर शायद उत्तम मन्वतर का अत और अतर-प्रलय हुआ जिस की अवधि एक करोड या ५० लाख बरसो की होगी। परतु यह शायद जल-हिम-प्रलय हुआ होगा।

तामस मन्वतर के आरभ में जब हिमाच्छाद गलकर जल बन गया और जल से धीरे धीरे फिर स्थल पहाड़ आदि निकले तो जलचरो का विकास जल्दी हुआ। स्थलचारी उभयचारी आदि भी शीघ्र ही हुए। कीटों और उरगों का पहले की अपेक्षा अधिक विस्तार हुआ। पिडज प्राणियों के प्रकार बहुत बढ गये। प्रत्येक जाति का विस्तार विशाल हुआ। क्रम वही पहले मन्वतरों का था। भेद विस्तार में ही था। अवतार भी क्रम से वे ही हुए। आदर्शों की स्थापना भी उसी प्रकार होती रही। इस बार विविध जातियो के राक्षस और असख्य प्रकार के लागूली, वानर आदि प्राणी उत्पन्न हुए। इन के प्रकार बढे, इन का विकास हुआ। इन्हीं की एक शाखा में वे मानवाकार प्राणी हुए जो आगे चलकर बढे और तामस मन्वतर के अत में जिन से उस समय के राक्षसों से घोर सघर्ष हुआ। इसी मन्वतर के अत की किसी चतुर्युगी में परशुराम और फिर रामावतार हुआ जिस ने आदर्श पुरुषोत्तम की स्थापना की। ये अवतार प्रत्येक मन्वतर में होते आये। सभवतः इसी रामावतार के अत में या कुछ काल पीछे तामस मन्वतर का अत हुआ और दूसरा हिम-प्रलय हुआ।

इस प्रकार नव्वे करोड़ बरसों के बाद रैवत मन्वतर का आरभ हुआ। इस मन्वतर में भी थोड़े बहुत भेद और विस्तार के अतर के साथ सृष्टि का वही क्रम चला जो पिछले मन्वतरों में था। इस में और चाक्षुष मन्वतरों में क्रम से राक्षसो और वानरों का अधिकाधिक विकास हुआ और दोनो में आदर्श पुरुषोत्तम रामावतार तक सभी सृष्टि-विधायक और सरक्षण-सहायक अवतार हुए। इन दोनों मन्वतरों के अत में महाहिमप्रलय हुआ जो दीर्घ काल तक रहा।

हिमप्रलयों में जो दीर्घ काल तक जारी रहते होगे धीरे-धीरे ही सृष्टि का नाश होता होगा। कई लाख बरसों में कहीं जाकर वह नाश पूर्णता को पहुँचता होगा।

चाक्षुष मन्वतर के अत में जल-प्लावन द्वारा प्रलय हुआ। यह प्रलय पर्वत शिखरों तक को निमग्न करनेवाला हुआ। इसी प्रलय के आरभ में मनु की सहायता करनेवाला मत्स्यावतार हुआ जो वैवस्वत मन्वतर के आरभ तक विद्यमान था। इस मन्वतर का

आरभ कल्प-सृष्टि के आरभ से एक अरब अस्सी करोड़ बरस बाद हुआ। सृष्टि कर्त्री प्रकृति के पहले के अनुभवो के कारण इस सातवे मन्वतर मे सारा विकास बडी जल्दी जल्दी हुआ। पहले तो चौदह करोड़ बरसो का काम अर्थात् जलचरो के पूर्ण विकास तक तो प्रलय मे ही बचा रह गया। मन्वतर के आरभ से स्थलपर वनस्पति, स्थलचर और उभयचरो के विकास का क्रम चला। इसीलिये इस वार सत्रह करोड बरसो मे ही मानव-विकास तक का पूर्ण क्रम चला आया। साथ ही राक्षस और उच्च प्रकार के वानरो का, रामावतार के समय जिन का प्रवल संघर्ष देखा गया, एक दम लोप हो गया। इस मन्वतर मे भी किसी पिछली चतुर्युगी मे जिस के कई लाख बरस हो चुके हैं, रामावतार तक हो चुका है। इधर कोई इक्कीस हजार वरस हुए कृष्णावतार भी हुआ और ढाई हजार वरसो के लगभग हुए कि बौद्धावतार भी हो चुका है।

हम ने काल के सबध मे लार्ड रेले के अनुमान के ठीक माना है और सृष्टिक्रम तो विकास-विज्ञानियो का ही माना है। पुराणो का विषय सृष्टि है, अतः हम ने पुराणो के सृष्टिक्रम और कालक्रम का वैज्ञानिको के विचार के साथ समन्वय करके यहा दिखाया है। यह सच है कि पुराणो मे ठीक-ठीक इस तरह का क्रम कही एक जगह नहीं दिया है और विज्ञान के किसी विद्वान् ने कभी पौराणिक शब्दो मे सृष्टिक्रम या विकास का विज्ञान से इस प्रकार समन्वय नहीं किया है। हम ने यह समन्वय इन शब्दो मे इस लिये दिया है कि हमारे देश के पाठक विज्ञान के इस दुर्बोध विषय के इस रूप मे सहज मे ही हृदयगम कर लेगे।

काल की अवधि गिनने मे हिंदू ज्यौतिष मे कुछ मत-भेद है। प्रायः सभी शास्त्र इस बात मे सहमत हैं कि धार्म्मिक कृत्यों के लिये कलियुग १२०० वर्ष का, द्वापर उस का त्रेता तिगुना और सतयुग चौगुना अर्थात् ४८०० वर्षों का होता है। इस तरह पूरी चतुर्युगी १२ हजार वर्षों की होती है। एक सहस्र चतुर्युगियो का अर्थात् १ करोड़ २० लाख वर्षो का एक कल्प होता है। यह मान हम ने "धार्म्मिक" कृत्यो के लिये इस लिये कहा है कि पचागो मे आम तौर पर ये दिव्य वर्ष माने गये हैं। ३६० मानव वर्षों का एक दिव्य वर्ष माना जाता है। इसी लिये पचागो मे ऊपर बताये अको के ३६० गुने मान दिये गये हैं और सृष्टि के दिन "अहर्गण" उस कल्प के आरभ से गिने हैं, जो १,२०,००००० × ३६० अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वरसो का होता है। प्रोफेसर रेले के अनुमान से यही अक अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं, और हम ने भी ऊपर इन्ही के आनुपातिक अक दिये हैं। परतु जो लोग उपर्युक्त शास्त्रीय काल-परिमाण ही मानव वर्ष मानते हैं, वे यदि उन्ही के अनुसार अक चाहे तो हमारे ऊपर के अनुमानो का ३६० वा अश कर दे। इस तरह प्रत्येक मन्वतर साढे आठ लाख वरसो का ही हो जायगा।

दूसरा खंड

जीवन-विज्ञान

चौथा अध्याय

जीवन का उदय

१—जलवायु की उत्पत्ति

पिछले अध्याय मे धरती की जैसी उत्तप्त दशा का हम दिग्दर्शन कर आये हैं वैसी दशा मे वर्तमान जगत् मे रहनेवाले जैसे प्राणियो के रहने की कोई सभावना नहीं है। जब उस की औसत आच घटते-घटते शताश के पचास साठ दरजे तक पहुँची होगी तब भी आजकल के जैसे प्राणी तो नहीं हो सकते। पर कुछ निचले दरजे के बहुत आच सहनेवाले जीवों का गुजारा सभव हो गया होगा। बीसो हजार बरसो तक ठढे होने पर भी इस धरती पर कोई प्राणी रह नहीं सकता था। शायद जीवन का आरभ होने मे कुछ देर थी।

इस जगत् के अनुरूप जीवन के लिये सब से बड़ी ज़रूरत पहले वायु की है और फिर जल की। वायु को प्राण कहते हैं और जल को जीवन। पहले जब वर्तमान प्रकार के वायु के बदले सोना चादी लोहा आदि की धातुओं की वायु इस भूमडल को आजकल के वायुमडल की तरह घेरे हुए थी और जब पृथ्वी पर दृढ धरती थी ही नहीं, पिघली हुई चट्टान ही "सलिल" (पानी) था उस समय आजकल का-सा तो कोई प्राणी हो ही नहीं सकता। और लोहे आदि के विशाल भट्टों मे भी जो सैकड़ो बरस से बराबर जल रहे हैं किसी तरह का प्राणी कभी देखा नही गया। इस से यह अनुमान किया जाता है कि ऐसी उत्तप्त दशा मे शायद किसी प्राणी की रहाइश हो ही नहीं सकती। परतु यह अनुमान ही अनुमान है। कोई भट्ठा चाहे कितना ही पुराना हो जीवन के लिये उसी तरह स्वाभाविक अवस्था नहीं कहला सकता जिस तरह प्राचीन काल मे धातुओं का वायुमडल होता और जैसे वर्तमान परिस्थिति मे भी जीवन के उदय और अस्त मे करोड़ो बरस लगते हैं, उस परिस्थिति मे आज से नितात भिन्न प्रकार के जीवन का उदय और विकास और अस्त हो गया हो, कौन कह सकता है? फिर यह भी कोई नहीं जानता कि जब पृथ्वी दृढ नहीं थी और जब आच और दबाव इतना प्रचड था और जब वायुमडल नितात भिन्न प्रकार का था

और जब जल पत्थर का बना रहा होगा उस समय के जल-वायु मे इस धरती पर किसी तरह के आग्नेय जीव रहते थे या नहीं जिनका रहन-सहन उस आग्नेय परिस्थिति के अनुकूल था। अग्नि की पूजा करनेवाले और उस काम के लिये अग्नि की निरतर रक्षा करनेवाले पारसी कहते हैं कि आग मे एक तरह का कीडा पैदा होता है जिसे समदर कहते हैं। परतु वर्तमान काल मे जहा तक लेखक को मालूम है कही वह समदर देखा नही गया है। यदि उस आग्नेय युग मे तपती हुई धरती पर कोई प्राणी रहे होगे तो अब उन का किसी तरह का चिन्ह मिलना सभव नहीं है। उन का प्राण और उन का जीवन आजकल से बिलकुल भिन्न रहा होगा। उन का शरीर आधे गले हुए रेते का होगा। उनका जल प्लेटिनम आदि पिघली हुई धातुओ का होगा और उन का प्राण और वायु सीसा रागा सोडियम पोटेसियम आदि धातुओं का वायव्य होगा।

जब आच घटी तभी इस धरती के वायुमडल मे उज्जन और ओषजन दो वायव्यो के मिलने से जल बना जो भाफ के रूप मे वायुमडल मे बना रहा। इस अवस्था मे वायु-मडल मे ओषजन और नोषजन आजकल की अपेक्षा भिन्न परिमाणो मे थे। जितने समय मे वायुमडल मे इकट्ठी भाफ जमकर जल के रूप मे धरती के महासागरो मे बदल गयी थी उतना समय लार्ड केल्विन के हिसाब से सौ बरस से अधिक न होगा और स्वाते अरीनिउस का कहना है कि कई हज़ार बरसो से ज्यादा न लगा होगा। यह तो मतभेद की बात है। एक लाख बरस भी इतने ही परिवर्त्तन मे लग सकते हैं, क्योकि ताप के विकिरण के साथ ही रश्मि और ताप की निरतर देनेवाली धातुए भी तो उस समय धरती मे अधिक रही होगी। पहले तो ३३० दरजे पर गले हुए लोहे की वर्षा हुई होगी। यह वर्षा भी ऐसी-वैसी न होगी, जैसे किसी बड़े झरने से पानी की धारा गिरती हो जिसे मूसलाधार नही बल्कि नदियाधार कहना चाहिये। पानी की धाराए तो इस के हजारों लाखो बरस बाद गिरनी शुरू हुई होगी। उस समय के बादलो ने एक साथ नदी सा उँडेल दिया होगा और लाल लोहे की सी तह पर पडते ही भाफ की बडी भयानक आधी उठकर फिर आकाश मे लौट गयी होगी और इस आधी के साथ-साथ जगह-जगह फटने और धातुओ से मिलकर भयानक धडाको की कडक और गरज और गली हुई धातुओ और पत्थरो का गर्द-गुबार, कूड़ा-करकट इस ऊपर को उठती हुई आधी मे शामिल होगा। भूमडल पर यह दृश्य ऐसा भीषण होगा कि इस की कल्पना करके हृदय काप उठता है। यह सब घटनाए तो असल मे तब शुरू हुई होगी जब लगभग एक हजार दर्जे पर धरती का पहला चिप्पड बधा होगा, और उस समय से लेकर कम-से-कम कई हजार बरस तक जारी रही होंगी, जब तक कि घटकर सौ दरजे तक ठढक नहीं पहुँची। इस ठढक तक पहुँचते-पहुँचते धरती पर महासागर अच्छी तरह बन गये थे। फिर सौ दर्जे से ५५ दर्जे तक पानी बहुत जल्दी-जल्दी ठढा हुआ। अरीनिउस की राय में समुद्रो के बन जाने के कुछ काल बाद ही जीवन के उदय के लिये यह भूतल उपयुक्त हो गया होगा परतु जीवन का यहा कोई विकसित रूप न समझे। जीवन का उदय हो जाने के बाद कम-से-कम करोडो बरस के विकास के पीछे हम उस का वर्तमान विकसित रूप देखते हैं।

पृथ्वी हमारे लिये आज काफी ठढी है परतु कोई ऐसा न समझे कि यह बिल्कुल ठढी हो गयी है। इस आकाशमडल में बाहरी शून्य-स्थान या अन्तरिक्ष जितना ठढा है उस के मुकाबले आजकल भी हमारी पृथ्वी ३०० दर्जे ज्यादा गरम है। सूर्य से अत्यत दूर इस ब्रह्माड के बाहर जहाँ वरुण और कुबेर ग्रह भी अदृश्य हो जाते हैं उस देश में यदि कोई प्राणी रहते हों,—और ऐसे प्राणी तो लगातार अधकार और लगातार बेरोशनी और बेगरमी के ससार में रहते होंगे,—तो उन के लिये हमारी दुनिया इतनी गरम धधकती होगी जैसे हमारे लिये गली हुई काच। यह भी भूलना न चाहिये कि धरती का ऊपरी तल इतना गरम है कि उस का तीन चौथाई भाग आज भी बिलकुल गली हुई हालत में है, क्योंकि आखिर पानी भी तो गली हुई चट्टान है और जिस तरह स्फटिक (बिल्लोर) चकमक और साधारण पत्थर चट्टान का हिस्सा है उसी तरह बरफ भी तो है और पूर्व युग में इन पत्थरों का भी सागर उसी तरह लहरें मारता था जैसा कि आज जल का सागर है। पृथ्वी का ठढा होना समाप्त भी नहीं हुआ है। वह धीरे-धीरे अब भी ठढी होती जाती है और कोई समय आवेगा—और वह शायद करोड़ों बरस बाद आवे—जब पृथ्वी एक दम ठढी हो जायगी। या शायद पृथ्वी के एक दम ठढे होने में अरबों बरस लग जाये। पृथ्वी का कुछ भाग तो आज भी इतना ठढा हो गया है कि जल जमकर चट्टान के रूप में बराबर बना रहता है। यही ठढक बढते-बढते कभी सारे ससार में फैल जा सकती है।

२—जीवन की उत्पत्ति

ऐसा जान पडता है कि जब समुद्र का जल गरमी के पचपनवे दर्जे तक ठढा हो गया, उस समय इस धरती पर पहिले-पहिल जीवन का उदय हुआ होगा। आज से इस घटना को कितने बरस हुए यह कहना बहुत मुश्किल है। वैज्ञानिकों का मत इस विषय में एक नहीं है। परतु यह अदाजा किया जाता है कि जीवन का पहिला उदय इस ब्रह्माड में एक अरब बरस से पहिले कभी हो चुका होगा और उस उदय से चराचर-ससार के वर्तमान ढग के विकास तक पहुँचने में और आदिम मनुष्यों तक की सृष्टि के होने में कई करोड़ बरसों से लेकर लगभग एक अरब बरस तक का अतर पडा होगा। हिंदुओं के मत के अनुसार जीवन का विकास भी दो अरब बरस पहिले से शुरू हो चुका है। यह कहना बहुत मुश्किल है कि वर्तमान प्रकार का जीवन इस धरती पर कैसे आरभ हुआ और कब आरंभ हुआ। वैज्ञानिक लोग जीवन का विकास अत्यत छोटे-छोटे जीव कणों से मानते हैं परतु यह एक कठिन गुत्थी है कि इस जगतीतल पर पहिले-पहिल वह जीवकण कहा से आये। यदि यह माना जाय कि ताप, चाप और आवश्यक वस्तुओं के सघात से आरभिक जीवकण अपने-आप बन गये और फिर उन के बीजों का सिलसला बँध गया तो यह कल्पना-मात्र है, क्योंकि अभी तक इस तरह से ताप, चाप और वस्तु के सघात से कोई जीवकण या उस का बीज बनाया नहीं जा सका है। यह असभव नहीं है कि भविष्य में कोई वैज्ञानिक उस की रचना में समर्थ हो जाय परतु जब तक ऐसा हो नहीं सका है तब तक विज्ञानी इस विधि से जीवन का निश्चय उदय मानने के लिये तैयार न होंगे।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि बहुत सीधे-सादे एक सेल या कणवाले प्राणी किसी निर्जीव पदार्थ से भी उत्पन्न हो गये होंगे जैसे कर्बन के अर्द्ध द्रव यौगिकों पर खमीर की क्रिया से हो सकता है। परतु खमीर के द्वारा आदिम जीव अभी तक उत्पन्न नही हो सका। इस लिये इस से प्रश्न नहीं सुलझता।

ऐसा जान पडता है कि जीवन के उदयवाले प्रश्न को शायद भविष्य मे रसायन विज्ञान सुलझा सके। क्योंकि यह पता चल चुका है कि बहुत परमाणु निरतर अपने आप टूटते रहते हैं और अपने से छोटे परमाणु बनाते रहते हैं जिस मे मनुष्य का कोई हाथ नहीं है और जिस मे परमाणुओं की भीतरी शक्ति काम करती रहती है। इस भीतरी शक्ति के चलाने की क्रिया को भी हम एक तरह की जीवन की क्रिया कह सकते हैं, परतु इस से भी अधिक चमत्कारिक बात यह मालूम हुई है कि कुछ परमाणु ऐसे हैं जो खमीर का-सा काम कर सकते हैं और बहुत शक्तिशाली और जीवाणुरूपी परिवर्तन पैदा कर सकते है। इस प्रकार कुछ खमीर कृत्रिम रीति से भी बनाये गये हैं। और इन खमीरो के द्वारा कई तरह की रासायनिक क्रियाए बराबर चलती रह सकती हैं। इस तरह से एक प्रकार से कृत्रिम रूप से जीवन की रचना की जा सकी है। रसायन और भौतिक शास्त्र की दृष्टि से जीवनमात्र खमीरों की उठान की-सी क्रिया है। सभी प्राणियों मे खमीर है और जब उन मे के खमीर काम करने लायक नही रह जाते तो जीवन की क्रिया का अत हो जाता है। प्रौढ व्यक्तियो मे जो मुख्य विशेषताए हुआ करती हैं उन के बारे मे यह मालूम हो गया है कि वह विशेषताए उन प्रौढ व्यक्तियों के जनन-बीजो के भीतर कुछ विशेष प्रकार के खमीरों के न होने, होने या मिलने से पैदा होती हैं। परतु खमीरों के सबध मे अभी बहुत कुछ खोज होना बाकी है और यह विद्या अभी अपनी आरभिक अवस्था मे है। इस से कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती।

जीवन के उदय के साथ-साथ उसकी रक्षा के लिये भोजन की आवश्यकता होती है और उस समय यह भोजन निर्जीव से ही मिल सकता था क्योंकि उस समय जीवित सत्ता बनी ही न थी। जिन्हे हम आज प्राथमिक जीव कहते है उन्हे यदि हम आदिम प्राणी समझ लें तो भारी भूल होगी। वह आदिम प्राणी तो करोड़ो बरस पहिले हो चुके। उन्होने विकास के क्रम मे अपने कर्तव्यों का पालन किया और शायद अब वह इस भूमडल पर न हों। जिस अमीबा को हम प्राथमिक प्राणी समझते हैं उसकी रचना तो ऐसी विकट है कि आदिम प्राणी से विकसित होकर अमीबा तक पहुंचने मे ही बहुत सभव है कि लाखो या करोडो बरस लग गये हो।

यह समझ मे नही आता कि धरती की ऊबड-खाबड और कठोर परिस्थिति मे जीवन का अत्यत सुकोमल बीज कैसे पड़ा परतु जो हो इस का आरभ हुआ है कठोर और कठिन परिस्थितियो मे। उस समय कर्बन, उज्जन, ओषजन, नोषजन, गधक और स्फुर आदि कई मौलिक पदार्थ इस जगतीतल पर पास ही पास मौजूद थे और ताप और चाप की परिस्थिति इनके सयोग के अनुकूल थी। परतु आज भी ऐसी अनुकूलता के होते हुए जीवन का बीज न तो कोई उत्पन्न कर सका है और न अपने आप कहीं उपन्न होता पाया

पानी मे इधर उधर डोलते फिरते होगे। आज भी इस तरह के जीव जल मे पाये जाते हैं जिनमे से कई तो बरसात मे पत्थर की पटियो और पेड़ो के तनो को हरा बना देते हैं। प्रोफेसर चर्च तो कहते हैं कि जब धरती जल से ढकी थी, स्थल बना ही न था, तभी यह हरी चीजे, उस सागरमय पृथ्वी की हरी झाड़ियां,—समुद्र मे भरी पडी थीं। इन्हीं से आगे की उद्भिज्ज जाति पैदा हुई।*

इस प्रकार अमीबा जैसे जीवाणुओ से, जो अर्धद्रव दशा मे चेप जैसे, बिना छिद्रोज आदि के आवरण के सूक्ष्म प्राणी होते हैं, जो अपने पड़ोस के प्राणियो को भोजन कर जाते हैं और हरियाली आदि अन्य कर्बनवाले पदार्थों के बीज नहीं बनाते, जन्तु-जाति का आरभ हुआ। इस तरह एक बीजकण वाले जीवाणु जो पहले-पहल न पौधे जान पड़ते थे, न जानवर, आगे की होनेवाली उद्भिज्जो (पौधो मे) और जन्तुओं (जानवरो) की सृष्टि की बुनियाद बने। उनमे के एक प्रकार से तो इस भूमडल की लहलहाती हरियाली की बुनियाद पडी और दूसरे प्रकार से इस धरती पर के कीटपतगो से लेकर हाथी ऊट घोड़े और मनुष्य तक की रजी पुजी घनी आबादी बनी थी।

जिन उद्भिज्जाणुओं और कीटाणुओं की हम ने ऊपर चर्चा की है उनमे से किसी एक का किसी यत्र के सहारे देख पाना असभव है। जीवन के जिन बीजो की हम ने चर्चा की है वह बहुतेरे अणुओं से भी बहुत छोटे हैं। कई वैज्ञानिकों का मत है कि साधारण पदार्थकणो की अपेक्षा अणु जितने छोटे हैं अणुओं की अपेक्षा उतने ही यह जीव-बीज छोटे होंगे।†

३—आदि जीव

जीवन का आरभ इस तरह जल के भीतर ही हुआ। जल के भीतर आदि जीवाणु घुले हुए नमको को खीच-खीचकर अपने शरीर मे पचाने लगे और उसे बढाने लगे। सूर्य की किरणो से काम लेकर जो कुछ पदार्थ उद्भिज्जाणुको मिल जाते, उन का भेदन

---

* धार्मिक पुराणों मे भी कुछ ऐसी ही मिलती जुलती बात सृष्टि के आरंभ के संबंध में कही गयी है। मूसाई, ईसाई और मुहम्मदी तीनों धर्मवाले हजरत मूसा के लिखे पांचों पुराणों को मानते हैं। उन में पहला पुराण "सृष्टि" है। उस के आरंभ के दूसरे ही पद्य में लिखा है "और ईश्वर का अंश जल पर विचरता था।" हिन्दू पुराणों का ठीक यही भाव है। "नारायण" शब्द का यही अर्थ है। संभवतः जीवन की उत्पत्ति का रहस्य इस वाक्य में निहित है।

† इस विषय में वैज्ञानिकों में अभी तक भारी मतभेद है। परंतु हमने इस संबंध में जो कुछ यहां दिया है, वह अधिक-से-अधिक विद्वानों की सहमति और समर्थन प्राप्त कर चुका है। मार्टिन ने "ड्रायफ्रूसमें" इस का रोचक विवरण दिया है।

करके अपने शरीर की सामग्री तैयार करने लगे। स्वभाव से ही पौधे अपने शरीर के भीतर अपनी जरूरत-से-ज्यादा पोषक पदार्थ बनाया करते हैं। परंतु छिद्रोज के थैले मे बद रहने के कारण वह चल फिर नही सकते और व्यायाम के अभाव मे उन की शक्ति कम खर्च होती है और इस तरह वह जितनी कमाई करते हैं उतना खर्च नहीं कर पाते। साथ ही अपने शरीर से नोपजनीय कूड़ा-ककंट मैला आदि वह दूर नही कर पाते। शायद इसी से वह सुस्त बने रहते हे। इसी के विपरीत जतुओं का भोजन बड़ी मात्रा मे कर्वोज (मड और शर्करा) और प्रत्यामिन या प्रोटीन (ग्लूटन अलबूमेन और केसीन) है जो आरभ मे वह उद्भिज्जो से और फिर और जतुओ से लेते हैं। उन के कण या शरीर छिद्रोज सरीखे किसी कोष के भीतर बद नहीं रहते और अधिकाश जतुओ मे हर तरह की गति की स्वाधीनता है। इसी लिये जतु जितनी कमाई करते हैं लगभग उतना ही खर्च भी करते हैं। कोई कोई बड़ी उदारता से खर्च करते हैं और काफी आमदनी भी कर लेते हे। ऐसा मालूम होता है कि वनस्पति-ससार बारूद तैयार करता है और जतु-ससार उसे छोड़ता रहता है। इस प्रकार जानवरो की सारी दुनिया सूर्य के किरणो द्वारा बनाये हुए कणों पर जी रही है। जीवन के आरभिक काल मे इसी लिये शायद वनस्पतियो का विकास पहिले हुआ जिसमे कि आगे होनेवाली जानवरो की सृष्टि के लिये खाने की सामग्री की कहीं किसी तरह कमी न रहे। इसी लिए आरभ मे जो थोड़े से जतु भी बने वह भी सुस्त और प्रायः गतिहीन बने। गतिहीन प्राणियो को "अचर" और गतिवाले प्राणियो को "चर" कहते हैं। इसी लिए चराचर शब्द से सारे ससार का बोध होता है। आरभिक चर प्राणियो को भी मलमूत्र विसर्जन करने की आवश्यकता न थी और अधिकाश इतनी कम गतिवाले थे कि चर होते हुए भी उन्हे अचर कहना अनुचित न होगा। स्पज मूगे समुद्रफेन आदि इसी तरह के जंतुओं के उदाहरण है जो चर होते हुए भी अचर हैं। यह वनस्पतियो की तरह एक ही जगह पर उगकर बढते हैं। अचर पौधो मे भी थोड़ी बहुत गति है। जैसे हर पौधा अपनी जड़ो को दसो दिशाओ मे फेंकता है और लताएँ तो नसो के सहारे पकडते हुए जिधर को अनुकूलता पाती है बढती जाती, है। इस तरह अचर मे भी कुछ न कुछ चर के गुण मौजूद हैं। आरभ मे जीवन की दशा ऐसी थी कि चर और अचर में भेद करना असभव था! भेद की इतनी कमी होते हुए भी आरभ से ही दोनो खानियो या आकरों का विकास भिन्न-भिन्न दिशाओ मे हुआ। आरभ से वनस्पतियो की हरियाली की वह शक्ति जिससे की वनस्पति का शरीर बनता है वह काम करती आयी है जिस पर आज कल की सारी सभ्यता निर्भर है।

अनेक युगों तक सारी पृथ्वी जल से ढकी रही और उस आदि युग की वनस्पति केवल बहनेवाली हरियाली वा काई से अधिक कोई चीज नही थी। परतु काल पाकर धरती धीरे धीरे सिकुड़ती गयी और समुद्र की तह के भीतर ऊँचाई और नीचाई बनती गयी। कहीं बहुत गहरे गडढे हुए और कहीं ऊँची चट्टाने बन गयी जिनसे की पानी छिछला हो गया और बहते हुए पौधे ऐसी जगहो पर इकट्ठे होने लगे और बिल्कुल ऊपरी तल पर न रहते हुए भी रोशनी पाने लगे। पहले इन्हीं छिछली जगहो मे सिवार आदि की तरह

के सामुद्रिक पौधा का विकास हुआ। इन छिछली जगहों से धीरे-धीरे पानी हटने लगा और धरती ऊपर को उठने लगी। होते-होते सूखी धरती निकल आयी और किनारे पर होनेवाले सवार आदि बढे। इस सूखी धरती पर भी इन जलीय पौधों को बढने का मौका मिला क्योंकि धरती बहुत आर्द्र थी और नीचे जल का समुद्र ही था। धीरे धीरे सूखी धरती बढी और पौधे भी बढने लगे। आरंभ की सूखी धरती ज्यों-ज्यों जल से बाहर उठती जाती थी त्यों-त्यों उसके ऊपर उस प्राचीन रूप के स्थलीय पौधे भी विकास पाते जाते थे।

स्पजों से नीचे की कोटि के जंतु प्राथमिक जीव कहलाते हैं। आज लोग जिन्हें प्राथमिक जीव समझते हैं उनके शरीर की रचना इतनी विषम और विकट है कि बिलकुल स्पष्ट है कि यह वस्तुत. "आदि जीव" नहीं हैं। वास्तविक आदि जीव के शरीर में एक से अधिक कण या कोष या सेल न होना चाहिये। आज-कल के प्राथमिक जीव बिना अनुवीक्षण यन्त्र के देखे तो नहीं जा सकते पर उन के शरीर एक कण या सेलवाले होते हुए भी स्वयं ऐसे महल हैं जिनकी रचना में आदि जीवों की ईंटे लगी होंगी। अनुवीक्षण यंत्र से भी आदि जीवका पता नहीं लग सकता था।

यह आरंभिक आदि जीव तीन जातियों में बँटे हुए कहे जा सकते हैं।

(१) कुछ तो बड़े ही चंचल और कर्मशील थे जिन्हें हम क्वाथ-जीवी* कहेंगे। इन्हीं में से आजकल की एक जाति ऐसी होती है जो रात को रोशनी देती है और एक जाति भयंकर निद्रा-रोग उत्पन्न करती है जिस में आदमी सोते-सोते मर जाते हैं।

(२) दूसरे प्रकार के आदि जीव बड़े सुस्त होंगे। इन्हीं की जाति में से परमत्वाद* रेणु-जीवी होते हैं जैसे कि मलेरिया का वह कीटाणु जो मच्छर के दंश के साथ मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है।

(३) तीसरी जाति ऐसी थी जो न बहुत चंचल थी न बहुत सुस्त। इन्हीं में से मूलपदी* होते होंगे जिन से कि जीवित पदार्थ बनते और निकलते रहते हैं। इसी की एक जाति अमीबा है जिस की चर्चा हम पहिले कर चुके हैं। और वह कीटाणु भी हैं जो खड़िया मिट्टी और चकमाक के से पदार्थ अपने शरीरद्वारा बनाते हैं।

एक कणवाले प्राणियों से अनेक कणवाले प्राणियों का बनना एक बहुत भारी बात थी। परंतु अत्यंत प्राचीन युग में इन एक कण वा सेलवाले जीवों में से ही स्पंज और डसनेवाले और साधारण कीड़े बन चुके थे। यह पहले ही शरीर होंगे जिन की तैयारी में असंख्य कणरूपी ईंटे जोड़ी गयी। ठीक-ठीक किस प्रकार यह क्रिया हुई यह कोई नहीं जानता।

---

* क्वाथजीवी को अंग्रेज़ी में Infusoria कहते हैं, रेणुजीवी को Sporozoa कहते हैं और मूलपदी को Rhizopods कहते हैं।

४—प्राथमिक जीव

अमीबा के टुकड़े हो जाते हैं और हर टुकड़ा अलग-अलग जीवन बिताता है। परंतु कुछ प्राथमिक जीव ऐसे है जिन से बन-जानेवाले सजीव टुकड़े एक दूसरे से मिले-जुले रहते हैं, बिलकुल अलग नहीं होते। इस तरह यह कण या सेल एक शरीर सा बनाते हैं, परंतु यह एक ही प्रकार के कण या सेलवाले शरीर होते हैं। कुछ प्राथमिक जीव ऐसे भी होते हैं कि उन के एक (सेल) कण के भीतर का बीज उसी (सेल) कण में अनेक बीजों में बँट जाता है। यदि इन का जीवित पदार्थ हर बीज के चारों ओर इकट्ठा हो जाय तो इसे ही शरीर बनने का आरंभ समझना चाहिये। किसी रचना में अगर काम और अधिक बँट जाय और अंडेवाले और वीर्यवाले सेल मिलकर अलग स्वतंत्र-रचना में लग जायँ तो समझ लेना चाहिये कि साधारण शरीर की रचना आरंभ हो गयी। वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि पहले-पहले पौधों और जंतुओं के शरीर इसी तरह बने होंगे। यह बात भी विचारने की है कि स्त्री के एक ही डिंब-सेल में पुरुष के एक सेलवाले वीर्याणु के प्रवेश से आरंभ होकर स्वज से लेकर मनुष्य तक के शरीर की रचना होती है। इस से यह प्रकट है कि शरीर के के बनाने में विविध प्रकार और जाति के कण मिलते हैं और संघठन में अपना-अपना उचित स्थान लेते हैं। यह बात भी बिसराने की नहीं है कि कोई साधारण कण या सेल विकास पाकर केंचुवा या तितली या हम या मनुष्य नहीं बना सकता। जो कण जिस तरह के प्राणी को बनाता है उस कण में युगों से और कल्पों से कुछ ऐसे संस्कार या कारण उपस्थित रहा करते हैं जिन से कि उस विशेष प्रकार के प्राणी को छोड़ कोई दूसरा प्राणी बन ही नहीं सकता। यह संस्कार किसी अज्ञात रीति से युगों की इकट्ठी की हुई उन्नति और विकास को बीज रूप से उस कण में धारण करता है। इन बीजाणुओं के बिलकुल अलग-अलग विशेषता रखने का कारण अत्यंत प्राचीन युगों से होते आनेवाले विकास के गर्भ में छिपा हुआ है। इस का पता अभी विज्ञान नहीं लगा सका है।
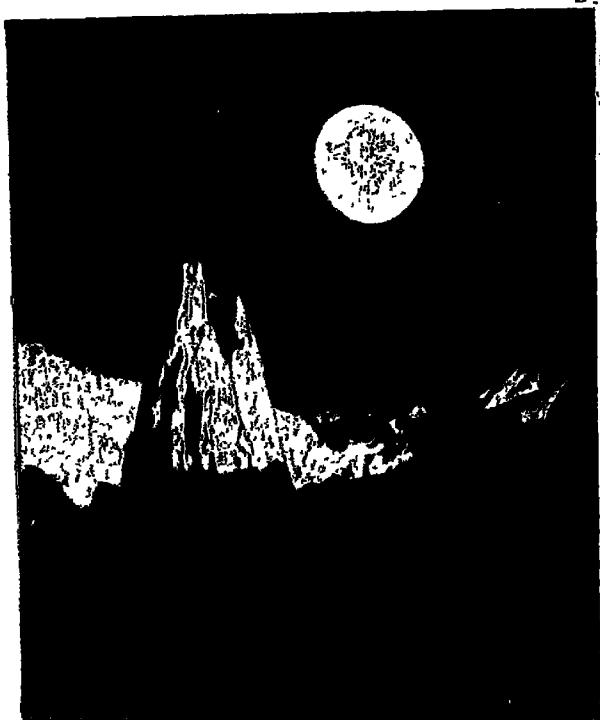
चित्र ३७—चन्द्रमा का एक दृश्य

[सौर-परिवार से

गिन कम्पनी की कृपा]

चन्द्रमा के किसी ज्वालामुखी पर्वत से पृथ्वी कैसी देख पड़ेगी, इस बात का काल्पनिक चित्र।

[विज्ञान हस्तामलक, पृ० १०२ के सामने]

पांचवां अध्याय

जीवन का आरंभिक विकास

१—दाम्पत्य-जनन

जैसा हम पहिले कह चुके हैं अमीबा की तरह के प्राथमिक प्राणी जैसे बढते हैं और बढकर अलग-अलग प्राणी बन जाते हैं उसी तरह जीवन के उदय के समय भी जीवो के आदि कण पहिले लबोतरे होते थे और फिर धीरे-धीरे अपनी अधिक-से-अधिक बाढ को पहुंचकर दो या अधिक टुकड़ो में बट जाते थे जिन से कि आदि प्राणियो की सख्या बढती जाती थी। यह एक कणवाले प्राणी बढते-बढते बहुत बड़े क्यो न होते गये ? उन की बाढ क्यो रुक गयी ? प्राणियो की सख्या बढने के लिये यदि इस तरह जल्दी जल्दी टूटकर अलग होने की आवश्यकता थी तो इन आदि जीवो के बहुत बड़े हो जाने पर टूटकर अलग हो जाने मे क्या बाधा थी ? इन प्रश्नो का उत्तर विज्ञान यो देता है कि इन शरीर-धारियो का पोषण जल मे घुले हुए नमको से होता है जिसे यह अपने शरीर के ऊपरी तल के द्वारा बराबर खींचते और सोखते रहते हैं। जब शरीर बढता है तब उस की भीतरी सामग्री बाहरी तल की अपेक्षा बहुत ज्यादा बढती है। पोषण की सामग्री ऊपरी तल या त्वचा से ही पहुचती है। यह ऊपरी तल जब तक कि भीतरी सामग्री के पोषण के लिये काफी भोजन खींचकर पहुंचाता रहता है तब तक शरीर बढता जा सकता है। परतु जब शरीर की सामग्री इतनी ज्यादा बढ जाती है कि त्वचा के द्वारा सोखा हुआ भोजन उस के लिये काफी नही होता तो शरीर का आगे बढना बद हो जाता है। इसी लिये कोई शरीर अपने निश्चित परिमाण से बाहर बढ नहीं सकता। आदि कणो या अमीबा जैसे प्राणियो के बढ़ने मे भी यही बात लगती है।

आरभ के शरीर सीधे-सादे थे। त्वचा के सिवाय और कोई इद्रिय न थी और प्रबध ऐसा था कि पोषण के लिये जिन वस्तुओ की जितनी आवश्यकता थी वही और उतनी ही जल मे से खींच ली जाती थी। किसी पदार्थ के त्यागने की जरूरत न पड़ती थी। इसलिये

शरीर के भीतर मे मल-त्याग का झ झट न था। परतु आगे चलकर जब जीवन का विकास होने लगा, जब अनेक जीवकणो के सहारे शरीर बनने लगे, जब उस पहली सादगी से हट कर शरीर की रचना मे विषमता आयी, काम बढा, तो विविध जीवकणो को भिन्न-भिन्न काम करने पडे। आदि युग मे इन आदि प्राणियो का शरीर बढता था। और बढकर अनेक प्राणियो मे परिणत हो जाता था। यह अयोनिज सृष्टि थी। स्त्री-पुरुष का भेद अभी तक पैदा नही हुआ था। परतु विकास क्रम मे इस आसानी से काम चल नही सकता था। यह सभव न था कि एक गौरैया या एक कोयल बढ कर दो गौरैया या दो कोयल हो जाय। यदि अयोनिज रचना का यही क्रम बड़े जीवो के उपजाने मे रहता तो उपजानेवाले जीव मे जितने दोष होते वे उपजे हुए जीवो मे भी पाये जाते और विकास या उन्नति के मार्ग मे यह भारी बाधा पड जाती। इसलिये जब काम बढा और शरीर की रचना में अनेक तरह के जीवकण लगने लगे तब एक प्रकार के जीवकण डिंब या अडेवाले हुए और दूसरे प्रकार के जीवकण वीर्याणु या बीजवाले हुए। और जब अडेवाले कण या डिंबाणु मे वीर्याणु या बीजवाले कण ने प्रवेश किया तो दो मिलकर एक सेल बन गया और एक नयी व्यक्ति के लिये-उस ने शरीर की बुनियाद डाली, जिस के चारो ओर और-और प्रकार के जीवकण इकट्ठे हो हो कर उस के विविध अग बनने लग गये। डिंबाणु स्त्री का पहिला रूप हुआ और वीर्याणु पुरुष का पहिला उपादान हुआ। स्त्री पुरुष का इस तरह का भेद पहिले पहल इन जीवकणो के द्वारा पैदा हुआ। अब तक जो अयोनिज सृष्टि होती थी योनिज हो गयी। परतु इस से यह न समझना चाहिये कि जिन डिंबाणु और वीर्याणुओ ने नयी व्यक्ति के शरीर की रचना मे मिलकर उस की बुनियाद डाली वे उस शरीर के भीतर और कुछ करने लगे। यह जीवकण अपने सरीखे जननकणो की रचना करने मे लग गये। जिन शरीरो मे डिंबाणुओ की रचना की विशेषता हुई वह स्त्री-शरीर कहलाये और जिन मे वीर्याणु की विशेषता हुई वह पुरुष शरीर कहलाये। जब वह शरीर प्रौढ हुआ तो इन्ही जनन-कणो ने मिलकर वैसे ही अनेक शरीरो की बुनियाद डाली।

प्रकृति मे इस रीति के चल जाने से बहुत से लाभ हुए और जीवन का विकास सहज और सुगम हो गया।

(१) पहिला लाभ तो यह हुआ कि प्रजा की उत्पत्ति मे खर्च कम पड़ने लगा क्योंकि आधे शरीर को अलगा देने की अपेक्षा पानी मे जनन-कणो को छोड़ देना अधिक सुभीते की बात है।

(२) दूसरा सुभीता यह हुआ कि इस विधि से एक बारगी बहुत से नये जीव बन सकते हैं और यह उस समय बड़े महत्व की बात है जब जीवन का रगड़ा बडा विकट हो और जननी-जनक द्वारा रक्षा असभव हो।

(३) तीसरा सुभीता यह है कि जननी-जनक के शरीर मे जो दोष मौजूद हैं उन के जनन-कणो मे आ जाने की बहुत कम सभावना होती है।

(४) चौथा लाभ यह है कि जनन-कण दो प्रकार के हो गये, एक प्रकार, डिंबाणु मे तो भोजन और बढने की सामग्री मे प्रचुरता हुई, परतु यह जनन-कण अचर हुआ।

दूसरा प्रकार वीर्याणुओ का हुआ जो चर प्राणी हैं, लहो और रसो मे चल-फिर सकते है और दूर से डिंवाणु का पता लगा सकते है और इस तरह विकास मे जो भिन्न जनन-कणो के मिलने से सुभीते होते हैं वह सहज हो गये।

स्त्री-पुरुष मे जो अतर पैदा हो गया वह भी विकास-क्रम मे बड़े महत्व की वात हुई। एक ही घोसले के भीतर दो अडे हो उन मे से एक से नर बच्चा हो और दूसरे से मादा, तो जरूर ही अडो के भीतरी सगठन मे गहरा भेद होगा। किसी-किसी प्राणी के अडो मे भी अतर होता है।

चित्र ६३—व्यक्तिगत जीवन का आरभ

प्रोफेसर रिडिल का कहना है कि कवूतरो के अडे नर और मादा दो प्रकार के होते हैं। परतु कोई-कोई प्राणी ऐसे भी होते हैं कि वाहर से उन मे स्त्री और पुरुप का कोई भेद नहीं दीखता परतु असल मे एक मादा होती है जिस के डिंवाशय होता है और दूसरा नर होता है जिस के वीर्यकोप होते हैं। इस भेद का कोई विशेप प्रभाव सारे शरीर के गठन मे नहीं पड़ता, केवल जननेंद्रियो पर ही इस भेद का विशेप प्रभाव पड़ता है।

बहुत से शरीरो मे स्त्री और पुरुषं का ऊपरी भेद भी होता है जैसा कि आम तौर पर लोग मुर्गा मुर्गी या बारहसिंहा और उस की हरिनी मे देखते हैं। इन प्राणियों के शरीरों में पुरुषपन और स्त्रीपन का प्रभाव एकदम समा गया है। जान पड़ता है कि जननेंद्रियो की ओर से रक्त के प्रवाह मे सारे शरीर मे कुछ सूक्ष्म पदार्थ ऐसे फैलते हैं जो रूप मे, शब्द मे, व्यवहार मे और रहन-सहन तक मे अतर डाल देते हैं। कहीं-कही स्त्री मे पुरुषपन का और पुरुष मे स्त्रीपन का भाव गुप्त पाया जाता है। यह बहुत सभव है कि किसी मुर्गी मे मुर्गे का भाव अधिक हो और किसी मुर्गे मे मुर्गी का भाव अधिक हो।

२—जीवन के लक्षणों का विकास

हमने देखा की जीवकण भोजन करते हैं, बढते है, अपनी प्रजा या सतान को बढाते हैं, और विकसित अवस्था मे शरीर से मल का त्याग भी करते हैं। यह बाते जीवन के सबंध मे सभी जगह देखी जाती है। परतु जैसे हमने आदिम प्राणियों का जन्म लेना देखा वैसे ही यदि आदिम नही तो विकसित प्राणियो का ही मरना भी हम देखते हैं। मरने से कोई बच नहीं सकता। मरते सभी प्राणी है। इस लिये सभी प्राणियो का या जीवनमात्र का और एक पाचवां लक्षण मरण भी समझना चाहिये।

विशेप रूप से मरना तीन तरह से हुआ करता है।

(१) प्राणियों की अधिकाश सख्या हिसा से ही मरती है, या तो दूसरे उसे खा जाते हैं या उन की परिस्थिति मे एकबारगी बहुत फेरफार होने से वे मर जाते है।

(२) जब वह नयी परिस्थिति मे पहुचते हैं तो और प्राणियों के साथ उन्हे रहना पड़ता है ऐसी दशा मे बहुत बार कीटाणु या परसत्वाद उन्हें लग जाते हैं। उन से छूटने का उपाय न जानने के कारण उन की मृत्यु हो जाती है।

(३) तीसरा प्रकार साधारण मृत्यु है। यह भी प्रायः नये शरीर के लिये बलिदान सा समझना चाहिये। शरीर जब पुराना हो जाता है, तो नित्य की होती हुई मरम्मत अत मे बेकार हो जाती है और बुढापा बाजी मार ले जाता है। कई जानवरो मे मृत्यु से ही आगे की सतान होती है। इसलिये मरने मे ही सुभीता है।

यह एक अचरज की बात है कि आदि जीवकण स्वाभाविक मृत्यु से मरते नही जान पड़ते। उन की रचना इतनी सीधी सादी है कि उन के लिये मरम्मत और आराम काफी है और प्रजा की वृद्धि मे भी वे बड़ी जल्दी एक से अनेक होते हैं। इस लिये उन के जीवन की कोई हानि नहीं होती। इनसे अमरता का भी विकास दिखाई पड़ता है। और कुछ जीव ऐसे भी हो सकते हैं जो मृत्यु से बच सके। जैसे मूगों का वह कीड़ा पल्वल कीट (पालोलो वर्म) जिस का शरीर तो जननकणो के विसर्जन में लग जाता है पर सिर मूगो की एक दरार मे पड़ा रह जाता है और समय पाकर अपने लिये नया शरीर उगा लेता है। इसी विकास मे दीर्घजीवी होने के भी सब तरह के उपाय शामिल हैं।

३—शरीर के अवयवों का विकास

विकास का क्रम ज्यो-ज्यों आगे बढता है त्यो-त्यो प्राणियों मे जीवन की इन पाचों आवश्यकताओ के सिवाय और और-विशेषताए भी आती जाती हैं। आरभ मे शरीरों की रचना इस ढग की होती थी,—प्राय: गोलाकार,—कि जिधर से चाहो उधर से आधा कर लो। परतु इस तरह की रचना अचर प्राणियों की ही हो सकती थी। चरो को तो किसी-न-किसी दशा मे चलना ही था इस लिये वह अपने शरीर का एक भाग आगे करके चलने लगे। यही सिर हो गया और शरीर मे दहना बाया भाग भी बन गया। अब शरीर की लम्बी डील होना जरूरी हो गया। इसी तरह सिर मे दिमाग का बनना भी शुरू हुआ। धीरे-धीरे सिर का विकास हुआ, इ द्रियों का विकास हुआ, पाचन और शोषण-सस्थान बने, रक्त और रक्त-सस्थान बने, माश-पेशियो के बधन और हिलाने-डुलाने की नाड़िया बनीं, शरीर मे इद्रियों के नाड़ीजाल का ताना-बाना तन गया। और विशेष कर रीढवाले प्राणियों के शरीर मे भीतरी रसों को बनानेवाली गाठे बन गयी जो वह सूक्ष्म रस बनाती हैं जिन्हे हारमोन कहते हैं जो रक्त के साथ शरीर भर मे चक्कर लगाते हैं और प्राण की क्रिया को सुसगत रखते हैं।

इन मे से कुछ ऐसे भी हैं जो शरीर के विशेष भागों को बनाते हैं, जैसे दूध पिलानेवाले प्राणियों मे दूध की ग्र थिया।

सोच-विचारकर सुख-दुःख की प्रतीति और अनुभव, और इच्छा-शक्ति जो हमारे जीवन की विशेषताए हैं, कब और किस प्रकार वे जीव मे पहले-पहल पैदा हुई, कहना बहुत मुश्किल है। यह बात तो पक्की है कि बीज रूप से यह मानसिक शक्तिया जीवन की आदिम अवस्था मे उसी तरह मौजूद रही होंगी जिस तरह वशिष्ट व्यास कालिदास और तुलसीदास जैसे विशाल बुद्धि और विवेकवाले लोगों के विकास के बीज उन के अत्यत अबोध लाचार नवजात शिशु-शरीर मे मौजूद थे। वास्तव मे बहुत से हेतु ऐसे हैं जिन से इस नतीजे पर पहुचना पडता है कि जहा-कहीं जीवन है वहा मानसिक शक्ति की कोई न कोई मात्रा अवश्य मौजूद है। पौधे तक मानसिक शक्तियों से सर्वथा रहित नहीं हैं।

४—मन का विकास

विकसित प्राणियो मे यह विशेषता देखी जाती है कि वह बात-बात मे परीक्षा करते हैं और जब चूक जाते हैं तो उस भूल-चूक से सीखते हैं। प्रत्येक प्राणी अपने को अनुकूल या प्रतिकूल दशाओं से घिरा हुआ पाता है। इन दशाओं को परिस्थिति कहते हैं। हर प्राणी को किसी न किसी परिस्थिति से मुकाबला करना पडता है, जूझना पड़ता है। वह जिधर बढता है उधर कभी तो उसकी गति मे रुकावट नहीं पड़ती और कभी उसे ठोकरे खानी पड़ती हैं। जहा उस की गति रुकती है या ठोकर लगती है वहा झट वह पीछे को हटता है और अपने को सभाल लेता है। वह प्रत्येक गति मे अपनी राह को परखता है और हर ठोकर से वह सीखता है। मार्ग बदलने पर भी जब-जब उसे रुकावट होती है तब-तब वह

मुड़ता है और भूल-चूक से हर बार नयी बात सीखता है। यह बात बहुत छोटे-छोटे प्राणियो मे भी देखी जाती है कि उन को छेड़ा जाय तो वह छेड़-छाड़ का किसी न किसी तरह का उत्तर अवश्य देते हैं। जब सफलता होती है तब प्राणी उत्साह से आगे बढता है।

किसी क्रिया का यदि उत्तर मिले तो उसे प्रतिक्रिया कहते हैं। कोई कीड़ा रेंग रहा है उसे ज़रा सा किसी तिनके से छू दीजिये तो वह तुरत मुड़ जाता है, दोहरा हो जाता है, अपनी दिशा बदल देता है या भागने लग जाता है। यह प्रतिक्रिया हुई। उदाहरण के लिये एक केंचुए को लीजिये। एक चिड़िये के पैर की धमक से जो उस के फुदकने से धरती मे पैदा होती है केंचुए के नाड़ीजाल को खबर हो जाती है और वह तुरत सुकड़ जाता है। ज्ञाननाड़ी और कर्मनाड़ी दोनो केंचुए मे भी बिजली की तेजी से काम करती है। इन नाड़ियो का विकास भी आदि प्राणियो से होता हुआ हम लोगो की दशा को पहुंचा है।

५—अभिमुखता या बान पड़ जाना

प्रत्येक शरीर और उस के इद्रियो को धरती के खिचाव और जल-मडल या वायु-मडल के दबाव का, धाराओ का, आर्द्रता का, सर्दी और गर्मी का, प्रकाश का, बिजली का और छूनेवाले तलो का मुकाबिला करना पड़ता है और इन के प्रभाव को सहकर भी अपनी सत्ता की रक्षा करनी पड़ती है। इसी रक्षा के उद्देश्य से स्वभाव से ही हर एक शरीर मे इन के सहने की और इन की बढ़ती-घटती के अनुसार अपनी अवस्था को बनाये रहने की ज़रूरत पड़ती है। इस के लिये हर एक प्राणी लाचार होकर अपनी गति-विधि अनुकूल बनाता है। इसी को "अभिमुखता" कहते हैं। इसी अभिमुखता से न केवल प्राणी अपनी रक्षा करता है, बल्कि परिस्थिति के अनुसार उस का विकास भी होता है। परतु यह शारिरिक सामजस्य प्रकृत अवस्था मे ही स्थिर होता है। अस्वाभाविक अवस्था में भी सामजस्य की स्थापना करने को शरीर अभिमुख होता है। पतग जब दिये को देखता है तो उस की एक ओर की ही आख में प्रकाश जाता है। दूसरी आँख मे प्रकाश डालकर सामजस्य लाने के लिये वह प्रकाश की ओर उड़ता है। स्पृहा के मोह मे वह बहुधा दीप-शिखा में जल मरता है। यदि प्रकाश इतने फैलाव मे हो कि उस की दोनों आखे प्रकाशित हो जायँ तो वह इस धोखे में न आये। प्रकृति मे उसे इस विषम अवस्था का कभी अनुभव नही होता। उस की परिस्थिति में दीपशिखा बिल्कुल कृत्रिम है और इस अस्वाभाविकता से उस की आदत पड़ जाने की आशा उस से कोई नही कर सकता।

६—नैसर्गिक व्यवहार

प्राणियों के विकास के तिर्यक् धरातल की ऊपर जानेवाली राह में प्राणियो का नैसर्गिक स्वभाव अद्भुत रीति से विकसित दिखाई पड़ता है। चीटियो मे, मधुमक्खियो में,

* भारतीय प्राचीन विद्वानों ने सब प्राणियों को ऊर्ध्व, तिर्यक् और अर्वाक् इन तीन स्रोतों में बांटा है। ऊर्ध्व सीधे खड़े होनेवाले मनुष्यादि प्राणी हैं। अर्वाक् वृक्षादि एवं जीवाणु हैं। शेष तिर्यक् स्रोत में गिने जाते हैं।

और भिड़ो मे ऐसी योग्यता देख पड़ती है जो बिल्कुल भीतरी है और जिसे सीखने की ज़रूरत नही पड़ती। यद्यपि यह अभ्यास और अनुभव से बिल्कुल स्वतत्र है तथापि इन दोनो से उन के व्यवहार मे सुधार हो सकता है। एक ही जाति के नरो मे एक सी योग्यता पायी जाती है। मादो की योग्यता नरो की योग्यता से प्रायः भिन्न हुआ करती है। चींटिया, मधुमक्खिया और भिड़े जन्मते ही अपने-अपने स्वाभाविक काम मे अद्भुत चतुराई और होशियारी से लग जाती है। उन्हे सीखने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। साधारण शरीर-विज्ञान की दृष्टि से तो जान पड़ता है कि मानो उन का सारा काम भीतर से प्रेरित होनेवाली एक तरह की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। परतु कई बाते ऐसी देखने मे आती है जिनसे लाचार हो यह मानना पड़ता है कि वह जो कुछ करते है उस से वह सचेत हैं और उसे पूरा करने से लिये जान-समझकर प्रयत्न करते हैं। जब कोई विशेष अवस्था आ जाती है जो उन की साधारण परिस्थिति में अतर डाल देती है या उन के काम मे बेसोची हुई आकस्मिक रुकावट आ जाती है तब वह ठीक उपाय करके परिस्थिति का मुकाबिला करते हैं और अपने काम मे सफल होते हैं। परतु असफलता के भी बहुत से अवसर आ पड़ते है जिन से वह शिक्षा भी ग्रहण करते हैं। यह बात ऊपरवाले प्राणियो मे अधिक देखी जाती है। अडजो में पक्षी और पिडजो मे पशु अनुभव से बहुत सीखते हैं। पर जिस तरह चींटी आदि छोटे प्राणियो मे नैसर्गिक बुद्धि की अधिकता है और विवेक का बहुत ही थोड़ा-थोड़ा विकास देखा जाता है उसी तरह बड़े प्राणियो मे विवेक की बढती हुई मात्रा के साथ साथ कभी-कभी नैसर्गिक व्यवहार के काम भी विवेक का स्थान ले लेते हैं। शायद कोई नैसर्गिक व्यवहार विवेक की यत्किंचित मात्रा के बिना न होता हो और विवेक का कोई काम नैसर्गिक बुद्धि के बिना न होता हो। पुराना ख्याल तो ऐसा है कि नैसर्गिक बुद्धि पहले के विवेक का जमा हुआ ठोस रूप है। अथवा विवेक से आचरण करते-करते जब वह आचरण स्वाभाविक हो गया तो उस ने नैसर्गिक बुद्धि का रूप ग्रहण कर लिया। यह बात मनुष्य के साधारण जीवन मे देखी भी जाती है। परतु यह इस प्रसिद्ध अनुमान पर कहा जाता है कि व्यक्तियो के अनुभव से जाति की-जाति लाभ उठाती है। परतु अब के विकासवादी निश्चय-पूर्वक नैसर्गिक बुद्धि और विवेक दोनो का विकास अलग-अलग मानते हैं।

७—समझ-बूझ

तिर्यक् मार्ग मे और ऊचे चढने पर सच्ची समझ-बूझ या बुद्धि दिखाई पड़ती है। जान पड़ता है कि बड़ा प्राणी इद्रियों से अनुभव करके कुछ नतीजा भी निकालता है। केवल अनुभव से ही लाभ नहीं उठाता बल्कि सोच-विचार से भी सीखता है। समझ-बूझ के जितने काम होते हैं उन मे आपस मे, और उन के करनेवाले प्राणियो मे, बहुत अतर दिखाई पड़ता है। इन कामो मे फेरफार होने पर भी या परिस्थिति के बदल जाने पर भी कठिनाई नही पड़ती और सहज ही ठीक कर लिये जाते हैं। नैसर्गिक बुद्धिवाले काम का क्रम जरा भी बदला कि करनेवाला प्राणी बिलकुल किंकर्त्तव्य-विमूढ हो जाता है।

इस तिर्यक् मार्ग के सब से ऊंचे शिखर पर पहुंचे हुए मनुष्य प्राणी में भीतरी नैसर्गिक बुद्धि अन्तरात्मा के आदेश या भीतरी अविज्ञात कर्म करनेवाले मन की प्रेरणाओं में
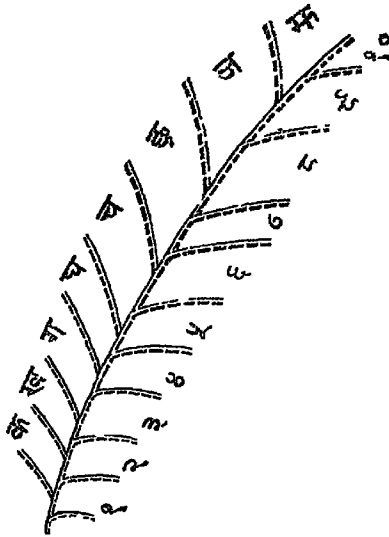
चित्र ६४—प्राणि-स्वभाव की तीर्य्यक् गति। बुद्धि और विवेक का विकास

[परिषत् की कृपा

तिर्य्यक् रेखा का ऊपरी भाग विवेक और निचला भाग सहज बुद्धि प्रकट करता है। ऊपरी भाग में (क) उद्योग (ख) साधारण जांच (ग) जांच और चूक की विधि (घ) बेसमझी की जांच (च) जांच से सीखना (छ) प्रसंग से सीखना (ज) समझदारी का बर्ताव (झ) विवेकयुक्त आचरण (मनुष्य में)।

निचले भाग में (१) परिस्थिति के साथ प्रतिक्रिया (२) वाह्य-प्रदर्शित प्रतिक्रिया (३) सरल प्रतिक्रियात्मिका क्रियाएं (४) मिश्रित प्रतिक्रियात्मिका क्रियाएं (५) आभिमुख्य (६) वाह्य प्रदर्शित अनुक्रियाएं (७) सरल निसर्ग (८) शृंखलाबद्ध निसर्ग (९) विवेक से प्रभावित नैसर्गिक क्रियाएं (१०) प्रत्यगात्मा की अंतः प्रेरणा (मनुष्य में)।

अत्यत प्रबल देखी जाती है। वह इन्द्रियो से अनुभव करके जो निष्कर्ष निकालता है, बाहरी तजुर्बे से जिन नतीजो पर आता है, उहे मीनरी आवाज से जाचता और परखता है, दोनो का मिलान करता है और फिर अपने व्यवहार के लिये ठीक मार्ग निश्चय करता है। इस दर्जे का विवेक केवल मनुष्य मे पाया जाता है।

इस बात मे तो सदेह नहीं रह जाता कि ज्यो-ज्यो प्राणियो का विकास होता है त्यो-त्यो उन के शरीर की रचना अधिक-से-अधिक विकट होती जाती है। स्वभाव और बर्त्ताव पर प्राणी का अधिकार बढ़ता जाता है वह अधिक सयमी होता जाता है और अधिकाधिक स्वाधीनता से काम करने लगता है। क्रम से परीक्षा चितना वृत्ति और आकाक्षा अधिकाधिक बढ़ती जाती है।

ज्यो-ज्यो विकास की गति मे प्राणी ऊपर उठता है त्यो-त्यो सतति की रक्षा प्रकृति की बाहरी परिस्थिति के हाथो से निकलकर माता-पिता के उत्तरदायित्वमे आती जाती है। सृष्टि मे प्रजा के द्वारा ही वृद्धि और विकास होता है। प्रजा सतान को कहते हैं और "सतान" शब्द का यौगिक अर्थ है "फैलाने-की-क्रिया।" अडजो मे छोटे-छोटे कीड़े एक साथ लाखो और करोड़ो की सख्या मे अडे देते हैं। पानी मे अनेक जतु इस तरह अनगिनत अडे देते हैं कि मानो एक विशाल क्षेत्र मे बीज बोते हो। सतान की रक्षा के लिए ऐसी दशा मे माता-पिता को किसी तरह की चिन्ता नहीं होती क्योकि बहुत से नष्ट हो जाने पर भी उन मे से कुछ अडे तो ज़रूर बच ही जाते हैं। जो जीव जल और स्थल दोनो से सबध रखते हैं, वह अपने अडे जल से बाहर कहीं रेत मे छिपा देते हैं। घड़ियाल के बच्चे बालू मे से दबे हुए अडे से निकलने के समय एक विशेष शब्द करते हैं जिसे उन के माता-पिता सुन लेते हैं और तुरत खोदकर फूटनेवाले अडो को निकाल लेते हैं। पक्षी अपने अडो को निरतर गरम रखते हैं और जब तक बच्चे निकल नहीं आते तब तक बराबर सेवा करते हैं। बच्चो के निकल आने पर वह बराबर रक्षा और पालन-पोषण करते रहते हैं। पख आ जाने पर उन्हें उड़ना सिखाते हैं और जब तक वह पूरे प्रौढ नही हो जाते तब तक बराबर उन की देखभाल रखते हैं। ज्यो-ज्यो प्राणी का शरीर इस सृष्टि मे बड़ा होता देख पड़ता है त्यो-त्यो सतान के पैदा होने की सख्या घटती जाती है। पिडजो मे तय्यार बच्चे गर्भ से बाहर होते हैं। और उन की देख-भाल, रक्षा और शिक्षा माता-पिता बहुत काल तक करते हैं। सतति-रक्षा का काम परिस्थिति के हाथो से प्रायः एकदम निकल जाता है और माता-पिता पूरे जिम्मेदार बन जाते हैं। इस जिम्मे-दारी का रूप स्वाभाविक वात्सल्य-प्रेम है। इस वात्सल्य-भाव का उदय तो अडजों से ही आरभ हो जाता है और मनुष्य मे आकर यह भाव अपनी पूरी ऊचाई को पहुंचता है। छोटे प्राणियो मे अक्सर देखा गया है कि पिता को सतान से प्रेम नहीं है। कई तो अडो बच्चों को खा जाते हैं।

९—गति का विकास और विकास की गति

यहा तक हम शरीर के विकास का रूप दिखाते आये हैं। अब हम यहा इस बात पर

विचार करेंगे कि सपूर्ण जीवन या शरीर के रूप मे इस सृष्टि की गति कहा से कहां तक होती रही है। वैज्ञानिको का मत है कि जीवित शरीर का आरभ किसी ऐसी जगह हुआ होगा जहाँ पृथ्वी, जल, तेज और वायु चारो तत्वो का बहुतायत से मेल होगा। ऐसी जगह समुद्र का तट ही हो सकता है। समुद्र के जल से अनेक तरह के नमक, उस मे आकर मिलनेवाली नदियो से शुद्ध पेय जल, वायुमडल से विशुद्ध प्राणकर वायु ओषजन की प्रचुरता और स्थल पर जल से सबध रखनेवाले उद्भिज, सभी कुछ वैयक्तिक चेतना रखनेवाले प्राणी के लिये आवश्यक हैं। इस तरह की अनुकूल परिस्थिति से प्राणियो के शरीर का आरभ होकर चारो ओर फैलना स्वाभाविक मालूम होता है।
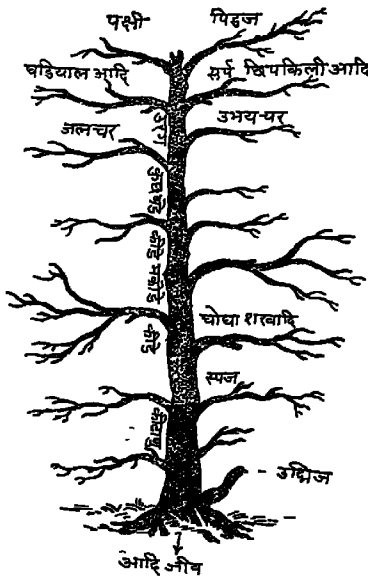
ज्यार्ज न्यूम्स की अनुमति से] चित्र ६१—जीवन-वृक्ष [टामस का अनुवर्त्तन

किनारे पर से जीवन के फैलने के लिये दो बहुत बड़े फैले हुए क्षेत्र मिलते हैं। एक तो जल का अत्यत विशाल क्षेत्र है और दूसरा सूखी धरती का। जल मे बहने और आराम से फैलने की बहुत बड़ी गुंजाइश है। जल के ऊपरी तलपर रहने मे हवा और रोशनी भी मन-चाहे परिमाण मे मिल सकती है। भीड-भाड का कोई डर नहीं है। बहते हुए सूक्ष्म उद्भिजो से भोजन की पूरी सामग्री मिल जाती है। स्थल पर इतने सुभीते नहीं हैं। इसी लिये अनुमान किया जाता है कि तट से जीवित शरीर का विकास खुले हुए जल के

विस्तार मे आया। उद्भिजो का आरभ तो जल से होकर उन का पूरा विस्तार स्थलपर हो चुका था। इसलिये व्यक्ति शरीर धारियो को उसी मार्ग पर चलने मे कोई कठिनाई न थी। इधर जल की गहराई में भी शरीरधारियो के प्रवेश मे कोई रुकावट न थी। इसी से दोनो ओर शरीरधारी फैले।

समुद्र मे गहराई सब जगह एक सी नही है। किनारो के पास बहुत बड़े फैलाव तक समुद्र का पानी गहराई मे अत्यत कम है। इस छिछले पानी मे बढ़ते-बढते अधिक से अधिक गहराई मे शरीरधारी प्राणी पहुंचे होंगे। परतु गहिरे समुद्र की क्या दशा है? वह अत्यत शीत की जगह है जहा गरमी का कभी प्रवेश नही होता। घोर अधकार वहा सृष्टि की आदि से बना हुआ है। प्रकाश वहा पहुंच नही सकता। ढाई हज़ार पोरसो (पुरुषो) की गहराई पर पानी का दबाव हर वर्ग इन्च पर ढाई टन अथवा अड़सठ मन के लगभग पड़ता है। वहा शान्ति का आत्यन्तिक राज्य है, अखड नीरवता है। पौधे नहीं हैं। ऐसी विकट दशा मे भी प्राणी वहाँ पहुंचा और फैल गया। इस विकट परिस्थिति को भी उस ने अपने अनुकूल बना लिया। वनस्पति के अभाव से इस गहराई के प्राणी एक दूसरे को खाकर निर्वाह करते हैं। उन के शरीर मणियो और रत्नों की तरह चमकते हैं और वहाँ के अधकार की कठिनाइयों को हटाते हैं। जान पड़ता है कि उथले जल से खसकते-खसकते ही यह प्राणी इतनी गहराई मे बहुत काल में पहुँचे होंगे। समुद्र को रत्नाकर की पदवी देने मे इन का भी कुछ भाग है।

समुद्र में नदिया, नाले आदि बहकर गिरते हैं। इन्हीं की राह से समुद्र-तट के प्राणी स्थल की ओर बढ़े। शुद्ध अनुकूल जल मे बहुत बड़े सुभीते मिले। धरती, रोशनी, हवा, पौधे आदि किसी की कमी न थी। शरीर के ऊपर कोई भारी दबाव या बोझ भी न था। इसी लिये पहले नदियो और तालों मे और फिर दलदलों मे देहधारी प्राणी बढे। दो एक बातों का डर जरूर था। कभी तो एक दम सूख जाने का डर था और कभी जाड़ो मे जमकर पत्थर हो जाने का, और कभी बाढ़ मे बह जाने का या बाढ के निकल जाने पर ऊँचे और सूखे मे छूट जाने का। परतु देहधारी स्थल मे पड़ जाने पर भी अपनी रक्षा में अपने को समर्थ पाने लगे।

प्राणियो की चढ़ाई सूखी धरती पर हुई। यहाँ जल के द्वारा नहीं बल्कि सीधे हवा से ओषजन मिलने लगा। हवा मे रहनेवाले प्राणी की खाल कड़ी हो गयी। और अब जल से त्वचा के सहारे ओषजन खीचने के बदले भीतरी अग की आवश्यकता हुई जो हवा से ओषजन को खींच ले। इस तरह धीरे-धीरे फेफड़ो का बनना शुरू हुआ। बहुत से प्राणियो मे रक्त को उस स्थान तक जाना पड़ता है जहाँ से ओषजन चूसा जा सके परंतु कीड़ों-मकोड़ो मे क्रिया ठीक उलटी होती है। वह हवा को या तो रक्त तक ले जाते हैं या वहीं ले जाते हैं जहाँ ओषजन के द्वारा दाह की क्रिया होती रहती है। उन के शरीर मे वायु की अनेक नलिकाएँ बनी होती हैं जो हवा को सर्वत्र पहुँचाती हैं। इस से खून मे गदगी नही आती और कीड़े अत्यत कर्म-शील बने रहते हैं।

पानी मे बहना बहुत आसान था। परतु धरती पर चलना मुश्किल हो गया। अब
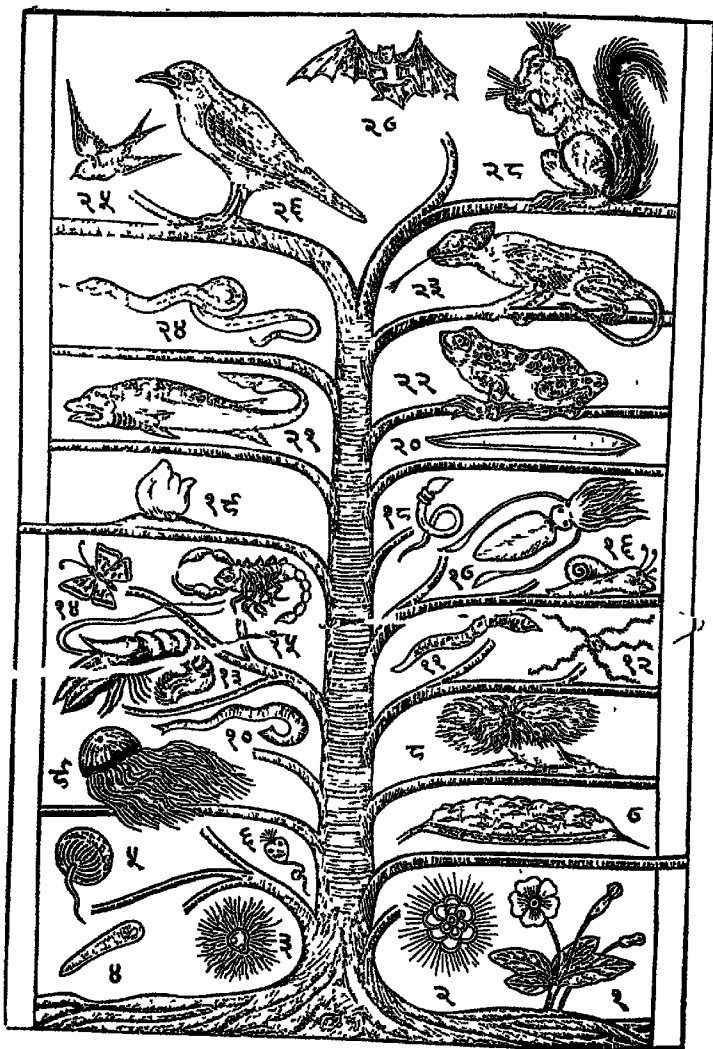
चित्र ६६—चर प्राणियों का वंश वृक्ष ।

ज्यार्जन्यून्स की अनुमति]

[टामसन का अनुवर्तन

(१) पौधा, जो दूसरे विकास वृक्ष का प्रतिनिधि हैं—दोनों वृक्ष एक ही मूल से निकले हैं। (२–३) खड़िया बनानेवाले जतु। (४) पराश्रित सचचारी जंतु। (५) रात को चमकनेवाले जतु-विशेष। (६) घटाकार जतु। यह सब सूक्ष्म एक सेलवाले जतु हैं जो प्राथमिक जीव कहलाते हैं। अनेक सेलवाले जतु बहुसेली प्राणी कहलाते हैं। (७) असमान स्पज। (८) पुष्प-तिमि (९) लुआबी मछली, यह दोनो दशक जतु हैं। (१०) जोंक। (११) केंचुआ। यह दोनों छल्लेदार शरीर और लाल रक्त के रेंगनेवाले प्राणी हैं। (१२) तारा-तिमि, चर्म्मकटक जाति के जल-जन्तुओं का नमूना। (१३) झिंगा मछली, कवची-वर्ग के प्राणियो का नमूना। (१४) तितली, मकोड़ा वर्ग या षट्पद वर्ग का नमूना। (१५) बिच्छू, मकड़ी जाति का नमूना। (१६) घोंघा। (१७) अष्टपाद। दोनों मृदुकाय जल-जन्तुओं के नमूने हैं। (१८) रेंगनेवाले कीड़े के रूप का जतु जो रीढ़वाले और बेरीढवाले प्राणियो का मध्यवर्ती है।

रीढ वाले प्राणियो मे (१९) पदविहीन खोलदार जतु। (२०) प्रासाकार जतु विशेष (२१) मछली (२२) मेंढक, उभयजीवी। (२३) गिरगिट, एक प्रकार का सर्प। (२४) साप सर्प या व्याल का एक प्रकार। (२५–२६) अबाबील और बया। चिड़िया का प्रकार। (२७) चमगीदड़। (२८) गिलहरी, दोनो पिंडज जाति के प्रतिनिधि।

प्राथमिक जीव। बहुसेली प्राणी। बेरीढवाले प्राणी। रीढवाले प्राणी।
Protozoa Metazoa Invertebıates Vertebrates

किसी टेकन की ज़रूरत हुई जिस के सहारे प्राणी आगे बढे। इसी लिये पॉव निकलने लगे। पावोंवाले जानवरो के विकास के साथ ही साथ हम ऐसे जंतु भी देखते हैं जो धरती पर बिना पॉव के रहते हैं, जैसे केंचुए और सॉप। केचुए मिट्टी खोदकर बिल बनाते हैं। सॉप अपनी पसलियो और केचुल के मज़बूत रेशो के बल से चलता है। धरती पर एक दूसरी कठिनाई यह आती है कि जहॉ जल मे दहने-बाये, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, सब ओर की गति हो सकती थी वहॉ धरती पर केवल एक तलपर गति की सभावना रह जाती है। यही बात है कि हम देखते हैं कि स्थल पर चलनेवाले प्राणियो के अग-अग का अधिक विकास होता है और विशेषतः उन के शरीर मे चलने का उपयुक्त प्रबध होता है। सूखे और पाले से, गर्मी के और सरदी के अत्यत बढने और घटने से, उन के शरीर पर ऊन और रोए की ज़रूरतें हुईं। धरती पर जीवन के आ जाने पर एक और कठिनाई उपस्थित हुई। अडो या बच्चो को अब जहॉ चाहो वहॉ छोड़ देना सभव नही था। अब तो रक्षा की जगह की तलाश हुई। धरती मे गाड़ देना, घोसलो मे छिपा रखना या जन्म से पहले और पीछे भी बहुत काल तक अपने अग से चिपटाये फिरना ज़रूरी हो गया। इसी लिये सतान की बहुत भारी सख्या अनुकूल नहीं ठहरी। जो वात्सल्य-भाव बहुत बड़ी गिनती मे बॅटा हुआ था अब थोड़े से बच्चो पर एकत्र हो गया। भावों मे बड़ी गंभीरता, सान्द्रता, कोमलता और सौन्दर्य का विकास हुआ।

अब अपनी और अपने कुटुम्ब की रक्षा के लिये भाति-भाति के उपाय किये जाने

लगे। धरती खोदकर माद बनाना या खोहो में और गड्ढो मे रहना या पेड़ पर चढ़कर अपनी रक्षा करना, या पानी मे या हवा में जाकर अपने को बचाना जरूरी हो गया। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब धरती पर जीवन के आने में इतनी कठिनाइया हैं तो सूखे पर बसने की ही क्या ज़रूरत थी ? इस का जवाब यह हो सकता है कि जीवन कर्मण्यता का ही नाम है। कर्म का सिलसिला जितना ही बढे उतना ही विकास बढता है। प्राणीमात्र मे कर्म की ओर प्रवृत्ति है। यह स्वाभाविक है कि जीव किसी क्षण बिना कर्म के नहीं रह सकता। आवश्यकता और कुतूहल यह दोनों ही कर्म के प्रवर्त्तक हैं। कुतूहल जनक है तो आवश्यकता जननी है। पानी के सूख जाने से या भीड़ से या शत्रुओ से बचने की आवश्यकता के कारण या नये देश नये काल, और नयी परिस्थिति के देखने के कुतूहल से प्राणियों ने नये क्षेत्रो मे और नयी परिस्थितियों में साहसपूर्वक बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना किया है।

छोटे-छोटे कीड़े पत्रोरग पक्षी और चमगीदड़ हवा मे उड़ते हैं। इन्होंने वायु-मडल पर विजय की है। परतु कितने ही असफल भी हुए हैं। जैसे उड़नेवाली मछलियाँ, मेढक और उरग आदि भी कुछ थोड़ी दूर तक उड़कर या उछलकर रह जाते हैं। पिंडजों में भी उड़नेवाले लगूर या कगारू के से जानवर होते हैं जो उस छतरी से ज्यादा काम नहीं कर सकते जो ग़ुब्बारे से आदमी को उड़ते हुए से उतारने मे काम देती है। परतु कुछ भी हो उडने से प्राणियों का बड़ा लाभ हुआ। धरती पर चुगती चिड़िया शिकारी जतु को देख कर उड़ जाती है, ऊपर से अन्न-जल का बड़ी दूर तक पता लगाया जा सकता है, ऊचे शिखरो पर या पेड़ो पर या और दुर्गम जगहो मे अडे-बच्चे सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं और जरूरत पड़ने पर एक देश से दूसरे देश मे पक्षी चले जाते हैं और बहुतेरे तो ऐसे हैं जो कड़ी सर्दी जानते ही नहीं।

छठा अध्याय

विकास का इतिहास

१—पत्थर की लीक

धरती पर बसनेवाली हर एक सभ्य मनुष्य जाति के साहित्य में सृष्टि का कुछ न कुछ पुराना इतिहास मौजूद है, जिस की बहुत सी बाते आज के युग मे समझ में नहीं आतीं। देश काल और परिस्थिति के भेद से उन मे भी परस्पर बहुत कुछ भेद है। इस लिये इतिहास की आज-कल की परिभाषा उन पर चरितार्थ नहीं होती। मनुष्य ने बीते हुए कई हजार वर्षों का जो कुछ इतिहास खोजकर सग्रह किया है उस मे अधिकाश मनुष्य का राजनीतिक इतिहास-मात्र है। परतु विज्ञान इतने थोड़े काल के और केवल मनुष्य जाति के और फिर वह भी राजनीति-मात्र के इतिहास से सतुष्ट नहीं हो सकता। उसे तो ससार के आरभ से लेकर आज तक का इतिहास चाहिये। और वह इतिहास भी सारी सृष्टि का चाहिये। यदि सृष्टि के मनुष्य जैसे छोटे-छोटे अंगों के इतिहास के विस्तार पर ध्यान दिया जाय तो एक तो उतनी सामग्री न मिलेगी दूसरे मिले भी तो मनुष्य की सर्वतोमुखी ज्ञान-वृद्धि मे सहायक न होगी। सृष्टि की आदि से अब तक का इतिहास वैज्ञानिकों ने पत्थर मे अकित पाया है जिसे प्रकृति-माता ने घटनाओं की अंगुलियों से आप लिख रखा है। मनुष्य ने भूगर्भ-विद्या की खोज मे धरती के बहुत गहरे-गहरे भाग खोदकर जाचे और परखे हैं। सृष्टि के बहुत विशाल विस्तृत युगो मे इस धरती के चिप्पड़ धीरे-धीरे ऊँचे उठकर या नीचे बैठकर महाद्वीप और महासागर बन गये हैं। धरती का ऊपरी भाग उभड़कर और सुकड़कर पर्वत-मालायें बन गयीं हैं और अनेक पेंच खाकर छोटी-छोटी पहाड़ियां और घाटियो मे उनका विकास हो गया है। हवा से सूखकर और पानी से पिघलकर गलकर और फटकर धरती के ऊंचे भाग अनेक रूप और आकार के हो गये हैं और बहुत सा सूखा, गला, पिघला और नोना खाया हुआ अश नदियों के द्वारा बहकर गहरी जगहो को भरकर बड़े-बड़े मैदान बनाने मे लग गया और आज भी लगा हुआ है और बहुत सा अश जगह-जगह पर

नदियो और समुद्रों के द्वारा इकट्ठा होकर काल पाकर पत्थरों और चट्टानो में परिणत हो गया। यह अश भी वारवार टूटते बहते और विषम स्थलो में इकट्ठे होते-होते स्तर-पर-स्तर जमाते गये हैं जो आज अनेक भूविज्ञानियो के मन से कुल सडसठ मील की मोटाई का चिप्पड़ है। इस तरह जमा होनेवाले स्तरो मे समय-समय पर उन-उन युगो के जो प्राणी और वनस्पति इन मे गड़े है उन की ठटरिया ज्यो की त्यो पायी जाती हैं। अथवा उन के शरीर के शेष बिल्कुल पत्थर हो गये हैं तो भी उन का आकार बदला नही। इन स्तरो और चट्टानो और जीवशेषो के परिशीलन से इस धरातल का और उस पर के बहुत से प्राणियो का इतिहास सग्रह किया गया हैं। वैज्ञानिको ने इन से जो विकास का इतिहास-सग्रह किया है उसे अनेक काल्पनिक युगो मे बाटा है। इम तरह के लिखे पत्थर के इतिहास मे भी कई दोष हैं। अनेक प्राणी तो इतने कोमल थे कि वह गल-पच गये। बहुत से खा डाले गये बहुतेरे अत्यत कडी आच और भयानक दबाव को सह न सके और बेनामोनिशान हो गये। इस तरह पत्थर का यह पुस्तकालय भी लुट गया और कीड़ो का शिकार हो चुका है। इस के परिशीलन मे जो नतीजे निकाले गये हैं वह भी बहुत कुछ कल्पना के सहारे पर टिके हुए हैं। काल के परिमाण में वैज्ञानिको मे गहरा मत-भेद है। इस मत-भेद और वारवार के मत और अनुमान-परिवर्त्तन को देखते हुए हम पौराणिक काल-परिमाण को भी इसी विचार-कोटि मे रक्खे तो तनिक भी अनौचित्य नही दीखता। फिर इतने फेर-फार होते हुए भी अनेक और आनुषगिक प्रमाणो से सहायता लेकर जो इतिहास बना है वह बहुत कुछ साधार है और विश्वास के योग्य हैं।

भूविज्ञानी गणित के आधार पर काल का अनुमान करते हैं। आज-कल वर्षा के द्वारा बहकर जितना नमक समुद्र में हर साल जाता है उस की मात्रा निकाली गयी है। यह भी मालूम किया गया हैं कि समुद्र-जल मे कुल कितना नमक है। इस हिसाब से पता चलता है कि जितना नमक आज-कल समुद्र मे बहकर जाता है अगर उतने ही परिमाण से आरभ से ही बहता रहा हो तो आज तक इस धरती पर वर्षा का आरभ हुए दस करोड बरस के लगभग होता है। परतु यह भी मलूम है कि हर बरस बहकर आनेवाले नमको की मात्रा कुछ ज़रा-ज़रा भी बढती गयी हो, जैसी की बहुत बडी सभावना है, तो यह दस करोड बरस का काल बहुत थोडा ठहरता है और अरबो तक सीमा बढ जाती है। एक और विधि यह है कि यह अदाजा लगाते हैं कि बालू और मिट्टी की चट्टाने और पत्थर कितने काल मे बन जाते हैं और ऐसी चट्टानो के जितने गहरे स्तर भूगर्भ मे मिलते हैं उन के बनने के समय का उतना ही अदाज़ा किया जाता है। इस के सिवा और भी आनुषगिक विधिया है जिनसे समय का पता लगता है। परतु सारी विधिया मोटे अदाजे पर निर्भर हैं और वैज्ञानिको में आपस मे इस अनुमान मे करोड़ो और अरबो बरस का अतर पड़ जाता है।

वैज्ञानिक इस अनुमान के क्षेत्र में भी फूक-फूककर कदम रखते हैं। इसी लिये जहा अटकल से बहुत बड़ी-बड़ी सख्याए आती हैं वहा कम-से-कम आनेवाली सख्याओ से ही काम लेते हैं जिस मे अत्युक्ति दोष से भरसक बचे रहें। इतने पर भी इङ्गलिस्तान के ब्रिटिश असोसियेशन के सन् १९२१वाले अधिवेशन मे प्रोफेसर रेले ने यह कहा कि हाल

मे जो ज्ञान की वृद्धि हुई है उस ने आरभ से अब तक इस धरातल पर जीवन के बराबर बने रहने की अवधि को बढाकर एक अरब बरस के लगभग कर दिया है और पृथ्वी की पूरी आयु इसकी कई गुना अधिक समझी जाने लगी है, क्योकि पृथ्वी ठढी नही हो रही है बल्कि बाहरी चिप्पड़ मे युरेनियम के टूटते रहने से ताप बढता जाता है और भीतरी ताप एक प्रकार से अक्षय है। इस तरह रश्मि-विकीरक तत्वो ने काल की आदि सीमा को अत्यत बढा दिया है। वैज्ञानिक विचारवाले पहले पुराणो की कालावधि पर हँसते थे, परतु विज्ञान तो पुराणो से आज कही आगे बढ गया है।

ससार की सृष्टि के सबध मे सभी भारतीय पुराणो मे * कथाए दी हुई है। उन मे काल के परिमाण भी दिये हुए हैं। वैज्ञानिक काल परिमाण से उन की तुलना यहा बड़े महत्त्व की जान पड़ती है।

३—समय-विभाग

हम अन्यत्र पौराणिक काल विभाग के अनुसार पौराणिक सृष्टिक्रम का समन्वय वैज्ञानिक क्रम से कर चुके हैं। यहा हम सृष्टि के काल-विभाग के वैज्ञानिक अनुमानो को ही पाठक के सामने रखेगे। पुराणो के अनुसार ब्रह्माड की सृष्टि कल्प की आदि मे आरभ होती है और कल्प के अत मे समाप्त हो जाती है फिर एक कल्प तक सृष्टि का अभाव रहता है। फिर नये कल्प मे सृष्टि का आरभ पहले की तरह होता है। सौर वर्षो से एक कल्प चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों का होता है। कल्प के चौदह बराबर-बराबर विभाग किये हैं। इस तरह हर एक भाग तीस करोड़ छियासी लाख वर्षों के लगभग हुआ। एक कल्प के एक हजार विभाग भी किये हैं उस को महायुग या चतुर्युगी कहते हैं। एक महायुग तैंतालिस लाख बीस हजार वर्षों का हुआ। एक महायुग मे सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग यह चार युग होते हैं। देव-वर्षो से कलियुग चार लाख बत्तीस हजार मानव वर्षो का होता है। द्वापर इस का दूना, त्रेता इस का तिगुना, और सतयुग चौगुना होता है। भूगर्भ-विज्ञानियों ने अपने युग-विभाग दूसरी तरह पर किये हैं। यह पता लगाना अत्यत कठिन है कि यह ब्रह्माड जड़-रूप मे कितने काल में बन सका है। काल का अनुमान केवल उस समय से करते हैं जब से एक सेलवाले आदि प्राणी इस धरती पर पहले-पहल उत्पन्न हुए। पुराने हिसाब से अब से तीन करोड़ बरस और रेले के हिसाब से अब से अड़तालीस करोड़ बरस से पहले ही यह घटना हो चुकी होगी। वर्त्तमान वैवस्वत मन्वतर के बारह करोड़ पाँच लाख

---

* बाबुल, मिस्र और चीन के पुराण भी काल परिमाण को अत्यंत बढाकर बताते हैं, फिर भी वे विज्ञान की आधुनिक कल्पना से आगे नहीं बढ़ते। हां, जैन पुराण अवश्य ही अब तक विज्ञान से कहीं आगे बढ़े हुए हैं। परंतु फिर भी यह कोई नहीं कह सकता कि विज्ञान भविष्य में उन की अत्युक्ति का भी समन्वय न कर सकेगा।

तैतीस हजार बरस बीत गये। यह सातवा मन्वंतर है। रेले के कम-से-कमवाले हिसाब को हम अपने शब्दों मे यों कह सकते हैं कि प्रोफेसर रेले के अनुमान से वर्तमान कल्प के तीसरे मन्वतर के सत्रहवे त्रेता युग मे इस धरती पर जीवन का आरभ हुआ होगा। अधिक से अधिक तो हम पहला मन्वतर कह सकते हैं। प्रोफेसर रेले के हिसाब से वर्तमान मानवीय सभ्यता कम-से-कम सत्ताइसवे सतयुग से अर्थात् वर्तमान चतुर्युगी की आदि से आरभ होती है* कालमान से आधुनिक विज्ञान के काल-विभाग से इतना अतर पड़ता है कि हम वैज्ञानिक महायुगों को पौराणिक नाम नहीं दे सकते।

इसलिए हम यहा वैज्ञानिको की ही परिभाषा मे यों ही कहेगे कि सृष्टि विज्ञानियों के मत से अजीव सृष्टि मे प्रायः जीव सृष्टि के अबतक के अतीतकाल का कई गुना अधिक काल लगा होगा। उसे अलग कल्प ही माना गया है। हम उसे अजीव सृष्टि कल्प कहेंगे। जीवन का आरभ और आरभिक विकास मे भी बहुत समय लगा होगा। इस लिये उसे हम आदिम जीवो का कल्प कहेगे। अजीव-सृष्टि-कल्प में सौर ब्रह्माड की रचना, स्थापना, फिर पृथ्वी के पिंड के ठढे होकर द्रव और घन बनने का काल, फिर वायु और जलमंडलों का बनना और फिर महाद्वीपो और समुद्र-तलों की रचना का काल शामिल है। इस प्रकार जब धरती जीवन के आरभ के लिये तैयार हो जाती है तब आदिम जीवो के कल्प का आरभ होता है। आदिम जीवो का बहुत दीर्घ काल मे बेरीढ़वाले एक सेल के असख्य प्राणियो मे विकास होता है। इस कल्प के बीतने पर पहिले महायुग का आरभ होना है।

पहिले महायुग को छः अतरों मे विभक्त करते है। यह भी पौराणिकों के सात मन्वतरो की तरह बड़े लबे काल हैं। पहले में समुद्र बसता है, दूसरे में मछलियो के काल का आरभ होता है और शख आदि मृदुकाय बेरीढवाले प्राणियों की बहुतायत होती है। मछलिया भी बेरीढवाली ही अधिक होती है। तीसरे में मछलियो का और रीढवाले प्राणियो का विकास एव स्थल के छोटे प्राणी बनते हैं। चौथे मे आदिम उभयचर पाचवे मे पटपद कीड़े-मकोड़े और छठे मे उरगो की उत्पत्ति होती है। पहले महायुग के अत मे हिमप्रलय होता है, फिर दूसरे महायुग का आरभ होता है। इसके तीनों अतरों में क्रमशः उरगों, पक्षियों, आदिम पिंडजो, पौधों और षटपदों के विकास के बाद प्रलय होता है। तीसरे महायुग मे बड़े पिडजों का विकास, मानव जाति का उभार और अतिम प्रलय होता है। इस के बाद वर्त्तमान महायुग का आरभ होता है। वैज्ञानिक काल विभाग सक्षेप से इस प्रकार है।

---

* हिंदू पौराणिक मतानुसार मानव सृष्टि का आरभ वर्त्तमान कल्प के आरंभ में पहले ही मन्वतर में हुआ जिसे लगभग दो अरब बरस के हुए। अभी वैज्ञानिक इतनी दूर जाने का साहस नहीं करते। परतु जिस गति से वैज्ञानिक उन्नति करते गये हैं उस से पौराणिक मत तक उन के भविष्य काल में कभी पहुँच जाने में भी कोई बाधा नहीं दीखती।

लगभग चालीस बरस के हुए कि लार्ड केल्विन ने अनुमान किया था कि धरती के बने दो करोड़ बरस हुए होंगे, परतु प्रोफेसर रेले इसे कई अरब बरस बताते हैं। हम कह आये हैं कि हिंदू सस्कृति मे ब्रह्माड की सृष्टि से कल्प का आरभ माना जाता है। वर्त्तमान श्वेत-वाराह-कल्प के आरभ से अबतक कुछ कम दो अरब बरस बीते हैं। भूगर्भ विद्या के अनुसार जड़ सृष्टि की रचना मे सौर मडल की स्थापना, धरती का ठडा होना, जल-मडल और वायुमडल का आरभ, महाद्वीपों और महासागरों के तल का निर्माण-इतनी रचना मे पूरे एक अरब बरस लगे होंगे। जब इस धरती की परिस्थिति जीवन के लिये उपयुक्त हो गयी तो करोड़ो बरस तक बहुत ही सूक्ष्म प्राणी का इस धरती पर विकास होता रहा होगा। इसी विकास की परपरा मे सूक्ष्म से-सूक्ष्म जीवों की रचना हुई होगी। धीरे-धीरे बढते-बढते बिना रीढवाले स्थूल प्राणियों का आरभ हुआ होगा। घोंघे और शख आदि के रूप मे आज भी ऐसे प्राणी पाये जाते हैं परतु लगभग अड़तालीस करोड बरस के ऐसे असंख्य प्रकार के प्राणियों के विकास में बीता होगा। तब कहीं पहले भौगर्भिक युग का आरभ हुआ होगा।

पहिले भौगर्भिक युग के आरभ के पहिले अतर मे बहुत काल तक सारा समुद्र बिना रीढवाले विशेष जतुओ से भर गया था। स्पज, कृमि, त्रिपालिकाश्म, कवची, मृदुकाय आदि असंख्य जातिया थीं। केकड़े शख, घोंघे आदि इन्हो के अतर्गत थे। शख जाति के नाम से यदि हम इसे शख-काल कहें तो अनुचित न होगा। इसी शख-काल में प्रोफेसर आसबर्न के अनुसार समुद्र-तट के पास खुले समुद्र में और गहरे जल मे उस समय के प्राणी फैल गये थे।

४—पहला युग बेरीढ़ और रीढ़वाले प्राणी

पहिले युग मे छः अतरों का विभाग किया गया है। पहला अतर बेरीढ के प्राणियों का था। इसे हम शख-काल कहेंगे। दूसरा अतर मत्स्यकाल कहला सकता है। इस काल के आरभ मे त्रिपालिकाश्म जाति के प्राणी बडी सफलता से फैले हुए थे। पाव जुड़े हुए थे। सूड़े थीं और तीन-तीन काड के शरीर, त्वचा कुछ कडी। इसी काल मे हिंसक भयानक परतु बेरीढवाले बहुतेरे जलजतु थे जो और जाति के प्राणियो को खोजते थे। परतु इसे हम मत्स्यकाल इस लिये कहते हैं कि इसी काल मे पहले-पहल मछलियों का आरभ हुआ। रीढवाले प्राणियों का मछलियों से ही आरभ हुआ। धीरे-धीरे मछलियाँ बढीं और पहिले के मृदुकाय हिंसक जतुओ का विनाश होने लगा।

तीसरे अंतर मे जल में तो मछलियो का पूरा विकास हुआ और उनका साम्राज्य स्थापित हो गया। दूसरी ओर सूखी धरती पर भी बस्ती बनने लगी। बेरीढ़वाले स्थल-चरों का आरभ हुआ। बिच्छू सरीखे प्राणियो का उदय इसी समय हुआ जो भीतरी त्वचा के द्वारा सास लेते थे। इसी समय दोहरे श्वास-यन्त्रवाली मछलियो का भी आरभ हुआ। पहले स्थल-चर कीड़े बिच्छू आदि इसी काल मे थे।

तीसरे अंतर को हम कच्छप-काल कहेंगे । इसी काल में धरती पर फूलनेवाले पौधे लगे और रीढ़वाले जन्तुओं का आरंभ हुआ । इस काल में सब से बड़ी बात यह हुई कि उभयचरों का भी इसी समय आरंभ हुआ। उस समय समुद्र में भयानक मछलियां उत्पन्न हो चुकी थीं और उभयचारी पशुओं का विकास हो चुका था। मेंढक आदि का यही समय था।

५—स्थलचरों का विकास

जिस युग के पत्थर के कोयले की बड़ी-बड़ी विस्तृत चट्टानें भूगर्भ में पड़ी हुई हैं उसमें इस धरतीपर ऋतु बहुत ही अनुकूल थी। न अत्यंत ठंडा था न बड़ी कड़ी गरमी थी। अत्यंत आर्द्र धरातल पर निरंतर वसंत ऋतु का सुहावना समा था। आज-कल के से पेड़ न थे। घास फूस के बड़े-बड़े विशालकाय पौधे थे जिन में वन में घना अंधेरा रहा करता था। इन महावनों में जुड़े हुए पावोंवाले सूखी धरती में चढ़ाई करनेवाले कीड़े-मकोड़े भरे रहते थे। कन-खजूरे, मकड़े बिच्छू आदि की तरह के असंख्य प्राणी थे। और इन के भी भोजन कर जानेवाले जल-स्थल दोनों में विचरनेवाले अनेक जीव थे। कीड़े-मकोड़े पौधों की बीजों को और फूलों के केशरों और परागों को मिलाने में बराबर सहायता किया करते थे जिस से नये पौधों की उत्पत्ति होती थी। इस तरह चरों और अचरों दोनों का विकास साथ साथ चलता था और दोनों परस्पर सहायक थे। इसी कोयलों के युग में रंगीन फूलों की उत्पत्ति और विकास का समय समझना चाहिये। इस समय के जल-स्थल या उभयचर आज-कल के गोधों के से बड़े आकार के होते थे। इन्हीं बड़े-बड़े जंगलों के दब जाने से और वड़वानल से झुलस जाने से पृथ्वी के गर्भ में कोयले के विशाल स्तर हो गये। इसी युग के आरंभ में उभयचरों ने जल के अतिरिक्त, स्थल के लिए उपयुक्त इंद्रियों का विकास किया। सांस लेने के लिए फेफड़े, तीन घरोंवाला हृदय, हिलने-डोलनेवाली जीभ कान के ढोल, और आखों को ढकने के लिये पलकें, उभयचारी के लिये आवश्यक हो गयीं। मेंढक के शरीर का विकास आज भी इन बातों का गवाह है। जल में रहते हुए शब्द की जो कमी थी वह पूरी हुई। स्वरयंत्र का विकास हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पहले करोड़ों बरस तक इस धरातल पर बिजली, तूफान, जलप्रपात और लहरों के शब्दों को छोड़कर और किसी तरह का प्राणियों का शब्द सुनने में नहीं आ सकता था। कुछ कीड़ों के बजाने के शब्द के सिवाय इस युग में पहले शब्द उभयचारियों के थे। मेंढकों ने अपनी मेंढकियों को बुलाना आरंभ किया। फिर माता पिता ने बच्चों को जोखिम से साव-धान करने के लिये शब्द निकाले। फिर बच्चे ने माता-पिता को पुकारना शुरू किया। फिर धीरे-धीरे पक्षी चहचहाने लगे। भावों का उदय हुआ और भाति-भाति के स्वर निकलने लगे। धीरे-धीरे स्वरों और व्यंजनों का विभाग हुआ और शब्द बनने लगे। "भोजन" "जोखिम" "डर" "सुख" और "दुःख" का प्रकाश होने लगा। और भाषा का विकास आरंभ हुआ। इसी काल में पतली या कटी कमरवाले कीड़े पैदा हुए और बढ़े। आरंभ में

इन का रूप कुछ और होता था और अंत में यह उड़नेवाले प्राणी बन जाते थे। इन्हे षटपद कह सकते हैं। इसी लिये इस काल को षटपद-काल कहेंगे।

पहले युग के छठे या अंतिम अंतर मे रेंगनेवाले व्यालो का युग आरभ हुआ। इसी लिये इसे हम "उरग-काल" कहेंगे। यह शुद्ध स्थलचर थे। सास लेने में बाहर से हवा को खींचते थे। मछलिया आदि जल-जन्तु गलफड़ो से सास लेती हैं परतु उरगो ने पहले-पहल गलफड़ो का परित्याग किया। यह एक मारके की बात है कि सभी उरगों, पक्षियो और पिंडजों के भ्रूणो मे गलफड़ो का चिह्न पाया जाता है। उरग-काल में ऋतु की दशा बड़ी प्रतिकूल होती गयी। सरदी बढ़ती गयी। होते-होते दक्षिण गोलार्द्ध से प्रालेय-युग का प्रवाह चला और सारे धरातल पर बरफ़ जम गया। बरफ़ की तह के नीचे भारी-भारी जंगल दब गये। नये जगल निकले और वह भी इसी तरह दब गये। यह प्रालेय काल लाखो बरस तक बना रहा और दक्षिण खंड मे सब से अधिक तेजी पर था। वह ससार ही और था। योरोप और अमेरिका मिले हुए थे। अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका जुटे हुए थे। आस्ट्रेलिया और एशिया एक महाद्वीप था। इसी समय बहुत से प्राणियो ने सोते हुए या स्तब्ध दशा में रहकर अपनी प्राण-शक्ति की रक्षा करना सीखा। परन्तु साथ ही पुराने ढंग के अनंत प्राणियो का नाश हो गया। बहुत से पौधे और बेरीढवाले प्राणी सदा के लिए लुप्त हो गये। इसी अंतर के साथ पहले युग का अंत हो गया।

६—दूसरा भौगर्भिक युग

दूसरे युग मे तीन अतर रक्खे जाते हैं। पहला युग पुराने मत से दो करोड़ बरस के लगभग का था। रेले के मत से उन्तीस करोड़ बरसो के लगभग का ठहरता है। दूसरा युग साढे चौदह करोड़ बरसो का आका जाता है। इस के पहले के अतर मे उरगो का सतयुग समझना चाहिए। इसी समय दानवाकार उरग पृथ्वी पर फैले जो दूसरे युग के अत तक मे ही समाप्त हो गये। इस समय के कछुए [illegible]काय थे। इन के सिवा मत्स्यासुर, उपासुर, चडासुर पत्रासुर आदि [illegible]
प्राणी उस युग मे सारी पृथ्वी पर [illegible]
समय की सृष्टि और सम्[illegible]

इस युग के [illegible]
आकाश मे उड़ [illegible]
खाल के द्वारा
बदले दो पंख
कर ली। इस
हुआ। जैसे

चित्र ६८—८।

[illegible]ल-धारी गैंडे, गिरि-गुहा-निवासी महा सिंह और [illegible]
जाति केकर आदिमी जाति के शत्रु पिंडज- इस महा[illegible]
आरंभ। उन की जाति का कोई बच न सका [illegible]

है कि चढोरगों की कोई जाति द्विपद हो गयी हो और उसी से आजकल के पक्षियो का आरभ हुआ हो। पहले वे तेज दौड़ते रहे हो फिर उछलने लगे हों, फिर पेड़ पर यात्रा करने लगे हों और अत मे उड़ने लगे हों। उड़ने का प्रयास कीड़ो ने किया, पत्रोरगों ने किया, चमगीदड़ो ने किया और चिड़ियो ने किया। चारो के मार्ग अलग-अलग थे। आज मनुष्य पाचवा मार्ग निकाल रहा है।

अतिम अतर मे दानवो और उरगों का ह्रास हो गया। ऊचे प्रकार के कीड़े बढे और फूलवाले पौधे नये ढग के निकल पड़े। छोटे-छोटे पिडजों का बढना भी इसी काल मे आरभ हुआ। शख, मछलिया, उरग और पक्षी अडज थे। पिडज का पहले-पहल दूसरे युग के अत मे आविर्भाव हुआ है। पहले युग के अत के श्वानदन्तादि सरीखे अनेक उरग बिलकुल पिडजों सरीखे लगते थे। शायद उन्हीं से दूसरे युग के आदि काल मे छोटे पिंडजों का उदय हुआ होगा। परतु जो हो इस मे सदेह नहीं कि दूसरे युग के अत मे चगुलों खुरों आदि विशेषतावाले पिंडज फैल गये थे। उस समय बहुत ही प्राचीन प्रकार के बानरो का वा बनमानुसों भी उदय हुआ।

इस तरह पहले युग मे आदि मे शखो की सभ्यता फैली। फिर मत्स्यों का राज्य हुआ। फिर स्थल-चारियो के उदय के साथ-ही-साथ कूर्म-युग आया। उभयचारियों की प्रधानता हुई। इस के अनतर षट्पदों और उरगो का समय आया। इस क्रम मे पुराने मत मे लगभग दो करोड़ और नये मत से लगभग उन्तीस करोड़ बरस बीते। दूसरा युग "व्यालयुग" कहा जा सकता है। इसमे व्यालों और उरगों की प्रधानता रही। इसी युग मे यह खतम भी हो गये और पिडजो का उदय हुआ। इस मे पुराने अनुमान से नब्बे लाख और नये अनुमान से साढे चौदह करोड़ बरस बीते।

७—तीसलिए फैपर्भिक युग। पिंडजों का विकास

कार्न के ढ..., आर आखो को ढकने के लि

मेढक के शरीर का विकास आज भी इन बातो का गवाह -कुल के पिडजों का आरभ हुआ। जो कमी थी वह पूरी हुई। स्वरयत्र का विकास हुआ। ऐसा पर घास का हरा फर्श बिछ कि पहले करोड़ों बरस तक इस धरातल पर बिजली, तूफान, जलप्रपात से चरने लगे और को छोड़कर और किसी तरह का प्राणियों का शब्द सुनने मे नहीं आ ल धीरे-धीरे ऊचे कीड़ो के बजाने के शब्द के सिवाय इस युग मे पहले शब्द उभयचारियों था। इस युग के ने अपनी मेढकियो को बुलाना आरभ किया। फिर माता पिता ने बच्चों को जोखिमों था। जल- धान करने के लिये शब्द निकाले। फिर बच्चे ने माता-पिता को पुकारना शुरू किये था। इसी धीरे-धीरे पक्षी चहचहाने लगे। भावो का उदय हुआ और भाति-भाति के स्वर लि के पृथ्वी लगे। धीरे-धीरे स्वरो और व्यजनों का विभाग हुआ और शब्द बनने लगे। "भो इन्हें हम "जोखिम" "घर" "सुख" और "दुःख" का प्रकाश होने लगा। और भाषा का विका बहुत आरभ हुआ। इसी काल मे पतली या कटी कमरवाले कीड़े पैदा हुए और बढे। आरभ विभा आरभ
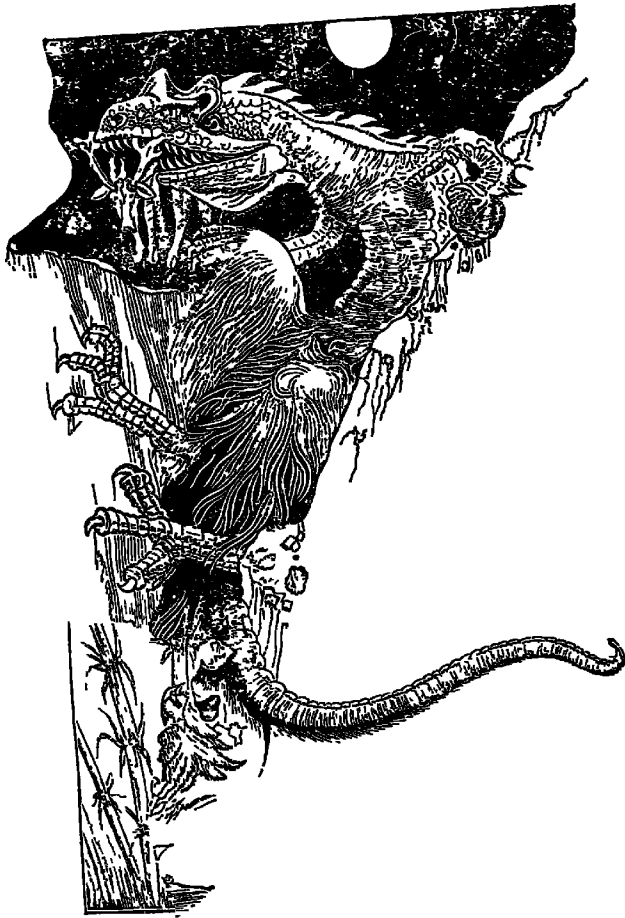
फैल गये। और अपने को सृष्टि के और सब प्राणियों से बढा-चढा सिद्ध किया। उस समय यही समझा जाता था कि सभ्यता अपने उच्चतम शिखर तक पहुँच गयी है। आदिमी से बढ कर कोई अधिक ऊचा प्राणी नही हो सकता। परतु जब इस युग का अतिम अतर आया तो

चित्र ६७—परमियन महाव्याल

[परिषद् की कृपा

इस भूतल पर बड़े प्रचड परिवर्त्तन हुए। महाद्वीपो का धरातल ऊचा उठता ग
पर्वत बहुत ऊचे से घटकर नीचा हो गया और हिमालय ऊचा उठ
करने लगा। इसी तीसरे युग के अत मे बड़ी भयानक प्रलय
महा प्रवाह मे सारा जगत बरफ से ढक गया और विश

चित्र ६८—दो.

कम्बल-धारी गैडे, गिरि-गुहा-निवासी महा सिह और
नयकर आदिमी जाति के शत्रु पिडज इस महा
गये। उन की जाति का कोई बच न सका

चित्र ६८—द।

कम्बल-धारी गैंडे, गिरि-गुहा-निवासी महा-सिंह और
भयकर आदिमी जाति के शत्रु पिंडज- इस महा
गये। उन की जाति का कोई बच न सका

चिह्नों का लोप हो गया हो। यह तीसरा युग पुराने हिसाब से तीस लाख बरसो का, और नये हिसाब से पौने पाच करोड़ वर्षों का समझा जाता है। हम नये हिसाब को ही ठीक माने तो यह अनुमान करने मे कोई कठिनाई नही होती कि हम लोग अवातर के युग में हैं
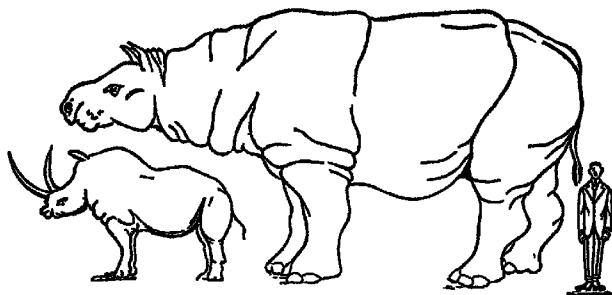
चित्र ७१—शाकभोजी पर्व्यासुर जाति का व्याल।

[परिषत् की कृपा

अर्थात् जिसे अतिम हिमप्रलय कहा जाता है वह वास्तव मे अतिम नहीं है बल्कि हिमप्रलय का युग अभी चला जा रहा है। वर्त्तमान काल अवातर काल है। इस तीसरे युग की अवधि बीती मान लेने पर भी हम यह कह सकते हैं कि चौथे युग का अभी-अभी आरभ ही हुआ है।

८—वर्तमान युग। मनुष्य का विकास

प्रत्येक युग के अत मे विकास अपना उत्कृष्ट रूप दिखाता रहा है और हर आने-वाले युग मे पिछले की अपेक्षा अधिक वृद्धि और उन्नति दिखाई देती रही है। वर्त्तमान काल को यदि हम प्रालेय युग कहें तो इस प्रालेय युग में भी मनुष्यों की सभ्यता ही सब से ऊचे पद पर समझी जा सकेगी।

वर्त्त न मनुष्य उसी वशवृक्ष की एक शाखा से निकला हुआ है जिस की और मदाकिया शाखाओं से, पर्वती-मनुष्य, वन-मनुष्य, लगूर और वानर आदि, मनुष्य के-से रूप- णी उत्पन्न हुए हैं। वर्तमान मनुष्य का दिमाग सब से बड़ा है। उस की धीरे-धीरे पच्ची विकमित हैं। उस के नाड़ीजाल बडे सचेत और कर्मण्य हैं। उस की लगे। धीरे-धीरे स्वरा आ उसे श्रेष्ठ ठहराते हैं। उस का मानसिक विकास जितना "जोखिम" "घर" "सुख" और धर्म न्याय और नीति के अनुकूल है और शील आरभ हुआ। इसी काल मे पतली या कटा गैर विचार के इतने विकास के साथ-साथ

चित्र ७१—प्राचीन व्याल । [परिषत् की कृपा

उस के उच्चार का भी पूरा विकास हुआ है। और प्राणी शब्दों तक ही पहुँच सके हैं परंतु मनुष्य भाषा पर अधिकार रखता है। कुछ प्राणी इन्द्रिय-जनित ज्ञान के निष्कर्ष तक
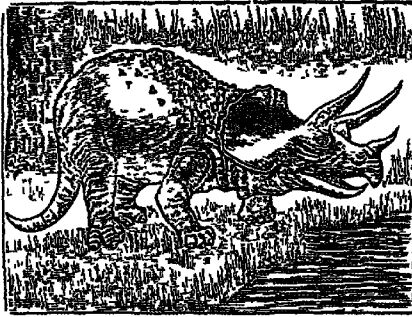
चित्र ७२—प्राचीन तृश्रृंग व्याल [परिषत् की कृपा

पहुंचे हैं परंतु मनुष्य वाह्य अनुभव को अपनी बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कसता है। और प्राणियों में स्नेह है, वीरता है, आत्म-विस्मरण है, स्वार्थ-त्याग है और उद्योग है,

चित्र ७३—प्राचीन दंतुल पक्षी की ठटरी [मार्श का अनुवर्त्तन

सही, परंतु मनुष्य में इन सब के सिवा नीति का आदर्श है और आदर्श के अनुसार आचरण की प्रवृत्ति है, समाज का नेतृत्व है और लोकसंग्रह का भाव है।

मनुष्य का मस्तिष्क गोरिल्ले के मस्तिष्क से तिगुना भारी है। वह सीधा खड़ा होता है, धरती पर वह अपने तलवों को भरपूर जमाता है। उस के चिबुक है। ऊचा और बड़ा माथा है। एक तरह के जमे हुए सुन्दर दात हैं। उसका चेहरा बाहर की तरफ बढा नहीं है। उस की एड़ी मोटी और सुन्दर है और उस की त्वचा पर अत्यत कम रोए हैं और विशेष-विशेष अगों मे ही केशो की प्रचुरता है। यद्यपि वह आजकल के मौजूद वन-मानुष लगूर या
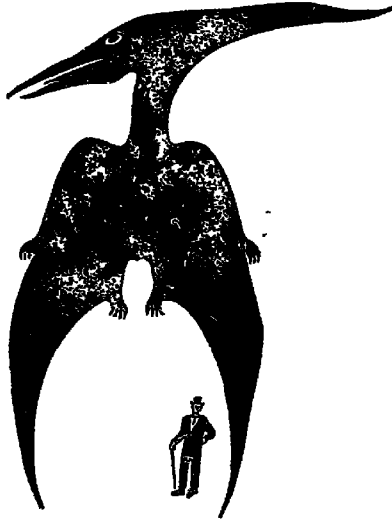
चित्र ७४—प्राचीन चमगीदड़ के रूप का पक्षि-दानव। मनुष्य की अपेक्षा यह कितना विशाल था। [परिषद् की कृपा

वानरों की सतान नहीं हैं तो भी शरीर के अवयवों में उन से इन की बड़ी समानता है। और यों तो प्राणीमात्र मे जितने रीढवाले शरीरधारी हैं उन सब से ठटरियों में इन्द्रियों मे इन्द्रियग्रामो मे और जीवन की रक्षा की क्रियाओं मे बहुत कुछ समानता है। और भ्रूण के रूप मे तो जैसे मनुष्य का विकास होता है वैसे ही और सभी प्राणियो का विकास होता है। आरभ मे भ्रूण की दशा समस्त प्राणियों की एक सी होती है। परंतु धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो भ्रूण बढ़ता है त्यों-त्यो माता पिता के अनुरूप होता जाता है। इस तरह यद्यपि मनुष्य का वश सब से अलग है तथापि सभी प्राणियों से विकास क्रम मे बहुत कुछ समानता रखता है।

[देखो चित्र ७३ भ्रूण का विकास।]

सातवा अध्याय

स्वभाव का विकास-क्रम

१—पारस्परिक संबंध

विकास का एक पहलू है जिस पर निगाहें कम जाया करती हैं। एक प्राणी का दूसरे प्राणी से बड़ा घना पारस्परिक सबध है। फूलों और कीड़ो का अन्योन्याश्रय है। कीड़े खाने के लिए फूल के पास आते हैं परतु फूलो के रजों और परागों को विविध देशो मे पहुंचाते और उन के वश का विकास करते हैं। चिड़िया फलो को खाती और बीजो को फैलाती है और वृक्ष-वश को बढाती है। एक प्राणी के शरीर मे अनेक प्राणी परोपजीवी हो कर रहते हैं। मच्छर मलेरिया का वाहन है और चूहे की कीड़ी प्लेग का। एक प्राणी दूसरे को खाकर जीता है। परतु उस का शरीर स्वय औरो के लिए महाभोज बनता है। पिंडजों का जो कुछ मल है वह उद्भिजो के लिए भोजन की सामग्री है और जो कुछ उद्भिजों का उच्छिष्ट और मल समझा जाना चाहिये वही पिडजो के लिये अन्न और प्राण है। इस तरह ससार के प्राणिमात्र सबध की डोरी मे एक दूसरे से बँधे हुए हैं। विकास का कदम ज्यों-ज्यों आगे बढता है त्यों-त्यों परस्पर सबध का यह ताना-बाना अधिक-अधिक घना होता जाता है। प्राणियों के शरीर के भीतर और बाहर परोपजीवी सूक्ष्म जीव जैसे चढाई करते हैं उसी तरह शरीर के भीतर और बाहर दोनों दिशाओं में शरीर की रक्षा के लिए सूक्ष्म प्राणियों या वस्तुओं के द्वारा वह प्राणी भी उपाय कर लेते है जिन पर चढाई होती है। इस तरह शत्रु-मित्र और उदासीन सभी भावों से समस्त प्राणियो मे सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक परस्पर घनिष्ठ सबध स्थापित है।

२—विकास के प्रमाण

विकासवाद का विचार जिन बातों पर उठा और जिनके आधार पर उसका विकास बराबर होता जाता है वह प्रकृति के विविध रूपों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण है। पहिली

बात तो यह है कि भूगर्भ विज्ञानियों ने धरती के भिन्न स्तरों का परिशीलन किया और यह देखा कि ज्यों-ज्यों हम नीचे के स्तरों मे देखते हैं त्यो-त्यो हम प्राणियो के पूर्व रूपो की ठठ-रिया पाते हैं। सब से नीचे के स्तरो मे शखादि का पता लगता है। खड़िया के स्तर मिलते हैं। उस से ऊपर मछली की ठठरिया मिलती हैं। फिर कछुओ और उभयचारियो के अस्थि-पजर मिलते हैं। उस से ऊपर पुराने पिडजो का पता लगता है। फिर नये पिंडजो का। इस
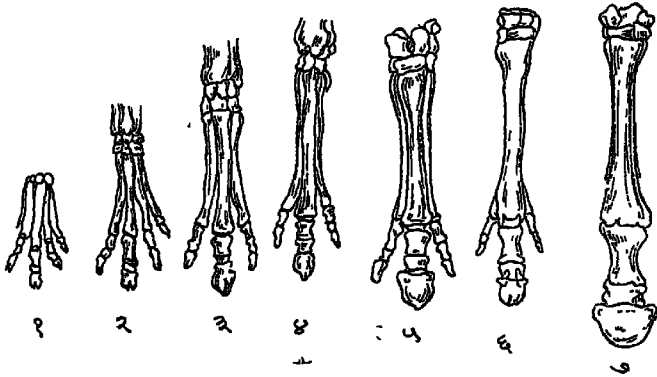
चित्र ७९—खुरका क्रमिक विकास

तरह ज्यो ज्यो हम ऊपर के स्तरा मे देखते हैं त्यो त्यो अधिक विकसित ठठरियो का पता लगता है। इस प्रकार सब से ऊपर के स्तरों मे मनुष्य की ठटरिया मिलती हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि जो विकासक्रम इन स्तरो के अनुशीलन से बताया गया है उस का भ्रूण-विकास से समर्थन होता है। यद्यपि जो विकास करोड़ो बरस मे हुआ है उस का दृश्य भ्रूणमे अठवारो मे ही देखने में आता है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो गर्भ मे जल्दी-जल्दी भ्रूण का विकास ठीक उसी ढंग पर होता है जिस ढग से सम्पूर्ण सृष्टि मे समस्त प्राणियों का हो चुका है। तीसरा प्रमाण यह है कि प्राणियो के शरीर की अवस्था का विकास आज भी बराबर होता जाता है और पालतू पशुओं मे और लगाये जानेवाले पौधो मे हम विकास प्रत्यक्ष देखते हैं। चौथा प्रमाण यह है कि चाहे प्राणियो के रूप ऊपरी तौर पर कितने ही भिन्न हों, भीतर की ठठरिया एक ही तरह की हैं और अङ्ग-अङ्ग की हड्डिया वही हैं चाहे उन से काम विविध रीति से लिया गया हो। इन सब प्रमाणों पर विचार करके पिछले पचहत्तर बरसों के बीच विज्ञान के धुरन्धरों ने इस विकास-विज्ञान का विकास किया है। यह विज्ञान अभी बिलकुल नया है और इस विषय की खोज बराबर जारी है।

३—परिस्थितियों से संघर्ष-जीवन के विविध क्षेत्र

जान पड़ता है कि जीवन का आरंभ जल से ही हुआ है, परन्तु गहरे जल से नहीं। समुद्र के किनारे के छिछले जल के पास ही जीवन का आरंभ हुआ होगा। जीवन का विकास प्रकृतिकी अवस्था पर निर्भर है। जैसी परिस्थिति होगी उस के ही अनुसार जीवन का पालन-

चित्र ७६—चमगीदड़ सरीखा एक पिंडज पक्षी जो प्राचीन शाखा मृगों की सन्तान है। गैलियो पिथिकस] (परिपत्त की कृपा)

पोषण होगा। परिस्थिति किसे कहते हैं? यह भी अच्छी तरह समझना चाहिये। गहरे जल में चारों ओर का दबाव बड़ा भयानक होता है। ठंढक सदा बनी रहती है। अन्धकार का साम्राज्य रहता है। भोजन की सामग्री में वनस्पतियों का प्रायः अभाव ही रहता है। समुद्र के ऊपरी तल पर वायु का हलका दबाव है, रोशनी काफी है और जल का तो तल ही ठहरा। परन्तु वनस्पति की बहुतायत नहीं है, इस लिए भोजन की सामग्री की कमी है।

स्थल पर वायुमंडल का दबाव पानी की अपेक्षा कम है। वनस्पतियों की बहुतायत है। जगह-जगह पानी भी काफी मिलता है। प्रकाश है गरमी है वर्षा है और आंधी है। परंतु गति नीचे ऊपर की नहीं है। इस तरह जल और स्थल की परिस्थितियां भिन्न हैं साथ ही इस स्थल के ऊपर भी कहीं अत्यंत कड़ी सरदी पड़ती और कहीं भयानक गरमी है और कहीं-कहीं तो तीन तीन और छः-छः महीने की रात और इतने ही बड़े दिनों का मुकाबला करना पड़ता है।
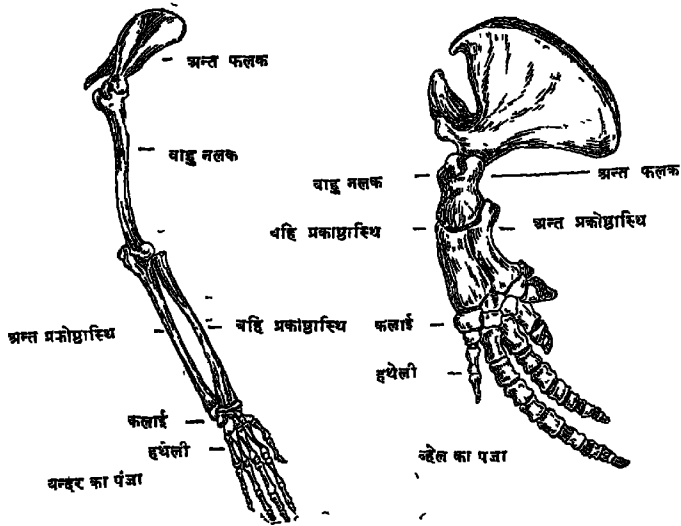
चित्र ७७—पंजे का क्रमिक विकास

ज्यार्ज न्यूम्स की कृपा] [टामसन का अनुवर्तन

कहीं बारहों मास अत्यंत ठंढक है और कहीं निरंतर गरमी पड़ती रहती है। कहीं-कहीं जहां चार महीने बरफ की वर्षा होती रहती है तो दूसरे चार महीने धरती को तवे की तरह तपाने वाली गरमी भी पड़ती है। यह तो ऋतु की बात हुई। सब जगह भोजन की सामग्री भी जैसी और जितनी चाहिए वैसी और उतनी नहीं मिलती। इस लिए जितने प्राणी हैं सब को अपनी परिस्थिति से विकट लड़ाई लड़नी होती है। इस लड़ाई में प्राणी-प्राणी का दुश्मन बन जाता है। कहीं-कहीं तो एक प्राणी दूसरे प्राणी का आहार ही होता है, उन में परस्पर की कोई दुश्मनी नहीं है। जंगल का शेर जंगल के साधारण मृगों का शिकार इस लिए नहीं करता कि वह उन का दुश्मन है। चिड़िया कीड़ों-मकोड़ों को दुश्मनी के लिए नहीं बल्कि

अपनी रक्षा के लिए खा जाती है। साथ ही भोजन की सामग्री एक ही जगह पर काफी नहीं होती और भोजन के चाहनेवाले उसी जगह बहुत ज्यादा हुए तो भोजन चाहनेवालों में आपस की लड़ाई हो जानी स्वाभाविक ही है। जोड़ों के लिए लड़ाइयां होती ही रहती हैं।
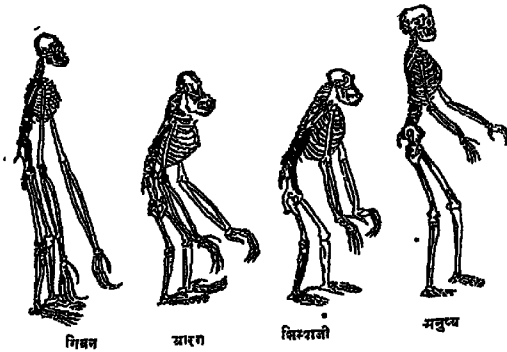
चित्र ७८—कंकाल का विकास

हक्सले से] [मकमिलन की अनुमति से

इस तरह प्रत्येक प्राणी का परिस्थिति के साथ निरंतर घोर संघर्ष होता रहता है। इस संघर्ष में जितने प्राणी बचने के लिए अयोग्य होते हैं धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। बचे हुए प्राणी अपनी परिस्थिति में योग्यतम समझे जाते हैं। इस लिए उन की ही परंपरा चलती है। इसी को योग्यतमावशेष का नियम कहते हैं।

४—वंश की रक्षा

प्रत्येक प्राणी अपने वंश की रक्षा के लिए स्वभाव से ही प्रेरित होकर कोशिश करता रहता है। भावी प्रजा को उत्पन्न करने के लिए सभी प्राणियों में प्रवृत्ति हुआ करती है। पौधों में या अचर प्राणियों में जहां इस प्रवृत्ति के पूरे होने के साधन अपने पास नहीं होते वहां उन के फूलों के रज और पराग को या फलों के बीजों को कीड़े-मकोड़े और पक्षी अपने भोजन के लालच से उपजानेवाले क्षेत्रों में पहुँचाते हैं। जैसे अंडजों और पिंडजों में नर और मादा के आपस के खिंचाव और प्रेम के लिए रूप, रंग, आकार और बोली की मनोहरता और सुंदरता काम करती है, उसी तरह फूलों की सुगंध और सुंदरता कीड़े-मकोड़ों को, पराग और मकरंद अपनी मिठास से अपने खानेवालों को, अपनी ओर खींच लाते हैं। फल का सौंदर्य, सुवास और स्वाद जो गूदे में व्यापकर भीतर के बीजों की रक्षा करने के साधन हैं, खानेवालों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इस तरह

बीजों को ऐसी जगहों पर सहज में ही पहुँचने का मौका मिलता है जहां वह आगे की प्रजा को उत्पन्न कर सकते हैं।

चित्र ७६—प्रागैतिहासिक युगों का जंगल जो गगन-चुंबी बड़े वृक्षों से परिपूर्ण है। [परिषद् की कृपा

जैसे संतान की उत्पत्ति के लिए नर और मादा में परस्पर आकर्षण और प्रवृत्ति होती है उसी तरह अपनी सतान की रक्षा के लिए सभी प्राणियों में माता-पिता में प्रवृत्ति होती है। जिन प्राणियों में लाखों और करोड़ों की सख्या में एक बारगी अडे होते हैं उन में माता-पिता को रक्षा लिए अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती। परतु ज्यों-ज्यों विकास की

सीढ़ी ऊंची उठती है त्यों-त्यों संतान की संख्या घटती जाती है और उन की रक्षा के उपाय बढ़ते जाते हैं। माता-पिता में अपनी संतान के लिए स्वाभाविक स्नेह, ममता और रक्षा की चिन्ता बढ़ती जाती है। वात्सल्य प्रेम पिंडजों में बहुत कुछ बढ़ा हुआ पाया जाता है। यही मनुष्य में आकर अपनी पूरी बाढ़ को पहुंचाता है।

५—माया और छल का प्रयोग

जीवन के संघर्ष में परिस्थिति में अपनी रक्षा की सब से अधिक आवश्यकता प्राणियों को होती है। जिस तरह एक प्राणी दूसरे को खा जाता है उसी तरह किसी दूसरे द्वारा खाये जाने का भी उसे भय रहता है। इस लिये कभी तो छल से अपने शिकार को

चित्र ८१—सांप वेषधारी इल्ली
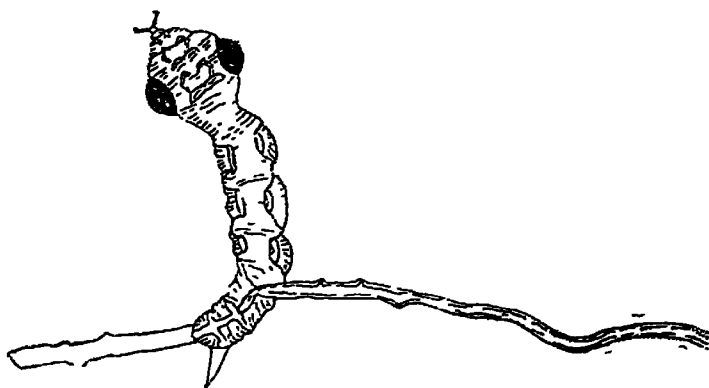
[परिषत् की कृपा

पकड़ने के लिए और कभी अपने वैरी से बचने के लिए प्राणियों को अपना रंग-रूप ऐसा बनाना पड़ता है कि निगाहों के सामने होते हुए भी शत्रु पकड़ न सके और न शिकार देख सके। बहुत से कीड़ों की इल्लियां अपने विकास के काल में सांप आदि के भयानक रूप धारण कर लेती हैं अथवा टहनी पत्ती आदि के रंग-रूप से बिल्कुल मिल जाती हैं। हरी-हरी पत्तियों के ऊपर अक्सर हरे कीड़े इस तरह लिपटे पड़े रहते हैं कि मानो उस पत्ती की एक स्वाभाविक रेखा हो। हरे हरे तोते पेड़ों की हरी पत्तियों के भीतर झुंड-के-झुंड बैठे होते हैं और पता नहीं लगता। लम्बी झाड़ियों के भीतर चीते और शेर बैठे रहते हैं, और झाड़ियों के रंगने में ऐसे मिल जाते हैं कि दिखाई नहीं पड़ते। गिरगिट अपनी परिस्थिति को देखकर रंग बदला करता है। इसी तरह प्रकृति के [illegible] प्राणियों को जिन्हें

चित्र ८०—रग में रंग मिलाकर छिपने की कोशिश । माया और छल का प्रयं... .

विज्ञान हस्तामलक] [पृष्ठ १२८ के सामने

छिपने और बचने की बड़ी ज़रूरत है ऐसे रग दे रखे हैं कि उन्हें इस काम मे बड़ी मदद मिल जाती है।

चित्र ८२—टहनी वेषधारी इल्ली [परिषत् की कृपा
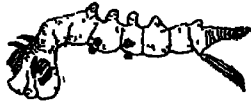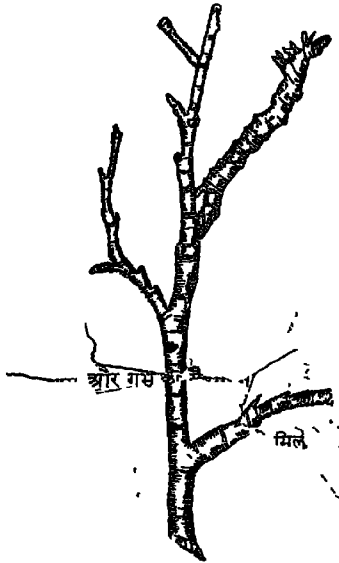
चित्र ८३—टहनी वेष में [परिषत् की कृपा

जिस तरह परिस्थिति के अनुकूल रग देकर प्रकृति रक्षा के उपाय करती है उसी तरह अनुकूल आकार भी दे देती है। अक्सर हरी हरी बेलों की नसो के सदृश बेलों पर ही लगे हुए कीड़े होते हैं जिन्हें देख कर कोई यह नही कह सकता कि यह हरी नसे या हरी

टहनियां नहीं हैं। कई कीड़े इस तरह के देखे गये हैं कि वह अधिकतर जिस बेल पर रहते हैं और उनकी पत्तियां खाते हैं, उसी के पत्तियों के आकार के ही उन के पंख होते

चित्र ८४ [परिषत् की कृपा
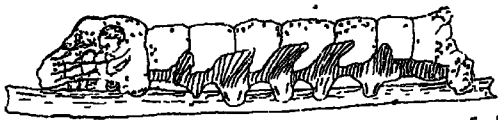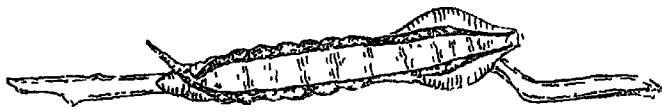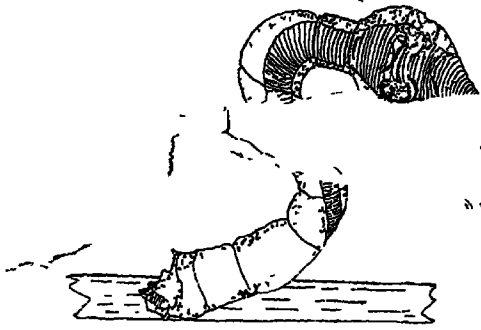
चित्र ८५ [परिषत् की कृपा

चित्र ८६ [परिषत् की कृपा

चित्र ८७ [परिषत् की कृपा

हैं। वह बैठते हैं तो साफ मालूम होता है कि उसी बेल की हरी पत्तियां हैं। गिरगिट किसी टहनी में लिपटा हुआ ऐसा जान पड़ता है कि उस जगह टहनी कुछ मोटी हो गयी

है। पास मे मक्खी आकर बेधड़क बैठ गयी कि तीर की तरह उसकी लम्बी पतली जीभ निकल कर मक्खी को पकड़ लेती है। कई तितिलिया जब पख सटाये रहती है तो ज्ञान पड़ता है कि पौधे की सूखी पत्तिया हैं।

६--ह्रास भी स्वाभाविक है

प्राणी ने अपनी रक्षा के लिए कोई उपाय उठा नहीं रक्खे। उसकी सहायता मे प्रकृति ने भी भर सक पूरी कोशिश की। परतु ऐसा जान पड़ता है कि प्रकृति एक काल तक अभ्यास करती रहती है और उस मे जिस दर्जे की 'सफलता ... उसके अतिम रूप देख कर और उससे असतुष्ट होकर उसे मिटा देती ... और फिर दूसरी तरह की रचना
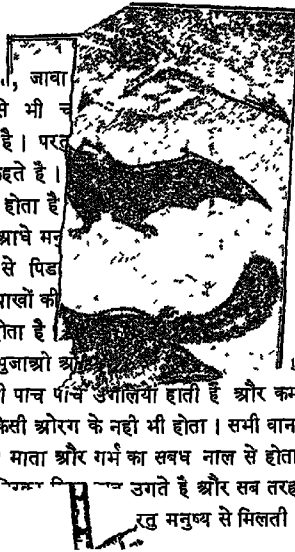
..., जावा

... पावो से भी च

खड़ा होता है। परतु

...-मानुष भी कहते हैं।

हैं कि जब खड़ा होता है

सस्कृत मे बानर आधे मनु...

...गे। यह जाति मनुष्य से पिड...

...र सामने देखती हैं। आखों की

... और दिमाग भी बड़ा होता है

हाथ-पाव लबे होते हैं। भुजाओ औ... ...ता। हाथों और पावो मे पकड़ सकने वाली पाच पाच उगलियां होती हैं और कम-से-कम अगूठों मे चिपटा ...ून होता है। किसी किसी ओरग के नही भी होता। सभी वानरियों के वक्षस्थल पर कम ...स्तन होते हैं। माता और गर्भ का सबध नाल से होता है। अगुलिया यथेच्छ ... उगते हैं और सब तरह के दात होते हैं। यह ...रतु मनुष्य से मिलती हैं। इनके कान भी मनुष्य

इन में बहुत बडी सख्या का और अनेक महत्व की जातियों का लोप हो चुका है। इसी तरह व्यालो की बढन्ती हुई और ससार मे विशालकाय व्याल दानव और असुर फैल गये। उन का भी लोप हुआ। उरग जाति के आज बहुत थोड़े नमूने बचे दिखाई पड़ते है। इन उरगों में से एक प्रकार से एक ओर अडज पक्षियों का और दूसरी ओर पिंडज स्थल चारियों का विकास हुआ। यह भी बड़े भयकर विशाल आकारो मे बढे। महासिहो शार्दूलों और दिग्गजों ने ससार पर अधिकार कर लिया। परतु इनका भी प्रलयकाल में अत हो गया।

चित्र ८७

[परिषत् की कृपा
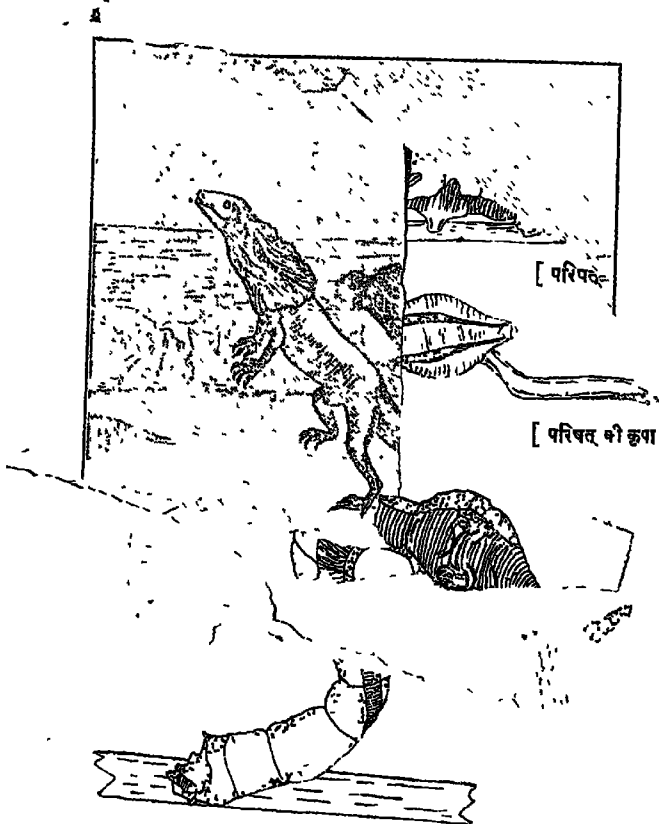
है। वह बैठते है तो साफ मालूम होता है कि उसी बेल की हरी पत्तिया है। गिरगिट किर्मी टहनी मे लिपटा हुआ ऐसा जान पड़ता है कि उस जगह टहनी कुछ मोटी हो गयी

हड्डियो की जैसी समानता वानरो, लंगूरो, शिपाजियो, गिब्बनो और गोरिल्लो से है वैसी किसी और जाति के पशुओं से नही है और विकास के क्रम मे इन जातियो से मनुष्य की बहुत निकट की नातेदारी है। लबाई मे पॉवो पर खड़े होने पर गोरिल्ला मनुष्य के बराबर हो जाता है परतु उस की चौड़ाई अत्यधिक है। और ताकत की तो बात न पूछिए। उस से अधिक बलवान प्राणी धरती पर नहीं है। यह केवल शाकाहारी है। परतु इसके चिबुक नहीं है। यह हनुमान नहीं है।

शिंपाञ्जी कद मे छोटा है। ताकत भी कम है। चेहरे मे भी अतर है। वह भयानकता नहीं है। शाकभोजी है। गोरिल्ला की तरह आजानुबाहु है और खड़ा होकर कभी-कभी चलता भी है। यह पाला जा सकता है, परंतु गोरिल्ला नहीं पाला जा सकता। दोनो अफ्रीका मे मिलते हैं।

ओरग का दिमाग़ आदमी के दिमाग़ से छोटा परतु वानर आदि जातियो मे सब से बड़ा होता है। यह सुमात्रा, जावा और बोर्नियो में पाया जाता है। शाकाहारी है। यह खड़ा होकर दोनो पावो से भी चलता है। पर इसकी चाल मे मनुष्य से अतर है। आदमी सीधा खड़ा होता है। परंतु वानर जातियो मे से कोई सीधा नहीं खड़ा होता। ओरग को लोग वन-मानुष भी कहते हैं। इसके लाल केश होते हैं। इसकी भुजाए और हाथ इतने लबे होते हैं कि जब खड़ा होता है तो कभी कभी जमीन छू सकते हैं।

सस्कृत मे वानर आधे मनुष्य को कहते हैं। इसीलिए हम इन सब को वानर जाति कहेंगे। यह जाति मनुष्य से पिडजो मे सब से अधिक मिलती है। आखे सामने होती है और सामने देखती हैं। आखो की हड्डी का कोष मनुष्य का सा होता है। खोपड़ी बड़ी होती है और दिमाग भी बड़ा होता है। हसली की हड्डिया दृढ और पूरी तौर से बढी होती हैं। हाथ-पाव लबे होते हैं। भुजाओ और जघो की हड्डिया बदन मे छिपी नहीं होती। हाथो और पावो मे पकड़ सकने वाली पाच पाच उगलिया होती हैं और कम-से-कम अगूठो मे चिपटा [illegible]ून होता है। किसी किसी ओरग के नहीं भी होता। सभी वानरियो के वक्षस्थल पर कम [illegible] स्तन होते हैं। माता और गर्भ का सबध नाल से होता है। अगुलिया यथेच्छ [illegible] [illegible] [illegible] दात उगते हैं और सब तरह के दात होते हैं। यह [illegible] परतु मनुष्य से मिलती हैं। इनके कान भी मनुष्य

आठवां अध्याय

मनुष्य का विकास

१—मनुष्य की खोपड़ी

डारविन और वालेस ने इस विषय पर बड़े विस्तार से अनुशीलन किया है। उनके पीछे के विकास-विज्ञानियों ने भी इस विषय पर और अधिक प्रकाश डाला है। खोपड़ियों का विशेष रूप से मिलान किया गया है। पुरानी खोपड़िया जो पायी गयी हैं उनमें कुछ ऐसे मनुष्यों की खोपड़िया भी हैं जो कम-से-कम पांच लाख बरस पहले की अनुमान की जाती हैं और जो आज-कल के बन-मानुष ओरंग से अधिक बड़े दिमाग की हैं और प्राचीन मनुष्य की मालूम होती हैं। इनमें से एक को पूरा करके जो चित्र बनाया गया है यहा दिया जाता है।

इसी प्रकार डेढ लाख और एक लाख बरस के पहलेवाली खोपड़ियां भी पायी गयी हैं और उनके भी रूप पूरे किये गये हैं। खोपड़ियों के मिलान से यह पता चलता है कि वानर जाति मे चिबुक या हनु नहीं होता। मनुष्य जाति में भी धीरे धीरे हनु या चिबुक का विकास हुआ है। साथ ही दिमाग भी अधिक बड़ा होता गया है और गोल खोपड़ी मे स्थापित हुआ है।

मनुष्य के विकास की एक भारी विशेषता मस्तिष्क का विकास है। सब से छोटा मस्तिष्क मछलियों का होता है, उससे बड़ा उरगों का, फिर उससे बड़ा चिड़ियों का। चिड़ियों के बाद स्तनधारी पिंडजों का नम्बर आता है। मनुष्यों का इन सब से बड़ा है।

केवल दिमाग का ही विकास नहीं हुआ है। सब से अधिक महत्त्व का विकास भीतरी और बाहरी ज्ञान और कर्म दोनों इंद्रियों का है। हर एक इंद्रिय पिंडजों में बराबर बढ़ती हुई मनुष्यों मे आकर सब से अधिक उन्नत अवस्था को पहुँची है। सभी पिंडजों की ठठरी प्रायः एक सी है पर वही सुधरते-सुधरते मनुष्य के शरीर में आकर अधिक सुडौल और उपयोगी हो गयी है। जहा मनुष्य का मस्तिष्क तोल मे डेढ सेर का है वहा गोरिल्ले का

ढाई पाव से अधिक नहीं होता। मनुष्य की खोपड़ी मे पचपन घन इच से कम समाई नहीं होती। परतु ओरग और शिपाज़ी की खोपड़ियों मे छब्बीस और साढ़े सत्ताईस की होती है जब मनुष्य खड़ा होना सीख लेता है तो बिल्कुल सीधा खड़ा होता है। दिमाग़ के बोझ से उस का सिर झुक नहीं जाता। उस का माथा ऊचा और सीधा होता है। मुह बाहर की तरफ अधिक निकला हुआ नही होता। गाल की हड्डिया छोटी और भौह की ऊचाई कम होती है। उस के दात प्रायः समान होते हैं। हनु या चिबुक आदमी के ही होता है। मनुष्य अपना पूरा तलवा धरती पर रखता है। उस की एड़ी वानर की एड़ी से कही अच्छी है, और उस के अँगूठे अँगुलियो के मेल मे हैं। उस की पूछ की जगह की हड्डी मौजूद है परतु पूछ की आवश्यकता नही है। इन सभी बातो मे मनुष्य वानर जातियो से बढा हुआ है। यह शरीर-रचना सबधी बाते हुई। भाषा, सभ्यता, रहन-सहन बुद्धि विवेक और शिक्षा आदि सभी बातो से मनुष्य ने अपने को सब प्राणियो मे उत्तम बना लिया है।

हेकेल "विश्वप्रपच" मे लिखता है—

चित्र १०—जावा में प्राप्त प्राचीन खोपड़ी के अनुसार मानव सिर की कल्पना।
[परिषत् की कृपा

"इस की सिद्धि मे अब कोई सदेह नहीं रह गया है कि मनुष्य और बनमानुस के शरीर का ढाँचा एक ही है। दोनो की ठटरियो मे वे ही २०० हड्डियाँ समान क्रम से बैठायी हैं, दोनों मे उन्हीं ३०० पेशियो की क्रिया से गति उत्पन्न होती है, दोनो की त्वचा पर रोए होते हैं, दोनों के मस्तिष्क उन्ही सवेदनात्मक नाड़ी-चक्रो के योग से बने हुए होते हैं, वही चार कोठो का हृदय दोनो मे रक्त-सचार का स्पदन उत्पन्न करता है। दोनो के मुह मे ३२ दात उसी क्रम से होते हैं। दोनो मे पाचन-[illegible] की सहाय[illegible]ह्रद्ग्रथि, और क्लोम-ग्रथि की क्रिया से होता है, उन्हीं जननेद्रियो से दोनो के [illegible] [illegible]द्धि होती है। यह ठीक है कि डीलडौल तथा अवयवो की छोटाई-बड़ाई मे दोनो मे कुछ भेद देखा जाता है, पर इस प्रकार का भेद तो मनुष्यो की ही समुन्नत और बर्बर जातियो के बीच परस्पर देखा जाता है, यहां तक कि एक ही जाति के मनुष्यो मे भी कुछ-न-कुछ भेद होता है। कोई दो मनुष्य ऐसे नहीं मिल सकते जिन के ओठ, आख, नाक, कान आदि बराबर और एक से हों। और जाने दीजिए, दो भाइयो की आकृति मे इतना भेद होता है कि जल्दी विश्वास

नहीं होता कि वे एक ही माता-पिता से उत्पन्न हुँ। पर इन व्यक्तिगत भेदो से रचना के मूल सादृश्य के विषय मे कोई व्याघात नही होता।"
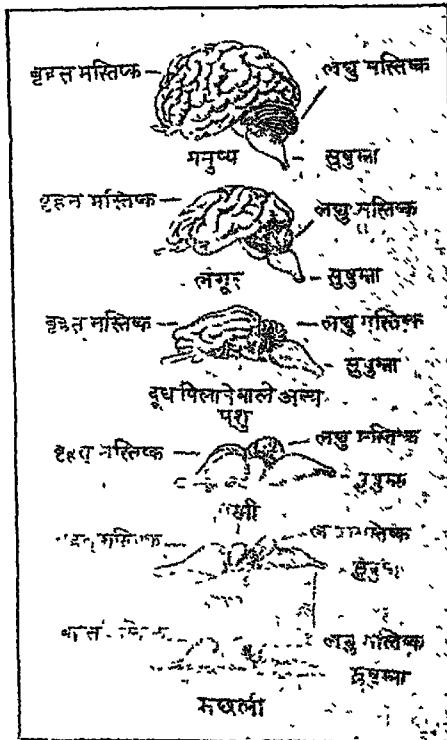
ारी पिडज मस्तिष्क का क्रमिक विकास। [टामसन का अनुवर्तन

२—मनुष्य का वंश-वृक्ष

वानर और मनुष्य जातियो की प्रकृति का बहुत विस्तार से अध्ययन करने के बाद, अब तक विकास-विज्ञानियो का यह मत स्थिर हुआ है कि प्राणियो के वश के महावृक्ष मे पिंडजो की एक बहुत बड़ी शाखा निकली जिस से कि अनगिनत शाखाए सब तरह के पिंडजो

मौजूद हैं (१) आर्य वा श्वेताग, (२) अफ्रीकी वा कृष्णाग, (३) मगोली वा पीताग तथा (४) रक्ताग। यह चार शाखाएं कम-से-कम चार लाख बरस पहले की निकली हुई समझी जाती हैं। अनेक वैज्ञानिको के मत से पीताग और रक्ताग दोनो एक ही शाखा से हुए हैं अतः एक वश मे हैं। इसी तरह वनमानुसो की ओरग, शिपाजी और गोरिल्ला यह तीन बड़ी जातिया और गिब्बन और श्यामाग दो छोटी जातिया आज भी पायी जाती हैं। वनमानुसो की पाचो जातियो मे ठोढी नही होती। यवद्वीप मे उस प्राचीन मनुष्य की खोपड़ी पायी गयी थी जो अब से कम-से-कम पाच लाख बरस पहले भूतल पर रहा होगा। इस मनुष्य की खोपड़ी मे ठोढी मौजूद पायी गयी है। यह उस उपशाखा से हो सकता है जिस का आरभ आज से लगभग अठारह लाख बरस पहले समझा जाता है। इसे ही सब से पुराना हनु या चिबुक रखनेवाला वन-मनुष्य समझना चाहिए। यह मनुष्य की शाखा थी इस लिए हम यह अनुमान करें कि इस शाखा या और लुप्त शाखाओ के मनुष्य मानवीय भाषा और सभ्यता रखते होंगे तो अनुचित न होगा।*

३—मनुष्य के पुरखे

आदिम मनुष्य कही उत्तरखड मे ध्रुव-प्रदेश के आसपास हुआ होगा। और कम-से-कम वर्त्तमान चतुर्युगी के सतयुग के आरभ मे या इस से भी पहले हुआ होगा जब कि पृथ्वी के ऊपर हरियाली हो चुकी थी। वही से उस के वशवाले अफ्रिका, भारत, मलय देश, और दक्षिण अमेरिका मे फैले होगे। यह अनुमान किया जाता है कि मनुष्य की सभ्यता का आरभ एशिया मे ही हुआ है। वैज्ञानिको का अनुमान है कि आदि काल मे भी मनुष्य साधारण चतुष्पद की तरह नही था। वह दो हाथोंवाला प्राणी आसानी से जगलो मे पेड़ो पर रह सकता होगा। हाथ की आसानी के कारण बढे हुए ओठो और दातो से पकड़ने की ज़रूरत न पड़ी और बहुत जल्दी पेड़ को छोड़ कर उसे भूमि पर रहने मे सुभीता हुआ होगा। इस सबध मे बहुत लबे चौड़े तर्कों और युक्तियो से काम लिया जाता है। परतु विकास-विज्ञान अभी अपनी शैशवावस्था मे है। अनेक बातें इन कल्पनाओं के विरुद्ध कही जा सकती हैं। हम ने यहा अब तक के वैज्ञानिको के मत दे दिये हैं।

ऐसा समझा जाता है कि हर एक युग के अत मे हिमप्रलय हुआ है। जैसा कह चुके हैं, इस हिमप्रलय का यह अर्थ नही है कि एक बारगी प्रलय हो गया और फिर प्रलय का समय

---

* रामायण महाकाव्य में त्रेतायुग में श्रीरामचंद्रजी की सहायता करनेवाली सेना वानरों और ऋक्षों की थी। इन में हनुमान् (चिबुकवाले) भी थे। इन का चिबुक टेढ़ा हो गया। इस कथा से स्पष्ट है कि वह वानर जाति जिस में हनुमान आदि हुए चिबुकवाली जाति थी। यह लोग समझदार थे, विद्वान् थे। कलावान् थे। आजकल-के-से वानर न थे। महाभारत में ऐसी जाति की चर्चा नहीं है। संभवतः यह जाति तब तक समाप्त हो गयी थी।

समाप्त हो गया। हिमप्रलय तो जब आने लगता है तो लाखो बरस तक उस का सिलसिला लगा रहता है। तीसरे युग के अत में जो हिमप्रलय हुआ उस के सिलसिले के खतम हो जाने
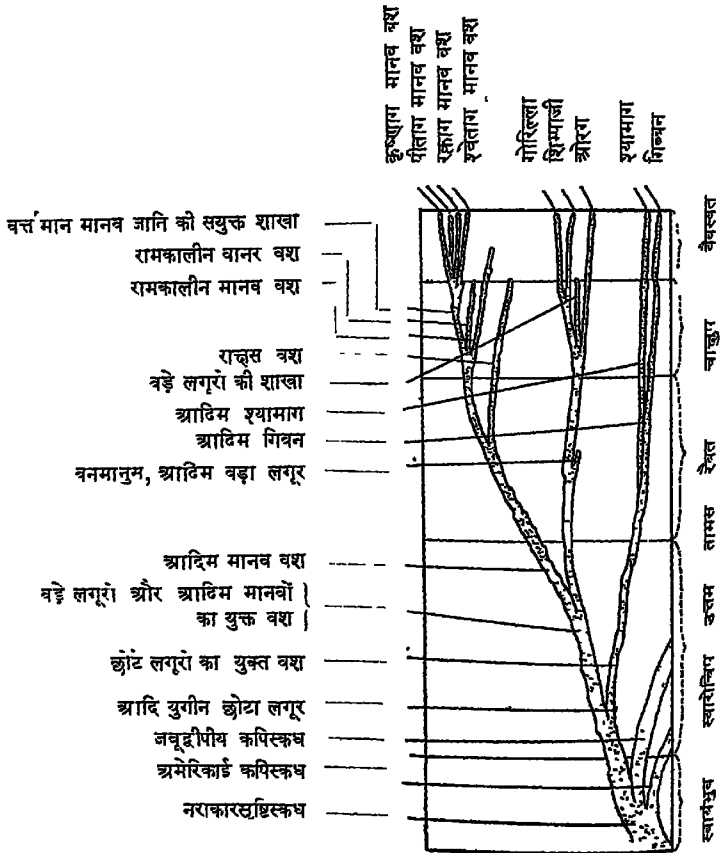
चित्र १४—नराकार प्राणियों का क्रमविकास-वृक्ष

विलियम्स ऐंड नारगेट की कृपा]   [सर आर्थर कैथ के अनुसार कल्पित

पर जो मनुष्य के अभ्युदय का काल आरंभ हुआ था उसी समय को हम वर्त्तमान मनुष्य के अभ्युदय का काल समझेंगे। परतु उस से पहले मनुष्यो की अनेक जातिया और शाखाए

हो गयीं, विकास पा चुकी, और फिर मिट भी गयी। सब से पुरानी खोपड़ी जो यवद्वीप में मिली ऐसा समझा जाता है कि पाच लाख बरस पहले की होगी। साथ की जघे की हड्डी बताती है कि इस प्राणी की ऊचाई पाच फुट सात इच रही होगी। माथा छोटा चपटा भवे कुछ टेढी और दिमाग कुछ छोटा था। इस की चाल ढाल आजकल के मनुष्य की-सी थी। इस का और इस के समय के अनेक पिडजों का लोप हो चुका है। दूसरी खोपड़ी हेडलबर्ग मे मिली है। यह हाथी, गेंडे, शेर आदि की हड्डियो के साथ मिली जो योरोप मे तीन लाख बरस पहले ही लुप्त हो चुके थे। इस में सब बाते मनुष्य की-सी थीं, पर चिबुक न था। बहुतो की राय है कि इसे मनुष्य की प्रधान शाखामे न गिनना चाहिए।

तीसरी खोपड़ी सन् १८५६ मे एक छोटी नदी मे पायी गयी। इसी मेल की और खोपड़िया कई जगह पायी गयी। यह लगभग ढाई लाख बरस पहले के मनुष्यो की खोपड़िया हैं जो योरोप मे रहते थे। यह भी आजकल की मनुष्यो की शाखा से अलग ही था, जिस का लोप हो गया है।

इगलिस्तान मे पिल्टडाउन में सन् १९१२ मे एक खोपड़ी मिली। यह आज के मनुष्यो की खोपड़ी से मिलती-जुलती है। इसे डेढ लाख से लेकर पाच लाख बरस तक की आकते हैं। इस जाति के मनुष्य भी अब नहीं हैं। यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि लाखों बरस पहले वर्त्तमान मनुष्यो के पूर्व पुरुष अपने सम-सामयिक मनुष्य जाति के मुकाबिले मे कैसे थे, या उस समय मे यह लोग थे भी या नहो। मानवी शाखा बराबर नयी नयी शाखाए प्राचीनतम युगों से फेकती आयी है। उन मे से अनेक शाखाए बढ-बढकर लुप्त होती गयी हैं। मनुष्य बने परतु सदा के लिये नहीं बने। अपना विकास पूरा करके खतम हो गये। कौन कह सकता है कि वर्त्तमान मनु / सदा के लिए इस धरती पर आया है। बहुत सभव है कि किसी भविष्य युग मे इस की खोपड़ियो से भी आजकल के खोये हुए इतिहास का पता लगाया जाय।

४—वर्त्तमान मानव जाति

भूगर्भ विज्ञानी वर्त्तमान मनुष्यो के विकास को भी छोटे-छोटे युगों मे बाटकर वर्णन करते हैं। उन की कल्पना है कि वर्त्तमान मनुष्य भी बहुत धीरे-धीरे सभ्यता की सीढियो पर चढता हुआ आया है। पेड़ों पर रहना छोड़कर जब वह धरती पर रहने लगा तो उस ने पहाड़ो की खोहो के भीतर अपना घर बनाया। उन की खोपडी बड़ी थी। माथा ऊचा था। और चिबुक ठीक बना हुआ था। शेष अग प्रत्यग आजकल के-से थे। उन्हों ने खोहो के भीतर भीतो पर चित्र भी बनाये हैं। कहीं-कहीं उन की बनायी मूर्त्तिया भी मिली हैं। उन की समाधियो की तैयारी से जान पडता है कि उन का विश्वास परलोक मे भी था। वह पत्थर के हथियार बनाते थे। उन हथियारो में उन की कारीगरी दिखाई पड़ती है। वह लोग तीसरे और चौथे प्रलय के अवातर काल मे हुए। वह लोग अपने सम सामयिक मनुष्यो के बड़े अच्छे प्रतिस्पर्धी थे। परतु वह भी जगत के सभी भागों मे रह नहीं गये। योरोप में

तो वह जल्दी ही लुप्त हो गये और एशिया ने फिर नये मनुष्यो को आबाद किया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि किसी बलवान जाति का ह्रास आवश्यक है। परतु मनुष्य के इतिहास मे यह बराबर देखा जाता है कि शक्ति और सफलता के शिखर पर पहुँचने के बाद उस का ह्रास अवश्य होता है और कभी-कभी वह लुप्त भी हो जाता है। इस के कारण तो निश्चय रूप से नही मालूम हैं परतु कभी-कभी परिस्थिति कभी उस की शारिरिक रचना और स्वभाव और कभी जीवन की होड़ से ह्रास होने लगता है। कभी जाति के किसी भयानक शत्रु की प्रबलता भी कारण हो जाती है, जैसे मलेरिया आदि।

अतिम प्रलय के बाद मनुष्य जाति अधिक सुधरी हुई पायी जाती है। पहले के पत्थर के औजार रगड़कर चिकने नही किये होते थे। परतु अब बहुत चिकने और सुदर बनाये जाने लगे। यह लोग शिकार करते थे।

इस के बाद धातुओं का समय आया। धातुओ मे पहले-पहल ताबे का प्रयोग होने लगा। उस के बाद कासे का प्रयोग आरभ हुआ। सब से अत मे लोहा काम मे आने लगा। अब तक मानवी सभ्यता लोहे की ही सभ्यता है। योरोप के विज्ञानियों का यह मत है कि इसी क्रम से मनुष्य ने धातुओं का प्रयोग जाना। उन्हों न यह पता लगाया है कि एशिया मे ईसा से चार हजार बरस पहले तावे का प्रयोग मनुष्य को मालूम था। परतु लोकमान्य तिलक ने वेद के मत्रों की रचना का काल ईसा के कम-से-कम आठ दस हजार बरस के पहले सिद्ध किया है और उन मत्रों मे सोना, चादी, ताबा, लोहा सब का वर्णन पाया जाता है। सोने का वर्णन बहुत है। कासा आदि मिश्रित धातुओ का भी वर्णन है। हम यहा यह कहे बिना नही रह सकते कि हम जो यहा विकासवाद पर लिख रहे हैं वह विशुद्ध युरोपीय दृष्टि का वर्णन मात्र है। बहुत सभव है कि भारतीय दृष्टि से खोज की जाय तो इन सिद्धातों मे बहुत-कुछ उलट-पलट हो जाय।

५—मनुष्य का वर्ण-विभाग

भिन्न-भिन्न देशों और कालो मे बटकर रहते-रहते और विकास पाते-पाते मनुष्य की विविध जातिया हो गयीं जिन मे से कुछ बहुत आगे बढी हुई हैं और कुछ पिछड़ी हैं। इन मे आपस के विवाह सबध से भी विविधता उत्पन्न होती गयी। एक ही जाति के भीतर के विवाह-सबध से आपस मे एक स्वभाव और समता की मात्रा स्थायी हो गयी। और भिन्न-भिन्न बाहर की जातियो से वैवाहिक सबध होते-होते विविधता और स्वभाव-भेद में बहुत वृद्धि हो गयी। एक वर्ग के कुछ लोग किसी तरह से एक देश मे बहुत काल तक अलग रह जाते हैं। इस तरह उन की जाति अलग हो सकती है। परिवारों मे विविधता और रूप-भेद हो जाता है और यह बड़े विस्तार के साथ होता है। वैवाहिक सबध मे विशेष रूप से चुनाव होता है और सतान मे विविधता बढती है। इस तरह जो लोग अधिक योग्य होते हैं अयोग्यो पर प्रभुता करने लगते हैं। कभी-कभी अतर्जातीय सबध से बिल्कुल नये रग रूप उत्पन्न होते हैं। इस मे जो अवनति करनेवाले गुणो से और चिह्नो से युक्त होते हैं वह

साधारण विकास-क्रम मे छूट जाते हैं। इस तरह एक विशेष प्रकार की जाति बन जाती है। इस तरह की मनुष्य की विशेष जातिया तो ससार मे बहुत हैं। तो भी पाश्चात्य विज्ञानियो ने मनुष्य जाति के चार विभागो मे बाटा है। अफ्रीकी, आस्ट्रेलियाई, मोगल और काकेशी। जितने मनुष्य ससार मे है सब की गणना इन्हीं चारो मे से किसी एक मे हो सकती है। पहले के ईसाई भाव से प्रेरित वैज्ञानिक साम, हाम, जाफत इन तीनो नूह के लड़के के वश के विचार से तीन ही जाति मानते थे। परतु अब चार मानने लग गये हैं।*

अफ्रीकी जाति मे वह सब लोग शामिल समझे जाते हैं जिन के बाल ऊन की तरह होते है, अफ्रीका के हब्शो और झाड़ी-जगलो के रहनेवाले इसी जाति मे हैं।

आस्ट्रेलियाई जाति के वह लोग समझे जाते है जिन के बाल लहरीले या घू घरवाले होते हैं। इन मे दक्षिण भारत के जगली लका के वेद्द तथा आस्ट्रेलिया के प्राचीन निवासी समझे जाते हैं।

सीधे बालोवाले तिब्बत के रहनेवाले अनाम, श्याम, ब्रह्मदेश, चीन, जापान, और लपलैण्ड तक के रहनेवाले मुगल जाति के समझे जाते हैं।

काकेशी जाति मे भूमध्य-सागर के चारो ओर के रहनेवाले, तुर्क, अरब, पठान, जर्मनी और भारतीय तथा समस्त आर्य लोग शामिल हैं।

यह विभाग भी शुद्ध रीति से वैज्ञानिक नही है। भारतवर्ष मे स्मृतिकारो ने मनुष्य जाति के चार वर्णो मे बाटा है। श्वेतवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण और कृष्णवर्ण। श्वेतवर्ण मे काकेशी और आर्य लोग शामिल हैं। रक्तवर्ण मे अमेरिका के आदिम निवासी और उसी तरह के रक्तवर्ण के लोग हैं। पीतवर्ण के लोगों मे समस्त मुगल जाति है जिस मे चीनी और जापानी प्रधान हैं। कृष्णवर्ण के लोगो मे काले रगवालों की समस्त जातिया हैं जिन मे अफ्रिका के निवासी प्रधान हैं। यह विभाग भी ऐसा नहीं है कि यह कहा जा सके कि काकेशी या आर्य जातियो मे काले चमड़े के लोग नही हैं और न यह कहा जा सकता है कि लाल चमड़ेवालो मे और रगवाले नही पाये जाते। ऐसा कोई कटा और नपा हुआ विभाग मनुष्य मे नही हो सकता जिस मे यह कहा जा सके कि किसी दूसरे विभाग का मेल नही है। परतु यह विभाग बहुत आसानी से इस ख्याल से समझे जा सकते हैं कि जो जाति किसी विशेष रगवाली समझी जाती है उस मे उसी विशेष रग की अधिकता है।

बाल और रग के सिवाय और भी विशषताए हैं जिन से एक दूसरी जाति मे भेद

---

* यह निश्चित रूप से कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण नही है। हमारे यहां मनुने ब्राह्मण को श्वेत, क्षत्रिय को रक्त, वैश्य को पीत और शूद्र को कृष्ण वर्ण कहा है। संसार में भी चार वर्ण मिलते हैं। आर्य श्वेतांग हैं। अमेरिका के मूल निवासी रक्तांग हैं। मंगोल पीतांग हैं और अफ्रीकी कृष्णांग हैं। इन्हें ही प्रकृत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र कहना चाहिये।

कर सकते हैं। हब्शियों के ओंठ मोटे होते हैं। नाक चौड़ी-चिपटी होती है। आंखें उभरी हुई दांत बड़े-बड़े और खोपड़ी लंबी होती है। मुगलों का चेहरा चौड़ा होता है। गाल की हड्डियां उभरी हुई होती हैं आंखें छोटी और धंसी हुई होती हैं। खोपड़ी लंबी चौड़ी सब तरह की होती है। काकेशियों की दाढ़ी बढ़ी हुई होती है। गाल की हड्डियां धंसी हुई होती हैं। नाक पतली पर उभरी हुई होती है दांत छोटे होते हैं। चिबुक अधिक सुंदर होता है। इस तरह विविध जातियों में जो विशेषताएं होती हैं उन से उन का पहिचाना जाना कठिन नहीं है

६—वर्त्तमान मनुष्य

ऐसा समझा जाता है कि मनुष्य की उत्पत्ति एशिया में ही कहीं हुई। और जिस समय संसार के सभी द्वीप मिले हुए थे उसी समय मनुष्य जाति सब जगह फैल गयी। जब जल-स्थल अलग-अलग होकर भिन्न-भिन्न महाद्वीप बन गये उस समय मनुष्य लोग बंट गये और एक दूसरे से अलग हो गये। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस तरह अलग न हुए होते तो सब की सभ्यता बराबर होती। अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों और अन्य द्वीपों में मनुष्य की सभ्यता का वैसा विकास नहीं हो पाया जैसा कि एशिया और योरप में हुआ। एशिया और अफ्रिका में भी भारतवर्ष, चीन, मिश्र की सभ्यता सब से प्राचीन समझी जाती है। योरप के रोम और यूनान की सभ्यता इन से पीछे की है। परन्तु रोम और यूनान की सभ्यता का अब लोप हो गया है। उस के स्थान में योरप की और देशों की सभ्यता जो उन्हीं की नींव पर खड़ी है अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी है। इस समय मनुष्यता ने अपने भौतिक ज्ञान में वहीं सब से अधिक विकास पाया है यद्यपि चरित्र में योरप की सभ्यता भारत की अपेक्षा अत्यन्त हीन दशा में है। आज योरप के मनुष्यों ने प्रकृति की शक्तियों को अपने वश में कर रखा है। उस ने बिजली को अपनी गाड़ी में जोत दिया है और आकाश को अपना हरकारा बना रक्खा है। धरती में कोयले का गड़ा खजाना निकाल लिया है। उस ने तार और बेतार से देश और काल पर विजय पायी है और समुद्र और वायुमंडल पर आसानी से चलता और उड़ता फिरता है। उस ने रोगों का रहस्य जान लिया है। और उन पर काबू कर लिया है और अपने पशुओं और पौधों को नये सांचों में ढाल रहा है। नीति की दिशा में भी वह सत्यम् शिवम् सुंदरम् की ओर बढ़ता दिखाई पड़ रहा है। उस में जिस तरह बहुत अच्छे-अच्छे गुणों का विकास हुआ है उसी तरह कुछ ह्रास के भी चिह्न दिखाई देते हैं उस की आर्थिक योजनाएं बहुत संकुचित भाव प्रकट करती हैं। उस के यान्त्रिक विकास से प्राकृतिक जीवन का सामंजस्य बिगड़ गया है। सामाजिक जीवन में भी धनी और रंक का इतना भारी अंतर पड़ गया है कि जगह-जगह विप्लव के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं। आचार और नीति में भी अभिमान के कारण योरोपीय सभ्य मनुष्य में दुर्निवार दोष आ गये हैं। वह अपने को ही मनुष्य समझता है। शेष मनुष्य जाति को अपने सुख की सामग्री जुटाने के लिए साधन और मनुष्यता से हीन समझता है।

ससार के पहले रीढ़वाले प्राणी मत्स्यों का विकास हुआ। ऐसा जान पड़ता है कि मत्स्यों ने शखों का विनाश किया। कौन कह सकता है कि मत्स्यावतार द्वारा शखासुर का विनाश इसी अत्यत प्राचीन इतिहास का द्योतक नहीं है और पुराणो मे यह प्राचीन कथा इसी प्रस्तराकित इतिहास की प्रतिध्वनि नही है? हम तो यों कह सकते हैं कि आदि युग मे मत्स्यावतार द्वारा शखासुर का विनाश ही प्रस्तरो के पट्ट पर चित्रित है। मछलियो के भी युगो बीते और हाथ पॉव उगलियोंवाले स्थल के ऊपर रेंग सकनेवाले परतु जलस्थल दोनो मे रहनेवाले जीव बढे और जगत मे फैल गये। आजकल का कछुआ और मेंढक इन का प्रतिनिधि है। पुराणो मे कच्छप अवतार भी मत्स्यावतार के बाद कहा जाता है और विकास के अत्यत प्राचीन इतिहास की प्रतिध्वनि-सा जान पड़ता है। उभयचारियों के भी बढ़न्ती के युग आये और इन्हो ने महत्ता का उपभोग किया, फिर बीत भी गये। अब महाविशाल व्यालो और उरगो की बारी आयी। यह पक्ष-हीन और सपक्ष दोनों प्रकार के हुए। इन की ऐसी बढती हुई कि ससार को इन्हों ने घेर लिया। कद्रू के पुत्र उरगों ने सूर्य के घोड़ो को घेरकर काला कर दिया और पक्षियों के राजा की माता को दासी बनाया। विनतापुत्र गरुड़ ने अपनी माता को बधन से छुड़ाया और उरगो का विनाश किया। यह पौराणिक कथा भी प्रतिध्वनि ही जान पड़ती है। पृथ्वी के चडासुर उरग अतिम उरग थे जिन से कि अडज पक्षी और पिंडज प्राणी उत्पन्न हुए और फैले अनुमान किये जाते हैं। आरभ मे विषमता का होना अस्वाभाविक नही है। उस समय पिंडजो मे अत्यत भयानक जतु और अडजो मे हिंसक पक्षी अवश्य हुए होगे। अपने से कम बलवान उरगों का इन दोनो ने मिलकर विनाश किया होगा। उस समय के विकराल व्याल जो मैदान मे आकर लड़े होंगे अत मे जीवन के रगड़े में नष्ट हो गये होंगे। वर्त्तमान उरग और व्याल वह दुर्बल और छोटे बचे-खुचे प्राणी हैं जिन्होने बिलो मे और खोहो मे छिपकर अपनी रक्षा की। पुराणो मे जटायु, गरुड़, सपाति आदि बलवान पक्षियो की जैसे चर्चा है वैसे ही नृसिंहावतार, शार्दूल, दिग्गज, महावराह आदि स्थलचरो की भी चर्चा है। कालक्रम से सृष्टि के सबंध मे यह चर्चा भी पुराणो मे इसी क्रम से आती है। यह भी किसी अत्यत प्राचीन इतिहास की प्रतिध्वनि है। इन घटनाओ के भी युगो-पर-युग बीत गये। अत मे मनुष्य का आविर्भाव हुआ। यह पहली मनुष्य जाति अवश्य ही आदिम जाति थी। मानवी सभ्यता का इसी ने आरभ किया होगा। और सब पिंडजों के बहुत उचे विकास के समय मे आदिम मनुष्य का उदय हुआ होगा। उस समय के दानवाकार प्राणियों के सामने यह वामन रूप मे आया और पृथ्वी पर तीन पग मात्र पर अपना अधिकार जमाकर बहुत ही शीघ्र सारे ससार मे फैल गया होगा। जबूद्वीप या एशिया पर पूरा अधिकार करके असुरों को पाताल भेज दिया होगा। पुराणों मे वामनावतार की कथा शायद इसी बात का परिचय देती है। प्रस्तरों मे लिखे इतिहास से यह भी पता चलता है कि प्रत्येक महायुग के अत मे हिमप्रलय होता रहा है। और मनुष्य की जाति मे भी इन प्रलयो के कारण बारबार परिवर्त्तन होता रहा है। सब से पिछली जाति के मनुष्यो का विकास जिस ढग पर होता आया है वह हम कुछ अधिक विस्तार से जानते हैं। बहुत पास के समय मे आकर जब हमारे साहित्य का युग

आरभ होता है तब से लेकर आज तक तो मनुष्य के विकास का इतिहास दर्पण की तरह हमारे सामने है। हाल के इतिहास से तो यह बिल्कुल निर्विवाद रूप से सिद्ध है।*

हम यह भी जानते हैं कि विकास की लहर कभी बहुत ऊचे उठती है और कभी अत्यत नीचे चली जाती है। जिन प्राणियों का विकास अपनी हद को पहुँच गया उन का ह्रास और नाश भी हो गया। बड़े-बड़े ऊचे विकास के प्राणी दैत्य और असुर उड़नेवाले शार्दूल किसी समय मे इस भूतल पर भरे हुए थे जो आज बिल्कुल नष्ट हो गये हैं और जिन्हो ने अपने पीछे अपना स्थान लेनेवाला नहीं छोड़ा है। इसी प्रकार यह भी असभव नहीं है कि वर्त्तमान मनुष्य जब अपने विकास की पराकाष्ठा को पहुँच जाय तो उस का भी ह्रास हो और वह भी नष्ट हो जाय।

बड़ी-से-बड़ी धर्म-घड़ी मे भी हमे यह नही देख पड़ता कि मिनट की सुई घूम रही है, फिर भी हम जानते हैं कि घटे भर मे वह एक चक्कर पूरा करती है और घटेवाली सुई बारह घटे मे एक चक्कर पूरा कर लेती है। यदि सौ बरस मे एक चक्कर पूरा करने का प्रबध हो तो देखनेवाले को तो कई बरस तक ऐसा जान पड़ेगा कि मानो सूई चली ही नहीं। परतु सुई की चाल ठीक-ठीक नियमिल होगी। विकास की गति अत्यत धीमी है। भेद दिखाई पड़ने लायक भारी-भारी परिवर्त्तन लाखो और करोड़ो बरसों मे अत्यत धीरे-धीरे होते हैं। इसीलिए विकास की कोई गति साधारण दृष्टि मे नहीं आती, परतु तो भी उस के अनेक चिह्न हम नित्य देखते है और प्रकृति की लीला, विचित्रता या खेल समझकर रह जाते हैं। जैसे एक कोई चतुर बौना या बालक गायनाचार्य या शतावधानी लड़का या बे-पूछ की बिल्ली या भूमि तक लटकनेवाले अयाल का घोड़ा या सफेद कौवा या दूध देनेवाला बकरा इत्यादि जब हम देखते हैं तो इन नयी चीजों को प्रकृति का खेल या भूल समझ लेते हैं। परतु यह अनोखे रूप असल मे प्रकृति के वह परिवर्त्तन हैं जिन्हे वह विकास के कार्यालय मे कच्चे माल की तरह काम मे लाती है। जब हम ऐसी अनोखी चीज देखते हैं तो वस्तुतः विकास के अटूट भडार के द्वार पर खड़े होते हैं।

विकास के काम मे तो मनुष्य स्वय बड़ी सहायता पहुँचाता है। अमेरिका के लूथर बरबक ने नागफनी के काटे गायब कर दिये और चेपों की जगह मीठा गूदा पैदा कर दिया जिस से बरबकी नागफनी पशुओं के खाने-योग्य काम की चीज हो गयी। सब लोग जानते हैं

---

*मुसलिमों के साहित्य मे भी विकासवाद का पता लगता है। जिस मसनवी-मानवी को जुबाने पहलवी मे कुरान की इज्जत दी जाती है उस में यह शेर हैं—

आज़मूदम् मर्गेमनदर् जिदगीरत। चूंरेहम्जीं जिंदगी पायिंदगीस्त।
अज़् जमादी मुर्दमो नामी शुदम्। अज़नुमा मुर्दम वो हैवानी शुदम्।
मुर्दमज़् हैवानिओ मर्दुम् शुदम्। पस्चिरा तर्सम्ज़े मुर्दन गुम शुदम्।

तात्पर्य यह कि खनिज से उद्भिज्ज, उद्भिज्ज से पशु और पशु से मनुष्य-शरीर में जीव का क्रम-विकास होता आया है। मरना वस्तुतः विकास मे एक कदम आगे बढना है

कि बेर मे कितनी कड़ी और बड़ी गुठली होती है और जरदालू या खूबानी का गूदा विशेष स्वादवाला होता है, परतु यह फल बेर से बड़ा है। बरबक ने इन दोनों का सयोग कराकर एक नये फल की उत्पत्ति की, जिस का नाम (प्लम-काट) "बेरानी" रक्खा। इस मे गुठली गायब है और गूदे मे बहुत ही अपूर्व स्वाद है। इसी प्रकार साठ सत्तर बरस के भीतर अनेक नये प्रकार के फल, फूल, बीज और पौधे बन गये या बनाये गये।

सवत १९५९ के आरभ मे वसत ऋतु मे कनाडा मे ओटावा नगर के पास डाक्टर चार्ल्स साउडर्स ने अनेक उत्तम बीजों मे से गेहूं का एक सर्वोत्तम बीज चुनकर बोया। इस से जो गेहूं के बीज हुए उन मे से उत्तम चुन लिये और अगली फसल मे उन से और अच्छे बीज चुनकर बोये। इस प्रकार धीरे-धीरे बढाते-बढाते चौदह बरस मे इसी जाति के गेहूं की फसल बीस करोड़ मन हुई। सवत् १९७४ मे तीस-करोड़ मन की पैदावार हुई। यह मार्किस गेहूं कहलाता है। इस गेहूं का विकास एक पीढ़ी के भीतर ही हुआ है।

पुराणों मे कथा है कि विश्वामित्रजी ने अपने तपोबल से नयी सृष्टि की रचना शुरू की। गेहूं आदि कई तरह के अनाज और नारियल आदि कई तरह के फल उन्हीं के बनाये हुए कहे जाते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मनुष्य ने ही गेहूं को अपने जगली रूप से वर्तमान रूप दिया है। कहते हैं कि पहले फल, मूल और छोटे-छोटे जानवरों पर आदमी गुजर करता था। जगली घासो के दानों पर उस की दृष्टि गयी। उस ने कुछ खाये और कुछ गिराये जिन से कि फिर वही घास उपजी। यह देखकर उस ने बीजों को उगाना शुरू किया। गेहूं जब आदि अनाज धीरे-धीरे खेती की चीज बन गये और उन का वर्तमान रूप विकास का फल है। मनुष्य ने विकास मे केवल पौधों को ही मदद नहीं दी। उस ने पालतू जानवरों का भी विकास कराने में सहायता पहुंचायी। उस के पालतू जानवरों का जंगली रूप कुछ और था परतु मनुष्य के साथ रहते रहते उन का भोजन रहन-सहन और स्वभाव बहुत कुछ बदल गया। घोडा हरिण की जाति का पशु है। कुत्ता भेड़िये की जाति का पशु है और बिल्ली जो शेर की मौसी कहलाती है चीते की जाति का पशु है, परतु इन मे कितना भारी अतर पड़ गया है।

जब किसी चर या अचर प्राणी का विकास होता है तो उस मे दो बाते अवश्य देख पड़ती हैं। मूल रूप के कुछ गुण और आकार विकसित प्राणी मे मौजूद होते हैं अर्थात् कुछ बातों मे समानता होती है। साथ ही परिस्थिति के अनुसार विकसित रूप मे जिन बातों की आवश्यकता होती है वह पैदा हो जाती है और नयी परिस्थिति मे मूल की जो बाते ढोंग की तरह गिनी जायगी उन का अभाव हो जाता है। मूल से विकसित मे यही अतर होता है। विकास मे इसी प्रकार समानताओं और अतरों का काम होता रहता है। पिडजों के अगों मे इद्रियों मे और विशेष रूप से ठटरियों मे समानता होती है। विकास का क्रम ज्यों-ज्यों बढता जाता है त्यों-त्यो मूल से समानता भी घटती जाती है और अतर भी बढता जाता है। ह्वेल और बदर दोनों पिंडज हैं परतु दोनों के ककालों मे बहुत अतर पड गया है।

विकास की ऐसी अवस्था भी अत मे आ जाती है जिस मे मूल से समानता अत्यत कम होती है और अतर अत्यधिक। परतु सभी दशाओं मे परपरा को स्थिर रखना और

ऐसे उपाय करना कि अनुवर्त्तन की अविच्छिन्न धारा जारी रहे, प्रकृति मे विकास का सिद्धात है।

२—रक्षा की ओर परंपरा की गति

चराचर मे गति की दिशा वही पायी जाती है जिस मे विकास की परपरा की रक्षा रहे। पौधे धरती फोड़कर बाहर इसी लिये निकलते हैं कि उन की प्राणशक्ति को बढ़ानेवाला सूर्य का प्रकाश वायु और बाहरी आर्द्रता मिलती रहे। छोटे-से-छोटे कीड़े मुख्यत. इसी लिये उडते या दौड़ते रहते हैं कि उन को भोजन मिले और उन की रक्षा रहे। इसी प्रयत्न का फल है कि हर एक प्राणी को उस की परिस्थिति के अनुकूल गति के सुभीते और साधन मिले हैं। पौधों की गति नीचे से ऊपर की ओर होती है, बहुत धीमी होती है और परिमित होती है। लताए सभी ओर को चलती हैं और अपनी रक्षा के सुभीते बराबर देखती रहती हैं। पक्षियो को उन की आवश्यकता के अनुसार सभी तरह की स्थल और वायु मडल की गतिया प्राप्त हैं। इसी तरह जलचर और उभयचारियो को भी उन की परिस्थिति के अनुसार गति के साधन मिले हैं। ज्यो-ज्यो किसी एक क्षेत्र से निकलकर दूसरे क्षेत्र मे या एक परिस्थिति से निकलकर दूसरी परिस्थिति मे प्राणी जाता है त्यो-त्यो प्रकृति को उस की गति के और जीवन-रक्षा के साधनो मे उचित परिवर्त्तन करना पड़ता है। परिस्थिति मे परिवर्त्तन होने का प्रभाव कभी प्राणी के लिये इष्ट पड़ता है और कभी अनिष्ट। किसी पौधे को हम एक जगह से दूसरी जगह उगाना चाहे तो वह पोषण की अनुकूलता न पाकर नष्ट हो जाता है। परतु जब हम ऐसी स्थिति मे उसे ले जाते हैं जो उस के स्वभाव के लिये सब तरह से अनकूल है तो वह साधारणतया केवल बढता ही नही है बल्कि विकास के मार्ग मे अग्रसर हो जाता है। गरम देशों के पौधे ठढे देशों मे या ठढे देशों के पौधे गरम देशों मे इसीलिए नहीं होते। इस के साथ यह भी कारण है कि पौधो की गति अत्यत मद है। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने देश को बदल नहीं सकते। जो प्राणी आवश्यकतानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान को चले जा सकते हैं वह जल वायु की प्रतिकूलता देखकर स्थान बदल देते हैं। जब जाड़ा पड़ने लगता है तब पक्षियों के झुड-के-झुड उत्तराखड से उड़कर दक्षिण की ओर जाते हुए दिखाई पड़ते हैं। इन पक्षियो के लिए संसार मे जाड़ा कभी पड़ता ही नही। पिंडज प्राणी बिलो मे और खोहो मे रहकर अपनी रक्षा कर लेते हैं या स्थान बदल देते हैं। जब जल सूख जाता है तो अक्सर बहुत से जल के प्राणी कीचड़ के भीतर मूर्च्छित दशा मे पड़े भी रहते हैं। परतु इन प्राणियो मे दूरदर्शिता भी देखी जाती है। जब जल घटने लगता है तब यह अधिक बड़े जलाशय की ओर चले जाते हैं।

३—बामी मछली की गति से उदाहरण

गर्मियो के आरभ मे महासागर मे गिरनेवाली नदियो की ओर बामी मछली के बच्चो के झुड के-झुड नदी के बहाव के विरुद्ध बढ़ने लगते हैं। यह-चार पाच

अंगुल से ज्यादः लंबे नहीं होते और एक सूजे से ज्यादः मोटे भी नहीं होते। इन्हें धार के विरोध में ही तैरते और बढ़ते जाने में सुख होता है। यह सीधे जाते हैं। परंतु केवल दिनभर चलते हैं। ज्यों ही सूरज डूबता है त्यों ही करारों या चट्टानों के भीतर छिपकर रात बिता देते हैं और दिन निकलते ही फिर यात्रा करने लगते हैं। चलते-चलते यह नदी के ऊपरी हिस्सों में पहुँच जाते हैं। और छोटी-छोटी नदियों और चश्मों में भी चले जाते हैं जिस से कि उस बड़ी नदी का मेल होता है। इस तरह वह कभी-कभी नालियों में चहबच्चों में या गढ्ढों में भी पहुँच जाते हैं। जहां नदी और गढ्ढों में बराबर जल का प्रवाह रहता है, वहां यह रहते खाते-पीते हैं और बरसों तक बढ़ते रहते हैं। बहुत-सी छोटी बामी मछलियों के बहुतायत होने के कारण यही होता है। नर की पूरी बाढ़ में पांच छः बरस और मादा की पूरी बाढ़ में छः से आठ बरस तक लग जाते हैं। यह मछलियां जब हाथ सवा हाथ से ज्यादः लंबाई को नहीं पहुँची रहती तभी उन में बेतरह चंचलता आ जाती है। उन के शरीर पर एक चांदी सी चमकती खोल चढ़ जाती है और आंखें बड़ी हो जाती हैं। यह उन की जवानी की अवस्था है जिस में वह संतान पैदा करती हैं। वह अब समुद्र की ओर लौटती हैं। कभी-कभी इन्हें गढ्ढे से नदी को जाने में रातों-रात आर्द्र घास के मैदानों को घिसट-घिसट कर तय करना पड़ता है। वह दिन में नहीं चलतीं। अंत में समुद्र के गहरे कुंडों में ही जाकर दम लेती हैं। वहीं अंडे देती हैं। उन के तुरंत के दिये हुए अंडों का तो आज तक पता नहीं लगा है। परंतु बच्चे चाकू के पतले फल की तरह पारदर्शी देखे गये हैं। केवल आंखों से ही उन की पहचान हो सकती है। यह जल में डूबते-उतराते कई महीनों में चार-पांच अंगुल लंबे हो पाते हैं। धीरे-धीरे यह कुछ सुकड़ जाते हैं और चपटे से गोल हो जाते हैं और तब फिर अपनी माता-पिता की तरह अपनी लंबी यात्रा पर चल देते हैं। यह यात्रा कभी-कभी तीन-तीन हजार मील की होती है। बामी मछलियों को इस तरह एक जगह जन्म लेना पड़ता है और दूसरी जगह उन का पालन-पोषण होता है। दोनों परिस्थितियों में काफी अंतर होता है। अनुकूल परिस्थिति को पाने के लिए इतनी दूर-दूर की यात्रा करनी पड़ती है।

जिस तरह जल, स्थल और वायु की परिस्थितियां भिन्न हैं उसी तरह उन में रहनेवाले प्राणियों के भी भिन्न रूप और स्वभाव और सुभीते हैं। इन्हीं परिस्थितियों के अनुसार प्राणियों में परिवर्त्तन होता रहता है और देश-काल के अनुसार भेद पड़ता जाता है।

४—मनोविकास

चर प्राणियों में साधारणतया आरंभ से नैसर्गिक बुद्धि एक प्रकार से ही देखी जाती है। इस बुद्धि के लिए किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती। नये पैदा हुए बच्चे को सांस लेना या दूध पीना कोई नहीं सिखाता परंतु जब वह चलना चाहता है तो बड़े जतन से उसे सीखने की जरूरत होती है। सांस लेने की क्रिया उस के लिए स्वाभाविक है और दूध पीने के लिए प्रयत्न करना उस की नैसर्गिक बुद्धि है। वंश-परंपरा से नाड़ी और

मासपेशियो की सेलो का ऐसा काम बाधा गया है कि ज्यो ही आवश्यकता पड़ती है यह सब काम करने लग जाते हैं। यह स्वाभाविक बुद्धि साधारण स्वाभाविक दशा में खूब काम करती है, परन्तु उस के बदलते ही गड़बड़ा भी जाती है। यह बात जानी हुई है कि कोयल कभी अपने लिए घोसला नहीं बनाती। उसे जब अडे देने होते हैं तो कौवे के घोसले में जिसे वह पहले से निश्चित कर रखती है घुस जाती है और कौवे के अडे को उठा लेती है और अपना अडा उसी जगह डाल देती है। यह क्रिया बहुधा कौवे के सामने की जाती है।* तो भी कौवे की नैसर्गिक बुद्धि कोयल के अंडों की रक्षा और उस में से निकले हुए बच्चे का पोषण कराती है। कछुए के अडे जो बालू में छिये जाते हैं जब फूटते हैं तब बच्चे स्वभाव से ही जल की ओर रेंग जाते हैं। घड़ियाल बालू के नीचे हाथ-डेढ़-हाथ पर अपने अडे गाड़ देते हैं। जब अडा फूटनेवाला होता है तो भीतर से बच्चा पतली आवाज से रोता है इस पर तुरत उस की माता जो बराबर चौकसी में रहती है बच्चो को खोदकर निकाल लेती है। यह सब उन की नैसर्गिक बुद्धि की प्रेरणा है।

यह बात हम कैसे जाने कि प्राणी का अमुक काम खासने और छींकने की तरह स्वाभाविक प्रेरणा से है और उस के पीछे बुद्धि और विवेक का काम नहीं हो रहा है? इस की विधि प्रोफेसर लायड मार्गन ने यह बतायी है कि हम को बड़े यत्न से किसी घटना का ठीक-ठीक वर्णन करना चाहिए और उस में अपने विचार को जरा भी दखल न देना चाहिए। और यदि किसी नीचे दर्जे की शक्ति से उस की प्रेरणा सिद्ध की जा सके तो ऊचे दर्जे की शक्ति को उस का प्रेरक मानना नहीं चाहिए। इस नियम पर चलते हुए कभी हम अनुदार भले ही समझे जाय और सम्भवतः सूक्ष्म बुद्धि की किसी क्रिया के पहचानने में चूक भले ही जाय परतु तो भी हमारे इस तरह के हम निष्कर्षो में से नौ तो अवश्य ही ठीक निकलेंगे।

मछलियो की आखे पलको के न होने से कभी बद नहीं होती। कान के छेद बद होते हैं। कान से शायद वह सुनने का काम नहीं लेतीं बल्कि अपने शरीर को समतोल रखने का काम लेती हैं। उन का दिमाग सब से कम विकसित होता है। परतु हाथ पाव का तो एकदम अभाव है। उभयचारियो में यह पहले-पहल देख पड़ते हैं। व्यालो और उरगो में ज्ञान और कार्य की इन्द्रियो का अच्छा विकास मिलता है। ज्यो-ज्यो हम विकास की श्रेणी में ऊचे उठते हैं त्यो-त्यो सतान की रक्षा और वात्सल्य प्रेम के भावो को बढ़ता हुआ पाते हैं।

साप कछुए आदि कोसो की दूरी तय करके अपने स्थान पर पहुच जाया करते हैं, और अपने पोसनेवाले को पहचानते हैं। यह नैसर्गिक बुद्धि की बात नहीं है। इस में सीखनेवाली बुद्धि स्पष्ट रूप से काम कर रही है। कबूतर चिट्ठिया पहुँचाता है। बया खरे-

---

* इस नैसर्गिक बात को हमारे देश के लोग अनादि काल से जानते हैं, इसीलिये कोयल को "काकपाली" अर्थात कौए के द्वारा पाली हुई भी कहते हैं।

दसवां अध्याय

विकासवाद की वर्त्तमान स्थिति

१--डारविन के सिद्धांत

इस विज्ञान का आरभ डार्विन से हुआ है। परतु डार्विन के समय से लेकर अब तक इस विज्ञान का भी विकास होता आया है। पाश्चात्य वैज्ञानिक ससार ने इस विज्ञान के सिद्धातों को निर्विवाद मान लिया है। डार्विन के सिद्धातों को थोड़े शब्दों मे हम यहा देते हैं।

पहला सिद्धात यह है कि परिवर्त्तन जीवन की विशेषता है। यह बात साधारणतया देखी जाती है कि सतान का रूप रग और स्वभाव थोड़ा-बहुत माता-पिता और परिवार के और लोगो से भिन्न हुआ करता है। इन मे से कुछ भेद ऐसे हैं जिन से सतान को अधिक सफलता होती है। भोजन पाने मे, शत्रुओ से बचने मे, ठीक जोड़े के मिल जाने मे, आनेवाली सतान को आगे बढाने मे और इसी तरह की और बातों मे उसे अधिक सफलता होती है। जिन मे अनुकूल परिवर्त्तन हुए हैं उन मे उन लोगो की अपेक्षा अधिक सफलता होगी जिन मे या तो प्रतिकूल परिवर्त्तन हुआ है या कोई परिवर्त्तन ही नहीं हुआ है।

दूसरा सिद्धात ,यह है। यदि अनुकूल परिवर्त्तनवाली व्यक्ति अपनी उत्तमता का सुफल पा जाय और दूसरी अपनी हीनता के कारण विकास की होड़ मे रुक जाय, तो इस का प्रभाव वश, जाति या वर्ग के चरित्र पर पड़ता है, परतु साथ ही यह आवश्यक है कि क्रम से आनेवाली पीढियों मे नयी विशेषताए इस तरह लग जाती हैं कि वह वशानुगत बन जाती हैं। यदि अनुकूल विशेषताओ वाली व्यक्तिया बराबर लाभ ही उठाती रहें और उन के गुण एक पीढी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते रहें तो वही गुण सारी जाति के हो जायँगे। जिन मे प्रतिकूल परिवर्त्तन होते हैं या जिन मे परिवर्त्तन का प्रभाव रहता है वह धीरे-धीरे निकाल डाले जायँगे और अत मे मिट जायँगे।

तीसरा सिद्धात यह है कि इस तरह छँटने के लिए एक छलनी चाहिए। यह छलनी

जीवन का रगडा है। प्राणियों का जीवन बहुत-सी बाधाओं से घिरा हुआ है और उस के सामने नित्य नयी-नयी कठिनाइया आती रहती हैं। आबादी घनी हो जाया करती है। परिस्थितिया बदला करती हैं। जिस प्राणी में प्राण-शक्ति अधिक है वह ढकेलकर आगे बढता है। भोजन के लिए, ठहरने की जगह के लिए, जोड़े के लिए और परिवार की भलाई के लिए, निदान जरूरी चीजों के लिए और आराम की चीजों के लिए भी हर प्राणी के जीवन में बड़ा कठिन रगड़ा है। "जीवो जीवस्य जीवनम्" अथवा—

जीवै जीव अहार, बिना जीव जीवै नहीं।

इस नीति के अनुसार एक प्राणी दूसरे प्राणी को खा जाता है। हर खानेवाले के लिए एक दूसरा खानेवाला मौजूद है। इस के सिवाय सर्दी और गर्मी का, आधी और पानी का, सूखे और बाढ का हर एक को मुकाबला करना पडता है। इस जीवन के रगड़े में जो अपनी रक्षा कर सकता है वही बच जाता है और अत में वश चलाता है। इसी ढग पर परपरा के लिए प्रकृति चुनाव करती रहती है।

डार्विन के सिद्धात थोड़े में यही हैं। इन सिद्धातों का डार्विन के बादवाले विज्ञानियों ने विकास किया है।

२—डार्विन के सिद्धांतों का विकास

विकासवादी के सामने तीन बड़े प्रश्न आते हैं। एक प्रश्न तो यह है कि परिवर्त्तन में जो नयी बातें देखने में आती हैं उन का मूल्य क्या है। दूसरा प्रश्न यह होता है कि माता-पिता के गुण सतानों में किन नियमों के आधार पर पाये जाते हैं। तीसरा प्रश्न यह है कि चुनाव की वह कौन-सी रीतिया हैं जो दी हुई कच्ची सामग्री पर काम करती हैं और वश की रक्षा का कारण होती हैं।

यह और जगह बताया जा चुका है कि समस्त शरीरों की उत्पत्ति बहुत सूक्ष्म सेलों से आरभ होती है। इन्हीं सेलो में वश परपरा के सभी गुणो के प्रतिनिधि सेल मौजूद रहते हैं। ज्यो-ज्यो शरीर बढता है वशानुगत गुणो और स्वभावों का विकास होता रहता है। वशानुगत समता का कारण यही है। परतु परिवर्त्तन होना भी प्रकृति का नियम है। इसलिये किसी-किसी विशेष गुण या स्वभाव के सेल कभी-कभी किसी प्राणी में घट जाते हैं, किसी में बढ जाते हैं, किसी में उन का सर्वथा अभाव हो जाता है। साथ ही माता-पिता के सजातीय या विजातीय होने में एव रक्त के दूर और पास के सबध में ऐसे भेद पड़ जाते हैं कि किसी-किसी नये सेल का सयोग हो जाता है अथवा कोई पुराना सेल एक दम छूट जाता है। इन्ही और इसी तरह के कारणों से विविधता उत्पन्न होती है। कोई नया शगूफा खिल जाता है। कोई नयी विशेषता आ जाती है। कोई विशेष भेद पड़ जाता है। कहा प्रकृति की नयी लीला देखने में आती है। कहीं एक गुण घटा तो दूसरा गुण बढा। इस प्रकार की विविधता सतान में उत्पन्न हो ही जाती है। जहा इस तरह का नया परिवर्त्तन नहीं होता, वहा किसी तरह का विकास भी नहीं होता।

विचारणीय हैं। यदि विकार को वैविध्य में बदलना है तो सभवतः अनुकूल विकार ही इस तरह वैविध्य का रूप धर सकते हैं।

(४) वंश-परंपरा और मेंडेलवाद

भ्रूण मे बीज रूप से जो विशेषताए मौजूद रहती हैं वह और विशेषताओ से मिल-कर प्रौढ अवस्था में सयुक्त रूप से बढती हैं। उन के ऊपर बाहरी विकारों का भी प्रभाव पडता है। व्यक्ति की पूरी बाढ के बाद अग-अग का जो कुछ रूप बन जाता है वही इन सब बातो के एकीकरण का फल है। इसी लिए प्रौढ अवस्था मे जो रग रूप देखा जाता है वह पूर्ण रूप से केवल बीज की विशेषता का ही फल नही है। प्रौढ व्यक्ति की नाक या बाल के रूप रग से उस के किसी एक मूल कारण की खोज नही हो सकती। इस एक कार्य के मूल कारण अनेक हो सकते है यदि किसी आदमी के पाचो अगूठे ही अगूठे हो अर्थात् हर अगुली मे दो ही दो पोरवे हो तो यह जरूरी बात है कि उस के बाद होनेवाली पीढियों मे कुछ लोगों की अगुलिया ऐसी ही हो। सब लोगों की अगुलिया ऐसी हों यह समव नही है और न यही सभव है कि किसी की भी अगुलिया ऐसी न हो। अगुलियों मे विशेषता होने का कारण भ्रूण के अनेक सेलों में मौजूद है। यह आवश्यक नहीं है कि एक भ्रूण मे जिन घटक सेलों के सघात से वैसी अगुलिया बनी वही सेले और वही सघात उस के वशवाले सभी भ्रूणो मे उपस्थित हो। सघात का भी बदलता रहना विकासक्रम का एक नियम है। रतौधीवाले वश में सब सतानो का रतौधीवाला होना आवश्यक नही है। रतौधी का अवगुण व्यक्ति की विशेषता है। परतु वह व्यक्ति की विशेषता विशेष पीढियो में विशेष अनुपात की सतानो मे देखी जाती है। मेडेल के अनुसार व्यक्ति की विशेषता बीज-सेलों मे निश्चित घटको के रूप मे मौजूद रहती है। और वश-परपरा की क्रिया मे यह घटक अखडनीय कणो की तरह जान पड़ते हैं और एक निश्चित योजना के अनुसार बट जाते हैं। किसी विशेष वैयक्तिक विशेषता का घटक या तो भ्रूणो मे पूरा-पूरा सघात-युक्त मौजूद होगा अथवा उस का एक दम अभाव होगा।

मेंडेलवाद की दूसरी मूल कल्पना "प्रधानता" की है। जब मेंडेल ने शुद्ध लबी मटर को शुद्ध बौनी मटर के साथ सयुक्त किया तो उस से उपजी हुई मटर लवी ही निकली परतु जब इन्ही मटरो को आपस मे उत्पन्न करने का अवसर दिया गया तो चौथाई सतान बौनी निकली। इसलिए मेंडेल ने यह निष्कर्ष निकाला कि लबाई प्रधान गुण है और बौनापन मिट जानेवाली चीज़ है। इसी तरह की बाते अनेक प्रयोगो मे पायी गयी जिन से यह निष्कर्ष पुष्ट हो गया कि वश-परपरा प्रधानता को ही पुष्ट करती है।

मेंडेलवाद की तीसरी मूल कल्पना ज़रा कठिनाई से समझ में आती हैं। मेंडेल ने यह मान लिया कि लवी और बौनी मटरो के साकर्य से दो तरह के बीजसेल लगभग बराबर सख्या मे उत्पन्न हुए। एक तो लबाई के घटक हुए और दूसरे बौनेपन के। तात्पर्य यह कि किसी विशेष वैयक्तिक भाव को उपजाने के लिए प्रत्येक बीज-सेल

शुद्ध है। -मान लो कि लवे वालवाले खरगोश या खरहे से छोटे बालवाले खरहे का जोडा किया गया तो सतान छोटे बालोवाली होगी। परतु सकर की मादा अगर आठ डिब पैदा करेगी तो उन मे से चार लवे बालो के घटक होगे और चार छोटे बालो के। उसी तरह सकर सतान के नर से आठ नर सेल पैदा हुए तो चार लवे बालो के घटक होंगे और चार छोटे बालो के। मान लो कि यह सकर आपस मे ही सतान की उत्पत्ति करते हैं और अकस्मात ही नरसेलों का डिबो से सयोग हो जाता है तो दो डिबसेल दो ऐसे नरसेलो द्वारा प्रभावित होगे जो छोटे बालो के घटक हैं और दो शुद्ध छोटे बालोवाली सतान पैदा करेगे। लबे बालो के घटकवाले दो डिंबसेल लवे बालो के ही घटक दो नरसेलो से प्रभावित होगे और बिल्कुल शुद्ध लवे बालोवाली दो सतान उत्पन्न करेगे। छोटे बालोंवाले घटक के दो डिंबसेल लबे बालोंवाले दो नरसेलो से प्रभावित होगे और सकर दपति की तरह दो अशुद्ध छोटे बालोंवाली सतान उत्पन्न करेगे और लवे बालोवाले दो डिबसेल छोटे बालोवाले दो नरसेलो से प्रभावित होगे और सकर मा बाप की तरह दो अशुद्ध छोटे बालोवाली सतान उत्पन्न करेगे। इस तरह परिणाम यह हुआ कि दो-दो शुद्‌ध छोटे बालोवाली सताने हुई, चार अशुद्ध छोटे बालोवाली सताने हुई। यदि अशुद्ध छोटे बालोवाले खरहो का आपस मे जोड़ा किया जाय तो तीसरी पीढी की सतानो मे वही अनुपात १ : २ : १ का देखने मे आवेगा। जिन से हमे काम लेना है उन की सख्या जितनी ही वढाथी जायगी उतना ही अधिक बारबार यही शुद्ध अनुपात देखने मे आवेगा।

५—जीवन की एक ही धारा और शरीर में छँटाई। योग्यतमावशेष

डार्विन के बाद विकासवाद मे यह बड़ी उन्नति हुई कि बीजों की परपरा बहुत स्पष्ट हो गयी और मान ली गयी। पीढी के बाद पीढी बीतती जाती है परतु बीज की परपरा बनी रहती है। ऐसा जान पड़ता है कि एक विकसित शरीर की परपरा मे एक बीज से दूसरे बीज मे और दूसरे से तीसरे बीज मे और तीसरे से चौथे बीज मे, इस तरह परपरा के क्रम से जीवन की एक ही धारा वहती चली जा रही है।

जैसा हम दिखा आये हैं, छँटाई नैसर्गिक भी होती है और प्राणिकृत भी। यदि छँटाई प्राणी करता है तो भूल भी कर सकता है और होशियारी भी। भूल के फल से ह्रास हो सकता है। प्रकृति छँटाई का काम बड़ी सावधानी से करती है। जीवन के रगड़े मे जो सब से अधिक योग्य होता है वही बच जाता है। परतु योग्यतमावशेष का यह मतलब नहीं है कि जो सब से अधिक चतुर या वलवान होता है वही बच जाता है। योग्यतमावशेष का अभिप्राय केवल यही है कि अपनी परिस्थिति और विशेष अवस्थाओं पर जो काबू पा जाता है वही योग्यतम है। सभी प्राणी अपने जोड़े के लिए छँटाई या चुनाव करते हैं, यह प्रवृत्ति भी स्वाभाविक ही है।

ऐसा जान पड़ता है कि सभी सभ्य जातिया मे अच्छी सतान उत्पन्न करने के लिए रक्त का बदलना, दूर-से-दूर के नातों मे विवाह करना, भाई-बहिन मे विवाह का निषेध आदि नियम हैं। योग्यतमावशेष के ये प्राकृतिक नियम हैं। हिंदू स्मृतिकारों ने मनुष्य को योग्यतम बनाने के लिए गर्भाधान से लेकर सन्यासाश्रम तक के सस्कारों के बड़े ही उपयोगी नियम बनाये हैं। सगोत्र और सपिड मे विवाह का निषेध किया है। विवाह के पूर्व वर-कन्या की पूरी परीक्षा के नियम रखे हैं। आयुर्वेद में भी इन नियमो की रक्षा के हेतुओं में, अच्छी पुष्ट और दीर्घायु सतान की उत्पत्ति को ही प्रधानता दी गयी है। अच्छी सतान उत्पन्न करना हर गृहस्थाश्रमी का कर्त्तव्य माना गया है। पाश्चात्य विज्ञान भी हाल मे ही इस विद्या की ओर झुका है और सुजनन शास्त्र वा सुसतान शास्त्र-विज्ञान एक नयी शाखा बन गयी है। परतु इस पर अभी इतनी खोज नहीं हो पायी है कि यहा उस विषय पर चर्चामात्र से अधिक विस्तार अपेक्षित हो। हा, इतना तो निःसकोच कहा जा सकता है कि यह नया विज्ञान विकास-विज्ञान की एक सतान ही है और उस के प्रयोगो के अतंर्भूत समझा जाता है।

तीसरा खंड

जीव-विद्या

और

मानव-शरीर-विज्ञान

ग्यारहवां अध्याय

जीव-विद्या

१—जीवन क्या है

जीव-विज्ञान के पडित प्राणशक्ति नाम की किसी विशेष वस्तु की न तो आवश्यकता समझते है और न सभावना मानते हैं। उन के निकट बहुत ही विकट सगठन की विशेष प्रकार की वस्तुओं के विविध रूप से प्रकाश का नाम ही जीवन है। उन का कहना है कि यदि हम किसी मनुष्य या मनुष्येतर प्राणी को एक ऐसी कोठरी में रक्खें जो कलारीमापक के रूप मे बना ली गयी हो तो हम उस शरीर से उपजती हुई शक्ति को गर्मी और क्रिया की मात्रा के रूप मे नाप सकते हैं। प्रयोग की साधारण मर्यादा के भीतर-भीतर यह बात मालूम कर ली गयी है कि जितनी शक्ति की मात्रा उस शरीर मे से निकलती है उतनी ही मात्रा गर्मी के रूप मे तब भी निकलती यदि उस के भोजन को खिलाने के बदले जला दिया जाता। शक्ति की अविनाशिता यहा भी स्पष्ट है चाहे वह प्राणी कुत्ता हो या मनुष्य हो, और उसी तरह स्पष्ट है जिस तरह भाप के इजन या डाइनमो के विषय मे है। किसी विशेष प्राण-शक्ति की यहा आवश्यकता नहीं है।*

निर्जीव पदार्थों मे जो धातुए और अधातुए हैं वही धातुए और अधातुए सजीव मे

*यद्यपि जीवित प्राणियों पर अनेक प्रकार के प्रयोग किये गये है तथापि अभी तक यह पता नही लगा है कि वह जीवित व्यक्ति चेतना जो "अह मम" का अनुभव करती है और जिस का अस्तित्व हाल की खोजों से शरीर-त्याग के बाद भी प्रमाणित हुआ है, क्या है, और यह कि उस अशरीरी व्यक्ति से जीवन-शक्ति से क्या और कितना और किस प्रकार का संबंध है। यह अभी तक जीव-विज्ञान का विषय भी नही समझा जाता। यह मनोविज्ञान का विषय माना जाता है।

भी मौजूद हैं। कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो चेतन वस्तु मे मिलता हो और जड़ में न मिलता हो। अधिकाश जीवित पदार्थ कर्बन, उज्जन, नोषजन और ओषजन इन चार मूल द्रव्यों का वना हुआ है। इन के सिवा लोहा, स्फुर, गधक, सोडियम, पोटासियम, खटिकम, और नैल यह प्राणिमात्र के शरीर में मौजूद हैं। पहले ऐसा समझा जाता था कि मड, शर्करा, अलबूमेन, यूरिया इत्यादि शरीर से उपजनेवाले विकट सगठन के पदार्थ केवल चेतन शरीरो के भीतर ही वन सकते हैं। परतु लगभग सौ वरस के हुए कि इस तरह की वस्तुए भी यत्रों द्वारा वनायी जा सकीं और अव तो सैकड़ा तरह की ऐसी शर्कराए और विविध आगारिक या कर्बनिक पदार्थ प्रयोगशाला मे वनने लगे हैं, जिन के लिये पहले यह धारणा थी कि जीवा के शरीर के भीतर ही वन सकते हैं और कृत्रिम नहीं वन सकते।

अभी तक कोई ठीक वैज्ञानिक विधि नहीं मालूम हो सकी है जिस से किसी विशेष नापने की क्रिया से हम जड़ और चेतन पदार्थो मे विभेद कर सके। वस्तु वही है परतु सगठन की विधि, परमाणुओं का सगठनक्रम, भिन्न है। वैज्ञानिक रीति से हम को यह पता नहीं लगा है कि जीवन का वास्तविक मूल क्या है। इतना निष्कर्ष अवश्य ही निकलता है कि जव धरती धीरे-धीरे ठढी हो रही थी उसी युग मे ऐसी अवस्था भी उपस्थित हो गयी जिस मे इन्ही निर्जीव अणुओं के सघात से सजीव अणु पैदा हो गये। वह सजीव इस वात मे थे कि वह अपने जैसे जीवाणु पैदा करने की शक्ति रखते थे और वाहरी उत्तेजना को पाकर प्रतिक्रिया द्वारा उत्तर दे सकते थे। साथ ही उन्होंने विकास की नीव डाली और उत्तरोत्तर अपने से भी जटिल और विकट सगठन के प्राणियों को वरावर उत्पन्न करते गये। और जो विकास-क्रम से आजकल का प्राणि-ससार कहलाता है वह उन्ही आदि प्राणियो के विकास का फल है और यह जीवन-विकास मूल रूप से निर्जीव या जड़ पदार्थ से ही आरभ हुआ है।

सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्राणियो पर अवतक असख्य प्रयोग करके भी विज्ञान यह निश्चय-पूर्वक नहीं मालूम कर सका है कि जीवन का वास्तविक तत्व क्या है। और किसी विधि से अभी तक वह इस वात मे सक्षम नहीं हुआ है कि वह स्वयम् अपने किसी प्रयोग द्वारा निर्जीव पदार्थो से कोई सजीव प्राणी या जीवाणु उत्पन्न कर सके। विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रश्न की आगे क्या स्थिति होगी। अभी हम इतना ही कहेंगे कि इस रहस्य का कि जीवन क्या है अभी तक वैज्ञानिक उद्घाटन नहीं हुआ है।

ससार की वर्त्तमान परिस्थिति मे निर्जीव पदार्थ से सजीव प्राणी का उत्पन्न होना अव तक देखा नहीं गया है। लोगों का साधारण विश्वास यह जरूर रहा है कि सड़ती हुई चीजों से नये प्राणी पैदा हो जाते हैं। परतु यह विश्वास निराधार है जैसा कि सैकड़ों जाचो से निश्चित हो चुका है। सड़नेवाली वस्तु को वाहर के प्रभाव से विल्कुल सुरक्षित रक्खा जाय तो वह नहीं सड़ती और उस मे विल्कुल विकार नहीं आता, अथवा उस के भीतरी रासायनिक विकार से ही उस मे परिवर्त्तन होता है। पास्त्यूर और टिडल

३—जीवन का व्यक्तित्व या एक-बीज

जितने पदार्थ है सभी बहुत छोटे-छोटे कणों के बने हुए हैं जिन का यदि अधिक विभाजन हो तो उस पदार्थ के गुणों और धर्मों मे इतना परिवर्त्तन हो जाय कि वह पदार्थ बिल्कुल भिन्न वस्तु हो जाय। ऐसे प्रत्येक कण को एक बीज या व्यक्ति कहेंगे। प्राणियो के शरीरों की रचना भी इन्हो एक बीज या व्यक्तियों से हुई है।
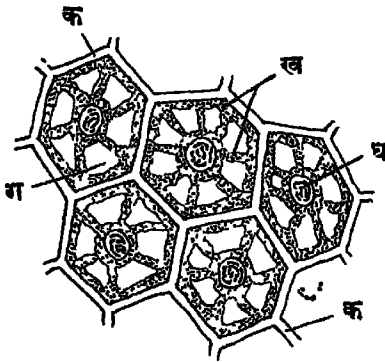
चित्र ११—वनस्पति के अंग की खड़ीकाट जिस में कृ--पहल सेलों के मध्य में बीजाणु दिखाये गये है।

क—सेल की भीत।
ख—जीवन-मूल, प्रोटोप्लाज़्म।
ग—द्रव
घ—उत्पत्ति-केन्द्र।

यदि हम किसी मनुष्य या जानवर के शरीर का व्यवच्छेद करे तो हम देखेंगे कि उस में हृदय है, पेट है, मस्तिष्क है, हाथ है, इसी प्रकार से सभी अग हैं जो मिलकर पूरे शरीर को बनाते हैं। प्रत्येक अग ऐसे अवयवो का या कणो का बना हुआ है जिन मे से प्रत्येक एक स्वरूप दीखता है। उदाहरण के लिये, पेट की ही जाच करे तो हम देखते हैं

जलजंतु, नव लाख कूर्मादि उरग, दस लाख पक्षी, तीस लाख पशु, चार लाख वानर, शेष दो-लाख में मनुष्य की जातियां मानी गयी है।

कि पेट का भीतरी भाग रस उपजानेवाले अवयवो का बना है और बाहरी भाग मासपेशियो के कणो का बना है। जोड़नेवाले रेशे इसे बाधे और सभाले हुए हैं और उस के भीतर सारे पेट मे रक्त के अवयव घुसे हुए है जिन से रक्तवाहिनिया बनी हुई हैं। इसी तरह सारे पेट
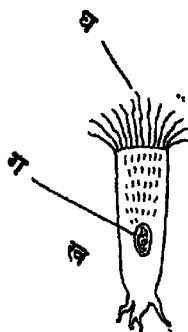
चित्र १००—स्तंभाकृति झालरदार सेल। ग-बीजाणु। घ-झालर

मे फैली हुई नाड़िया मे नाड़ीवाले अवयव भरे हुए हैं। परतु एक अनुवीक्षण यत्र मे हम इन अवयवो को देखते है तो जान पड़ता है कि ये एक स्वरूप नही हैं। प्रत्येक अवयव बहुत से अलग-अलग व्यक्तियों या टुकड़ो का बना हुआ है। इन टुकड़ो या व्यक्तियो को सेल
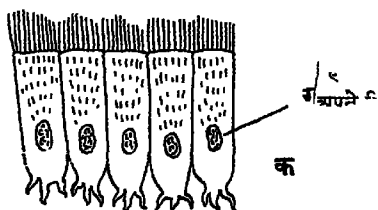
चित्र १०१—स्तभाकृति झालरदार सेलें। ग-बीजाणु। क-शेप।

कहते हैं। रक्त मे यह सेल अलग-अलग और स्वतत्र हैं। और अवयवो मे यह मिले हुए हैं।

बड़े-से-बडा प्राणी और मनुष्य भी अकेले एक सेल से जीवन का आरंभ करता है।

मनुष्य भी एक आहित* डिंद या आहिताड से बना है। यह आहिताड व्यास मे १।१२५ इन्च से ज्यादा नही होता। सेलो के सख्या मे बढ जाने से, स्थान बदलने से और रूप बदलने से इस का विकास होता है। पहले तो डिंब कटकर अपने सरीखे गोल-गोल या अडाकार सेलो में विभक्त हो जाता है। फिर भावी भ्रूण का खाका बनाने के लिए सेला की तीन पर्ते चारो ओर से घेर लेती हैं। इस खाके पर फिर विस्तार की कार्रवाई होनी है और खास-खास अगों की रूप-रेखा बनती है। बाहरी पर्तों से भावी मस्तिष्क, पृष्ठदेश, आख, कान, नाक, और बाहरी त्वचा की नीव पड़ती है। भीतरी पर्त यकृत, प्लीहा, आदि ग्रथियो की रूप रेखा बनाती है। बीचवाली पर्त रक्त-सस्थान बृक्कां मासपेशियो और ककाल की रूपरेखा बनाती है। इसी में जननवाले सेल भी रहते हैं जो शरीर के साधारण अवयवो से कुछ भिन्न होते हैं। यह केवल रूपरेखा की बात हुई। अभी तक इस से अधिक विकास नहीं हुआ है। भावी अगो का उल्लेख मात्र है, क्योंकि जिन सेलो के ये बने हैं वह भी प्राय. सब समान हैं और अभी तक भिन्न कार्यों के लिए उन मे विशेषता नहीं आयी है। इसीलिए यह अग अभी काम नहीं करते।

अब सेलो का गोल या घन रूप बदलने लगा और जिस रूप मे उन मे से हर एक काम करनेवाला है, अब उसी साचे मे ढलने लगा।†

रक्त के सेल दो तरह के होते हैं। श्वेताणु चचल होता है और अमीबा की तरह अपने आकार बदल सकता है और विजातीय पदार्थों को पचा सकता है। रक्ताणु लाल रग का होता है जिस में ओषजन और कर्बन-द्वयोषिद को सयुक्त करनेवाले लौहकण होते हैं जिन के कारण रक्ताणु का रग लाल होता है। रक्त के जिस रस मे श्वेताणु और रक्ताणु बहते हैं वह असल मे किसी रग का नही है। उस का लाल रग रक्ताणु के कारण हैं। रक्ताणु लबी हड्डी की वसा मे पैदा होता है और शरीर मे परिक्रमण करते करते प्लीहा में आकर अत मे नष्ट हो जाता है। जब किसी गड्ढे के चारों तरफ चिकने स्तर की जरूरत होती है तो उस की सीमा पर के सेल चिपटे हो जाते हैं और एक दूसरे मे मिल

---

* नरजीवाणु के मादा अंडे या डिंब में प्रवेश करने का नाम "गर्भाधान" है। जिस अंडे में नरजीवाणु प्रविष्ट हो चुका होता है उसे "आहित" कहते हैं। यही आहितांड जिस का विकास तुरंत आरंभ हो जाता है, "भ्रूण" भी कहलाता है।

† नरसेल या वीर्याणु और मादासेल या डिंब दोनों मे एक विशेष प्रकार के जीव-परमाणु रहते हैं जिन का पारिभाषिक नाम "जनी" है। हाल में (सं० १९८७ में) वैज्ञानिक पादरी गणित के विशेषज्ञ डाक्टर बार्न्स ने यह मत प्रकट किया है कि प्राणी जैसा कुछ होता है उसे बनानेवाली उस की भावी को निश्चित करनेवाली यही "जनी" है। जनी के जोड़े ने जैसा कुछ शरीर और जीव को बना दिया है, कोई लाख कोशिश करे उस से अधिक कोई प्राणी हो नही सकता। परंतु विशेष प्रकार और विकास जनी युग्म को मिलानेवाली संघात-शक्ति परमात्मा है।

जाते हैं। जब सेलो को शरीर के लिये रस बनाना और देना होता है अर्थात् किसी ग्रंथि का अंश बन जाना रहता है तो सेल लंबे हो जाते हैं और उन के भीतर रस के बिंदु
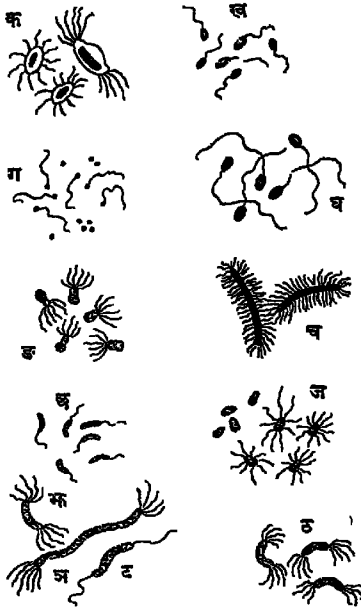
चित्र १०२—विविध-जीवाणु

क—ख—सूक्ष्म जीवाणु
ग—घ—हरी पीब के अंडाकार एक केशागवाले जीवाणु।
ङ—एक देश में केशाग-गुच्छ-युक्त वर्णजनक बड़े जीवाणु।
च—केशागमय बड़ा जीवाणु।
छ—कामा के आकार के हैजे के रोगाणु।
ज—चतुर्दिक केशाग युक्त आंत्रज्वर के रोगाणु।
झ ञ ट ठ—सिरो पर केशागवालेजीवाणु।

दिखाई पड़ते हैं। जिन सेलो में चर्बी के रूप में भोजन इकट्ठा किया जाता है वह चर्बी की बूँद के ऊपर कसी हुई खाल के रूप में फैल जाते हैं। कंकाल के कठोर अवयव भी सेलो से बनते हैं। अस्थिकल्प में अपने चारो ओर गोल सेल लसदार पारदर्शी पदार्थ के पर्त

के पर्त लपेट लेते हैं और हड्डी में उस के सेल क्रम से लग जाते हैं और अपने चारो ओर चूने के लवण से कठोर बेठन या आवरण बना लेते हे। जोड़नेवाले सूक्ष्म अवयव जिन सेलो के बनते है वह चीमड़े या लचीले सूक्ष्म रेशो के से होते है और यह सब छिटके-फुटके सेलो के बीच मे आ जाने से बन जाते हे। मासपेशिया भी सेलो की बनती हैं। वस्ति की सेले बहुत लबी होती हैं जिन मे देशातर रेखाओ की सी रेखाए दिखाई पड़ती हैं। हिलाने-डुलानेवाली मासपेशियो की सेले बहुत बड़ी होती हैं और एक-एक मे अनेक जीव-केंद्र होते हैं। इन मे धूप और छाया के-से एक-पर-एक लच्छे होते हैं जो जल्दी मुड़ने-सुकड़ने के लिए उपयुक्त होते हैं। नन्हें कीड़ों के डैनो मे इन का सब से अधिक विकास होता है। और इन्हीं के बल से इन डैनो का कल्पनातीत वेग से कपन होता है।

बाहरी चमड़े की सेले बराबर रूसी की तरह उड़ती और साफ होती रहती हैं। भीतरी चमड़े की गोल सेले बराबरा सख्या मे बढती रहती हैं और जब वह ऊपरी तल पर पहुँचती है तब चिपटी हो जाती हैं और कुछ कड़ी होकर उड जाती हैं। इस तरह पर ऊपरी खाल बराबर बदलती रहती है परतु हमे इस बात का पता नही लगता। अगर हम किसी अग पर बराबर पट्टी बाधे रहे, तो कुछ दिनो पीछे उस जगह की खाल इसीलिए उधड आती है।

मस्तिष्क भी सेलों का ही बना हुआ है। भ्रूण की दशा मे यह गोल होती है। इन में से दो-दो शाखाए निकलती हैं जो बहुत लबी हो जाती हैं। फिर उन मे भी शाखाओ पर शाखाए निकलती हैं। जो शाखाए सब से अत मे होती हैं वह बहुत बारीक होती है। वह अथियों और मासपेशियो की सेलो के साथ अथवा आँख कान या त्वचा के इद्रियग्रामो से मिलती हैं। इस तरह नाड़ी की सेलो के ताने-बाने शरीर के अग अग मे फैले हुए हैं जो जीवित बिजुली के तारो का काम करती हैं और एड़ी से चोटी तक फैली हुई हैं।

मस्तिष्क के अगले भागों की सेलें सब से अद्भुत हैं। उन्हो के द्वारा मन विचार करता है।

अत मे उन सेलो की कथा आती है जिन से जनन-क्रिया होती है। यह खास सेले हैं जो जननेन्द्रियो मे बनती हैं और जब प्राणी जवान होता है तब ये सेले स्वतत्र हो जाती हैं। आरंभ मे यह गोल हुआ करती हैं और इन का केंद्र बड़ा हुआ करता है। मादासेल या डिंब गोल रहता है और अपने भीतर भोजन की सामग्री इकट्ठा करने के कारण बड़ा भी हो जाता है। परन्तु नरसेल छोटा ही बना रहता है और अत मे वीर्याणु का रूप धारण करता है। उस का केंद्र घना और लबा हो जाता है। उसी से सिर जैसा गोल भाग बनता है और शेष अश बहुत चचल लबी पूँछ के रूप मे परिणत हो जाता है जिस के सहारे वीर्याणु तैरता रहता है और अत में डिंब तक पहुँच जाता है।

इस तरह प्रत्येक शरीर एक-एक भारी देश है जिस मे सेल-ही-सेल आबाद है। एक घन-सहस्राश मीटर मानव रक्त के भीतर कोई पचास लाख सेले तैरती होती हैं। साधारण मनुष्य के शरीर मे लगभग साढे तीन सेर रक्त होता है। इस हिसाब से शरीर मे केवल

रक्ताणुओं की सख्या पौने दो नील के लगभग है। इसी तरह और सेलो की लगभग सख्या भी निकाली जा सकती है। एक-एक शरीर में सख्यातीत सेले हैं, इतनी सेले हैं जितनी कि ससार में समस्त पिडजो की आबादी न होगी। इस विशाल सेल-साम्राज्य में, एक छोटा-सा विचार करने में, असख्य मस्तिष्क की सेलो की सहकारिता होती है। एक अगुली के हिलाने में मासपेशी के हजारो सेल एक साथ काम करते हैं। हृदय की एक गति में खर्बो रक्त की सेले रक्तवाहिनियो में बह जाती हैं। विकास करनेवाले जीवन के लिए ऐसी विविध सख्यातीत सेलो में प्रतिक्षण पूरी सहकारिता का होना बड़ा ही अद्भुत चमत्कार है।* यदि कहीं-कहीं सेलें बगावत करके मासवृद्धि या बदगोश्त आदि पैदा कर देती हैं तो कोई बड़ी बात नहीं है? परन्तु तो भी इन की बगावत इस दर्जे को पहुँचती है कि सारा सेल-साम्राज्य एक दिन काल के गाल में चला जाता है, सारे शरीर की मृत्यु हो जाती है। शायद प्रकृति इस बगावत में भी भावी विकास का साधन रखती है, इस भूल से भी चेतन-सेल शिक्षा पाती है।

४—पुनर्जनन या वृद्धि की समस्या

जीवित प्राणी का सब से आवश्यक गुण यह है कि अपने चारों ओर जितने रासायनिक पदार्थ पावे उन को अपने जटिल सादृश्य में परिणत करने के लिए पचा सके। जीवन के सभी प्रारंभिक रूपों में यह बात देखी जाती है कि वह बराबर पचाते और विसर्जन करते रहते हैं। परन्तु विसर्जन की क्रिया इतनी जल्दी नहीं होती जितनी कि पचाने की होती रहती है। फल यह होता है कि प्राणीकी बराबर वृद्धि होती रहती है। परन्तु आयतन की वृद्धि जितनी अधिक होती है उतनी अधिक ऊपरी तल की हो नहीं सकती। भीतरी आबादी को खिलाने के लिए भोजन ऊपरी तल के द्वार से आता है। शरीर की वृद्धि वहीं तक हो सकती है जहा तक उस के भीतरी सेलो को उपयुक्त भोजन मिलता रहे। बाहरी तल और आयतन में इसी दृष्टि से एक ऐसा अनिवार्य अनुपात है जिस के भग होने से वृद्धि रुक जाती है और ह्रास और वृद्धि का अनुपात समान हो जाती है। बड़े शरीरों में सब तरह के जीवन को ऐसी कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़ता है। परन्तु सेलो के सामने यह समस्या कभी नहीं आयी। उन्हें वृद्धि में जहा इस तरह की रुकावट पडी वहा वह तुरत बडे, लबोत्तरे हुए और बीच से कटकर दो हो गये। पहले एक प्राणी था अब दो हुए। इन में से हर एक प्राणी फिर बढकर दो हो जाता है। इस तरह सेलो की सख्या आयतन में बढ़ते जाने के बदले दूनी से चौगुनी, चौगुनी से

---

* हर सजीव पिंड में, चींटी से लेकर हाथी तक में, इसी तरह का अद्भुत संगठन और सहकार है। जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में भी है। इस अद्भुत संगठन का नियमन करनेवाला कौन है?

अढगुनी होती जाती है। इस प्रकार एक सेलवाले जतु और उद्भिज्ज तथा ऐसे सेल जिन जिनसे, कि बहुत से सेलोवाले शरीर बनते हैं इसी रीति से सख्या मे बढते जाते हैं। इस-तरह की वृद्धि मे नर-मादा की जरूरत नहीं पड़ती। इस विष से ही किसी पदार्थ का क्षय नहीं होता। एक सेल से अनेक सेले सहज मे बन जाती हैं और श्रुति के "एकोऽह बहुस्याम" महावाक्य को चरितार्थ करती हैं। प्रत्येक सेल जिस सेल मे से निकलती है वह सेल भी पूर्ण होती है। निकलनेवाली भी पूर्ण होती है। निकाली जाती है पूर्ण। बचती भी है पूर्ण। इस से श्रुति का यह मत्र चरितार्थ होता है—

पूर्णमदः पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ *

बहुत सेलोवाले अनेक छोटे-छोटे कीड़े इसी विधि से बढते है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि इस तरह प्राणियो का विभाग होने के पहले कुछ काल तक यह जजीर की तरह पर इकट्ठा जीवन व्यतीत करते हैं।

परतु विकास के आगे के मार्ग मे इस तरह की सख्यावृद्धि अधिकाधिक कठिन होती जाती है। षट्पद मे या अष्टभुज मे इस तरह कटके पुनः-सगठन असभव होगा और यदि यह क्रिया कुछ काल ले तो उस प्राणी की गति-विधि रुकी रहेगी और वह जल्द अपने दुश्मनो का शिकार हो जायगा।

जब शरीर अधिक जटिल हो जाता है और इस तरह आधा भाग कटकर सख्या-वृद्धि नहीं हो सकती तब अकुरण से काम लिया जाता है। मूगो मे और कुछ विशेष प्रकार के कीड़ों मे और कुछ रीढवाले अत्यत छोटे जतुओ मे भी अकुरण होता है। सारा शरीर ज्यो-का-त्यो रहता है परतु उस का एक छोटा-सा भाग कट जाता है और फिर छोटे से रूप मे वैसा ही पूरा शरीर बन जाता है। बढने और सगठन के काल मे यह अकुर अपने बड़े पैदा करनेवाले शरीर से लगा रहता है। जिन प्राणियो मे अकुरण जटिल हो गया है परतु वह इस विधि से पैदा करते है तो उन मे अकुरो का ज़जीर सा कुछ काल तक शरीर मे लगा रहता है और जब सगठन पूरा हो जाता है तब अपने-आप सब अकुर अलग हो जाते है। यह क्रिया भी उन्ही प्राणियो में होती है जिन के अस्थि-पजर मे अभी जटिलता नही आयी है और जिन की वृद्धि बराबर होती ही रहती है। इसलिए अकुरण की क्रिया बड़े प्राणियों और पौधो तक पहुँचने के पहले ही समाप्त हो जाती है।

अनेक सेलोवाले जतुओं और पौधो मे आगे की सतान पैदा करने मे जोड़ेवाली क्रिया का विकास होता है। जोड़ेवाली क्रिया से मतलब यह है कि दो अकेली सेले जुड़-कर एक सेल बन जाती हैं। इस क्रिया के लिए अनेक सेलोवाले दो प्राणियो की दो सेलें

---

* "वह पूर्ण है, यह पूर्ण है। पूर्ण मे से पूर्ण निकलता है। पूरे को पूरे मे से ले लेने पर निश्चय पूर्ण ही बचता है।"

अलग हो जाती है और मिलकर पहले तो एक सेल बनाती हैं और फिर एक से अनेक हो कर बहुत सेलोंवाली एक नयी व्यक्ति को उत्पन्न करती है। अनेक एक सेलवाले प्राणियों मे भी विभाजन की क्रिया के सिवाय जोड़ेवाली क्रिया भी होती है। दोनो क्रियाए बारी-बारी से होती रहती हैं। यहा दो बाते ध्यान देने की हैं। पहली तो यह कि बहुत छोटे-छोटे सीधे-सादे शरीरो मे अथवा सेलो के रूप मे जोड़े की क्रिया मे यह आवश्यक नहीं है कि दोनो मिलनेवाले प्राणी भिन्न-भिन्न लिग के हो, अर्थात् नर-मादा हो। दूसरी बात यह है कि आरंभिक जीवन मे जनन-क्रिया से और नर-मादा के भेद से कोई सबध नही है।

परतु बहुत से सेलोंवाले शरीर के जतुओ मे यह भेद आवश्यक हो गया है कि नर का वीर्याणु हो और मादा का डिब। इन का वर्णन हम अन्यत्र कर चुके है। जब यह बड़े प्राणी काफी बाढ को पहुँच जाते है तो अपने शरीर मे बहुत बड़े परिमाण मे बहुत काल तक सतान पैदा करनेवाली बहुत सूक्ष्म सेलों को उपजाते रहते है। एक साधारण बड़ा प्राणी अपने जीवन भर मे इतने वीर्याणु उत्पन्न करता है जितने कि सृष्टि की आदि से आज तक मनुष्य नहीं हुए हैं। ऐसे प्राणियो मे पुनर्जनन का एक ही उपाय जोड़े की क्रिया है जिसे हम "दाम्पत्य" कहेंगे।

छोटी-छोटी और बहुत सी अल्पायु सेलोवाले शरीरो मे जोड़े के द्वारा जनन में कुछ कठिनाई आ पड़ती है क्योंकि एक नन्ही सी जननी एक बार मे थोड़े से ही डिब उपजाती है। यदि जनको की आवश्यकता न पड़े तो दूनी व्यक्तिया सतान की उत्पत्ति मे लग सकती हैं। इसलिए जहाँ विभाजन या अकुरण के लिए शरीर अधिक जटिल हैं और जोड़े द्वारा उत्पादन के सब सुभीते नही हैं वहा एक और विधि सतान पैदा करने की देखी जाती है, जिसे पृथा-जनन या "अशुक्र-जनन" कह सकते हैं। इस मे वीर्याणु के प्रवेश बिना ही डिब का विकास होता है। जहा डिब को वीर्य्याणु-जनित उत्तेजना की अपेक्षा रहती है अर्थात् जहा शुक्राणु द्वारा गर्भाधान हुए बिना काम नही चल सकता, वहा डिब की वृद्धि रुक जाती है। पृथा जनन वाले डिंबो में उत्तेजना की आवश्यकता नही होती। वह ज्यो ही प्रौढता को पहुँचते है त्यो ही उन के भीतर शरीर-रचना होने लगती है। पौधो के नन्हें कीड़े बहुतेरे षट्पद और कई जल-भ्रमर गर्मी भर पृथा-जनन से काम लेते रहते हैं। नर मधुमक्खी भी इसी तरह पृथा जनन से पैदा होता है। उस की माता है। पिता नही हैं। रानी और काम करनेवाली मक्खिया वीर्य्याहित अडो से पैदा होती हैं।

इस प्रकार जनन-क्रिया के हिसाब से हम देखे तो चार प्रकार के प्राणी होते है। भेदज, अकुरज, दपतिज और अनाहिताडज। पुनर्जनन की क्रिया केवल वृद्धि की क्रिया है। वृद्धि जब एक शरीर मे अपनी हद को पहुँच जाती है तब अपने को अनेक शरीरो मे ऊपर की बतायी हुई चारो मे से किसी एक विधि से प्रकट करती है।

(५) नव-जनन

बराबर बढते जाने की प्रवृत्ति जैसे सतान उपजाने का कारण होती है उसी तरह

नव-जनन का भी कारण होती है। हम लोग नव-जनन को बड़े आश्चर्य की दृष्टि से देखते हैं क्योकि हमारे शरीर मे स्पष्ट रीति से नव-जनन की क्रिया दिखाई नही पड़ती और जो बड़े-बड़े जानवर साधारणतया हमारे अनुभव मे आते हैं उन मे भी नव-जनन नहीं देख पड़ता। परतु छोटे-छोटे प्राणियो मे नव-जनन केवल आवश्यक ही नही बल्कि अनिवार्य हैं। हमे यह याद रखना चाहिए कि शरीर का सगठन और उस की परिस्थिति दोनो मे साम्यावस्था से ही किसी पौधे या कीड़े का रूप रग निश्चित होता है। यह नियम तो जड़ पदार्थो मे भी लगता है। एक चीनी के बर्तन मे एक बूद पारा रक्खा हो और उसे दो टुकड़े कर डालिये तो जैसे उस का पूर्व रूप गोलाकार था वैसे ही उस के दोनों टुकड़े भी गोलाकार हो जायँगे। इस का कारण बर्तन और पारा और हवा तथा पारे के बीच धरातल के तनाव के नियम हैं। यदि पारा सजीव होता तो हम कहते कि उस का आकार गोल है। इसी प्रकार एक सेलवाले प्राणी को यदि हम दो या अधिक टुकड़े करे जिस मे उस के केन्द्र का पूरा या आशिक भाग आ जाय तो टुकड़े अपने को फिर से साम्यावस्था मे लाने का यत्न करेंगे और अपने पूर्व सपूर्ण रूप को ग्रहण कर लेंगे। वह टुकड़े भी ज्यो-के-त्यो पूरे हो जायँगे। यह उसी तरह बढेगे जैसे कि पूरा प्राणी बढ़ता है। अनेक सेलोवाले प्राणियो मे भी नव-जनन की अनत शक्ति है। परतु कुछ बड़े प्राणियो मे यह क्रिया जटिल हो गयी है। एक पत्र-कृमि या चपटे कीड़े का एक टुकड़ा अगर काट लिया जाय तो वह कटा टुकड़ा पहले एक नया शिरोदेश पैदा करेगा। यह नये सिरे से जमा हुआ सिर ज्यो ही बनेगा त्योंही उस टुकड़े के बाकी हिस्से को चलाने लगेगा। सिर से पूछ तक शरीर का क्रम ठीक हो जायगा। यह भी कहा जा सकता है कि शरीर का हर अगला हिस्सा पिछले पर शासन करता है। यदि शरीर के एक बग़ल मे काटा जाय तो घाव के अवयव काटने से इतने उत्तेजित हो जाते हैं कि वह हुकूमत करनेवाले सिर से झट अलग हो जाते हैं और अपने लिये नया सिर पैदा कर लेते हैं। दूसरी तरह पर भी काटा जा सकता है कि कटी हुई जगह पर नया अग निकल पड़े और वह पुराने ही अग के बस मे रहे। इस तरह एक फालतू पूछ बन जायगी। बनावटी रीति से इस प्रकार विचित्र रूपो के प्राणी उपजाये जा सकते हैं जिन के फालतू पूछ और सिर हो या दोनो ओर सिर हो।

कई स्पजो मे यह बात देखी गयी है कि एक से अधिक घटक व्यक्तियो मे कट जाने पर भी उन के टुकड़े बराबर बढते रहते हैं।

केचुओ के टुकड़े कर दिये जायँ और वह एक दूसरे के साथ बराबर जोड़ दिये जायँ तो एक बहुत लबा केचुआ बन सकता है। अथवा छोटे-छोटे दो टुकडे सिरो के जोड़ दिए जायँ तो एक छोटा केचुआ बन जायगा। बीचवाले टुकडे को उलट दे कि जो हिस्सा मुह की ओर था पूछ की ओर हो जाय तो ऐसा भी बन जायगा। यह सब केचुए शुद्ध और स्वस्थ होगे। हैरिसन ने तो मेढक के बच्चों पर कलम लगाने की क्रिया की है। एक जाति के मेंढक के बच्चे का सिर दूसरी जातिवाले की पूछ से जोड दिया। यह बनावटी बच्चा बढा,

बड़ा हुआ और साधारण मेंढक हो गया। विशेषता यही थी कि दो रगो का मेल होने से उस का आधा शरीर एक रग का था और दूसरा आधा दूसरे रग का।

जब हम प्राणि-जीवन के सबध में ऊचे उठते हैं तो नवजनन की शक्ति घटती हुई पाते है। यदि हम किसी केकड़े को या छोटी गोह को बीच से काट दे तो वह मर जायगी। परतु कोई अग काट दें तो वह अग फिर से जम सकता है। छिपकिली की दुम कट जाती है तो फिर जम आती है। उस से भी अधिक ऊँचे उठने पर पशु-पक्षियो मे इतनी भी शक्ति नहीं रह जाती कि वह अपनी कटी हुई पूछ जमा सके। अब भी बहुत थोड़ी थोड़ी हानियो की पूर्ति हो जाती है। जैसे कोई घाव भर सकता है अथवा किसी अग का बहुत छोटा अश किसी दूसरे प्राणी के वैसे ही छोटे अश से जोड़ दिया जा सकता है।

विकास-क्रम मे ज्यो-ज्यो हम ऊचे उठते हैं त्यो-त्यो नवजनन की क्रिया घटती जाती है। मेढक का कोई अग काट दिया जाय तो वह उसे फिर जमा नही सकता। परतु मेढक के बच्चे का कोई अग काटा जाय तो वह जमा सकता है। मेढक के बच्चे को दो टुकड़ो मे विभक्त कर दीजिए तो वह जी नहीं सकता, परतु नवजात दशा मे वह दो टुकड़े किए जाने पर भी जी सकता है और दो स्वतन्त्र और पूरे मेढक बना सकता है। यह बात मनुष्य के भ्रूण तक मे देखी जाती है। जोडुआ बालक कभी-कभी भाई-बहन और कभी दोनो बहने या दोना भाई पैदा होते हैं। यह बात अक्सर देखी जाती है कि जब भाई बहन होते हैं तब तो रूप मे उतना ही अन्तर होता है जितना भाई-बहन मे साधारणतया हुआ करता है। परतु जब दोनो भाई या दोनो बहने होती हैं तो रूप में इतनी समानता होती है कि एक दूसरे से पहचान नहीं हो सकती। यह दूसरे प्रकार के जोडुवा तब पैदा होते हैं जब भ्रूण की अत्यत आरभिक दशा मे किसी दुर्घटना के कारण दो स्वतत्र टुकड़े हो जाते हैं। इस तरह एक ही वीर्यांणु और डिब से बने हुए शरीर के दो स्वतन्त्र मनुष्य पैदा होते हैं।

बदगोश्त या मास-वृद्धि का रोग प्राकृतिक वृद्धि-क्रिया का ही एक तरह का विकार है। शरीर के कुछ सेल साधारण सगठनवाले सेलो से और शरीर के साघातिक शासन से अलग होकर अपने मन की अनियमित वृद्धि का काम करने लगते हैं। किसी-किसी बात मे तो वह ऐसे उद्धत हो जाते हैं कि उन की बढने की क्रिया बड़ी तेज हो जाती है और शरीर की सहकारिता से वह बिल्कुल अलग हो जाते हैं। फल यह होता है कि बदगोश्त बढता है, कटवा दिया जाता है, और फिर बढता है और अधिकाश शरीर के नाश का कारण बन जाता है।

मिस स्लाई ने कुछ चूहियो पर अद्भुत प्रयोग करके देखे। कई चूहियो को गर्भाशय मे मासवृद्धि का रोग हो गया था। इन रोगिणियो मे से कुछ अलग रखी गयीं, और कुछ को बच्चा पैदा करने का अवसर दिया गया। जो अलगायी गयी थीं उन मे रोग बड़ी तेजी से बढा और वह एक महीने मे मर गयी। जिन को जोड़े के साथ रखा गया था उन्हें बच्चो के झोल-के-झोल बराबर होने लगे। मास-वृद्धि तब तक रुकी रही जब तक बच्चे होते रहे। जब बच्चो का पैदा होना बद हो गया तब मास-वृद्धि ज़ोरो से बढी। जान पड़ता है कि भ्रूण और मास-वृद्धि दोनो मे गर्भ के भीतर भोजन पाने की होड़ लगी हुई थी जिस मे भ्रूण ही

सफल होता रहा। उस की सफलता इस दर्जे तक रही कि रोग को बढने के लिए भोजन नहीं मिलता था। मास-वृद्धि के प्रश्न पर वैज्ञानिको ने अभी कुछ निश्चय नहीं कर पाया है। खोज जारी है। परतु वृद्धि के विषय से उस मे बड़ी सहायता मिल सकती है।

६—जरा और मरण

एक सेलवाले प्राणियों का भेद द्वारा दो हो जाना मरना नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्ति पहले थी वह व्यक्ति नहीं रह गयी, यह बात भी निश्चय रूप से नहीं कही जा सकती। सभव है कि जो व्यक्तियाँ अब है उन मे से एक व्यक्ति वही हो जो पहले थी। यह भी सभव है कि उस व्यक्ति का लोप हो गया हो और बिल्कुल दो नयी व्यक्तियाँ पैदा हो गयी हों। केवल इसी दूसरे अर्थ मे पहली व्यक्ति का मरण समझा जा सकता है। जो हो कम-से-कम कोई लाश बरामद नहीं हुई। व्यक्तिया प्रकट होती हैं और लुप्त हो जाती हैं परतु एक ही वस्तुसत्ता के निरतर बढते और कटते रहने मे भी जीवन की अनवरत धारा बराबर एक-सी जारी रहती है। शरीर मे परिवर्त्तन बराबर होते रहते हैं परन्तु बहुत काल तक रूप ज्यो-का-त्यो बना रहता है। यदि बीच मे कोई दुर्घटना न हुई तो स्वाभाविक मृत्यु तो अनिवार्य है। साधारणतया विकास के क्रम मे हम ज्यो-ज्यो ऊचे उठते है त्यो-त्यो यह देखते हैं कि व्यक्ति का शरीर अधिकाधिक काल तक ठहरने लगता है। शरीर के बढते रहने का काल इतना लम्बा नहीं होता जितनी लबी वह प्रौढावस्था होती है जिस मे वृद्धि और ह्रास लगभग बराबर रहते हैं। छोटे जानवरो मे वृद्धि मरणकाल तक बराबर जारी रहती है। परन्तु बड़े प्राणियो मे वृद्धि का काल जल्दी ही बीत जाता है और युवावस्था तक पहुंचते-पहुंचते परिवर्त्तन का वेग अत्यन्त घट जाता है। बहुत से छोटे प्राणियो मे जिन कारणो से बुढापा आता है उन्हे लौटाया भी जा सकता है और कभी-कभी बुढापे को आने से रोका भी जा सकता है। जैसे एक सेलवाला प्राणी जब दो बनने के लिए बढने लगा तभी उस के शरीर के एक-एक अश को काट दिया जाया करे तो जब तक हम चाहें तब तक उस प्राणी को दूने होने अथवा लुप्त होने से रोक सकते हैं। हम कह चुके हैं कि चिपटे कीडे के टुकड़े कटकर नवजनन द्वारा अनेक हो जाते हैं। ऐसी ही एक को लेकर हम भूखा रखे तो वह अपने शरीर से ही अपना पोषण लेता रहेगा और छोटा होता जायगा। साथ ही चचल भी होता जायगा। यो तो वह पुनर्जनन कर के खतम हो जाता परतु बहुत काल तक भूखा रख कर उसे नौजवान बनाया जा सकता है और फिर खिलाकर बढाया जा सकता है। और फिर भूखा रखकर फिर से जवान किया जा सकता है। इस तरह अनत काल तक उसे जीवित रखा जा सकता है।

परतु इस तरह की रीतियो से बड़े प्राणियो को दीर्घजीवी नही बना सकते। उन्हें दीर्घजीवी बनाने के उपायो मे से परिस्थिति को अनुकूल बनाना एक उपाय है। शायद सभी ठडे रक्तवाले प्राणियो मे और षट्पदो मे भी ठढ से आयु बढ सकती है। पन्तु गरम रक्तवाले प्राणियो मे जिन मे प्रौढ होने के बाद वृद्धि नहीं होती, इन विधियो से काम

नहीं ले सकते। प्रौढावस्था एक प्रकार से साम्यावस्था है। जब साम्यावस्था का सामजस्य बिगड़ जाता है तब बुढापा आ जाता है और मरण अनिवार्य हो जाता है। अभी हाल मे एक बात यह जानी गयी है कि शरीर के कई अवयव अमर होने का सामर्थ्य रखते हैं यद्यपि शरीर को एक दिन मरना ही है। जीवित प्राणी से इन अवयवों के टुकड़े निकाल कर पोषक द्रवों मे रखा गया है और द्रवो को समय-समय पर बदला गया है। न्यूयार्क मे कारेलने अडे फोड़ने के पहले ही मुर्गी के बच्चे के योजक अवयव का इसी तरह का टुकडा निकाल लिया और इसी प्रकार इतने काल तक उसे सजीव रखा जितने काल तक साधारणतया मुर्गी जीवित नहीं रहती। और बड़े मारके की बात तो यह है कि उस के घटक सेलों का बराबर बढता रहना जारी रहा। भिन्न-भिन्न अवयवों की वृद्धि और ह्रास के सामजस्य के बिगड़ने से यदि मृत्यु होती है, तो यदि यह मालूम हो जाय कि हम किस प्रकार विविध अवयवों को पुष्ट कर के चिरजीवी करें और सामजस्य बनाये रक्खे, तो व्यक्ति को दीर्घायु करने मे शायद हम समर्थ हो सकें।

७—प्रणाली-रहित ग्रंथियां

जरा-मरण के सबध मे विज्ञान अभी तक पर्याप्त खोज नहीं कर सका है और हमारा ज्ञान इस सबध मे बहुत थोड़ा है। तो भी हम यह कह सकते हैं कि जरा-मरण का रहस्य शायद प्रणाली रहित ग्रथियों मे और नाड़ी-मडल मे, विशेषतः मस्तिष्क मे, छिपा हुआ है। प्रणाली-रहित ग्रन्थियां वह अग हैं जो अपने रस सीधे रक्त मे छोड़ते हैं। शरीर की बाढ पर इन रसों का असाधारण अधिकार है। शरीर की क्रिया के बढ़ाने घटाने और उस के विविध अवयवों की सहकारिता के ऊपर इन रसों का सामान्य प्रभाव है। मस्तिष्क मे श्लैष्मिक ग्रथि* विशेष रूप से ककाल की वृद्धि के ऊपर बड़ा प्रभाव रखती है। यह ग्रथि जितना ही विकास करती है उतना ही बडा ककाल होता है।* काकलक ग्रन्थि या चुल्लिका† ग्रन्थि तो प्राणाग्नि ही समझी जानी चाहिये। यदि यह कम हो तो शरीर की आग घट जाती है और मृगाशाेथ रोग हो जाता है जिस से शारीरिक और मानसिक क्रियाएं शिथिल पड़ जाती है। यह ग्रथि बहुत बढ जाय तो भी शरीर का ह्रास होने लगता है, नाड़ी का वेग बढ जाता है। भूख तो बढती है पर क्षय भी बढता जाता है। नाड़ी-मडल मे दुर्बलता आ जाती है। इसी प्रकार जननेंद्रियों का एक अवयव जिसे अतराल ततु कहते हैं, ग्रथि की तरह व्यवहार करता है और एक ऐसा रस बनाता है जिस का प्रभाव शरीर के नर या मादा-वाले विशिष्ट अगों की बाढ पर पड़ता है। यह मस्तिष्क को भी उत्तेजित करके दाम्पत्य भावों को जाग्रत करता है।

ऐसा समझा जाता है कि इन ग्रथियों के व्यापार से जीवन का बहुत बड़ा सबध है।

---

* पिट्युइटरी ग्लैंड। † थैरोइड ग्लैंड।

इन के व्यापार में बुढापा के आने पर शिथिलता आ जाती है, अथवा यह कहना भी ठीक है कि इन के व्यापार में शिथिलता आना ही बुढापा है। इन्हीं के कार्यों में अत्यंत शिथिलता ही मृत्यु की तैयारी समझी जानी चाहिये। यह ग्रंथियां जीव को सुखी रखती हैं। इन की शिथिलता से जीवन में कोई रस नहीं रह जाता। प्राणी उस से ऊब या थक जाता है।

प्रोफेसर मेचनीकाफ का कहना है कि मेरे देखने में स्वाभाविक मरण के जितने मामले आये उन में मैंने यही देखा कि मरने में कोई कष्ट नहीं हुआ बल्कि मरनेवाले मृत्यु को उसी तरह चाहते थे जैसे थका हुआ आदमी सुख से सोना चाहता है।

बारहवां अध्याय

मनुष्य का अन्नमय कोष

१—पुराने निशान

मानव शरीर ऐसा यंत्र है जिस की तैयारी के लिए प्रकृति करोड़ो बरस तक भिन्न-भिन्न ठठरियों पर अपना हाथ साफ करती रही है और कई करोड़ बरस हुए कि उस ने मनुष्य का शरीर बना पाया है। शायद यही कारण है कि मानव शरीर के भीतर अब तक कई अग वा अगो के अश ऐसे रह गये हैं जिन्हें प्राचीन नमूनों के चिह्न-मात्र समझना चाहिए और वर्त्तमान शरीर मे वास्तव मे जिन की कोई आवश्यकता नही है। प्रकृति ने मनुष्य के शरीर से अनावश्यक अशो को धीरे-धीरे दूर किया है और अब भी दूर करती जा रही है।

जन्म के पहले बच्चे का सारा शरीर बारीक बालो से ढका रहता है और प्रौढ मनुष्यो के शरीर मे सिर और मूछ दाढी आदि के सिवा जो सौंदर्य के लिए आवश्यक है सारे शरीर मे जो रोएँ हैं उन की तो कोई आवश्यकता नही है। इन की आवश्यकता सभी प्राणियो को उस जमाने मे थी जब इस धरती पर हिमप्रलय था। यह उसी समय की निशानी मालूम होती है। हमारे सिर के दाहिने-बाये बगल अस्थिकल्प के जो टुकड़े वास्तविक कान के ऊपर लगे हुए हैं और जिन्हे हम कान कहते हैं वह असल मे सुनने मे कोई मदद नही देते। घोडे के कान नोकदार होते हैं। जब उसे सुनना मजूर होता है तब वह शब्द तरगों को कनौतिया उठा कर अपने श्रवणेंद्रिय मे प्रवेश कराता है। हमारे कानो को भी हिलाने के लिए सात [illegible] भी हैं तो भी कोई इक्का-दुक्का ही उन मे से एक दो को काम मे ला सकता है। इसीलिए यह कान [illegible] के विकास की पुरानी कहानी सुनाने को रह गये हैं। आख के भीतरी कोने मे जो जरा सा मास का बढा हुआ टुकड़ा दिखाई पड़ता है वह भी अत्यन्त प्राचीन विकास की कहानी कहता है। आज उस को कोई जरूरत नहीं है। पिंजड़े के मुर्गे को देखा गया है कि कभी-कभी वह अपनी आख के कोया पर एक सफेद झिल्ली फेर लेता है। हमारी आख का वह मास का टुकडा यही चीज सिकुड़ी हुई है। पहले इस से आख की धूल झाडी जाती थी। अब उस से अच्छा बदोबस्त होने के कारण उस का लोप हो रहा

है। प्रायः और सभी पिडजो की आखो मे यह तीसरी पलक पूर्ण विकसित रूप मे होती है।

जीवित उरगों की शरीर की परीक्षा से और प्राचीन ठठरियों को देखने से भी पता चलता है कि ऐसे भी प्राणी थे कि जिनके सिर मे बीचो-बीच तीसरी आख हुआ करती थी। आजकल भी उरगो को यह तीसरी आख होती है, पर वह एक चमड़े से ढकी रहती है और काम मे न आने के कारण वह धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। पक्षियों और पिडजो मे यह और गहरे घुस गयी है और ज्यादा खराब हो गयी है। मनुष्य मे यह तीसरी आख और भी छोटा अग बन गयी है और मस्तिष्क के बीचो बीच से निकली जान पड़ती है। यह तो निश्चय
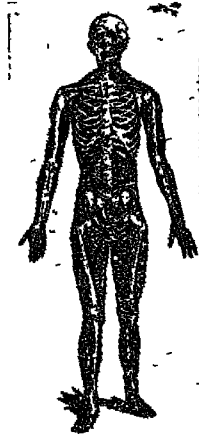
चित्र ००३—मनुष्य की ठठरी

हमारे शरीर की रचना से] [ग्रन्थकार की कृपा

पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसका कोई काम नही है। यह अग रहस्यमय है, परतु तो भी करोड़ो बरस पहले की तीसरी आख से इस का सबध मिलता है।

मनुष्य के दहिनी ओर पेड़ू में जहा छोटी बड़ी आतो का जोड़ है, ठीक उसी जगह लगभग छः अगुल लबी अधात्र है जो अधी गली की तरह बद है और रोग और पीड़ा का स्थान होने के कारण बदनाम है। आजकल लाखों आदमियों ने इसे कटवाकर निकलवा दिया है परतु उन्हें कोई हानि नही पहुँची है। यह भी प्राचीन शाकाहारी पिंडजों के एक विशेष अग की निशानी रह गयी है।

मनुष्य की रीढ की हड्डी के अत मे वस्ति के पास एक हड्डी है जिसे पुच्छास्थि कहते

हैं। यह किसी प्राचीन युग की पूछ की निशानी है। कभी-कभी बच्चे पैदा होते हैं तो वह अर्श पूछ की तरह निकला-सा भी होता है और वह हिला भी सकते हैं। इस तरह के एक दो नहीं, गिनकर पूरे एक सौ सात अग और अगाश मनुष्य के शरीर मे है जिन्हे प्राचीन काल का चिह्न मात्र समझना चाहिए और जिन की कोई उपयोगिता अभी तक जानने मे नहीं आयी है।

२—पाचन-संस्थान में मुख की गुहा

जीवन की सब से अधिक महत्व की क्रिया भोजन करना और उसे पचाना है। मनुष्य के शरीर मे इस काम का आरभ मुख से होता है और इस का अत मलद्वार से समझने मे कोई हर्ज न होगा। मुह इस पाचन-सस्थान का फाटक है, इस बड़े महल के रसोई घर का
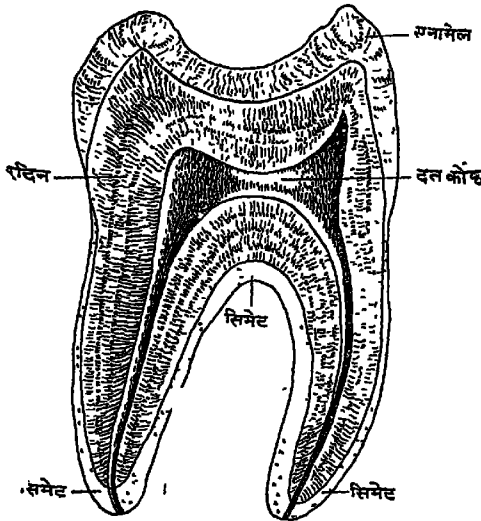
चित्र १०४—दांत की रचना [आवन के अनुवर्तन में

सिंहद्वार है। इस के ऊपर तीन बड़े-बड़े पहरेदार नियुक्त हैं। दो आखे और एक नाक। यह तीनो बराबर जाचा करते हैं कि मुह के भीतर जानेवाली चीजे ठीक हैं या नहीं। फिर जीभ के ऊपरी भाग मे हजारों बारीक अग हैं जो चखकर अन्न को भीतर भेजते हैं। उन के

ऊपर बहुत बारीक खाल होती है जिन मे से घुसकर चखनेवाली नाड़ियों के सिरे तक अन्न के रस पहुँच जाते है। यह नाड़िया तुरत दिमाग को ज्यों ही खबर पहुँचाती हैं कि सब ठीक है त्यों ही और नाड़िया नीचे के जबड़े के मासपेशियो को चला देती हैं और ग्रास का पीसना शुरू हो जाता है। पीसनेवाले यत्र दात हैं। रुचक या दतवेष्ट और रदिन यह दो कठोर पदार्थ दात के भीतर के नरम भाग को ढके रहते हैं। इसी नरम भाग मे नाड़िया और रक्त-वाहिनिया रहती हैं। जड़ो के ऊपर एक प्रकार का सीमेंट या सघातवाला मसाला लिपटा
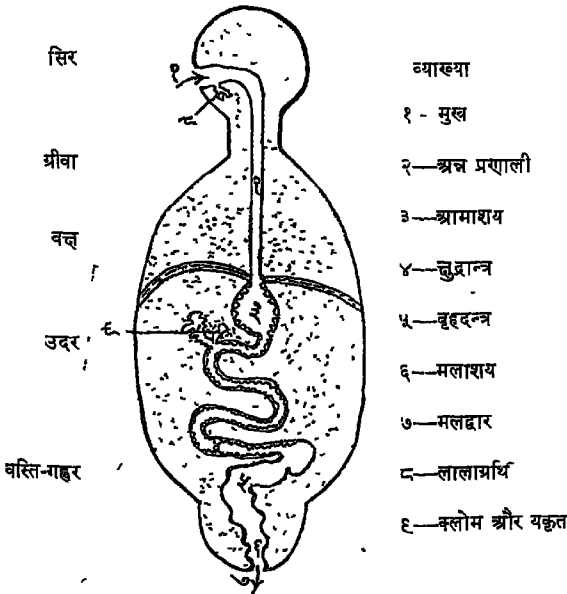
चित्र १०९—अन्नमार्ग और उसके मुख्य भाग।

डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

रहता है जिस से कि दात अपने ऊखल मे जमा रहता है। ऐसी कठोरता से भी कसा नहीं रहता कि कड़ी चीज तोड़ने मे दाढें दुखने लगे। जड़ के चारों ओर गद्दी सी रहती है जिस से धक्के का प्रभाव कम पड़ता है। इन दातो के बनाने के लिए सेलो की एक विशेष सेना बचपन मे ही लगा दी जाती है। वह ठीक-ठीक मसाले को बच्चे के भोजन से निकाल-निकाल कर एक-एक परमाणु को अलग-अलग ठीक वैज्ञानिक विधि से जोड-जोड कर बालक के सुदर दात बनाती है। हमारे बनाये नकली दात तो इन के सामने अत्यत फूहड हैं। और

यह कारीगर अपने काम को बिल्कुल ठीक समय पर करते हैं, न पहले न पीछे। परन्तु इन कारीगरों को आगे चलकर कठिनाई का सामना करना रहता है। बालक का जबड़ा तो अभी बढ़ता जायगा। उस की बाढ़ के अनुकूल दाँत जैसी कठोर चीज को आगे चलकर बढ़ा देना तो सम्भव नहीं है। इसलिए हड्डी बनानेवाले सेल दूध के दाँतों को धीरे-धीरे अपने काम में लगाने लगते हैं और भीतर के बहुत से भाग को खर्च कर डालते हैं। गिरा हुआ दूध का दाँत छिलका मात्र है। नये दाँत बड़े हुए जबड़े के अनुकूल निकलते हैं। कुछ वैज्ञानिकों की राय है कि सभ्यता के फैलने के कारण लोग दाँतों से अब कम काम लेते हैं। अब भोजन ऐसा करते हैं कि चबाने की जरूरत कम पड़ती है। इसलिए धीरे-धीरे दाँत कमजोर होते जाते हैं और बहुत काल पीछे बिना दाँत के मनुष्य होंगे। परंतु हम सभ्यता महारोग का मुकाबिला करने के लिए यदि दाँतों से काफी काम लें, खूब चबा-चबा कर खाया करें, तो ऐसी स्थिति कभी न आने पावे।
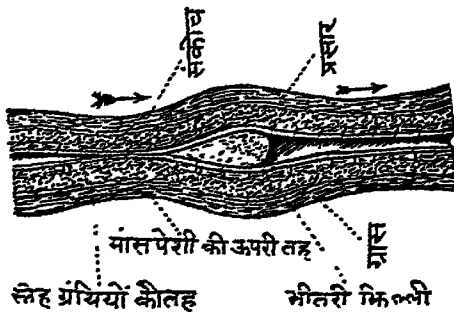
चित्र १०६—ग्रास की यात्रा

[विलियम्स एंड नारगेट] [सर आर्थर कीथ का अनुवर्त्तन

ज्यों ही पिसाई शुरू होती है त्यों ही तीन जोड़ी ग्रंथियाँ ग्रास में लाला डालने लगती हैं और भोजन सनने लगता है। ग्रंथियाँ भी विचित्र हैं। भोजन की शकल देखते ही लाला निकालने लगती हैं। इन ग्रंथियों में जो सूक्ष्म सेलें लाला रस बनाती हैं वह अद्भुत यंत्र हैं जो अभी तक समझ में नहीं आये हैं। लाला में निन्नानवे भाग जल है और एक भाग ऐसे पदार्थों का है जो मंडमय भोजन को द्राक्षाशर्करा में बदल देते हैं। हम लोग जो खाते हैं उस में मंड या नशास्ता अधिक होता है। इसीलिए खूब चबाना जरूरी है कि लाला अच्छी तरह मिले। फिर तो आधे घंटे तक पेट में शक्कर बनाने की क्रिया जारी रहती है। लाला के खूब न मिलने से तरह-तरह की बीमारियाँ होती हैं।

ग्रास का निगला जाना भी साधारण बात नही है। जब ग्रास तैयार हो जाता है तो मुह के भीतरी हिस्से के पीछे के नाड़ीजाल खबर देते हैं कि भोजन जाने के लिए तैयार है। जब हम चबा रहे थे तब पीछेवाली मासपेशियो ने भीतरी नाली को बन्द कर रखा था। अब उन्हो ने ढीला कर दिया। नीचे के जबड़े ने ऊपर को दबाया। कोमल तालू ढालू बन गया। और मासपेशियों ने नाक और फेफड़े के वायुमार्गों को बन्द कर दिया। इस तरह सारे यत्र ने मिलकर अन्न को उस के मार्ग के पहले भाग या पहली मंजिल मुखकठ मे पहुंचाया। यो ही कभी जरा-सा अन्न राह भूलकर कहीं वायुमार्ग मे चला जाता है तो और मासपेशिया अपने आप उन्हें खांस कर बाहर निकाल देती हैं। मुँह के भीतर अनेक रास्ते हैं। गले के भीतर अन्नमार्ग और वायुमार्ग हैं। इस के ठीक ऊपर की ओर नाक के पीछेवाली नाली है और उसी मे दो कठकर्ण नालिया हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि जहा कई मार्ग मिलते हैं वहा अच्छी चौकसी रखी जाय।

३—पाचन-संस्थान में आमाशय की थैली

मुखकठ से अन्न को एक लबी यात्रा करनी पड़ती है, क्योकि मलद्वार तक इस मार्ग की लबाई अट्ठारह हाथ से अधिक है। इतने लबे रास्ते से ले जाने का कारण यह है कि इस मार्ग मे सैकड़ो कारखाने हैं जहा सेल रूपी मजदूर अन्न मे से अपने-अपने काम की चीजे निकाल कर ले लेते है और बाकी को आगे बढने देते हैं। रास्ता इतना लबा न हो और माल के जाने मे देर न लगे तो कारखाने का सारा काम सुभीते से नहीं हो सकता। ग्रास के गले के नीचे उतरने की क्रिया भी समझने लायक है।

मुखकठ की राह से ग्रास ज्योंही चला त्योंही उस का दरवाजा बन्द हो गया। ग्रास के पीछे की नाली सिकुड़ गयी और बराबर यही सिकुड़न धीरे-धीरे आगे बढती जाती है और अपने आगे से ग्रास को खसकाती जाती है। ग्रास ज्यो ही गले के भीतर पहुचता है त्यो ही वह एक ऐसे अग को अपने आप दबा देता है जिस से कि उस के पीछे से सिकुडना जारी हो जाता है। वह ज्यो-ज्यों आगे बढता है त्यो-त्यो सिकुड़नेवाले अग दबते जाते हैं और उस की आगे की राह अपने आप खुलती भी जाती है और ग्रास की गति मे रुकावट नही पड़ती।

अब अन्न आमाशय या मेदे मे पहुँचता है और मथा जाता है। मथने समय उस मे पेट के भीतर उपजे खटाईवाले रस और खमीर कई घटे तक बराबर मिलते रहते हैं। बायी तरफ हृदय से लेकर बड़ी दूर तक पेट चला गया है। परन्तु ऊपर का उस का बड़ा हिस्सा पाचन से कम सबध रखता है। जब अन्न पेट मे आधी राह तक पहुँच चुकता है तब पाचक रस उसमे मिलने लगते हैं। और जब तक वह पेट के निचले भाग मे नहीं पहुँच जाता तब तक मिलना जारी रहता है। पेट मे मासपेशियो के तीन पर्त हैं जो दिनभर गीले भोजन को बराबर मिलाते रहते हैं। समझदार भले चगे आदमी का पेट चार घटे मे यह काम पूरा कर लेता है। उसे फिर भोजन की

आवश्यकता पड़ती है। वह एक विशेष रूप में अपनी मांसपेशियों को ऐंठने लगता है। इस की खबर नाड़ीजाल दिमाग को पहुँचाते हैं। इसी को भूख लगना कहते हैं।
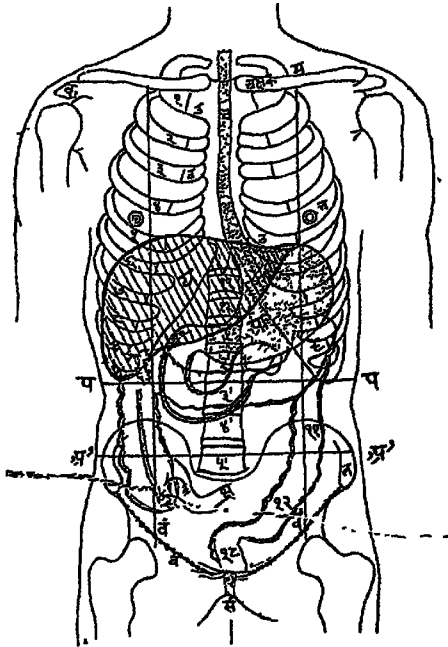
चित्र १०१—अन्नमार्ग के विविध भाग और पाचन का काल

डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

इस चित्र में उदर के नौ प्रदेश दिखाये गये हैं। और यह भी दिखाया है कि अन्न-प्रणाली, आमाशय, यकृत, क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र शरीर में कहाँ-कहाँ रहते हैं। भोजन कितनी-कितनी देर में किस-किस भाग में पहुँचता है। यह बात ४॥, ७॥, ११, १२ और १८ अंकों से विदित होता है। ये अंक घंटा बताते हैं।

१—१० तक = पसलियाँ। उ = उपपर्शुका। च = चूचुक या स्तनवृन्त। ११, १२ वक्ष के कशेरुका। क = अंसकूट। म = अक्षक का मध्य। अ = अन्न-प्रणाली। आ = आमाशय। य = यकृत। न = पूर्वोर्ध्वकूट। क्ष = क्षुद्रान्त्र का अन्तिम भाग। व = वंक्षण या खड़ी रेखा। इस के ऊपर को उरस्थल पर बढ़ावें तो अक्षक के मध्य तक पहुँचेगी। प प = पर्शु का अधो रेखा। अ' अ = अर्बुदान्तरिक रेखा। चूचुक चौथे पर्शुकान्तर में रहता है। व = वंक्षण बन्धन।

आमाशय की भीतरी भीत में बड़ी प्रचुरता से रक्त पहुँचता है और उस में चारो तरफ हजारों सूक्ष्म ग्रंथिया हैं जो आमाशयिक रस बनाती हैं। ज्योंही आदमी खाने बैठता है त्यों हीं इन ग्रन्थियों को बेतार का तार पहुँच जाता है। और ज्योंही जिह्वा चखती है ताकीदी तार पहुँचते हैं। खून पेट की दीवारों की ओर दौड़ता है और उस से पोषण लेकर ग्रंथिया तुरत पाचक रस बनाती हैं और अन्न पर डालती हैं। अन्न के बहुत बड़े भाग पर तो पेट का प्रभाव नही पडता। आमाशय मे तो पचना आरंभ होता है। शर्करा, नशास्ते या मड, और स्नेह अर्थात् घी तेल चर्वी आदि दूसरे विभाग को सौंप दिये जाते हैं। आमाशय में तो नोषजनीय वा प्रोटीन वा अल्ब्युमिन अन्न ही पचाया जाता है। यह अधिकाश दाल, मास, मछली, अडे आदि होते हैं। यहा यह चीजें तोड़ डाली जाती हैं। और चूसे जाने योग्य बना ली जाती हैं। स्वय पेट उस अन्न का बहुत थोड़ा अंश सोखता है। मास दाल आदि का कुछ रस पेट मे से ही सीधे रक्त में पहुँच जाता है। परन्तु अन्न का बहुत बडा भाग सोलह हाथ लंबे रसोई घर मे जाता है। यहीं पकाया जाता है, इसी लिए इसे पक्वाशय भी कहते हैं। यहीं पका कर सोख भी लिया जाता है। यह बात भी हर आदमी को जानना चाहिए कि पेट के भीतर काम करने के लिए रक्त कुछ काल के लिए दिमाग से आता है। इस लिए खाना खाते हुए या खाने के बाद दिमागी काम लेना अस्वाभाविक और हानि कर है।

४—पाचन-संस्थान में पक्वाशय

पेट के थैले के निचले भाग में जहा अन्न मार्ग फिर नली की तरह हो जाता है एक बहुत मजबूत गोल मासपेशी है जो द्वार की रक्षा करती है और बिना सना हुआ और पकने के लिये वे तैयार भोजन को पक्वाशय के भीतर नहीं जाने देती। अन्न का स्पर्श होते ही वह और भी सिकुड़ जाती है और मार्ग बिल्कुल बन्द कर देती है। जब विशेष प्रकार की रासायनिक क्रिया से उसे भोजन की तैय्यारी की सूचना मिलती है तभी वह भोजन को पक्वाशय मे जाने देती है। जब भोजन पक्वाशय में जाने लगता है तो बड़े वेग से उस मार्ग से निकलता है।

पक्वाशय के पहले भाग मे एक बड़े महत्व की क्रिया होती है जिस से पता चलता है कि शरीर मे डाक का भी विभाग उसी तरह है जैसे तार का विभाग। आख ज्योंही भोजन को देखती है त्यो ही दिमाग को खबर देती है और दिमाग लाला और पेट की ग्रंथियों को काम मे लगा देता है। यह तो तार का विभाग हुआ। आमाशय मे से खटाई से सना हुआ भोजन जिसे हम आहार रस कहते हैं जब पक्वाशय की दीवारों को छूता है तो उसी मे की ग्रंथिया तुरत ही एक प्रकार का रस बनाती हैं जिसे हम "स्त्रविण" या हारमोन कहेंगे। वह स्त्रविण को रक्त मे छोड़ती हैं। रक्त उसे सारे शरीर मे लेकर बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। परन्तु उस की डाक को लेने के लिए दो ही एक अंग उस की बाट जोहते रहते हैं। यह डाक क्लोम या अग्न्याशय लेता है। वह तुरत ही अधिक उत्साह से काम मे लग

जाता है और अधिक पाचक रस पक्काशय में छोड़ता है। रक्त में प्रविष्ट हो कर यह रासायनिक पदार्थ जो डाक की तरह काम करता है अंग्रेजी भाषा में "हारमोन" कहलाता है।

अन्न-मार्ग के एक बगल में और उसी से बाहर की ओर निकले हुए दो अंग हैं जिन्हें यकृत और क्लोम कहते हैं। इनका विभाग अलग हो गया है और पक्काशय से इन का संबंध नालियों के द्वारा है। इन दोनों में से लगभग डेढ़-डेढ़ पाव के रस पक्काशय में प्रतिदिन इस लिए भेजा जाता है कि पचाने के काम में सहायता करे। यकृत पित्त भेजता है और कभी-कभी इतना अधिक भेजता है कि वह आमाशय तक पहुँच जाता है। पित्तरस पाचक नहीं है, पर भोजन में चर्बी को तैय्यार करने का काम करता है। क्लोमरस पाचक है और नशास्ता और शक्कर और स्नेह को और नोपजनीय पदार्थों को भी घोल कर दूध सा कर लेता है और शरीर में आत्मसात् करने के लिए तय्यार कर देता है। पक्काशय और क्लोम के रसों में बड़े तेज खमीर होते हैं जिन्हें "उत्तेजक" कहते हैं। इन के मौजूद रहने से ही रासायनिक क्रियाएं हो जाती हैं। स्वयं इन के खर्च होने की जरूरत नहीं पड़ती। एक खमीर तो मंड या नशास्ता और शक्कर को पचाता है दूसरा चर्बी को पचा डालता है, तीसरा प्रोटीनों को।

आमाशयिक अन्नरस धीरे-धीरे आंत में आगे बढ़ता है। उस की भी तो मांसपेशियां हैं जो सिकुड़ती हैं और अन्न को आगे बढ़ाती हैं। एक सेकंड में एक इंच के लगभग अन्न आगे बढ़ता है। अंत्र की भीतरी दीवारों में न केवल ग्रंथियां हैं बल्कि रोएं की तरह निकली हुई सूक्ष्म अंगुलियां हैं जो दीवार को मखमल का-सा रूप दे देती हैं और जगह-जगह आंतें सिकुड़ी हुई हैं जिस में उँगलियों को अधिक विस्तार मिले और यह अगणित अंगुलियां अन्नरस में डूब कर पोषक पदार्थ को सोख सकें। सोखने के लिए सब मिलाकर लगभग सोलह वर्गफुट धरातल छोटी आंतों में मिलता है और इसी जगह से रक्त में या लसीका में पोषक पदार्थ जा मिलता है। बाकी बचा हुआ पदार्थ बड़ी आंतों में चला जाता है। यह बड़ी आंतें निचले भाग में बहुत चौड़ी होती हैं।

बड़ी और छोटी आंतों के ठीक मेल की जगह पर केंचुए की शकल की अंधांत्र बाहर को निकली हुई होती है। बाहर की ओर की राह बंद है और भीतर की ओर आंतों की तरफ का रास्ता बहुत तंग है। कभी-कभी बीज आदि कोई कड़ी चीज़ उस में जाकर अटक जाती है और प्रदाह पैदा करती है। खरहा आदि जानवरों में यह अंधांत्र बहुत बड़ी होती है और इस में छिद्रोजों को तोड़कर घुलाने के लिए कीटाणु भरे रहते हैं। शाकाहारी पशु बहुत ही मोटे छिद्रोजवाले खाने खाता है इसलिए उसे इस की बड़ी ज़रूरत है। आमाशय के अम्ल रसों से छिद्रोज नहीं घुलता। मनुष्य में यह काम बड़ी आंतों में खरबों और नीलों कीटाणु मिलकर करते हैं। आदिम मनुष्य शायद बहुत कड़ी चीज़ें खाता रहा होगा। तब उस की अंधांत्र बड़ी रही होगी। ज्यों-ज्यों वह कोमल पदार्थ खाने का अभ्यासी होता गया त्यों-त्यों अंधांत्र घटती गयी। बड़ी आंतों में जो कीटाणु हैं वही अंधांत्र में भी होते थे।

यह शरीर के लिए उपयोगी होते हैं। सभी कीटाणु रोग नहीं पैदा करते। कुछ ही कीटाणु हैं जो रक्त में विष फैलाते हैं और प्राणी को रोगी कर देते हैं।

५—रक्त-संस्थान का डाक-विभाग

रक्त को यदि हम प्राणरस कहें तो अनुचित न होगा। इस का चक्कर ऐड़ी से लेकर चोटी तक सारे शरीर मे लगता है। हम ने देखा कि हमारे रसोई घर मे किस तरह अन्न पकाकर तैयार किया जाता है। परतु साथ-ही-साथ अन्न ज्यो-ज्यों तैयार होता है त्यों-त्यों शरीर का डाक-विभाग आवश्यकतानुसार सभी अगो को अन्न पहुँचाता रहता है। शरीर की खूनी डाक रग-रग मे पहुँच कर हर एक सेल को भोजन पहुँचाती है। यह साधारण चीज़ नहीं है। सूई चुभोकर ज़रा-सा अँगुली का रक्त निकाल कर अनुवीक्षण यत्र मे देखा जाय तो
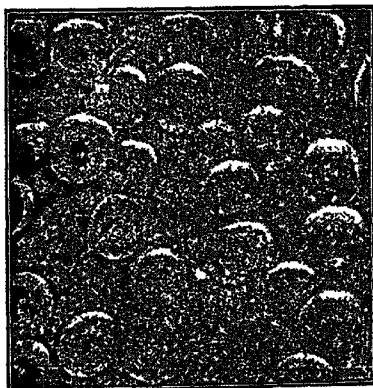
चित्र १०३—रक्ताणु

अनगिनितियो छोटी-छोटी टिक्किया पैसे की गड्डियो की तरह जल सरीखे पीले द्रव मे देख पड़ती हैं। यह द्रव शरीर का भोजन है और घुले हुए कूडा करकट को बाहर निकालने का भी साधन है। लाल टिक्किया रक्ताणु है। ये फेफड़ो से ओषजन को लेकर शरीर के विविध अवयवो के पास पहुँचाते हैं। इन्ही के कारण खून का रग लाल होता है। रक्ताणुओ की सुर्ख़ी का कारण लोहा है और यद्यपि रक्ताणु के एक-एक अणु में लगभग दो हज़ार परमाणु के लोहा है तो भी खून मे लोहे की इतनी सूक्ष्म मात्रा है कि लोहेवाली ओषधियों की वह मात्रा जो हम खाते हैं उस की तुलना में लोहे की पहाडी भी हैं। इसलिए वह रक्ताणुओ से मिल नहीं पाती। उन्हें खाकर हम उस की मात्रा को बढा नहीं सकते। रक्त का लोहा जिस सूक्ष्मता की अवस्था मे है उस अवस्था मे पहुँचाना असाधारण रीति से ही हो सकता है।

जिस पीले द्रव में यह लाल रक्ताणु तैर रहे हैं वह और प्राणियों के रक्ताणुओं को जो मनुष्य से भिन्न हैं नष्ट कर डालता है। मनुष्य के रक्तरस में बनमानुसों के रक्ताणु या बनमानुसों के रक्तरस में मनुष्यों के रक्ताणु अच्छी तरह रह सकते हैं। इस से यह भी पता चलता है कि बनमानुसों से मनुष्यों का रक्त-सम्बन्ध है।

रक्ताणुओं के सिवाय सफेद रंगवाले श्वेताणु भी हमारे रक्त में होते हैं। यह अत्यन्त सूक्ष्म बे रंग के गोल-गोल अमीबा सरीखे वृद्धि करनेवाले प्राणी है। अगर रक्त में कीटाणु आ जाय तो यह तुरत उन्हें घेर लेते हैं और पचा जाते हैं। जैसे रक्ताणु ओषजन को पहुंचानेवाली डाक का काम करते हैं वैसे ही श्वेताणु रक्त में पुलिस का काम करते हैं और चोर डाकुओं से रक्षा करते हैं। कीटाणुओं की संख्या बड़ी तेजी से बढती है और कभी-कभी श्वेताणुओं को घोर युद्ध करना पड़ता है। इसी से रक्त का तापक्रम बढ जाता है। यदि श्वेताणुओं की जीत होती है तो रोग मिट जाता है। हार हुई तो दशा भयानक हो जाती है। कीटाणु विष उपजा कर रक्त को दूषित करते हैं परंतु रक्त प्रति-विष उपजा कर विष को मार देता है। हाल में मरे हुए कीटाणुओं से ओप्सोनिन नाम की एक प्रकार की चटनी बनायी गयी है जिस से जीवित कीटाणु श्वेताणुओं को बहुत स्वादिष्ट लगते हैं। और वह अधिक उत्साह से कीटाणुओं को खाते हैं। इस अद्भुत क्रिया द्वारा शत्रुओं से शरीर की रक्षा की जाती है।

अब यह देखना चाहिए कि यह खूनी डाक शरीर के अंग-अंग में किस तरह पहुंचायी जाती है। इस के चक्कर का केन्द्र-कार्यालय हृदय है जो कि छाती के बीच से कुछ बायीं ओर नीचे की तरफ बराबर धड़कता रहता है। उस में से एक बड़ी नलिका निकलती है जिसे धमनी कहते हैं। जैसे पेट के तने में से कई बड़ी शाखाएं होकर भिन्न दिशाओं में जाती हैं और मोटी शाखाओं में से पतली शाखाएं और फिर टहनियां निकल कर बहुत बारीक रूप में फैल जाती हैं, उसी तरह इस धमनी में से भी पहले बड़ी फिर छोटी फिर उस में भी छोटी, होते-होते बाल से भी बारीक धमनी की शाखाएं निकलती हैं। इन सूक्ष्म नलिकाओं से जिन्हें धमनी की "केशिका" कहते हैं, शुद्ध रक्त शरीर के कोने-अँतरे तक पहुंच जाता है। दांत और हड्डियां तक बाकी नहीं बचतीं। हड्डियों से और दांतों से और शरीर के हर भाग से जहां-जहां केशिकाएं गयी हुई हैं रक्त पहुंचकर लौटता है। परंतु उसी मार्ग से नहीं लौटता। धमनी केशिकाओं से एक और तरह की केशिकाएं मिली हुई हैं। जिन्हें "शिराकेशिका" कहते हैं। इन्हीं की राह रक्त का प्रवाह अब बदलकर केन्द्र कार्यालय अर्थात् हृदय की ओर जाता है। इन केशिकाओं का संबंध बढती हुई मोटाई की शिराओं से होता है जो धीरे-धीरे हृदय तक पहुंचते-पहुंचते धमनी की सी बड़ी शाखाएं हो जाती हैं। धमनी के द्वारा शुद्ध रक्त सारे शरीर में पहुंचता है और शिराओं के द्वारा गन्दा खून सारे शरीर से बटोरकर हृदय की ओर लाया जाता है। हृदय का केंद्र कार्यालय मानो एक दफ्तर है जहां शरीर की म्युनिसिपैलिटी का दोनों काम होता है, शुद्ध जल का पंप द्वारा शहर भर में पहुंचाना और गंदे जल के परनालों को पंप कर के एक जगह पर लाना। म्युनिसिपैलिटी गंदे जल को या मैले को बहा देती है या खाद के काम में लाती

है परंतु शरीर गंदे रक्त को शुद्ध कर लेता है और उस में आवश्यक पदार्थ मिलाकर फिर शरीर में भेजता है।
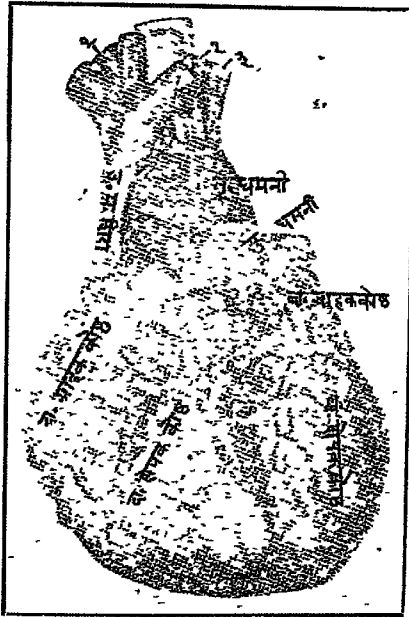
चित्र ११०—मानव हृदय

ग्रन्थकार की कृपा से] [हमारे शरीर की रचना से

६—हृदय का पंप-घर

मानव हृदय में चार कोठे हैं। दो कोठों में रक्त आता है, दो से निकाला जाता है, जो क्रम से ग्राहक और क्षेपक कोष्ठ कहलाते हैं। दहना ग्राहक कोष्ठ शरीर से, दो ऊपर की शिराओं से और एक नीचे की शिरा से, गंदा खून पाता है। यह रक्त दहने क्षेपक कोष्ठ में से गुजरता है और फुफ्फुस धमनियों की राह से फेफड़ों में फेंका जाता है। फेफड़े में शुद्ध होकर रक्त फिर फुफ्फुसीय शिराओं के द्वारा बायें ग्राहक कोष्ठ की ओर लौटता है।

बायें ग्राहक कोष्ठ से रक्त बायें क्षेपक कोष्ठ से गुजरता है जहां से नियमित अर्ध

चन्द्राकार कपाटमय नलिका द्वारा शरीर में भेजा जाता है। इस अर्धचन्द्र से पहली धमनी तो बाहु और सिर को अपनी दो शाखाएं भेजती है, दूसरी धमनी और तीसरी भी सिर और बाहु को जाती है। यह पीछे की ओर मुड कर घूमती हुई पीछे की वृहत् धमनी बनाती है जो पीछे के समस्त शरीर को रक्त पहुंचाती है।

शरीर के इस पप वाले कार्यालय में यह विशेष प्रबंध है कि साफ और गंदा खून मिलने नहीं पाता। मानव हृदय के दो बिल्कुल अलग-अलग विभाग हैं। अधिकांश उरगों में यह विभाग बहुत कम अलग है और मिला जुला खून भी शरीर में फैल जाता है। परंतु पशुओं और पक्षियों में दोनों विभाग बिल्कुल अलग-अलग हैं।

हृदय एक मोटी मांसपेशी की थैली है जिस की दीवारें मनुष्य के शरीर में अधिक-से-अधिक मोटाई की जगह में आधे इंच के लगभग होती हैं। इस को एक ओर से तो शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में रक्त उलीचना पड़ता है और दूसरी ओर शरीर के अवयवों में रक्त ढकेलना पड़ता है। इसीलिए इस के दो भाग हैं। प्रत्येक आधे में एक छोटी सी कोठरी रक्त के लेने के लिये रहती है जिसे हम ग्राहक कोष्ठ कह आये हैं। इसी के ऊपर एक बड़ा घर होता है जो ऊपर की ओर फेफड़ों में खून को उछाल देता है। हर सूराख पर इस तरह के ढकने लगे हुए हैं कि एक तरफ को खुलते हैं पर दूसरी तरफ को बंद हो जाते हैं जिस में रक्त का बहाव एक ही ओर को रहे।

हृदय का यंत्र ऐसा अद्भुत है कि वैज्ञानिकों को यह अब तक पता नहीं लगा है कि किस तरह पर उस के धड़कने को नियमित रक्खा जा सकता है। प्रौढ़ स्वस्थ और आराम करते हुए मनुष्य का रक्त हर मिनिट में बहत्तर बार हृदय द्वारा उछाला जाता है। इस छोटे से यंत्र में दस बीस हजार बहुत सूक्ष्म मांसपेशियां हैं जो बड़ी चतुराई से इस की भीतों में लगी हुई हैं जिन के सहारे यह कोष्ठ हर तरफ से इतनी जल्दी-जल्दी मुट्ठी की तरह बंधते रहते हैं जिस से कि खून को वह उछाल मिलता है कि चक्कर लगाकर फिर उसी जगह तक पहुंच जाता है। ऐसा भी कोई न समझे कि हृदय कभी आराम नहीं करता है। वह तो हर धड़कन के बाद रुक्ता लेता है। और हर बार रुककर फिर काम करता है। अचरज की बात तो यह है कि तुम ने उठकर काम करने का इरादा किया और हृदय महाराज ने यह समझकर कि और अंगों को अब ज्यादः खून चाहिए, तेजी से काम करना शुरू कर दिया। जब हम बैठे रहते हैं तब हर मिनिट में उन्तीस-तीस छटाक खून उछाला जाता है। जब हम तेज चलते होते हैं तब एक मिनट में छः सेर से ज्यादः खून हृदय ढकेला करता है। जो आदमी सीढ़ियों पर दौड़ता हुआ चढ़ता है वह अपने हृदय से एक मिनिट में लगभग चौदह सेर खून उछालने को लाचार करता है। बांया क्षेपक कोष्ठ हृदय का खास पप है। इसी में से होकर रक्त एक बड़ी नलिका में ढकेला जाता है जिसे महाधमनी या वृहत्धमनी कहते हैं। जब रक्त इस के भीतर घुसता है तब इस की लचीली दीवारें फैल जाती हैं और जब रक्त घुस आता है तो धीरे-धीरे सिकुड़ जाती हैं जिस से कि रक्त को आगे बढ़ना पड़ता है। इस

तरह धमनियो के बराबर झोंका सहते-सहते धक्के के बल से हृदय से जो खून रुक-रुक आता है धीरे-धीरे अनवरत धारा की तरह बहने लगता है। धमनियो की शाखाए हर एक दिशा में फैली हुई हैं जिस में हर एक अवयव को भोजन
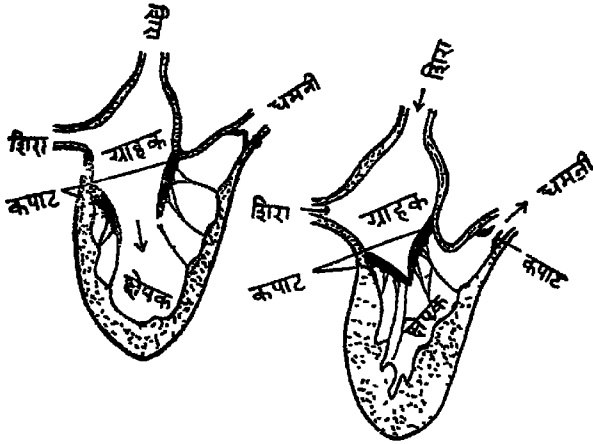
चित्र १११—हृदय के दाहिने भाग के कपाट

अन्धकार की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

(१) ग्राहक कोष्ठ सिकुड़ कर रक्त को क्षेपक कोष्ठ में ढकेल रहा है। ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच के किवाड़ खुले हुए हैं।

(२) क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ रहा है। किवाड जो पहले खुले थे अब बंद हो गये हैं। ग्राहक कोष्ठ में रक्त शिरा से आ रहा है। क्षेपक कोष्ठ से रक्त निकलकर फुफ्फुसीय धमनी में जा रहा है।

पहुँच सके। जब अवयवों तक शाखाए पहुँचती हैं, अत्यंत बारीक हो जाती हैं और असंख्य हो जाती हैं। यह केशिकाए हैं। तीन हजार केशिकाए एक पाती में समानान्तर रख दी जाय तो एक इन्च से ज्यादः न होगी। इन रक्तवाहिनियों की भीत इतनी सूक्ष्म होती है कि रक्त का पोषक पदार्थ इन्हीं भीतों से छनकर अवयवों वा तन्तुओं में पहुँच जाता है। साथ ही तन्तुओं के मल इन्हीं भीतों से छनकर रक्त में आ जाते हैं। यह भी एक विकट क्रिया है। वस्तुतः होता यह है कि प्रत्येक तन्तु की प्रत्येक सेल अपने-अपने लिए उपयुक्त अन्न और ओषजन रक्त से ले लेती है और ओषजन किसी विकट रासायनिक

क्रिया मे कर्बन से मिलकर कर्बन-द्वयोषिद बनाता है। यह कर्बन-द्वयोषिद मल है जो फिर पास ही की केशिकाओं की भीत में से घुसकर रक्त मे मिल जाता है। इस के मिलने से रक्त मे नीलिमा आ जाती है।
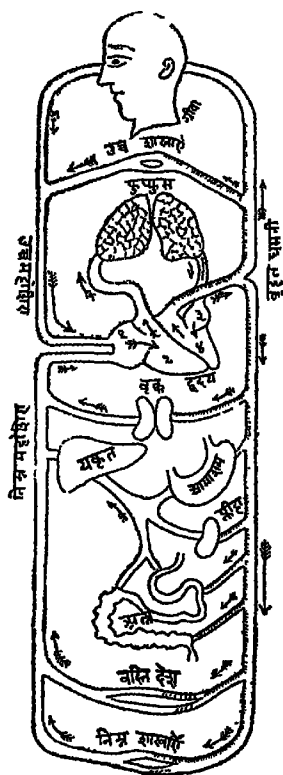
चित्र ११२—रक्त-संचारण-चक्र

हमारे शरीर की रचना से] [ग्रन्थकार की कृपा

हृदय एक मिनिट मे औसत ७२ बार धड़कता है। अर्थात् उस की भीते सिकुड़ती है। हृदय के दो भाग है। हर भाग मे एक ग्राहक और एक क्षेपक यह दो कोष्ठ है। दोनो भागो मे कोई सीधी राह नही है। दहने भाग से फेफड़ो मे बारीक केशिकाओ द्वारा रक्त

जाता है और वहा शुद्ध होता है। फिर फेफड़े से बाये भाग में रक्त आता है और बाये क्षेपक कोष्ठ से बडी धमनियो से होकर सारे शरीर मे चक्कर लगाता है। धमनियो की अनत शाखाए प्रशाखाए फूटते-फूटते बाल से भी बारीक नालिया हो जाती हैं। शरीर का कोना-कोना चप्पा-चप्पा रक्त से सिंचता है। फिर इसी क्रिया मे रक्त गदा भी होता है। उस मे से भोग योग्य पदार्थ शरीर ले लेता है, मल और विष रक्त के हवाले कर देता है। फिर यह गदा रक्त शिराकी केशिकाओ से होकर धीरे-धीरे बडी-से-बड़ी शाखाओ मे से चलकर बृहत् शिराओं या महाशिराओं के द्वारा फिर शुद्ध होने के लिए हृदय के मार्ग से फेफड़े में जाता है। यह चक्र निरतर तब तक चलता रहता है जब तक मनुष्य जीता है।

उस स्थान पर जहा धमनी की अनत सूक्ष्म शाखाए अर्थात् केशिकाए बनती हैं एक तरह का पेच लगा रहता है जो रक्त को नियमित रूप से आने देता है। धमनी के चारो ओर मासपेशी के रेशे लिपटे रहते हैं। इन्ही के बल से धमनी फैलती सिकुड़ती रहती है और किसी विशेष ततु को रक्त का मिलना कम या अधिक हो सकता है। आदमी जब खाने बैठता है तो यह पेच पाचक अगो की ओर पूरा खुल जाता है और मासपेशियो और मस्तिष्क की ओर कुछ थोड़ा बद होता जाता है। जब हम खड़े होते हैं या कमरे मे मे चलने लगते हैं तो विविध मासपेशियों को काम करना पड़ता है। इसलिए उन की ओर पेच खुल जाते हैं। जब मासपेशिया को सारा रक्त मिलने लगता है तब दिमाग और पाचक अगो को कम मिलता है। कुछ देर खड़े रहने से रक्त-सस्थान को यह देखना पड़ता है कि सिर से हटकर पावो मे रक्त इकट्ठा न हो जाय लेकिन जब बहुत देर तक खड़ा रहना पड़ता है तब इस बदोबस्त मे त्रुटि आने लगती है। दिमाग को खून कम मिलता है। चक्कर या बेहोशी आने लगती है। कमजोरी मालूम होती है।

धमनियो के मासपेशियो से सुषुम्ना नाड़ी तक असख्य नाड़िया गयी हुई हैं। वह पेच सुषुम्ना नाड़ी से चलनेवाली नाड़ियों के द्वारा खबर पाकर खुलता है और बद होता है। परतु वैज्ञानिक यह नहीं कह सकता कि मनुष्य-शरीर-रूपी यत्र के ये जड़ अग ऐसी पूर्णता से किस प्रकार व्यवहार करते हैं। जिन हारमोनो की चर्चा कर चुके हैं वह प्रणाली-रहित ग्रथियो मे बनते हैं और खून की डाक द्वारा किसी दूर के अग को भेज दिये जाते हैं। इन्ही मे से एक हारमोन रक्त के सबध मे भी काम करता है। जब आदमी देर तक मेहनत का काम करने के लिए तैयार होता है तो उसी समय नाडी के समाचार वृक्को के पासवाली उन ग्रथियो को उत्तेजित करते हैं जिन्हें "उपवृक्क" कहते हैं। इन ग्रथियो से [अड्-रीनलिन] अड्रेनलिन या उपवृक्किन नाम का रासायनिक पदार्थ बनकर रक्त मे पहुँचता है। यह एक हार्मोन है जो रक्त के साथ चक्कर लगाकर जब छोटी धमनियो तक पहुँचता है तब पेचो को बद कर देता है और जिन अगो को उस समय काम नहीं करना है उन की तरफ खून जाना बद कर देता है। इस तरह जिन अगो को कड़ी मेहनत करनी है सारा खून उन्हीं की तरफ जाने लगता है।

जब खून ततुओ मे से होकर चलता है, भोजन पदार्थ दे डालता है, और मल

रूप कर्बन-द्वयोषिद और घुलनशील नोचजनीय कूड़ा ले लेता है, तब हृदय की ओर लौटता है। यह नयी केशिकाओं मे प्रवेश करता है और इन केशिकाओं की अनंत धाराएं शिराओ मे मिल जाती है। शिराओ की दीवारें धमनियो की भीतों से पतली होती है क्योकि अब दबाव कम है। परंतु जगह-जगह बड़े विचित्र ढकने लगे हुए है। इन के कारण रक्त लौट कर उलटे नहीं चल सकता। अपनी बांह की नील शिराओ से अपनी अंगुलियो तक अगर कोई नीले रक्त को भेजना चाहे तो देख सकता है कि जगह जगह मार्ग मे रुकावट डालनेवाली गांठे खड़ी हो जाती है। इस तरह दूषित श्याम रक्त बराबर बहकर हृदय के जिस ओर से चला था उस की दूसरी ओर लौटकर दहने ग्राहक कोष्ठ मे आता है और उसी ओर के क्षेपक कोष्ठ मे पहुंचता है। यहां से धड़कन द्वारा फुफ्फुसो मे जाकर अपना सारा मल छोड़ देता है और ओषजन लेकर फिर शुद्ध लाल रंग का हो जाता है। फिर यही बायें ग्राहक कोष्ठ मे आकर बायें क्षेपक कोष्ठ मे से धमनियो मे धकेला जाता है। शरीर के लिए इस प्राण रस का निरंतर इसी तरह चक्कर लगता रहता है।

तेरहवां अध्याय

मनुष्य का प्राणमय कोष

(१) श्वास-यंत्र

पिछले प्रकरण मे हम कह चुके हैं कि दूषित रक्त मल से लदा हुआ हृदय के दहने चेपक कोष्ठ से फुफ्फुस मे जाता है और वहाँ मल विसर्जन करके ओषजन चूसकर शुद्ध लाल रक्त हो जाता है। तब वह बायें ग्राहक कोष्ठ मे होते हुए चेपक कोष्ठ से बृहत् धमनी मे धकेला जाता है। फुफ्फुस मे रक्त का सब से बडे महत्व का काम होता है। शरीर के भीतर रक्त के शोधन के लिए दो यत्र बड़े महत्व के हैं। एक तो फुफ्फुस और दूसरे वृक्क। फुफ्फुस मे कर्बन-द्वयोषिद का विसर्जन होता है और वृक्का मे नोषजनीय घुलनशील मलों का। शरीर को यदि हम भापवाले यत्र के समान समझे तो अनुचित न होगा। भापवाले यत्र मे जैसे ईंधन देना पड़ता है उसी तरह पेट मे भोजन पहुँचाना पड़ता है। अजन मे जैसे हवा धौकने की ज़रूरत होती है वैसे ही फुफ्फुस की धौंकनी से बराबर भीतर को सास जाती रहती है। भीतर जब ईंधन चलता है अर्थात् जठराग्नि से जब अन्न पचता है तब उस से गर्मी पैदा होती है और प्राणी का काम उसी से चलता है।

हवा नथुनो की राह से प्रवेश करती है। मुँह से सास कभी न लेना चाहिए। नाक मे प्रकृति ने जो प्रबध रक्खे हैं मुँह मे नहीं है। इसलिए मुँह से सास लेना भयानक है। नाक के अ दर वायु को गरमाने का प्रबध है क्योकि रक्त-वाहिनिया भरी हुई रहती हैं और जाड़ो मे इस का बदोबस्त अधिक रहता है। नाक के बाल सास को छानकर भेजते हैं। हवा मे रहनेवाली विजातीय वस्तुए बालो से रुक जाती हैं। सूखी हवा नथुनो मे जाकर नम हो जाती है। नाक मे श्लेष्मा की झिल्ली होती है जो बड़े काम की चीज है। नम, कसे हुए और बे-हवावाले कमरो मे रहने से यह झिल्ली रक्त और श्लेष्मा से कस उठती है। और आदमी को सर्दी हो जाती है। हवा नाक के भीतर से चलकर जिह्वामूल के पीछे की हवा की नाली से चलकर अन्नमार्ग को पारकर के श्वासमार्ग पर आती है जहा उसे

अपने से खुलने और बंद होनेवाला द्वार मिलता है। इस के पीछे स्वररज्जु हैं जो बोलने में काम आते हैं। इस के आगे हवा की नली की दो शाखाएं हो जाती हैं जिन्हें वायु नलिकाएं कहते हैं। एक-एक शाखा एक-एक फेफड़े को जाती है। जो कीटाणु नाक के चौकी-पहरे से बचकर यहां तक आ गये हैं या जो गर्द-गुबार इस तरह से आ गया है उस को

चित्र ११२—फुप्फुस
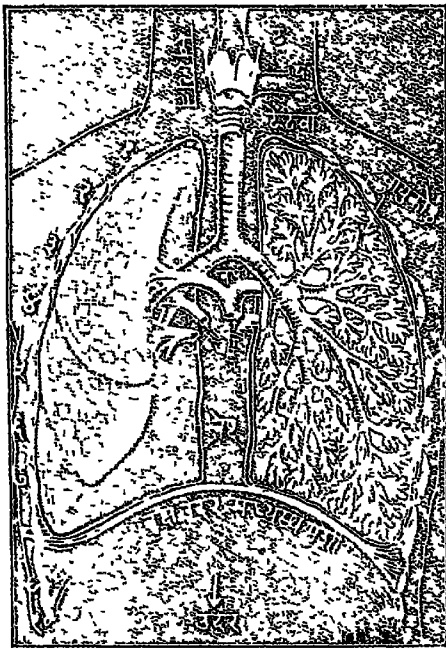
[हमारे शरीर की रचना से ग्रन्थकार की कृपा]

रोकने का यहां बढ़िया बन्दोबस्त है। इन नलियों में कफ की एक तह जमी हुई है जिस में कीटाणु फंस जाते हैं और अनंत सूक्ष्म बरौनियों के से रेशे हैं जो बड़े क्रम से बराबर उठते-बैठते रहते हैं और द्वार की ओर बराबर इन की क्रिया जारी रहती है जिस से आनेवाला धीरे-धीरे बाहर की ओर ही धकेल दिया जाता है। यदि कुछ जोखिमवाले कीटाणु उन पर बैठ भी जायें तो ग्रंथियों में से बहुत सा कफ आकर उन्हें घेर लेता है और समय समय पर सर्दी और खांसी के रूप में उनको फेफड़ा निकाल बाहर करता है।

श्वास मार्ग जब फेफड़ो की ओर जाता है तो उस की प्रधानतः दो शाखाए हो जाती है और हर एक शाखा की छोटी-छोटी उपशाखाए और हर उपशाखा मे केशिकाओ की बहुत सूक्ष्म नलिकाए निकल कर दोनो फुफ्फुसो मे फैली हुई रहती हैं। हर बारीक नलिका के अन्त में बहुत सूक्ष्म वायु-मदिर बीसो की सख्या मे होते हैं। दोनों फेफड़ो मे यह वायु-मदिर साठ लाख के लगभग होते है। लबाई मे यह बराबर रखे जायॅ तो एक इच मे दस वायु मदिर आ जायॅगे और अगर हर एक वायु मॅदिर को खोल कर फैलाया जाय और एक साथ सब जोड़ दिए जायॅ तो हमारी खाल की ऊपरी सतह सारे शरीर मे जितनी है उसकी सौगुनी सतह इन वायु-मदिरो की हो जायगी। इस अद्भुत यत्र मे सॉस से खीची हुई हवा हमारे शरीर के सौगुने तल पर लगती है और काम करती है। औ सीधे रक्त मे मिल जाती है। यह क्रिया एक मिनट मे पदरह बीस बार होती है। जब हम गहरी सास लेते हैं तब लगभग एक-एक गिलन हवा बाहर से खीच लेते है और मामूली सास मे लगभग आधे गिलन के खींचते है। इस तरह आदमी मामूली सॉस लेते हुए एक मिनिट मे आठ दस गिलन हवा अपने शरीर के भीतर ले जाता है। हवा प्राण है। सारे शरीर के रक्त को यही साफ करती है। गहरी सॉस लेने से रक्त की दूनी सफाई होती है। इसी लिए नाक से गहरी सॉस लेते रहने की आदत डालना स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर है और जहॉ कही आदमी रहते हो वहॉ उन की सॉस के लिए काफी हवा आने का पूरा बन्दोबस्त रहना भी ज़रूरी है।

यह सॉस की मशीन हमारे जागते सोते सभी दशाओ मे चलती रहती है। हम जब तक जीते रहते है तब तक फेफडो की धौकनी बराबर बिना रुके चलती ही रहती है। इन के चलाते रहने के लिए नाड़ीजाल के तार उसी तरह लगे रहते है जिस तरह बिजली के पखो के लिए तार लगे रहते है। मस्तिष्क के सब से निचले भाग को सुषुम्ना शीर्षक कहते हैं। यह सुषुम्ना नाड़ी का एक चक्र है। यह चक्र रक्त मे इकट्ठे होनेवाले कर्बन-द्वयोषिद से बराबर उत्तेजित होता रहता है। इसी लिए यह अपने-आप पसुलियो और वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी के पास बराबर समाचार भेजता रहता है। इसी तरह के समाचार से जब-जब हम सॉस भीतर ले जाते हैं तब-तब बाहर जोड़ी मासपेशियॉ एक साथ मिलकर छाती को फैलाती हैं और दूसरी मासपेशिया थैले को सिकुड़ा देती हैं और कर्बन-द्वयोषिद से भरी हवा को बाहर निकाल देती है। यह महत्व का काम जल्दी-जल्दी होता रहता है। हम जब सॉस बाहर निकालते हैं तो सारी हवा बाहर नही निकल जाती। केवल पचम निकलती है। अगर हम बलपूर्वक फेफडो को खाली करना चाहें तो नही कर सकते, क्योकि वायु-मदिरो का मुँह अपने-आप बद हो जाता है। बाहरी और भीतरी हवा की अदला-बदली बराबर जारी रहती है। जब हम मासपेशिया से कड़ी मेहनत लेते रहते हैं तब कर्बन-द्वयोषिद की मात्रा रक्त मे अधिक होती जाती है, जिस से सुषुम्ना नाड़ी को अधिक उत्तेजना मिलती है और फेफड़ो की मासपेशियों के प्रास-तारो का तॉता बॅध जाता है और हम सॉस लेने के लिए हॉफने लगते हैं। इसी के विपरीत जो लोग मासपेशियो से बहुत कम मेहनत लेते हैं या जिन्हे बैठे-बैठे काम करना पड़ता है वह फेफड़ो से केवल

मात्रा काम लेने के आदी हो जाते हैं। ऐसे लोग पीले पड़ जाते हैं। उन के शरीर में रक्ताणु घट जाते हैं। उन के लिए खुली हवा में व्यायाम और टहलना इसी लिए बहुत जरूरी है।

वायु मंदिरों की भीत अत्यंत सूक्ष्म होती है। यह प्रायः उतनी ही पतली होती है जितनी कि साबुन के बुलबुलों की दीवारें होती हैं। इन वायु-मंदिरों के बाहर उतनी ही सूक्ष्म भीतोंवाली रक्तवाहिनी केशिकाएं होती हैं। यह वायु-मंदिरों से सटी हुई अनगिनत संख्या में होती हैं। इन्हीं भीतों में से होकर नन्हें नन्हें रक्ताणु अपने कर्बन-द्वयोपिद वायु मंदिरों में डाल देते हैं। यह क्रिया वायु के गौजने के अद्भुत नियम से होती है। हल्की वायु भारी वायु में जल्दी गौजती है। कर्बन द्वयोपिद ओपजन की अपेक्षा अधिक भारी वायु है। परन्तु केवल गौजने से यह क्रिया पूरी नहीं हो सकती। रक्ताणुओं में विसर्जन और आकर्षण की विशेष शक्ति होती है। फेफड़े में वायु-मंदिर और रक्तवाहिनियाँ दोनों साथ-साथ काम करते हैं। यह रक्तवाहिनियाँ हृदय के दहिने भाग से फेफड़े में आती हैं और फेफड़े की धमनियाँ कहलाती हैं।

यह कर्बन द्वयोपिद से लदी हुई आती हैं। जब फेफड़े में कर्बन-द्वयोपिद देकर ओपजन से लद जाती हैं तो फिर लाल रंग की होकर हृदय के बायें भाग में प्रवेश करती हैं। इन्हें फेफड़ों की शिराएँ कहते हैं। अब यह शुद्ध रक्त है जो धमनी के मार्ग से शरीरभर में फिर चक्कर लगाता है और ओपजन का पार्सल सब जगह पहुंचाने के लिए डाक विभाग का काम करता है। जब यही शुद्ध रक्त भिन्न-भिन्न अंगों में केशिकाओं तक पहुंचता है तो वहाँ ओपजन देकर शिरा की केशिकाओं में से कर्बन-द्वयोपिद का नया बोझा लादते हुए हृदय की दहिनी ओर फिर लौट आता है। इस तरह रक्त-सञ्चरण का यह अद्भुत चक्र सारे जीवन में निरंतर चलता रहता है।

सारे शरीर में रक्त के इस निरंतर चक्र के चलते रहने की आवश्यकताओं में से ओपजन और कर्बन द्वयोपिद का वहन एक भारी आवश्यकता है। ओपजन ही प्राण-वायु है। इसी से शरीर में अग्नि बनी रहती है। वायु को अग्नि का सखा कहते हैं। यहाँ वह केवल अग्नि का सखा नहीं है वह अग्नि को जन्माता है और उस का बराबर पोषण करता रहता है। सारे शरीर में यह प्राण-वायु का चक्र बराबर चलता रहता है। इसी से अन्न पचता है, शरीर को बल मिलता है और जीवन की सारी क्रियाएं बराबर चलती रहती हैं। थोड़ी देर के लिए ओपजन न मिले और कर्बन-द्वयोपिद का विसर्जन न हो तो सारा शरीर काला पड़ जाय, जीवन की सब क्रियाएं रुक जायँ, फुफ्फुस की धौंकनी थककर रुक जाय और हृदय के पंप का चलना बंद हो जाय और शरीरान्त हो जाय। जैसे हम रक्त को प्राणरस कहते हैं उसी तरह शरीर में काम करनेवाली वायु को प्राण-वायु कहते हैं। जहाँ तक शरीर की क्रिया अन्न के पचाने और मल के विसर्जन में लगी हुई है वहाँ तक शरीर के संपूर्ण संगठन को हम अन्न-मय-कोष कहते हैं। इस में पाचन-संस्थान और रक्त संस्थान दोनों शामिल हैं। जहाँ तक शरीर में वायु के सचरण की क्रियाएं

होती रहती हैं जिन से कि पाचन आदि सभी क्रियाए सहायता पाती हैं, वहा तक शरीर के सगठन को हम प्राणमय-कोष कहते हैं। प्राणमय-कोष के अतर्गत शरीर का अग्नि का सस्थान, रक्त सस्थान और समस्त नाड़ी-मडल समिलित है।

हमारे शरीर मे एक विशेष तापक्रम की गर्मी निरतर बनी रहती है। इस गर्मी का कारण यह है कि शरीर के भीतर हम जो कुछ भोजन ले जाते हैं उस की आक्सिजन के साथ रासायनिक क्रिया होती है। उस से अन्नरस बनकर शरीर की सातो धातुए बनती रहती है। इस रासायनिक क्रिया से अन्न के अवयवों मे से छिपी हुई शक्ति ताप या अग्नि के रूप मे बराबर निकलती रहती है। इसी रासायनिक क्रिया से एक ओर तो काम की चीजे शरीर मे आत्मसात् कर ली जाती हैं और दूसरी ओर बेकार चीज़े निकालकर बाहर कर दी जाती हैं। इस अद्भुत यत्र मे शरीर की इस अद्भुत रासायनिक क्रिया का सामञ्जस्य निरतर ऐसा बना रहता है कि शरीर का तापक्रम ९८.४ फारनहाइट की गर्मी स्थिर रहती है। इस तापक्रम से गर्मी ज़रा भी कम या अधिक हुई तो मनुष्य रोगी समझा जाता है। विज्ञान की प्रयोगशालाओं मे बहुत उद्योग करने पर भी ऐसी निपुणता से एक तापक्रम पर निरतर एक ही आच नहीं रक्खी जा सकती। तापक्रम सौ हो जाय तो हरारत, एक सौ दो हो जाय तो ज्वर, और एक सौ चार हो जाय तो बहुत ज्वर समझा जाता है। एक सौ सात के ऊपर रोगी का बचना असाध्य हो जाता है। अट्ठानवे के नीचे उतरने मे "शीत" का भय होता है। पचानवे के नीचे इतना शीत हो जाता है कि शरीर की सब क्रियाए शिथिल हो जाती हैं और मृत्यु हो जाती है। ज्वर का बढना बतलाता है कि रासायनिक क्रिया बहुत वेग से हो रही है। शीत से प्रकट होता है कि रासायनिक क्रिया शिथिल हो रही है और तापक्रम के घटते जाने से रासायनिक क्रिया का धीरे-धीरे बद होना प्रकट होता है।

हमारे शरीर पर बाहरी सर्दी गर्मी का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जब बाहरी हवा बहुत ठढी हो जाती है तब हम कॉपने लगते हैं। यह स्वभाव की ओर से सूचना है कि हम को अपने अग-अग को हिलाकर बाहरी शीत का मुकाबिला करने के लिए भीतरी गर्मी पैदा करनी चाहिये। इसीलिए पाव पटकते हैं, हाथ मलते हैं या व्यायाम करने लगते हैं। शारीरिक परिश्रम से इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि आदमी बाहरी शीत का अच्छी तरह मुकाबला करने लग जाता है। इसी के विपरीत जब बाहरी गर्मी बहुत बढ जाती है तो हमे शरीर के, भीतर की गर्मी को घटाने की ज़रूरत पड़ती है। शीत काल मे धमनियो के जो पेच बद रहा करते हैं वही कड़ी गर्मी पड़ने लगती है तब खुल जाते हैं और रक्त की गर्मी को खाल की राह से निकलने देते हैं। अगर यह क्रिया काफी नहीं होती तो नाड़ी चक्रो से अपने आप खाल की अनत स्वेद-ग्रथियो के पास सदेशे जाते हैं और पसीना निकले लगना है। पसीना को गरम करने के लिए इतनी अधिक गर्मी दरकार होती है कि बाहर की और भीतर की गर्मी का सामजस्य ठीक बैठ जाता है। हवा सूखी और गरम दोनों हो तो स्वेद की क्रिया से तुरत आराम होता है। परतु यदि हवा मे नमी भरी हुई है और गर्मी भी है तो पसीना होते हुए भी आराम नहीं मिलता क्योंकि नम हवा पसीने को बहुत कम उड़ाती है। इस का फल

यह हो सकता है कि खून की गर्मी बढ जाय और हमारे दिमाग़ पर गर्मी चढ जाय। आर्द्र शीत भी अच्छा नहीं होता। हवा मे ठढक और नमी दोनों के होने से हमारी प्राण-शक्ति उस से मुकावला करने मे निर्बल हो जाती है और सर्दी के कीटाणुओ को हमारे शरीर पर चढाई करने मौका मिलता है।

जैसे हम फेफड़े से सास लेते हैं उसी तरह अपनी खाल से भी सास लेते हैं। हमारी खाल मे असख्य छेद हैं जिन मे से पसीना निकलता है। उन्हीं छेदों से वहुत सूक्ष्म रूप मे सास लेने की क्रिया भी होती है। इस तरह प्राणमय कोष सारे शरीर मे फैला हुआ है। नित्य के स्नान करने मे शरीर की खाल को खूब साफ करना स्वास्थ्य के लिए इन्हीं कारणों से वहुत जरूरी है। इन्हीं वारीक छेदों से वहुत सूक्ष्म रूप मे शरीर का मल और विष भी निकलता रहता है। पसीना और पेशाब एक ही तरह का मल है। सफाई के लिए भी खाल का वारवार धोया जाना ज़रूरी है।

(२) और और यंत्र

शरीर के भीतर जितने अग हैं सब का एक दूसरे से वडा घना सवध है। हड्डियाँ और मासपेशियाँ भी अन्नमय और प्राणमय कोषों से संबध रखती हैं। पोषण और पुनर्जनन शरीर के प्रधान काम हैं। इन कामों मे शरीर के सभी अग किसी-न-किसी रूप मे सहायता देते हैं।

शरीर मे दो सौ हड्डियाँ हैं और दो सौ साठ जोडी मासपेशियाँ है। हड्डियो मे दाँतों और कुर्रियों की गिनती नहीं की जाती। आश्चर्य होता है कि शुक्राणु और डिंब के अत्यत सूक्ष्म और कोमल सेलपक से हड्डी और दात जैसे अत्यत कठोर पदार्थों का विकास कैसे होता है। इस विचित्र वात को समझने के लिये हमे यह याद रखना चाहिए, कि जब भ्रूण के सेलो का विकास होने लगता है तव भिन्न वर्गो मे उन का विभाजन भी होने लगता है। मासपेशियो के सेल, नाड़ियों के सेल, हड्डियों के सेल, ग्रथियों के सेल, सभी तरह के सेल, अलग-अलग होते हैं। उनकी वनावट भी भिन्न-भिन्न हुआ करती है। हड्डी के सेल पहले शरीर का ढाँचा कुर्री या अस्थिकल्प का वनाते हैं। भोजन मे से चूनेवाले नमक रक्त मे मिल जाते हैं। इसे ही ले लेकर हड्डीवाले सेल हड्डी की रचना करते हैं। तुरत पैदा हुए बच्चे के जघे मे हड्डी वनानेवाले सेल बीस लाख के लगभग होते हैं। यह सख्या बढते-बढते वहुत जल्दी पदरह करोड़ के लगभग हो जाती है। यही हड्डी को ठोस वनाते हैं और फिर उस के भीतरी भाग को हल्का परतु मजवूत कर देते हैं।

हड्डियो के जोड हमारे शरीर मे दो-सौ तीस हैं परतु उन मे से किसी मे आपस मे रगड़ने या एक दूसरे से धक्का खाने की वात देखने मे नहीं आती। वात यह है कि हर हड्डी के सिरे पर एक तह उपास्थि की वनी रहती है। यह वहुत घनी और लचीली होती है और उस के चारों ओर चिकनाई चुपडी हुई होती है। यह चिकनाई क्या है? यह कुर्री के सेल हैं जो अपना काम कर के मर चुके हैं। उन का शरीर चिकनाई मे परिणत हो गया

है। साथ ही रगड़ बचाने के लिए और इधर-उधर घूमने घुमाने का सुभीता करने के लिए जोड़ो पर ठीक हिसाब से नपे हुए गड्ढे से बने होते है जिसमे जुडनेवाली हड्डी का गोल सिरा ठीक-ठीक बैठ जाता है।

चित्र ११४—मासपेशिया। [हमारे शरीर की रचना से ग्रथकार की कृपा]
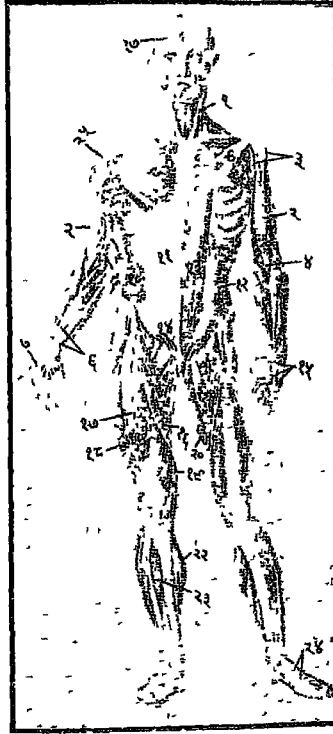
१—शिरश्चालक
२—द्विशिरस्का
३,४—द्विशिरस्का की स्नायु
५—त्रिशिरस्का

६—स्नायु
७—अगूठे की पेशिया
८—उरश्छादनी बृहती
९—उरश्छादनी लघ्वी

१०—उदरस्थ तिर्यक् पेशी, बाह्य
११—उदरस्थ तिर्यक् पेशी की स्नायु
१२—उदरस्थ तिर्यक् पेशी आभ्यन्तर
१३—उदरस्थ सरल पेशी
१४—छिद्र। शुक्र-प्रणाली इसी में से होकर उदर में जाती है, इसी में से कभी-कभी आंत अंडकोश में उतर आती है।
१५—स्नायु
१६—ऊरु की एक पेशी जिस के सकोच से जाघ पर जाघ रखी जा सकती है।
१७—ऊरु की सरल पेशी
१८—ऊरु-प्रसारिणी, बाह्य
१९—ऊरु-प्रसारिणी, अन्तःस्थ
२०—ऊरुकी एक पेशी।
२१—ऊरु अतरनायनी।
२२—पिंडली की मोटी पेशी।
२३—जघे की सामने की पेशी।
२४—स्नायु।
२५—असाच्छादनी
२६—कूर्पर-नमनी
२७—शिरश्छदापेशी

हड्डियों को इधर-उधर चलाने का काम मासपेशिया करती है। यह लाल मास की बनी हुई होती हैं। मनुष्य की भुजा की द्विशिरस्का पेशियो से एक में छः लाख रेशे या सूत्र होते हैं। हर एक सूत्र अनेक बारीक-बारीक रेशों का बना होता है। इन्हीं सूक्ष्म रेशो में खिंचाव का बल हुआ करता है जिस का रहस्य अभी तक विज्ञान बहुत कम समझ सका है। तीन सौ बरस हुए कि साहसी लोगों ने अगों का विच्छेद करके उन्हें अलग-अलग समझने की कोशिश की फिर प्रत्येक अग का विच्छेद अवयवो में किया गया। अभी हाल की ही बात है कि इन अवयवों का विच्छेद करके सेलों का पता लगाया गया है। अब हमें मालूम हुआ है कि सेलो का रहस्य उन अणुओं में थोड़ा-बहुत छिपा हुआ है जो प्रत्येक सेल को बनाते हैं। अच्छे-से-अच्छे अनुवीक्षण यत्र से भी हम इन अणुओं को देख नहीं सकते। विज्ञान की सतत वर्त्तमान गति को देखकर कोई यह नहीं कह सकता है कि कल को अणुओं के देखने का भी साधन न निकल आवेगा और हम उस के रहस्य को जानने के लिए परमाणुओं और विद्युत्कणो तक न जायगे।

इस में तो तनिक भी सदेह नहीं है कि मासपेशिया बड़ी अद्भुत जीती जागती यत्र हैं। हर मासपेशी के पास धमनिया अन्न और ओषजन की धारा पहुंचाती हैं। मासपेशियों की सेलें उन में से अपना भोजन चुन लेती हैं और जो कुछ उन्हें नहीं चाहिए उसे छोड देती हैं। इस जड़न या कूड़ा-करकट को शिराए उठा ले जाती हैं और फुफ्फुस की राह से रोमकूपो से या वृक्को से उस कूड़े को शरीर के बाहर फेकने के लिए उन-उन अगों में पहुंचाती हैं। हर मासपेशी पर प्राय. सुषुम्ना से आयी हुई नाड़ियो के बारीक सिरे पहुचते हैं और जब-जब जरूरत पड़ती है इन्हीं सिरो से बिजली की सी वह ताकत आती है जिस से

मांसपेशी के सभी सेल और रेशे एक साथ सिकुड़ जाते हैं और मासपेशी से लगी हुई हड्डी को उठाते हैं। नाड़ी से आयी हुई उत्तेजना या धक्का बहुत सूक्ष्म होता है। वह वही काम करता है जो एक जलती हुई दियासलाई बारूद के ढेर के साथ करती है। मासपेशियों का एक ही क्षण मे एक साथ मिलकर बड़े नियम से काम करते रहना अत्यत अद्भुत बात है। जब हम चलते है तो पग-पग पर चौवन मासपेशिया काम करती हैं और वह भी इस अन्दाज से कि बारी-बारी से काम करती हुई कुल तीन-सौ मासपेशिया चलने के काम मे लगी होती हैं। इस मे नाड़ी, नाड़ी-केन्द्र और मासपेशिया बिना हमारे जाने ही मिल-जुलकर नियम से काम करते हैं। वर्त्तमान काल का यह बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध करोड़ो बरस से होते आनेवाले विकास का फल है जिस मे प्रत्येक दोषवाले शरीर को धीरे-धीरे छाट कर निकाल दिया गया है और जीवन के रगड़े मे वही सुधार ठहर सके हैं जो मिल-जुलकर यत्र की सब से अधिक उपयोगिता को पूरा करते हैं।

चौदहवां अध्याय

प्राणमय कोष का तार-विभाग

१—नाड़ी का निर्माण

शरीर भर में सब से अद्भुत सस्थान नाड़ियों का है। इन के तारों का ताना सारे शरीर में फैला हुआ है। इन तारों के केन्द्र-कार्यालय मस्तिष्क में, सुषुम्ना में और नाड़ी-सेलों के कुछ और चक्रों में हैं। नाड़ी की सेलो के गुच्छ जहा मिलकर एक होते है वह चक्र कहलाता है और मिले हुए गुच्छों को नाड़ीकेन्द्र या नाड़ीगड कहते हैं। आदि और प्राथमिक जीवों में न तो नाड़ी है, न मासपेशी है, न मुह है, और न पेट है। वह तो एक ही सेल है जो एक बारीक झिल्ली में लपसी के रूप में बन्द है। उस का हर एक अंश अन्न को पचाता है, गति उत्पन्न करता है और अपनी परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार करता है। इसी आदिप्राणी का विकास होते-होते बड़े शरीरधारी बने जिन में असख्य सेले अद्भुत सामजस्य से परस्पर मिलकर काम करती रहती हैं और विचित्र श्रम-विभाग प्रकट करती हैं। कुछ सेले पचाने का काम करती हैं, कुछ नयी सेलों के उपजाने का काम करती हैं और कुछ गति पैदा करती हैं। इसी तरह कुछ ज्ञानवाली सेले हैं और दूसरी कर्मवाली सेलें हैं। ज्ञानवाली सेलें जब शरीर में विकास करने लगीं तो उन्हों ने अपने लिए जगह-जगह फाटक या द्वार बना लिए। कुछ सेलें प्रकाश को ग्रहण करनेवाली हुईं, कुछ गन्ध को और कुछ शब्द को ग्रहण करनेवाली हुईं। हर एक प्रकार की सेलों ने इकट्ठी हो-हो कर अपने लिए अलग-अलग द्वार बनाये। शुरू-शुरू में यह त्वचा के ऊपर छोटे-छोटे धब्बो या गड्ढों के रूप में दीखने लगे। विकास-क्रम में यही बढते-बढते इन्द्रियग्राम बन गये। गतिवाली सेलों ने अपने द्वार मासपेशियों के रेशों के पास बनाये। धीरे-धीरे बढते-बढते इन विविध केन्द्रों, चक्रों और द्वारों का नाड़ी के रेशों से सबन्ध जुट गया और एक प्रधान केन्द्र-कार्यालय बन गया जिस का सम्बन्ध इन्द्रियग्रामों से, नाड़ीचक्रों से, मासपेशियों से, और ग्रंथियों से सीधा स्थापित हो गया। जब रीढ की हड्डी का विकास हुआ तब केन्द्रीय

कार्यालयो का प्रधान मार्ग उसी के भीतर से होगा और इसी सुषुम्ना के ऊपरीभाग के बढ़ जाने से मस्तिष्क बना जिस की रक्षा के लिए हड्डी की मजबूत खोपड़ी रची गयी।

हम पहले ही कह चुके हैं कि शरीर मे डाक और तार दोनो के विभाग हैं। शरीर मे कुछ अग ऐसे हैं जो रक्त मे बहुत आवश्यक रासायनिक भोजन लेकर दूर-दूर के अगो को पहुँचाते हैं। कितनी ही जल्दी करे यह डाक-विभाग शरीर की आवश्यकता के अनुसार तेज़ी नही बरत सकता। इसीलिए तार-विभाग की भी आवश्यकता पड़ती है। मान लो कि गगा मे नहाते समय एका-एकी किसी नुकीले पत्थर पर पाव पड़ गया। उसी क्षण पाव के उस अश से सुषुम्ना नाड़ी-मडल मे तुरन्त खबर पहुंची। उसी क्षण उस केन्द्र से तुरन्त एक नाड़ी तरग ने टाग की मासपेशियो को सिकोड दिया जिस से पाव झट पीछे को हट गया। यह क्रिया कितनी शीघ्रता से हुई यह प्रत्यक्ष है। अष्टपाद मे यह नाड़ी समाचार लगभग अस्सी इंच प्रति सेकण्ड के हिसाब से जाता है। मेंढक मे नब्बे फ़ुट प्रति सेकेण्ड का वेग हो गया है। मनुष्य मे यही वेग चार सौ फ़ुट प्रति सेकण्ड है।

मनुष्य के शरीर मे तो नाड़ी-समाचार पहले दिमाग के भीतर जाकर एक घटी-सा बजाता है अर्थात् सूचना देता है। यह सूचना पाकर दिमाग की ओर से उचित कार्रवाई का आदेश होता है। परन्तु मनुष्यो मे और दूसरे प्राणियो मे भी बिना इस घटी के बजाये भी काम होता रहता है। इस तरह की क्रिया को प्रत्यावर्त्तन या परावर्त्तित क्रिया कहते है। तात्पर्य यह कि शरीर के स्वामी दिमाग तक खबर पहुँचने की जरूरत नही होती। समाचारवाले तार से किसी केन्द्र पर खबर पहुंचते ही अपने-आप कर्म की नाडियो मे तुरन्त उत्तेजना होती है और उसी क्षण काम हो जाता है। जितने कर्म चेतना को खबर पहुचाकर किये जाते हैं विज्ञात कर्म कहलाते हैं। जितने बिना खबर पहुंचाये प्रत्यावर्त्तन से होते हैं अविज्ञात कर्म कहलाते हैं। आख मे किरकिरी पड़ने को आयी नही कि केन्द्र तक सूचना-तरग पहुंची और तुरन्त ही क्रिया-तरग अपने आप पलको की मासपेशियो मे आयी और पलके झट बन्द हो गयी, आखो की रक्षा के लिए पर्दा पड गया। यह काम इतनी जल्दी का था कि चेतना को खबर पहुचाने की देर भी हानिकर थी। प्रायः सारा शरीर सुषुम्ना द्वारा इसी तरह की अपने-आप काम करनेवाली नाडियो से बधा हुआ है। सिर और चेहरे की मासपेशियो के लिए नाडी-केन्द्र मस्तिष्क के भीतर होते हैं।

नाडी की सेलो मे, जिन्हें हम वातसेल भी कह सकते हैं, सेल का शरीर होता है और बाहर निकलनेवाले रेशे या तार होते हैं। हर सेल से दो या अधिक रेशे निकले होते हैं, जिनके सिरो पर बहुत बारीक रेशो के गुच्छे से होते हैं। इस तरह एक दूसरे से यह आसानी के साथ मिलते हैं। दिमाग और सुषुम्ना तो विशेष रूप से हर सेल के बारीक रेशो के गुच्छे होते हैं और एक सेल के गुच्छे दूसरे सेल के गुच्छों से आपस मे लपट जाते हैं। मासपेशियों और ग्रन्थियों को कर्म की उत्तेजना देनेवाली नाड़ियो मे बहुत से लम्बे लम्बे रेशे होते हैं जो सरपत के पूलों की तरह बधे होते हैं। हर रेशे के भीतर एक अद्भुत मध्यगामिनी नाड़ी होती है जिस के भीतर एक तरह का रस रहता है।

२—नाड़ी में बिजली नहीं चलती

नाड़ी-तरग का भेद अभी तक खुला नहीं है। इस के चलने से विद्युत प्रकट होती है परन्तु यह स्वय उस की तरग नही है। होती तो नाड़ी-समाचार का वेग लगभग दस लाख गुना अधिक होता। एक और विशेपता है कि जब तक ओपजन पूरी मात्रा में मिलता रहता है तब तक यह नाड़िया थकती नही जान पड़ती और आज तक शरीर विज्ञा-

चित्र ११९—हमारे शरीर के कोष्ठ
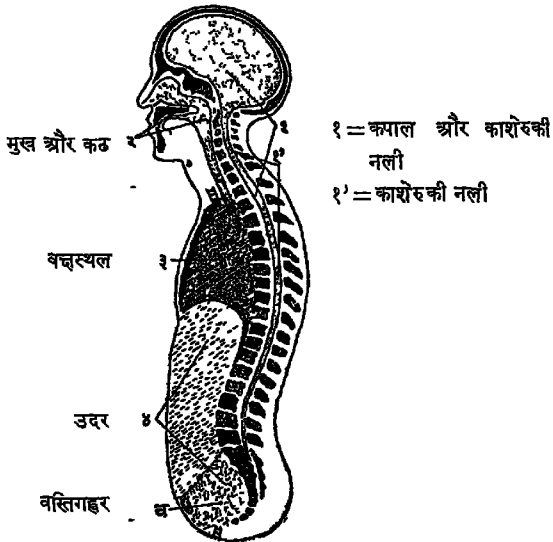
अन्धकार की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

नियों को यह पता नहीं लगा है कि नाड़ियों में किसी तरह का रासायनिक विकार भी होता है। सोते जागते सभी दशाओं में यह तार बराबर काम करते रहते हैं और जीते जागते दिखाई पड़ते हैं। इतना काम होते हुए भी शरीर-विज्ञानियों ने यह पता नहीं लगा पाया है कि इतनी कर्मण्यता के साथ ताप की कोई मात्रा भी प्रकट होती है या नही।

मस्तिष्कवाले केन्द्र की नाड़ी सेलों की यह दशा नही है। यह थक भी जाती हैं और सुस्ताने और आराम करने के लिए इन्हें समय भी चाहिए। नींद के समय इस तरह का आराम मिलता है। साधारणतया यह बात मानी जाती है कि जब आदमी सोता है तो दिमाग की ओर खून का बहना घट जाता है जिस से ओपजन का मिलना भी कम हो

जाता है। इस से चेतना के अगों की प्राण-शक्ति घट जाती है। सोने के लगभग एक घटा बाद मस्तिष्क की जीवन-क्रिया बिल्कुल रुक जाती है और रक्त थकी हुई मासपेशियो को खिलाने मे लग जाता है। कुछ घटे बाद रक्त फिर दिमाग़ की तरफ आने लगता है और थोड़ी थोड़ी चेतना आजाती है जिस पर बुद्धि और विवेक का कुछ अधिकार नहीं होता। इसी को स्वप्नावस्था कहते हैं। कुछ लोगों मे चेतना के लौटने के बदले क्रियाओं का प्रत्यावर्त्तन होता है। वह सोते हुए भी चलने-फिरने और काम करने लगते है। नीद के सम्बन्ध मे इतनी बाते साधारणतया मानी हुई है। परन्तु आज भी निद्रा एक कठिन पहेली है। उसके सम्बन्ध मे कोई सिद्धान्त सन्तोषजनक नही पाया गया है। मस्तिष्क के सम्बन्ध में अलगही खोज होती है। उसे मनोविज्ञान कहते हैं।

हमारा नाड़ी-सस्थान बड़ा विचित्र है। यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि हमारा जीवन इसी पर निर्भर है तो भी इसमे तो तनिक भी सन्देह नही है कि हमारी सुस्ती और तेजी, मन्दता और तीव्रता, स्वार्थभाव या परार्थभाव, खुश रहना या उदास रहना, चचलता या दृढ़ता, इसी वात-सस्थान या नाड़ी-सस्थान पर निर्भर है। कुछ विज्ञानियो का यह विचार है कि हमारा वात-सस्थान तारो से बने हुए बाजे की तरह है जिसको अन्तरात्मा निरन्तर बजाता रहता है अथवा काम मे लाता रहता है और जब कभी ज्वर मे सन्निपात हो जाता है अथवा बुढ़ापे मे मानसिक शक्तियों का क्षय हो जाता है तो वस्तुतः यह समझना चाहिए कि इस विचित्र बाजे का कोई पर्दा खराब हो गया या काम मे लाते लाते पर्दों के घिस जाने से तरह तरह के दोष आ गये हैं। कुछ लोगो का विचार है कि हमारा जीवन रहस्यमय है, जो प्राण-शक्ति अन्न पचाती है और रक्त-सस्थान को चलाती रहती है वही वात-सस्थान और मनोमय कोष का नियन्त्रण भी करती रहती है।

साधारणतया ऐसा समझा जाता है कि खोपड़ी के भीतर जो कुछ बन्द है सब विचारो और भावो से सम्बन्ध रखता है और बड़ी खोपड़ी का अर्थ बड़ी योग्यता ही है। परन्तु इस मे भ्रम है। जिसे भावो और विचारो का कार्यालय अर्थात् दिमाग़ या मस्तिष्क कहते हैं वह खोपड़ी के भीतर का बहुत थोड़ा अश है। सिर की चोटी से लेकर माथे की जड़ तक जो खोपड़ी का भाग है उसी मे नाड़ीमय पदार्थ का एक अत्यन्त पतला छिलका सा फैला हुआ है जिस की औसत मोटाई इञ्च के नवे भाग के लगभग होती है। बस इतने ही अश को वह दिमाग या मस्तिष्क कहना चाहिए जो चेतना का अग या इन्द्रिय है। किन्तु यह अनमोल छाल वल्क या छिलका बड़ी ही विकट बनावट का है। इस मे नव-अरब तीस-करोड़ नाड़ियोंवाली सेले लगी हुई हैं, और इस तरह पर अत्यन्त पास-पास लिपटी और जुड़ी है कि मनुष्य की खोपड़ी के भीतर कम-से-कम जगह लेकर अधिक-से-अधिक तल से काम कर सके। इस छिलके के चारो ओर भीतर अनेक नाड़ी-चक्र है जो सिर, चेहरा, आँख, जीभ आदि विविध अगो को अपने काबू मे रखते हैं। नाड़ियों के वह केन्द्र भी यही हैं जो आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियों के समाचार पाते रहते है। जिस आदमी का शरीर पचहत्तर सेर के लगभग होता है उस के दिमाग का छिलका तोल मे उस के शरीर-भार का केवल पञ्च सहस्राश अथवा एक तोले से कुछ ही अधिक, १.०२ तोला, होता है।

३—नाड़ी-विभाग

सिर के पिछले भाग को लघु मस्तिष्क कहते हैं। यही वह-केन्द्र कार्यालय है जहा से सारे शरीर की मासपेशियो की समजस गति रखी जाती है। हम चलते हो और एकाएकी हमारे दोनों पॉव साथ उठ पड़े तो हम लड़खड़ा जायगे। लिखते समय जिन अंगुलियां
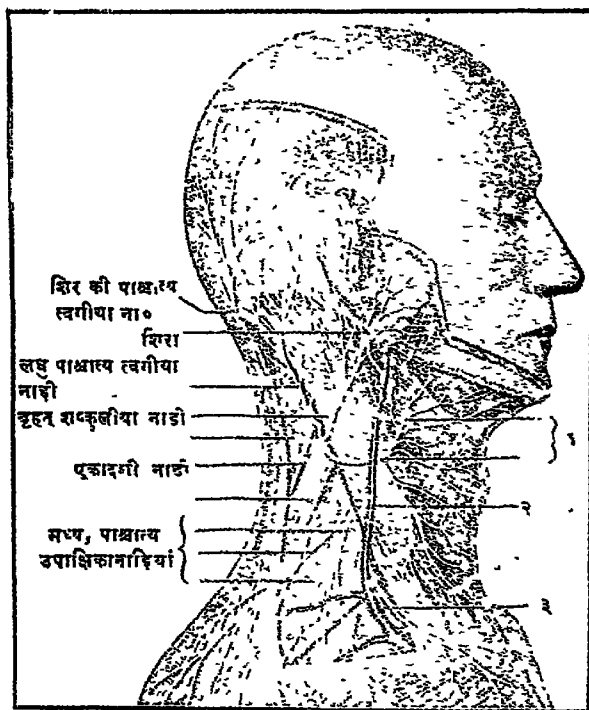
चित्र ११६—सिर और गर्दन की नाड़ियां

अंधकार की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

को हम काम में लाते हैं यदि वह हट जायें और दूसरी अंगुलिया उन के बदले आ जायें तो काम बिगड़ जायगा। शराबी के पॉव लड़खड़ाते हैं और वह गिर जाता है। इस का कारण यही है कि नशे से उस के लघु मस्तिष्क पर ऐसा बुरा प्रभाव पड़ा है कि वह मांस-

पेशियों पर काबू नहीं रखता और उनका सामजस्य बिगड गया है। लघु मस्तिष्क सारे दिन शरीर के सभी अंगो से निरतर असख्य समाचार पाता रहता है और बराबर तीन सौ
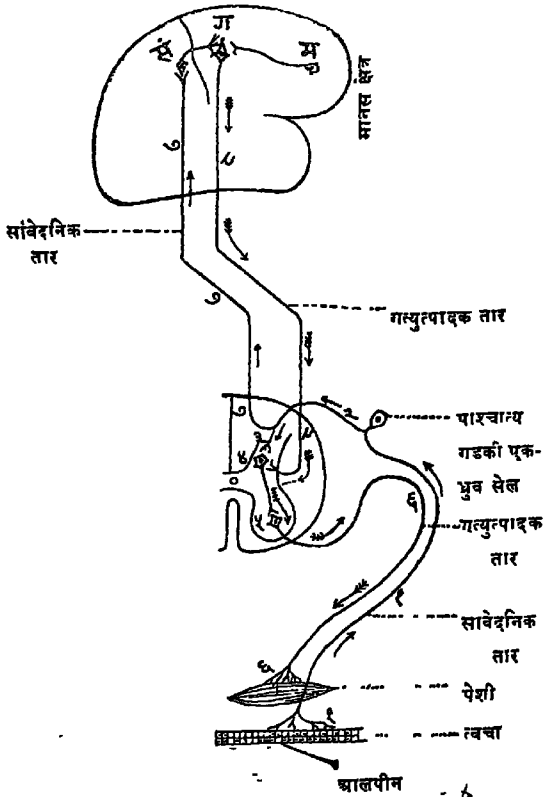
चित्र ११७—एक आलपीन धँसने पर नाडीजाल में कौन हैं। गि है, र्तित क्रिया। [हमारे ... रचना से ग्रंथकार की कृपा से]

चित्र १२७ की व्याख्या

इस चित्र में यह समझाया गया है कि परावर्तित क्रिया (प्रत्यावर्तन) किस प्रकार होती है। १=त्वगीया नाडी का तार। २=यह तार सूचना को सुषुम्ना में ले जाता

है। सुषुम्ना में इस के कई भाग हो जाते हैं। एक तार (३) पाश्चात्य श्रृंग की सेल (४) के पास रह जाता है। यह सेल सूचना को पूर्वश्रृंग की सेल (५) तक पहुँचाती है जो अपने तार (६) द्वारा पेशी को संकोच करने की आज्ञा देती है। ३=केन्द्रगामी तार का सुषुम्ना में ही रह जानेवाला भाग। ४=सेल। ५=पूर्वश्रृंग की सेल। ६=मांस में अंत होनेवाला तार। ७=मस्तिष्क को जानेवाला केन्द्रगामी तार। सं=सांवेदनिक क्षेत्र जिस की सेलें अपने तारों द्वारा गतिक्षेत्र की सेलों से सबन्ध रखती हैं। ग=गति-क्षेत्र। म=मानस क्षेत्र जिस की सेलों का गति-क्षेत्र की सेलों से सम्बन्ध है। ८=इस तार द्वारा गति करने की आज्ञा सुषुम्ना की सेलों को पहुँचती है।

(१) ऐच्छिक क्रिया—जब हम कोई गति अपनी इच्छा से करते हैं तो मानस क्षेत्र की सेलों की आज्ञा पाकर गति-क्षेत्र की सेलें सुषुम्ना की (यदि गति का सम्बन्ध मस्तिष्क नाड़ियों से है तो उन नाड़ियों के उत्पत्ति स्थान की) सेलों को आज्ञा देती हैं और गति हो जाती है। आज्ञा म से आरंभ हो कर ग, ८, ४, ५, में से होती हुई ६ में पहुँचती है।

(२) परावर्तित क्रिया—इस का मार्ग यह है—त्वचा, १, २, ३, ४, ५, ६ मांस।

मांसपेशियों को बिना किसी भूल-चूक के समंजस गति से चलाता रहता है और उन की ताकत को बनाये रहता है। यह क्रिया अपने-आप होती है। परन्तु संसार में ऐसा कोई तार बर्कों का केन्द्र कार्यालय नहीं है जो इस तरह बिना थके निरंतर काम करता हो और कभी भूल भी न करे। इन सब से बड़े आश्चर्य की बात यह है कि ऐसा अद्भुत तार-बर्कों का एक-एक केन्द्र-कार्यालय हर खोपड़ी में मौजूद है।

लघुमस्तिष्क के नीचे ही सुषुम्ना-शीर्षक है। यह छाती की उन मांसपेशियों को काबू में रखता है जिन से सांस लेने और निकालने की क्रिया होती है, हृदय और रक्त संस्थान की मांसपेशियां इसी के अधिकार में हैं और अन्नमार्ग में लाला ग्रन्थियों से लेकर छोटी आँत तक की गति पर इसी का प्रभाव है। विकास-क्रम में लघुमस्तिष्क सब से पुराना अंग है जो खोपड़ी के भीतर रहता आया है। प्राणी का ज्यों-ज्यों विकास हुआ है त्यों त्यों मस्तिष्क का छिलकेवाला भाग धीरे-धीरे बढ़ता गया है। परन्तु लघुमस्तिष्क से भी अधिक पुराना रीढ़ के भीतर रहनेवाला सुषुम्ना नाड़ीजाल है। इसी सौषुम्न स्तंभ में अनेक चक्र हैं जो हाथ-पाँव आदि अंगों को और पेट की बड़ी-बड़ी मांसपेशियों को अपने आप चलाते हैं। जगह-जगह से इसी में से नाड़ियों के जोड़े निकले हुए हैं जो सारे दिन समाचार पाते और हुक्म मे निकालते रहते हैं। अपने-आप सीख लेने की शक्ति भी सुषुम्ना नाड़ीजाल में अद्भुत चित्र १८ चलना सीखता है या लड़की बजाना सीखती है तो धीरे-धीरे हाथ-पाँव की मांसपेशियां ऐसा चलने और काम करने लगती है कि हम उसे स्वाभाविक गति समझते हैं और हमारे बिना सोचे-विचारे ही अपने आप काम होता रहता है।

———

पंद्रहवां अध्याय

सरहदी चौकियां और डाक

१—इन्द्रियग्राम या करण के अंग

खाल के ऊपर जिन विशेष नाड़ियों के धब्बों की चर्चा हम कर आये हैं वही धीरे-धीरे विकास पाकर इन्द्रिय बन गये। करोड़ों बरस के समय में जो धब्बे प्रकाश से उत्तेजित होनेवाले नाड़ीजाल के सूचक थे उन्हीं का विकास होकर आँखों का ढाँचा बना। इसी प्रकार कानों के, नाक के, जिह्वा के ढाचे धीरे-धीरे बने। स्पर्शवाली नाड़िया त्वचामात्र मे कहीं कम और कहीं अधिक फैलीं। इस शरीर के सेल-साम्राज्य की बाहरी सीमाओं पर नाके-नाके पर यह चौकी पहरा बैठा हुआ है।

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना।
जँह तँह सुर बैठे करि थाना॥

इन्द्रिय ग्रामो के झरोखो पर विशेष-विशेष प्रकार के नाड़ीजाल के तार लगे हुए हैं जो सीमा के बाहर की अवस्था की सूचना केन्द्र-कार्यालय को प्रतिक्षण देते रहते हैं। बहुत काल तक उनका यही काम था कि भोजन का पता और जोखिम की सूचना देते रहें। विकास पाते-पाते मनुष्य के शरीर मे इन्द्रियो का काम बहुत ज्यादा बढ गया।

खाल के ऊपरी तल तक बहुत से छोटे-छोटे नाड़ीजाल आये हुए हैं। उन की अत्यन्त सूक्ष्म शाखाओं के सिरो पर बहुत नाजुक घुडियाँ हैं। गिनती मे असख्य हैं। इनका काम है कि पीड़ा का पता दे। हमें जब पीडा होती है तो हम बहुत बुरा मानते हैं परन्तु सचमुच बुरा मानने की कोई बात नहीं है। पीड़ा तो असल मे टेलीफोन की घटी है जो हमें जोखिम का पता देती रहती है। ऐसा न हो तो शरीर के लिए वही घातक हो जाय। और छोटी-छोटी घुडियाँ हैं जो हथेली की ओर अगुलियों पर अधिक हैं। यह स्पर्श का ज्ञान देती हैं। कुछ ऐसी हैं जो ठढक बतलाती हैं। उन से भी भिन्न और हैं

जो गरमी का पता देती हैं। दबाव का पता देनेवाली घुंडियाँ इन सब से अलग हैं। पीड़ा, दबाव, ठंढक, गर्मी, कड़ाई, नर्मी, इन छः बातों का पता देनेवाली घुंडियाँ हमारे शरीर की ऊपरी खाल के पास कहीं कम कहीं अधिक सर्वत्र फैली हुई है।

मुँह के भीतर वह घुंडियाँ हैं जो भोजन का स्वाद बताती हैं। जीभ के ऊपरी तल पर बहुत नन्हीं-नन्हीं अंडाकार घुंडियाँ सेना की तरह हैं। स्वाद लेने को घनी पाँती में खड़ी हो जाती हैं। इन स्वादवाली घुंडियों की भीतरी सेलों के अन्त में रोए से होते हैं जो दिमाग तक सूचना पहुँचानेवाली नाड़ियों को छूते हैं। सम्भवतः भिन्न स्वादों के लिए भिन्न नाड़ियाँ होती होंगी। जीभ के सिरे पर बहुतायत से वह छोटी घुंडियां हैं जो मिठास का पता देती हैं और पिछले भाग में वह हैं जो कड़वे स्वाद का अनुभव करती हैं। स्वाद की इन्द्रियों तक पहुँचने के लिए रस या द्रव के रूप में अन्न का होना जरूरी है।

सूँघने के लिए हर एक पदार्थ के वायव्य-खंड हो जाने चाहिए। दिमाग के घ्राण के केन्द्रों से निकलकर नाड़ियाँ अनेक शाखाओं में बँट जाती हैं और नाक के भीतर ऊपरी भाग की झिल्लियों में उन का अन्त होता है। इस झिल्ली में असख्य नाड़ी सेलें बराबर पहरा देती रहती हैं कि हवा में मिली हुई जोखिम की चीजें तो नाक में नहीं आ रही हैं। जिन पदार्थों से किसी तरह की गन्ध निकलती है समझना चाहिए कि उन में से हवा में बहुत बारीक कण निकलकर मिलते जाते हैं। प्राणिमात्रमें सूँघने की इन्द्रिय सब से अधिक महत्व की चीज रह आयी है और मनुष्य के शरीर में भी इस का विकास हुआ है कि कस्तूरी का अस्सी लाखवां अंश भी वायु में मिला हो तो मनुष्य मालूम कर सकता है। बहुत तेज दुर्गन्धवाली चीज तो वह पचीस नीलवें अंश तक मिले होने पर भी जान सकता है। तो भी मनुष्य में घ्राणशक्ति का ह्रास हो रहा है और बहुतों में यह शक्ति बहुत निर्बल है। अनेक छोटे प्राणियों की अपेक्षा तो उस की घ्राणशक्ति बहुत कम है ही।

२—आँख के झरोखे

आँखों से बढ़कर शरीर की कोई इन्द्रिय नहीं समझी जा सकती, क्योंकि साधारण मनुष्य के दिमाग में बाहरी वस्तुओं की सारी कल्पनाएँ आँख में पड़नेवाली छाया के चित्र हैं। आँख का गोलक इस यन्त्र का सब से आवश्यक अंग है। इसी गोलक के पिछले भाग से आँखवाली नाड़ी दिमाग के भीतर दृष्टि के नाडी-केन्द्र तक जाती है। फोटो लेने के लिए जो कैमरा इस्तेमाल करते हैं वह इसी आँख की भद्दी नकल है। आँख का कैमरा बड़ा ही अद्भुत है। यह घने और मजबूत रेशेवाले मांसकणों का बना हुआ गोला सा है जिस के छः अंशों में पांच तो अ-पारदर्शी हैं और छठा जो आगे की ओर कुछ निकला सा है पारदर्शी है और कनीनिका कहलाता है।

कनीनिका के भीतरी ओर पहले थोड़े से द्रव का परदा है और फिर उस के बाद एक बहुत की कोमल पर्दा है जो आगे की ओर की पारदर्शी खिड़की के ऊपर पड़ा हुआ है, और विविध रंगों का होता है। जब आँख पर रोशनी पड़ती है तो बहुत अधिक होने पर यह खिड़की छोटी हो जाती है और बहुत कम होने पर बड़ी हो जाती   ।

मासपेशी के रेशे ऐसी चतुराई से इसमें लगे हुए है कि यह तेज रोशनी पर प्राय: बन्द सी हो जाती हैं और अन्धकार में एक दम खुल जाती हैं। इस के सिवाय इस में रग के सेल हैं जो कि तेज रोशनी पर घने हो जाते हैं और अधिक किरणों को चूम लेते हैं
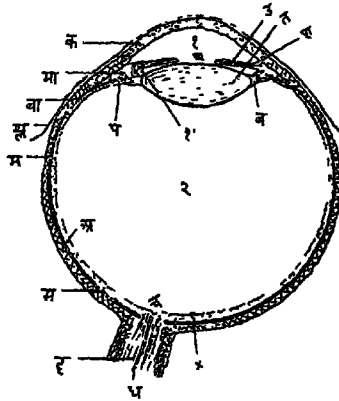
चित्र १५८—आंख की पड़ी काट

अन्धकार की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

१ = आख का अगला कोष्ठ। १' = पिछला कोष्ठ। २ = बृहत् कोष्ठ।
क = कनीनिका। उ = उपतारा। छ = तारा। त = ताल। ब = ताल-बन्धन।
श = चक्रवत् शिराकुल्या का छिद्र। प = उपतारानुमडल। मा = मास।
बा = बाह्यपटल। श्ल = श्लैष्मिक कला। म = मध्यपटल।
अ = अन्तरीय पटल। च = चक्षुविम्ब। द = दृष्टिनाड़ी।
ध = धमनी। × = पीतविन्दु।

और जब आखो को अधिक रोशनी को जरूरत पड़ती है तब यह बहुत कम हो जाते हैं। जिन देशों में धूप बहुत तेज हुआ करती है वहाँ आँखें काली होती हैं और जहाँ धूप कम हो जाती है और रोशनी कम मिलती है वहा की आँखें नीली होती हैं। दोनो अवस्थाओं के बीच में प्रकाश के तारतम्य से सभी रगो की आखें पायी जाती हैं।

इस गोल खिड़की के पीछे एक चमकदार ताल लगा हुआ है जिसे पुतली या तारा कहते हैं। मनुष्य ऐसा ताल नहीं बना सकता जो किसी दूरी के लिए प्रकाश की किरणों को केन्द्रित करने के लिए इच्छानुसार घटाया-बढाया जा सके। परन्तु यह ताल बहुत सूक्ष्म मासपेशियों का बना हुआ है और आवश्यकता के अनुसार घटता-बढता रहता है। आँख के गोलक के बाहर की ओर दूसरी मासपेशियां और कडराए लगी हुई हैं जो अपने-आप, हम जिधर चाहें उधर, गोलक को घुमा देती हैं। कुछ विज्ञानी आँख की रचना में दोष

निकालते हैं परन्तु जब हम यह सोचते हैं कि इस अद्भुत कमरे की रचना कितने काल में कैसी चतुराई से हुई है और जब तक हम जागते रहते हैं तब तक हमारे जीवन भर यह यन्त्र निरन्तर अपने आप काम करता रहता है तो दोष निकालने का भाव मिट जाता है।

सब में विचित्र रचना आँख के गोल के पीछे का वह पर्दा है जिस पर बाहर का

चित्र ११६ —दोनों आँखें दो उलटे चित्र बनाती हैं पर एक ही सीधा दृश्य दीखता है

अन्धकार की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

मस्तिष्क के नीचे और जतुकास्थि के ऊपर एक ओर की दृष्टिनाड़ी दूसरी ओर की दृष्टिनाड़ी में जा मिलती है। मिलने पर दृष्टिनाड़ी-योजिका बनती है। यहाँ से दृष्टिपथ का आरम्भ होता है। हर एक दृष्टिपथ में थोड़े-थोड़े दोनों आँखों के तार होते हैं, दो तिहाई उसी ओर की आँख के और एक तिहाई दूसरी ओर की आँख के।

चित्र उतरता रहता है। यह एक अल्प पारदर्शक झिल्ली है जिसे हम काला परदा या रेटिना कहते हैं। यह गोलक के पृष्ठदेश का तीन चौथाई तल है और एक विशेष स्थान पर

यह बहुत विकसित अवस्था मे है जिस पर चित्र पड़ने से हमे दिखाई पड़ता है। स्थल पीला है और प्रकाश की किरणें इस पर उल्टा चित्र डालती हैं। यह किरणें गोलक के भीतर से होकर आती हैं जिसमे एक द्रव भरा हुआ है। दोनो आखो की नाभि या प्रकाश के केन्द्र के एक हो जाने से दोनो चित्र एक मे मिलकर स्पष्ट दिखाई देते है।

देखने का वास्तविक रहस्य अभी तक वैज्ञानिकों की समझ मे अच्छीतरह नहीं आया है। यह काला परदा बड़ी असाधारण वस्तु है। इस मे अत्यन्त सूक्ष्म और कोमल नाड़ी-सेलों का एक विकट तल है जिस के कुछ अश छड़ और शकु कहलाते हैं जो इस परदे के विशेष अग मालूम होते है। ऐसा जान पड़ता है कि इस स्थल पर रासायनिक क्रिया होती होगी। यह पता नही है कि तीन मूल रगो के लिए तीन रासायनिक पदार्थ अलग-अलग है अथवा एक ही तीन रगो मे बॅट जाता है। ऐसा समझा जाता है कि जो लोग वर्णान्ध हैं, जिन्हें कोई एक या दो रग नही दिखाई देते, उन की आँखों मे एक या अधिक सूक्ष्म रासायनिक पदार्थों की कमी होगी। इस मे जो रहस्य हो अभी ठीक कहा नही जा सकता। नाड़ियो का तल आँखो के पीछेवाली नाड़ी मे एकत्र होकर मिल जाता है और यही दृष्टि-नाड़ी किसी न किसी प्रकार से चेतना-केन्द्र तक बाहरी वस्तुओ के चित्र पहुंचा देती है। यह पता नहीं कि चित्रो का ज्ञान दृष्टिनाड़ी किस तरह पहुँचा देती है।

३—कान के किवाड़

सुनने की इन्द्रिया भी कम अद्भुत नही हैं। वैज्ञानिको की राय है कि कान का बाहरी हिस्सा शायद बिल्कुल बेकार है। इस भाग से लगभग एक इच लम्बा परन्तु तग रास्ता है जिस मे मोम सा चिपकनेवाला पदार्थ लगा रहता है। यह पदार्थ इसी मार्ग मे रहनेवाली बारीक ग्रथियों से निकला करता है जिस मे बाहर से आनेवाले कीड़े-मकोडे फॅस रहें। इसी रास्ते से शब्द की लहरे असली कान तक पहुँचती हैं। इसी रास्ते के अन्त मे बाहरी सिरे पर सावेदनिक ढोल है जो झिल्ली का बना हुआ है और जिसे कर्णपटल भी कहते हैं। इस मे अपने स्फुरण का कोई नियम नहीं होता। इस के ऊपर जितनी तरह की हवा की लहरें लगती हैं यह उतनी तरह की लहरे तुरत उठाता है। इसकी बनावट ऐसी है कि इस के भिन्न भागों मे भिन्न लहरों का प्रबन्ध है। दूसरी ओर से एक छोटी सी हड्डी इस झिल्ली पर आकर लगती है जो इस की आवाज़ को मन्द कर देती है। बाहर से इस पर हवा का जो दबाव पड़ता है उससे ढोल का बाहरी हिस्सा बदलता रहता है परन्तु उसे बराबर ठीक रखने के लिए भी एक राह बनी हुई है जो मुह के तालू के ऊपर से कान तक आयी हुई है और जिसे कठकर्णी नाली कहते हैं।

छोटी-छोटी तीन हड्डिया है जिन्हें हथौड़ी निहाई और रकाव कहते हैं। यही तीनों हड्डिया कान के बीचवाले भाग में एक ढोल की लहरो को दूसरे ढोल तक पहुँचाती हैं जो खोपड़ी के भीतर असली कान के प्रवेशक द्वार पर फैला हुआ है। शब्द की लहरें पहले कर्णपटल पर टकराती हैं जिस से कर्णपटल लहराता है और तीनों हड्डिया काम करती हैं।

हथौड़ी निहाई पर लगती है और निहाई के अन्त में लगी हुई रकाब भीतरी पटल पर उन लहरों को पहुंचाती है जिस से वह पटल या ढोल भी लहराने लगता है। यह दूसरा ढोल या पटल अंडाकार होता है। इसके बाद कुंडली की तरह घूमा हुआ ढाँचा है जिस के भीतर सुनने की असली इन्द्रिया है। यह बालवाली सेलें हैं जो उस कुंडली के भीतर फैली हुई हैं और सुननेवाली नाडी के बारीक रेशों से लिपटी हुई हैं। इस सुरंग के भीतर एक द्रव भरा हुआ है जो अंडाकार परदे से आनेवाली लहरों से विशेष रूप से हिला करता है और बाल की सेलों को हिलाता है और यह सेलें सुननेवाली नाडी को अपनी गति देती हैं और वह दिमाग को वही गति पहुँचा देती है। यह भी एक अद्भुत यंत्र है जो करोड़ों बरसों में पिंडजों में विकास करते-करते अन्त में वर्तमान रूप में आया है।
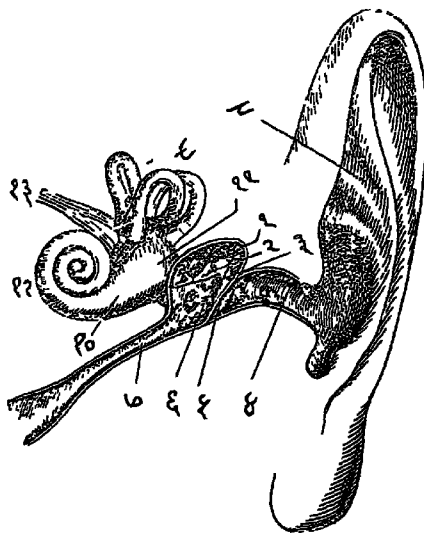
चित्र १२०—कान के भीतरी भाग

अन्धकार की कृपा] [हमारे शरीर की रचना से

१ = रकाबास्थि। २ = (निहाई) शूर्मिकास्थि। ३ = मुद्गरास्थि (हथौड़ी)। ४ = कर्णाञ्जली। ५ = (ढोल) कर्णपटल। ६ = मध्य कान। ७ = कंठकर्णी नाली। ८ = कर्णशष्कुली। ९ = अर्धचक्राकार नालिया। १०, ११ = भीतरी कान का कोठा। १२ = कोकला। १३ = नाड़ी। कान का बाहरी चोंगा अचल और निरर्थक है। शब्द-तरंग बाहरी मार्ग से ढोल (कर्णपटह) तक पहुँचता है। शब्द-तरंगों से ढोल लहराता है। हथौड़ी निहाई और

रकाब अपनी-अपनी गति से लहरो को भीतरी भाग तक पहुँचाते हैं। कंठकर्णी नाली से हवा मध्यकान तक पहुँच सकती है। (६) भिल्लीकृत अर्धचक्राकार नालियों का काम सामजस्य और समतोल रखना है। कोकला या कर्णकुहर ही वास्तविक श्रवणेंद्रिय है। कर्णपुट कुछ लम्बा होकर अन्तर्लसीका प्रणाली बन जाता है। काली-सी खाली जगह "परि-लसीका" से भरी है, इस के और कान की भीतरी गुहा के बीच एक भिल्ली है जिस मे अन्तर्लसीका होती है।

४—ग्रन्थियां और हारमोन

हड्डियो, मासपेशियों और नाड़ियों की थोड़ी बहुत चर्चा हो चुकी अब हम ग्रन्थियो का कुछ थोड़ा सा वर्णन करेंगे। हम कह चुके हैं कि सारे अन्न-मार्ग मे अनगिनतियों नन्ही नन्ही नलिका सी ग्रन्थिया इस मार्ग की भीतों मे मौजूद हैं। ऐसी ही नलिकाकार ग्रन्थियों का एक दूसरा समूह है जो वृक्को का एक आवश्यक भाग है। असल मे इनसे छानने का काम लिया जाता है। धमनिया के द्वारा शुद्ध रक्त वृक्को की नलिकाओं तक पहुँचता है। इस से वृक्को को उत्तेजना मिलती है। प्रत्येक नलिका किसी अज्ञात प्राण-शक्ति के सहारे रक्त मे से बहनेवाले नोषजनीय कूड़ा-करकट को और कुछ थोड़े से जल को खींच लेती है और इन नलिकाओं से मिले हुए बारीक परनाले एक मे मिल जाते हैं और इस गन्दगी को मूत्राशय तक पहुँचाते हैं। यही मूत्र है। गन्दगी दूर करने के लिए इन नलिका ग्रंथियों के साथ साथ परनाले भी लगे हुए है।

जिन ग्रंथियों मे परनाले नहीं लगे हुए है वह और भी अधिक महत्व की समझी जाती हैं। रक्त से यह वस्तुओ को खींच लेती हैं पर अपने रसविशेष नलो मे नही भेजती। इस तरह की ग्रथियो के सब से उत्तम नमूने उपवृक्क ग्रथिया हैं। एक छोटी नारगी के एक फाक के आकार के दो छोटे-छोटे अग वृक्को के पास हैं जो रक्त मे एक रासायनिक डाक को उडेलते रहते हैं। प्रोफेसर स्टारलिंग ने हारमोन इसी डाक का नाम रखा है। विविध अगो मे कितना रक्त कब पहुँचना चाहिये इस बात का नियम न करते रहना इन्ही हारमोनो का काम है।

यह विचित्र बात हाल ही में मालूम हुई है कि शरीर मे बहुत छोटी छोटी असख्य ग्रथिया हैं जिन का काम केवल हारमोन बनाना है। यह हारमोन डाक या चिट्ठी का काम शरीर के भीतर विचित्र रीति से करते हैं। उपवृक्को के हारमोन पक्वाशय की भीतो की केशिकाओं मे उसी तरह पड़ जाते हैं जैसे पास के खम्बे मे चिट्ठिया डाल दी जाती है। केशिकाओ की राह से साधारण रक्त-सचार के मार्ग मे यह डाक पड जाती है। इस डाक का वहन रक्त ही करता है। इस डाक-विभाग मे न तो चिट्ठियों पर पता लिखा रहता है और न छाँट छाँट कर बँटाई मे सहायता देनेवाले कर्मचारी ही हैं। जैसे खास तालों मे लगने के लिए खास चाभियाँ होती हैं उसी तरह हारमोनों के अणुओं का भी रूप और आकार ऐसे

विशेष काटछाँट का बना होता है कि विशेष अगों मे ही उनका प्रवेश हो सकता है। इस तरह वे रक्त की डाक पद्धति से अपने आप उन्ही अगो मे आकृष्ट होते हैं जिनके लिए वे बनाये गये हैं ।

मास की नलिका के दोनो ओर दो छोटी छोटी घुडियाँ हैं जिन्हे चुल्लिका ग्रन्थि कहते हैं। थोडे काल से इनकी बडी ख्याति हो गयी है। यह जो रस बनाती हैं सीधे रक्त की धारा मे मिल जाता है। यह भी वे-परनालीवाली ग्रन्थियाँ हैं। यह जो हारमोन बनाती हैं वह मास के अवयवो की जीवन-शक्ति बढाते हैं और ओषजन चूसने को उत्सुक बना देते हैं। शरीर का जीवन-व्यापार तेजी से चलने लगता है। चुल्लिका ग्रन्थियों के क्षय या अपूर्ण विकास से मनुष्य मे 'मानसिक और शारीरिक दुर्बलता आ जाती है। इन ग्रन्थियों का निष्कर्ष भी ओषधि की तरह मिलता है जिसके सेवन से, कहते हैं कि फिर ताकत आ जाती है। शरीर और मन के साधारण विकास के लिए चुल्लिका ग्रन्थियाँ बड़ी आवश्यक हैं और इस विचार के आधार पर हाल मे जो परीक्षाए की गयी हैं उन मे से कई अद्भुत मे बडे अद्भुत परिणाम निकले हैं।

चुल्लिका ग्रन्थियों के पास ही चार और छोटी घुडियाँ सी हैं जिन्हे पर-चुल्लिका ग्रन्थियाँ कहते हैं। अभी तक इनकी क्रिया स्पष्ट रूप से नही मालूम है। परन्तु इनको जब कभी निकाल दिया गया है तब नाड़ी सम्बन्धी भयानक उपद्रव खड़े हो गये हैं। इनके सिवाय सुकन्ठक ग्रन्थियाँ भी हैं। जान पड़ता है कि इन ग्रन्थियों से किसी न किसी ढग से जननेन्द्रियों को जल्दी विकसित हो जाने में रुकावट रहा करती है। यह ग्रन्थियाँ छाती की हड्डी के सामने होती हैं, और डाक-विभाग द्वारा ही काम करती हैं। भीतरी जननेन्द्रियाँ स्वय रक्त मे बहुत से हारमोन भेजती हैं। साधारण और बधिया किये हुए पशुओं मे जो अन्तर होता है वह प्रकट ही है। इन्ही हारमोनों की बदौलत ठीक ठीक समय पर माता की दूध की ग्रन्थियाँ विकसित होने लगती हैं। ऐसा पता लगा है कि ज्यों ही गर्भाधान होता है त्यों ही डिम्बो से एक प्रकार का हारमोन रक्त मे जाने लगता है और छातियों तक पहुँचकर उन्हें उत्तेजित करता है। सम्भवतः भ्रूण भी ऐसे हारमोन उपजाता है जो माँ के रक्त मे प्रवेश करते रहते हैं और प्रसव-काल तक उपयोगी रहते हैं।

सिर के भीतर भी श्लैष्मिक ग्रन्थियाँ हैं जो अच्छे परिमाण मे हारमोन बनाती हैं। शरीर के अवयवों को इनके द्वारा उत्तेजना मिलती है और उनकी वृद्धि इन्हीं ग्रन्थियों के अधिकार मे होती है। किसी प्राणी के सिर से अगर यह ग्रन्थियाँ निकाल दी जायें तो शरीर दुर्बल और ठिगना हो जाय। इसी के विपरीत जिसकी श्लैष्मिक ग्रन्थियाँ बढ जाती हैं या अधिक काम करने लगती हैं उस के हाथ पैर चेहरा आदि अग जरूरत मे ज्यादा बढ जाते हैं और बड़े हो जाते हैं और शरीर दानवाकार हो जाता है।

इस तरह की भीतर-भीतर हारमोनो को उपजानेवाली ग्रन्थियाँ शरीर मे यद्यपि अनेक हैं तथापि उन सब को इकट्ठा करके अगर लपेट लिया जाय तो इतना छोटा

पार्सल बनेगा कि एक वास्कट की जेब में आसानी से आ सकेगा। फिर भी यही छोटी चीज़े सारे शरीर के काम और बाढ़ पर पूरा अधिकार रखती हैं।

५—खाल की ग्रंथियां

मनुष्य के शरीर को चारों ओर से जो चीज ढके हुए है और जो अद्भुत यत्र को निरंतर रक्षा करती रहती है वह खाल है। खाल भी एक अजीब चीज है जो बारीक
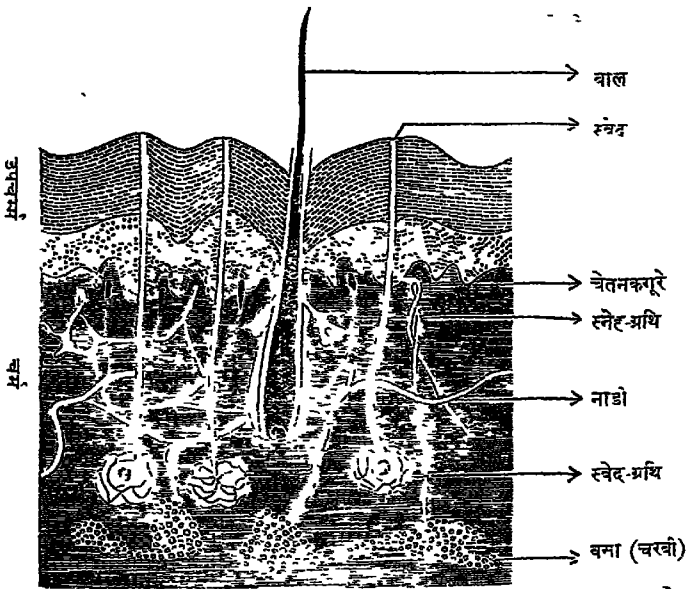
चित्र १२१—खाल की खड़ी काट। बहुत बढ़ाकर दिखायी हुई, जिसकी अटकल बाल से लगायी जा सकती है।

[परिषत् की कृपा

कागज से भी ज्यादा पतली हो सकती है और कहीं-कहीं, जैसे हथेली पर, एक सूत तक मोटी हो सकती है। यह भी सूक्ष्म सेलों की बनी हुई है जिनकी निरंतर वृद्धि और क्षय जारी रहता है। इसी खाल के भीतर पसीने की ग्रन्थियाँ हैं जो शरीर के तापक्रम को ठीक रखती हैं। इसी के भीतर चिकनाई पैदा करनेवाली वसा चरबी की ग्रन्थियाँ हैं और स्पर्श इन्द्रियों के लिए नाड़ी की घुंडियाँ या दाने हैं और छोटे छोटे गड्ढे हैं जिन्हें

रामकूप कहते हैं। भीतरी तल पर भी खाल की एक पर्त है। यह खाल जहाँ जरूरत है वहाँ बहुत चीमड़ी है और जहाँ चीमड़ेपन की आवश्यकता नहीं है वहाँ ऐसी सूक्ष्म और कोमल है कि साँस लेने के लिए हवा और पोषण के लिये वायव्य और द्रव आसानी के साथ प्रवेश कर सकते हैं और निकल सकते हैं। खाल में फुफ्फुसों और वृक्कों का हर तरह का काम निरंतर होता रहता है।

६—इंजन कैसे चलता है?

कोयला-पानी लेनेवाले इंजन से मनुष्य की उपमा दी जाती है परन्तु यह रूपक पूरा नहीं है। जिस तरह मनुष्य, खाता पीता, चलता फिरता, और काम करता हुआ इंजन सरीखा है उसी तरह उसके भीतर भाव है स्मरण है, इच्छा है, विचार है, विवेक
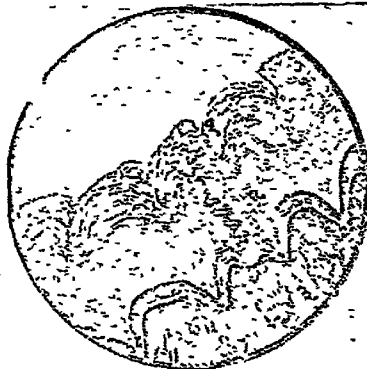
चित्र १२२—खाल की खड़ी काट

है और अनुभव भी है। इस चलते फिरते इंजन की प्रेरणा करनेवाले ड्राइवर भी हैं जो इस इंजन से अलग नहीं हैं। कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है, कि मन मौजूद नहीं है परन्तु वह शरीर में सम्भवतः बराबर बना रहता है। शरीर के भीतर अन्न पचाने की क्रिया रक्त का सचार और साँस लेने की क्रिया निरंतर होती रहती है। ऐसा जान पड़ता है कि इन सब क्रियाओं को बराबर जारी रखनेवाली कोई अज्ञात शक्ति है जो शरीर के भीतर निरंतर मृत्युकाल तक मौजूद रहती है। जिस तरह शरीर की बाहरी क्रियाएं होती रहती हैं उसी तरह भीतरी क्रियाएं भी जारी रहती हैं। भारतीय संस्कृति में भीतरी शरीर को अन्तःकरण कहा है। अन्तःकरण में भाव, विचार, स्मृति, इच्छा आदि सभी काम करते

चौथा खंड

मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण

और

अध्यात्म-विज्ञान

सोलहवां अध्याय

शरीर की सरकार

(१)—इन्द्रियां और मस्तिष्क

मनोविज्ञान पर हाल में जो कुछ काम हुआ है उससे यही मालूम होता है कि हमारे अन्तःकरण मे ऐसी भी बाते हैं जिन का हमे पता नही है परतु जो हमारे स्वभाव के बनाने मे उन शक्तियो से अधिक काम करती हैं जिन को हम प्रत्यक्ष रीति से जानते हैं। मानव अन्तःकरण जितना पहले समझा जाता था अब उतना ही नही रहा। उसका इतना अधिक विस्तार हो गया है कि जिस अ श को हम प्रत्यक्ष रीति से जानते हैं वह अत्यत सकुचित और छोटा हो गया है और वस्तुतः वह एक गहरे झील का ऊपरी तलमात्र की तरह जान पड़ता है।

अन्तःकरण का सब से अच्छा परिचय इद्रियों से मिलता है। हमारे भारतीय दर्शनो मे यह बात सर्वत्र मानी गयी है कि इद्रियो का जो कुछ अनुभव होता है मन ही उस का करनेवाला है। मन जब तक दृष्टि मे नही है तब तक आँखे खुली भी रहती हैं तो भी देख नही पातीं। कान मे मन न हो तो शब्दों के होते हुए भी हम न कुछ सुन सकते हैं न समझ सकते हैं। इन इद्रियों का विकास करोड़ो बरसो से बराबर होता आया है और वर्तमान रूप प्रकृति के बड़ी मुद्दत के बनाव चुनाव का परिणाम है। इन्ही इद्रियो के द्वारा मन अपने उच्च और सूक्ष्म अनुभवो की रचना करता है। बाहरी ससार का यथार्थ चित्र अपने अन्तःकरण के भीतर हम इन्ही इद्रियो के द्वारा ले जाते हैं। बाहरी परिस्थिति से हमारी इद्रियो पर जो उत्तेजना होती है वह पहले बाहरी अवयवो को और फिर भीतरी को स्फुरित करती है। विशेष इद्रियग्राम से नाड़ी का स्फुरण होता है और कान से शब्द के रूप मे, आँख से चित्र के रूप मे, नाक से गन्ध के रूप मे, जिह्वा से स्वाद के रूप मे, त्वचा से स्पर्श के रूप में मस्तिष्क तक नाडियो का स्फुरण पहुँचता है। इन मे से आँख की इद्रिय ने हमारी जानकारी के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है। यही हाल कान की इद्रिय का भी है यद्यपि श्रवण

यह इंद्रिय है जिस का विकास सब में पीछे हुआ है। यह बात सभी जानते हैं कि हमारी इंद्रियों की शक्ति बहुत थोडी है और अपूर्ण है। उनकी गवाही हमेशा सच्ची और पक्की नहीं हो सकती। यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमारी इंद्रियों का विकास अपनी हद तक पहुँच चुका है क्योंकि इस का कोई प्रमाण नहीं है।

हमारा दिमाग़ भी करोड़ों बरस में विकास करते करते वर्त्तमान अवस्था को पहुँचा है। उसका आरम्भ जीव के साथ ही हुआ है और आज उसके लिये भी कोई नहीं कह सकता कि वह अपने विकास की हद को पहुँच चुका है। यह नाडी-चक्रों का एक तंत्र है जिस का हर एक भाग अपना कर्त्तव्य अलग रखता है, तो भी दूसरे भागों के साथ निरंतर संगति और सामंजस्य बरतता है। मस्तिष्क के बहुत से ऐसे अंग भी हैं जिन की क्रिया का पता अब तक नहीं लगा है परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि कोई अंश स्मृति के लिये होगा कोई विवेक और विचार के लिये होगा और कोई अंश कल्पना के लिये होगा। ऐसा समझने में कोई हर्ज नहीं है कि मस्तिष्क के एक भाग में स्वरों की स्मृति होगी, दूसरे में शब्दों के नाद की स्मृति होगी और तीसरे में अक्षरों और शब्दों के कल्पना-चित्र स्थिर रूप से होंगे। यह नहीं कहा जा सकता कि मस्तिष्क का कोई विशेष अंश है जो बुद्धि का काम करता है। दिमाग़ का सारा छिलका, या शायद सारा नाड़ी-मंडल या समस्त शरीर बुद्धि का स्थान है। परन्तु दिमाग सारे शरीर से फिर भी इस बात से भिन्न है कि वह अनुभवों को बराबर अपनी बही में चढ़ाता और खतियाता रहता है, नये कामों के जोड़-तोड़ लगाता रहता है और बराबर नये-नये ढंगों से शिक्षा ग्रहण करता रहता है। परन्तु ऐसा न समझना चाहिये कि दिमाग ही के सहारे यह सारा काम होता है। बुद्धि विवेक की सबसे बड़ी योग्यता मुख्यतः दिमाग पर ही निर्भर है।

२—अन्तःकरण का विकास

अंतःकरण से तात्पर्य है भीतरी इंद्रिय। मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार, हमारे दार्शनिक यह चार भीतरी इंद्रियां मानते हैं और इन्हें ही अंतःकरण कहते हैं। उन के निकट यह चारों सूक्ष्म शरीर के चार अंग हैं और जिस तरह जाग्रत अवस्था में यह चेतना इस अवस्था के सभी व्यापारों का ज्ञान और सञ्चालन करती हुई मानी जाती है उसी तरह अंतः-करणोंवाले सूक्ष्म शरीर की चेतना अलग मानी जाती है और स्वप्नावस्था के सभी व्यापारों का ज्ञान और सञ्चालन उस का काम होता है। यह हमारे दार्शनिक सिद्धांत हैं। परन्तु विज्ञान तो दर्शन नहीं है। उस के अनुशीलन की विधि सर्वथा भिन्न है। वह विकास-क्रम में शरीर के साथ-साथ चेतना का भी विकास देखता है और उस पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करता है। वह चेतना को मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से भिन्न नहीं मानता। उस की परिभाषा में यह पाँचों एक "मनस" शब्द से ही व्यक्त होते हैं। अभी तक विज्ञान ने आत्मा के संबंध में बहुत थोड़ा अन्वेषण कर पाया है। इसलिए अभी तक विज्ञान की यही प्रवृत्ति है कि वह "मनस" का भी विकास जड़ पदार्थ से मानता है क्योंकि विकास-क्रम में उसे यह

४—मानसिक क्रियाएं

मनोविज्ञान का विषय जीवित प्राणियों के स्वभाव का और चेतना का अनुशीलन है। मस्तिष्क के ही पास नाड़ीजाल के वह सभी स्पन्दन या स्फुरण पहुँचते हैं जिन से चेतना वा ज्ञान होता है। इसीलिये हम यह कह सकते हैं कि चेतना का केन्द्र मस्तिष्क है। इस से यह समस्या नहीं सुलझती कि चेतना वस्तुतः कैसे पैदा होती है। ग्रेजर ने अपने मनोविज्ञान में लिखा है कि "पुराने मनोवैज्ञानिक कहते थे कि प्रत्यक्षीकरण, समवधारण, कल्पना, विवेक, और आकांक्षा यह भी मानसिक शक्तियाँ हैं जो भिन्न-भिन्न काम करती हैं। परन्तु आज ऐसा नहीं समझा जाता कि मन की आकांक्षा एक जगह है विवेक दूसरी जगह है अन्तरात्मा तीसरी जगह है और इसी तरह हमारी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां की तरह यह शक्तियां अलग-अलग बटी हुई हैं। हमारा अन्तःकरण सम्पूर्ण है और एक ही है। विवेचना, आकांक्षा, कल्पना, समवधारणा आदि वही एक ही करता है। विचारभाव और इच्छा उस में इस तरह अलग-अलग नहीं हैं जैसे पिच्चीकारी में पत्थर के टुकड़े अलग-अलग लगे रहते हैं और बेना दूसरे टुकड़ों को नष्ट किये एक-एक करके निकाले जा सकते हैं। वह शरीर की उन क्रियाओं की तरह परस्पर सबद्ध हैं जो बिना सब की सहकारिता के हो नहीं सकतीं।"

मानसिक क्रियाओं को एक और तरह से वर्णन किया जाता है। प्रत्येक विचार दो दशाओं वा रूपों में रह सकते है, एक तो चेतन की दशा हो सकती है और दूसरी अचेतन की। चेतन की दशा ऐसी है कि मानों एक रौशन कमरा है जिस के भीतर विचार एक-एक करके आते हैं, चमक उठते हैं और थोड़े काल तक काम करते हैं। दूसरे प्रकार के विचार अचेतन हैं अर्थात् यह एक धुँधले कमरे में रहते हैं अथवा उस प्रकाशवाले कमरे मे कुछ देर रह कर और काम करके स्मृति के धुधले मन्दिर में आकर ठहर जाते हैं और फिर ऐसे मौके की तलाश मे रहा करते हैं कि फिर उसी उजाले कमरे मे जाय और काम करे। इस धुँधले मन्दिर में यह विचार आपस मे बहुत संकीर्ण समूह बनाकर और बँधकर रहते है। विचारों का यह समूह स्मृति-मन्दिर मे रहता हुआ अन्तःकरण के ढाँचे को बनाता है। और मानसिक क्रिया यही है कि प्रत्येक विचार चेतना के प्रकाश मे जब आने लगता है तो अपने साथ-साथ अपने से सबद्ध और विचारों को भी खींच लाता है। यह मकडुगाल का मत है।

यद्यपि हम जानते है कि जड़ पदार्थों की तरह मनस के सम्बन्ध मे हम ऐसी कल्पना नहीं कर सकते कि वह भी देश घेरता है तो भी समझने के सुभीते के लिए हम यह कल्पना कर ले तो अच्छा होगा कि हमारा चित्त तीन परतों मे बैठा हुआ है। सब से ऊपर की परत सचेत जीवन की है जो मानो पूर्ण प्रकाशित मन्दिर है जिस मे साफ दिखाई पड़ता है कि क्या हो रहा है। जब कभी हमे अपने व्यवहार का कारण खोजना होता है, तब हम साधारणतया इसी परत मे तलाश करते हैं और जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा बहुधा इस परत के बताये हुए कारण ठीक नहीं होते। इस परत से कुछ नीचे एक परत ऐसी है जो अर्द्धचेतन अवस्था की है। इस परत तक हम यत्न करने से पहुँच सकते हैं। इसी मे वह सब बातें जमा रहती हैं जो हमारे चित्त के सामने तो मौजूद नहीं रहतीं परन्तु जिन्हें हम कोशिश करके याद

कर सकते हैं। कभी कभी बहुत ज्यादा कोशिश करनी पड़ती है और कभी थोड़ी ही कोशिश में काम बन जाता है। तीसरी परत जो इस से भी नीचे है अचेत दशा की है। साधारणतया हमारे सचेत मन का इस परत तक पहुँचना सर्वथा असम्भव होता है। परन्तु यही परत उन मानसिक तत्वों का स्थान है जिन का सम्बन्ध महत्व के प्राथमिक निसर्गों से है। यही परत मानसिक शक्ति का बड़ा भारी आगार है इस परत के भीतर जितने काम हो रहे हैं उन का हमें बिल्कुल पता नहीं लगता। तो भी सूक्ष्म निरीक्षण से और सपनों से, जैसा कि आगे चल कर मालूम होगा इस के कामों के सम्बन्ध में हम कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं। यही अचेतन परत व्यक्ति के मानसिक जीवन की नींव है।

५—भाव-सांकर्य्य

मानसिक विकार कभी अकेले नहीं होते। किसी किसी संकीर्ण संयोग के साथ ही हुआ करते हैं। यदि हम मन को या मानसिक तत्वों को एक जाल की तरह समझें तो अनुचित न होगा क्योंकि प्रत्येक विचार जब कभी चित्त में उठता है तो और भी अनेक विचारों को अपने साथसाथ घसीटे लाता है। सच तो यह है कि ऐसा न हो तो जीवन का व्यापार ही न चले। यदि कोई विचार अकेला ही अकेला आवे और कई विचार असम्बद्ध और असंगत आ जाया करें तो राह चलना भी कठिन हो जाय और हम कोई काम ठीक तरह पर न कर सकें। कई सुसंगत विचार एक साथ कुछ कमोबेश ढीले-ढीले से गुथे हुए से रहते हैं। जो काम पड़ने पर एक साथ आया करते हैं। इस समूहन को साकर्य्य वा विचार-साकर्य्य कहते हैं। एक पेड़ को देखकर या फूल को सूंघकर बरसों पहले का भूला हुआ दृश्य एकाएकी चित्त के उजाले मन्दिर में आ जाता है। किसी एक ही वाक्य को सुनकर भिन्न भिन्न व्यक्तियों के मन में भिन्न-भिन्न भाव उत्पन्न हो जाते हैं। यह विचार साकर्य्य की महिमा है। मनुष्य की शिक्षा से उस के व्यवसाय से उस के रहन-सहन से बहुत से विशेष साकर्य्य उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु कुछ व्यापक विचार-साकर्य्य भी हैं जिन में से तीन प्रधान हैं, क्योंकि इन का सम्बन्ध तीन बड़े प्राथमिक निसर्गों या निसर्ग समूहों से है एक तो काम-साकर्य्य, दूसरे अहंकार-साकर्य्य और तीसरे जाति-साकर्य्य।

आदि प्राणी में भी आत्मरक्षा परम्परारक्षा और वंशरक्षा की नैसर्गिक इच्छाएं वा प्रवृत्तियां विद्यमान थीं। न होतीं तो सजीव सृष्टि का क्रम चल न सकता था। आत्मरक्षा में अपने लिये पालन-पोषण का प्रबंध और शत्रुओं से अपना बचाव शामिल था। अपने आपे का इस तरह का विचार अहंभाव या अहंकार कहलाता है। इस का विकास निसर्ग की अवस्था से होते होते मनुष्य में अहंकार-साकर्य्य के रूप में परिणत हो गया है। आज भी अहंभाव मनुष्य में नैसर्गिक रूप में ही है। अपने पालन-पोषण, अपनी रक्षा, अपना सुख और सुभीता और इस ढंग के अपने लिये सब तरह के विचार अहं मम भाव में आ जाते हैं। हमारे दार्शनिक साहित्य में जिस भाव को एक शब्द अहंकार से व्यक्त करते हैं उसी को पाश्चात्य मनोविज्ञानवाले अहंकार-साकर्य्य कहते हैं। "साकर्य्य" इसलिये कि अहं-

का होता है उस की परम्परा और नीति से उसे पूरा परिचय होता है, उस के उद्देश्यों को समाज समझ सकता है और पसंद करता है, और उन के पालन मे वह अविचल रूप से लगा रहता है। वह आचारनीति और राजनीति के प्रश्नों पर स्थिर सम्मति रखता है। ऐसे तथा इसी तरह के और विषयों मे भी उसे यह सदेह नहीं हुआ करता कि क्या ठीक है और क्या नहीं ठीक है। परतु इस प्रकार के मनुष्यों मे एक बड़ा दोष यह होता है कि वह अनुभव की ओर ध्यान नहीं देते और बिल्कुल नये ढग से किसी समस्या पर विचार नहीं कर सकते। उलटे यदि मानी हुई बातो पर जैसे राजनीति या आचारनीति के सिद्धाता पर कोई शका उठावे और तर्क की कसौटी पर कसना चाहे तो इस प्रकार के मनुष्य उसे मूर्खता या पाजीपन या दोनो बाते समझेगे। जो चाल और विचार मुद्दतों से प्रचलित हैं उन्हे बदलने की चाहे कितनी ही जरूरत हो परतु इस प्रकार के मनुष्य बदलने को राजी न होगे क्योंकि ऐसे मनुष्यो की सख्या बहुत बड़ी होती है और वह पुराणप्रिय होते हैं। साराश यह कि उन मे जातिभाव या जाति-साकर्य की प्रबलता होती है। दूसरा प्रकार उन मनुष्यो का है जो स्थायी प्रकार से बिल्कुल विरुद्ध स्वभाव रखते हैं। अस्थायी स्वभाववाले मनुष्यों मे उत्साह तो बहुत होता है परतु दृढ विश्वास किसी बात पर नहीं होता। वह किसी नये काम को उठा लेने के लिये बड़ी जल्दी राजी किये जा सकते हैं परतु उतनी ही जल्दी उसे छोड़ने को भी तैयार हो जाते हैं। वह काम तो बहुत से उठा लेते है परतु उन्हें अत तक पहुँचाने और सफल बनाने मे लगे रहना उन के लिये मुश्किल बात है। वह आरभ-शूर होते है परतु भर्तृहरि के बताये उन उत्तम जनों मे नहीं हैं जो बिना पूरा किये नहीं छोड़ते। उन का सकल्प दृढ नहीं होता और वे समाज की सभी बातो पर उस के निश्चय को नहीं मान सकते। परतु उन मे यह बड़ा भारी गुण होता है कि वह अनुभवों से लाभ उठाते रहते है और यही एक तरह का दोष भी है क्योकि वह अपनी राय बराबर बदलते रहते हैं। किसी बात पर स्थिर नहीं रहते। अस्थायी स्वभाव का मनुष्य अधिक विवेकी होता है और स्थायी स्वभाववाला प्रायः उसे नहीं चाहता और उस से ईर्षा और घृणा रखता है। वास्तविक बात यह है कि आदर्श पुरुष या पुरुषोत्तम न तो स्थायी प्रकार का मनुष्य है और न अस्थायी। आदर्श पुरुषोत्तम दोनो के गुणों का ग्रहण करता है और दोषों का त्याग।

भावों वा साकर्यों मे* परस्पर विरोध भी होता है, और सब से अधिक वा पूर्ण स्वस्थचित्त वही है जिस ने अपने विरोधी भावों मे सामजस्य स्थापित कर रखा है। परतु ऐसा चित्त बहुत कम देखा जाता है। साधारणतया एक ही मनुष्य के अनेक विरोधी भाव होते हैं और जब एक ही समय मे दो या अधिक परस्पर विरोधी भाव उठते हैं तो उसे गाढ असमजस मे डाल देते हैं। आदमी में जो स्वार्थ भाव उठता है वह उस के अहभाव या कामभाव से प्रेरित होता है। परतु उस के जातिभाव से प्रेरित समाज के स्थापित नियमो की

---

*'काम्प्लेक्स' के लिये किसी-किसी ने "जाल" शब्द भी प्रयुक्त किया है, परन्तु इस शब्द का अनुवाद मुझे "साकर्य" ही ठीक जँचता है। लेखक।

मान्यता उस मे परार्थभाव भी उत्पन्न करती है। इस तरह स्वार्थ और परार्थ दोनों भावो में तनातनी हो जाती है। कहानियों और उपन्यासो के लिखनेवाले बड़े चाव से विरोधी भावों का प्रदर्शन करते हैं। सन्यास लेनेवाले के मन मे एक ओर से वैराग्य और दूसरी ओर से ससार का मोह आपस में तुमुल युद्ध ठान देते है। सत्याग्रह सग्राम मे एक ओर से देश-भक्ति का भाव और दूसरी ओर कुटुम्ब के कष्टों का ख्याल, दोनों का परस्पर सघर्ष होता है।

इन झगड़ो के चुकाने के लिए मुख्यतः दो उपाय किये जाते हैं। एक तो यह है कि विवेक से काम लिया जाय और दूसरे यह कि किसी-न-किसी भाव को दबाया जाय। विवेक से काम लेने मे बहुधा कार्यों के लिये ऐसे हेतु पैदा कर दिये जाते हैं जिन का कार्य के मानसिक कारणों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, परतु जिन से मनुष्य को पीछे से लजाना नहीं पड़ता। जैसे न्याय की ओट मे बदला लेने की पाशविक इच्छा पूरी की जा सकती है और समाज के लाभ के बहाने अत्यत स्वार्थपरायण लोभ और लालच भी दिखाने मे हरज नहीं समझा जाता। दबाने की विधि दूसरी है। मनुष्य एक भावावेश को बिल्कुल बिसरा देने का निश्चय कर लेता है, दिल से निकाल डालता है। परतु इस से वह भाव नष्ट नहीं हो जाता। वह केवल अविज्ञात या अचेतन परत के नीचे दब जाता है। तब भी वह कर्मशील रहता है और अपने को भाँति-भाँति के रूपों मे प्रकट करता है, और साधारण भूल-चूक से लेकर अपस्मार और पागलपन तक मे उस का प्रकाश होता है। आदमी ऐसे निश्चित काम को भूल जाता है जिस के अप्रिय परिणाम का उसे भय होता है। जिन पुर्ज़ों को चुकाना है उन का अस्तित्व भूल जाना मामूली बात है। परतु यह तो जान-बूझ कर भूल जाना हुआ। परतु एक और तरह की भूल होती है जो इस कारण हुआ करती है कि घटना की छाप मानस पर नहीं पड़ी। यह भूल जबरदस्ती हो जाती है। दबे हुए भाव लिखने और बोलने मे भूल-चूक के रूप मे उमड़ आते हैं। आदमी कहने को होता है कुछ और कह जाता है बिल्कुल विपरीत। इसी तरह और का और लिख जाता है। भावों के दबाने मे यही एक दोष है। परतु यह उतना बड़ा दोष नहीं है जितना कि किसी न्याय या तर्क के झूठ बहाने से किसी एक भाव को प्रबल होने देना।

स्वप्नावस्था की चेतना को तैजस कहा है। यह एक तरह की सोयी हुई चेतना है जो सपने में मानो जग पडती है। पाश्चात्य विज्ञानी इसे सुषुप्त या अन्तःचेतना कहते हैं। कोई शब्द ठीक जबान पर है पर याद नहीं आता। सोचने पर उस का पूरा ख्याल आ जाता है और ठीक-ठीक कहा भी जा सकता है। यह क्रिया जाग्रत चेतना की नहीं है। मुझे कोई खास काम करना है परन्तु घटो तक उस का ख्याल नहीं आता, पर उस के कर डालने घडी ज्योंही पास आती है उस काम का ख्याल भी दिमाग मे सीधे चला आता है। कोई कठिनाई नहीं होती। मै ठीक चार बजे जाग जाना चाहता हूँ। ठीक चार का घटा बजते हुए या उस मे कुछ मिनिट पहले ही मै जाग पडता हूँ। यह उस अवस्था के कुछ उदाहरण हैं जिस में कि विचार देखने मे तो चेतना के भीतर नहीं है परन्तु सर्वथा बाहर भी नहीं हैं। इसी के लिए अन्तःचेतना शब्द आया है।

फ्रॉइड की धारणा है कि भूतकाल की सोयी हुई याद इसी अन्तःचेतनावाली परत मे इकट्ठी जमा है। यही हमारे दबे हुए भाव भी इकट्ठे हैं। भावो या विचारो को दबाने की कभी हम जानबूझकर कोशिश करते हैं और कभी अपने आप कोशिश हो जाती है। भाव और विचार बड़ी गहराई मे दब जाते हैं। तो भी वह बराबर जाग्रत अवस्था मे निकलने की कोशिश मे रहते हैं और जाग्रत दशा मे यही दबे भाव और विचार एक हद तक हमारे मानसिक जीवन पर प्रभाव डालते रहते हैं, यद्यपि हमे इस का पता नहीं चलता। साथ ही दबे हुए भावो को कुछ सतोष भी होता रहता है।

३—मानसिक रोग

युरोप के पिछले महासमर में फौजी अस्पतालो मे वात-रोगियो की चिकित्सा मे बड़े-बड़े डाक्टरों को यह अनुभव हुआ कि बहुत से मानसिक रोग ऐसे भावोद्वेगो के रुक जाने से हो गये हैं जिन को कि रोगी बिल्कुल भूल गया है और जिन को बहुत काल बीत चुका है। मानसिक-चिकित्सा-विशारदो ने ऐसी भूली हुई बातो और भावो को फिर से जगाकर मन को साफ कर दिया है और रोगी बिल्कुल अच्छे हो गये हैं। जान पड़ता है कि भावोद्वेगो के अत्यधिक दबे रहने से वात-सस्थान क्षुब्ध हो गया है। डाक्टरो ने जब उन दबे भावो को बाहर करके दबाव को कम कर दिया तो रोगी को आराम हो गया।

डाक्टर रिवर्स ने लैंसेट मे बड़े विस्तार से एक रोगी का हाल दिया है जो एक भूले हुए अनुभव के कारण बीमार पड़ा था। हम यहा उसे सक्षेप से देते हैं। एक नौजवान डाक्टर था जिसे युद्ध के पहले से ही सुरग और तग कोठरिया जैसी बन्द जगहो से बडा भय लगता था। वह कभी नल-रेल से यात्रा नहीं करता था और जब कभी रेलगाडी सुरग मे से जाती थी तो उसे बड़ा डर लगता था। लड़ाई मे एक बार उसे एक गड्ढे मे जाती बेर एक फावडा दिया गया और कहा गया कि अगर मिट्टी के भीतर दब जाना तो इसी से खोद कर निकल आना। इस से उस की नींद बहुत बेचैनी की होने लगी और उस का स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि उसे बीमारी के कारण अपने घर चला जाना पडा। कोशिश

की गयी कि वह युद्ध को बिल्कुल भूल जाय और मनोरंजक विषयों में ही मन लगावे, परन्तु यह उपाय व्यर्थ हुए। उसे युद्ध के बड़े भयानक सपने आते थे जिन से वह जग पड़ता था। उस समय वह पसीने से तर होता था और समझता था कि मैं मर रहा हूँ। ऐसी दशा में डाक्टर रिवर्स ने उस का इलाज शुरू किया। उन्होंने उसे सलाह दी कि कोशिश करके जो सपने देखो उन्हें याद करो और जब सपनों पर खयाल कर रहे हो उस समय जो-जो भूली बातें याद आवें उन्हें लिखते जाओ। कुछ ही बाद उस ने सपना देखा और जब वह पड़े-पड़े सपने को सोच रहा था उसे याद आया कि जब मैं तीन बरस का था तब बच्चों के साथ एक बूढे कगाल पड़ोसी के यहा अपने घर की पुरानी बेकार चीजे ले जाया करता था और वह पैसे देता था। एक दिन अकेला पड़ गया। लौटती बेर उस की कोठरी के अँधेरे लबे रास्ते में पड़ गया। दरवाजा बन्द हो गया था। मैं खोल न सकता था। पीछे से एक कुत्ता उसी ओर आया और मुझ पर भूँकने लगा। कुछ देर में मुझे इस महा भयानक स्थिति से छुटकारा मिला। यह ऐसी घटना थी जिसे भूलना असभव था, परन्तु इतने काल तक यह ख्याल दबा रहा। फिर एक सपने से जो वह रोगी उठा तो "मक्खन, मक्खन" चिल्लाता उठा। एका-एकी उसे ख्याल आया कि उसे बूढे का नाम "मक्खन" था। रोगी के माता-पिता ने भी इस बात का समर्थन किया कि पड़ोस में मक्खन नाम का एक दरिद्र बुढा रहता था। इस याद के लौट आने का रोगी पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ ही दिनों में बन्द जगहों का भय उस के मन से एक दम दूर हो गया और वह सुरगार और नलवाली रेलों में मजे से यात्रा करने लगा। यहाँ बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जाग्रत जीवन पर एक बिल्कुल भूले हुए अनुभव का कितना बड़ा प्रभाव पड़ता है। और भी विचारणीय बातें यह हैं कि (१) असली घटना बड़े भावोद्वेग की और बड़ी बेचैन करनेवाली थी, (२) सपने पर सोचने से ही वह भूला अनुभव फिर याद आया, (३) बेकार डर को दूर करने की जितनी कोशिशें जाग्रत चेतना करती थी व्यर्थ जाती थीं और (४) बारम्बार के भयोद्वेग से वह भयानक अनुभव जाग्रत चेतन में उभड़ पड़ता था, यद्यपि इतना दब गया था कि जाग्रत चेतन को उस की याद बाकी न थी। इस भयोद्वेग का उद्दीपन बन्द जगहों के देखने से हो जाता था।

मानसिक चिकित्सा के इस तरह के उदाहरण इस सुप्त चेतना का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। उन पर विस्तार की यहा जरूरत नहीं है। एक कुतूहल की बात यह है कि इस नयी विश्लेषण विधि का स्वप्नों की व्याख्या करने में अब बहुत उपयोग किया जा रहा है। इस तरह की व्याख्या में यह बात मान ली जाती है कि दबे हुए भावों का प्रकाश सपनों में हुआ करता है। परन्तु हर सपना केवल दबे हुए भावों का प्रतिबिम्ब है, ऐसा भी मान लेने के लिए कोई हेतु नहीं है। इस विषय पर स्वप्न के विशेषज्ञों का मतभेद है। साथ ही यह भी कहना ठीक नहीं कि सभी सपने निरर्थक होते हैं और व्यक्ति के भूतकाल की स्मृतियों के विच्छृङ्खल और असगत प्रतिबिम्ब हैं। सपनों के विश्लेषण से हमारा ज्ञानभाडार बहुत बढ गया है और अब सभी नहीं तो अधिकाश सपनों की व्याख्या

करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने एक सूत्र बना लिया है कि सपना दबी हुई इच्छा का प्रतिबिम्ब हुआ करता है। यह इच्छा इसलिये दब जाती है कि किसी-न-किसी कारण से किसी-न-किसी रूप में वह जाग्रत अवस्था में दुःख का कारण होती। परन्तु दबे हुए भाव नष्ट नहीं होते और कभी न कभी प्रकट होने का अवसर ढूढते रहते हैं। सोते में चेतन और अचेतन के बीच की गाँठ कुछ ढीली पड़ जाती है, भावों के ऊपर का निर्दय दबाव घट जाता है। तो भी यह भाव अपने शुद्ध रूप में प्रकट नहीं होते। उन का रूप विकृत हो जाता है और बदले हुए भोंडे रूपों में व्यक्त होते हैं। फ्रुइड ने "स्वप्नों की व्याख्या" नामक पुस्तक में इन बातों के अनेक उदाहरण दिये हैं और व्याख्या की विधियां भी बतायी है।

सभी सपने दबे हुए भावों के चित्र नहीं होते। अनेक तो दिन भर के खयालों के अपूर्ण और असगत चित्र होते हैं और टुकड़ों के रूप में देख पड़ते हैं। कोई कोई होने-वाली घटना के भी सपने होते हैं और कभी-कभी ऐसी बाते भी देखने में आती है जिन के अनुभव में आने की इस जीवन मे सम्भावना नहीं होती। कई सपने ऐसे भी होते हैं जो आदि से अन्त तक बिल्कुल पूरे सिलसिलेवार सुसगत घटनाक्रम दिखाते हैं। यह अचेतन में दबे हुए भावों की पूर्ति के पूरे रूपक होते हैं। पर इस तरह भी दबे हुए भाव पूर्णतया सतुष्ट नहीं होते। दबाना अब भी जारी है, यद्यपि ढीला है। किसी-न-किसी कारण से जब भावों की ठीक तुष्टि नहीं हो पाती तो मानसिक शक्ति विषम विधियों से स्वप्न द्वारा उस के लिये निकासी पैदा करती है। बहुत से कला के काम भी सपने की तरह दबे भावों को बाहर निकालने के साधन हो जाते हैं। कभी-कभी जब सपने से दब हुए सकर भावों की तुष्टि नहीं होती तो मानसिक रोगों की दशा उत्पन्न हो जाती है। योषापस्मार (हिस्टीरिया) उन्माद, और कभी एक ही व्यक्ति में दो व्यक्तियों का प्रकट होना इन्हीं दबे हुए भाव सॉकर्यों का फल होता है। पिछले महासमर में भाग लेनेवालों के मन.पटल पर अत्यत दूषित प्रभाव पड़ जाने से इस तरह के अनेक रोग देखने में आये हैं।

सपनों के ऊपर एक बिल्कुल भिन्न विचार भी मनोवैज्ञानिकों में है। डाक्टर विलियम ब्राउन कहते हैं कि सपने का काम निद्रावस्था की रक्षा है। भय, भागना, सुस्ताना आदि नैसर्गिक भावों की तरह सोना भी एक नैसर्गिक भाव है जिस की वृद्धि विकास-क्रम से हुई है। रात को यह निसर्ग काम करने लगता है। परतु उस समय बाहरी आवेगों और भीतरी निसर्गों और प्रवृत्तियों से उस का विरोध होता है। उस समय इच्छाएं, अभिलाषाएँ, चिन्ताएँ पहले की स्मृतियाँ जो मन में भरी हुई हैं उबल पड़ती हैं और जगाने की कोशिश करती हैं, यद्यपि मुख्य व्यक्ति पीछे हटा हुआ होता है। यदि यह सब चेतना तक पहुँच जाय तो नींद खतम हो जाय। इसीलिये जाग्रत और सुषुप्त अवस्था के बीच में सपने की अवस्था इन सब उद्वेगों की शक्ति को घटा देती है और इन्हें आगे बढ़ने से रोक रखती है। इस तरह नींद टूटने नहीं पाती। इस व्याख्या में सभी तरह के सपने सन्निविष्ट हैं।

४—शरीर के बाहरी पदार्थों से चित्त का सम्बन्ध

शरीर के जागते सोते और सपने की अवस्थाओ मे मानसिक व्यापारो पर मनोविज्ञान की जितनी धारणाए है उन सब का सबध केवल शरीर की वस्तुसत्ता से है। मनस के सभी साधारण व्यापारो पर विज्ञान विचार करता है, और विचारो के पाने और भेजने मे इद्रियो का व्यवहार भी उस का विषय है, परतु इस बात का प्रयत्न करके भी उसे सफलता नही हुई कि यह समझ सके कि शरीर के यात्रिक स्पन्दन भावो मे और अनुभावो मे कैसे बदल जाते हैं, अथवा चित्त के उद्वेग और समवेदन से जड़ शरीर मे यात्रिक स्पन्दन कैसे पैदा हो जाते हैं। उधर भौतिक विज्ञान केवल जड़ पदार्थ पर विचार और प्रयोग करता है और जहाँ चित्त का सबध आता है वह यही मान लेता है कि भौतिक पदार्थ पर चित्त की क्रिया केवल जड़ पदार्थ से विकसित एक विशेष वस्तुसत्ता की क्रिया है। इस तरह ऐसा जान पडता है कि जड़ पदार्थ पर प्रयोग हो सकते हैं और जड़ पदार्थ से अलग चेतना की कोई स्थिति नही है।

परतु वैज्ञानिको ने हाल मे इस तरह की खोजे भी की हैं जिन से यह पता चलता है कि चित्त का अस्तित्व जाने हुए जड पदार्थों से बिल्कुल अलग और स्वतत्र भी हो सकता है। बहुत काल से ऐसी अनेक अनुभूत बाते कही जाती रही है जिन पर वैज्ञानिक ध्यान नही देते थ। पिछले पचास-साठ बरसो से उन बातो पर विचार किया जाने लगा और खोजो से अब यह धारणा हो गयी है कि जड़ पदार्थ से अलग भी चित्त का अस्तित्व हो सकता है और यद्यपि उस का प्रकाश केवल जड़ पदार्थ द्वारा ही होता है तथापि उस के काम जड पदार्थ से बाहर भी बहुत कुछ होते हैं, और यह कि जड और चेतन वस्तुतः अलग-अलग हो सकते हैं। और यह भी सभव है कि हमारी इद्रियो से अतीत कोई सूक्ष्म पदार्थ हो जिस मे कि चित्त उसी तरह स्वच्छदता से अपना व्यापार कर सके जैसे कि जड़ पदार्थों मे करता है। जड और चेतन के इस सबध की खोज मे क्या क्या बाते मालूम हो सकती हैं और हम कहाँ तक अपने ज्ञान की वृद्धि इस दिशा मे कर सकते हैं, इन प्रश्नो का उत्तर वैज्ञानिको ने एक नये ढग से अन्वेषण मे पाया है जिसे हम अध्यात्म-विज्ञान कह सकते हैं। इस विज्ञान का अन्वेषण अन्तःकरण से घनिष्ठ सबध रखता है। इसलिये इसे मनोविज्ञान का ही एक अग समझना चाहिए।

इस विद्या के विषयो का अनुशीलन बहुत काल से इक्के दुक्के वैज्ञानिक करते आये। लगभग पचहत्तर बरसो से इस पर विशेष रूप से काम होने लगा। भौतिक विज्ञानियो मे प्रमुख प्रोफेसर विलियम क्रुक्स ने इस विषय पर पचास बरस के लगभग हुए विशेष खोज की। उसी समय के लगभग अनेक प्रमुख वैज्ञानिको ने मिलकर परान्वेषण परिषद की रचना की जिस ने बड़ी सावधानी से इस तरह की खोजो का बीडा उठाया। इस परिषद मे बड़े-बडे वैज्ञानिक और विचारक सम्मिलित हुए। यह परिषद बनी तो इगलिस्तान मे परतु धीरे-धीरे यह अन्ताराष्ट्रिय हो गयी और आधे ससार के भारी-से-भारी वैज्ञानिक जो इस विषय मे रस रखते हैं इस के सदस्य है। इस परिषद मे आवश्यकता से अधिक सावधानी

अपने दृढ सकल्प को ग्राहक की ओर मजबूती से विचार को भेजने मे लगाता है,—यद्यपि यह सिद्ध नहीं हुआ है कि इस सकल्प का प्रयोग वस्तुतः फलदायक है,—परन्तु अपने आप होनेवाली घटना मे तो मन या मस्तिष्क का वह अश काम करता है जो अचेतन है, वा जाग्रत चेतना से नितात भिन्न है, क्योंकि प्रेरक अपनी जान भर मे इस तरह के विचार, चित्र, या छाया या भाव की प्रेरणा से बिल्कुल बेखबर होता है। आग लगी हुई है, या जहाज डूब रहा है और एक मनुष्य को जान की जोखिम है। वह इतना घबरा जाता है, उस के अन्तरात्मा पर ऐसा दबाव पड़ता है, कि रक्षा के लिये बाहर समाचार भेजने की उस की प्रच्छन्न शक्ति जाग्रत हो जाती है और काम करने लगती है। वह आप अपने होश-हवास मे इस बात की खबर नहीं रखता परन्तु किसी बहुत दूर पर रहनेवाले भाई बन्धु के मन मे ऐसा स्पष्ट चित्र पहुंच जाता है कि उसे उस व्यक्ति की जोखिम का कल्पना-चित्र आखो के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है। जान पड़ता है कि भीगे कपड़ो मे से पानी टपक रहा है। सकटापन्न बन्धु सहायता के लिये पुकार रहा है उस के शब्द सुन पड़ते हैं। यद्यपि स्थूल आखे या स्थूल कान यह देख सुन नही रहे हैं, केवल मानसिक घटना है तो भी ऐसा ही जान पड़ता है कि एक छाया या रूप सामने दीख रहा है और पास से ही शब्द सुनाई दे रहे हैं। विमान या वायुयान से एक दुर्घटना में बहुत दूर से आते हुए एक नवयुवक बड़े वेग से गिरता है और मर जाता है। उसी समय उस का जो साथी सैकड़ो मील दूरी पर है, उसे मालूम होता है कि खेमे के पास ही कोई विमान गिरकर चूर-चूर हो गया है। उस की आवाज साफ ही सुन पड़ी। तुरन्त ही वह नवयुवक अपने साधारण भेष मे खेमे मे आता देख पडता है। साथी उस के इतनी दूर से इतनी जल्दी आ जाने पर आश्चर्य प्रकट करता है। उस नवयुवक का रूप उत्तर देता है और फिर खेमे के बाहर निकल जाता है। उसी शाम को उस साथी को यह पता लगता है कि उसका नौजवान दोस्त रास्ते मे ही वायुयान की दुर्घटना से ठीक उसी घड़ी मर गया था जिस घड़ी वह उसे खेमे मे दिखाई पड़ा था। इस घटना का विस्तार से वर्णन जून १९१९ ई० के परान्वेषण परिषद के मुखपत्रों छपा है। इस तरह के उदाहरण असंख्य है और जीवन-चरितो मे बहुत पाये जाते हैं। मुश्किल से कोई परिवार ऐसा होगा जिस मे इस तरह के अनुभवो की कोई कथा न हो। यह बात भी बड़ी विलक्षण है कि ऐसी छाया केवल तत्-सम्बन्धी मनुष्य को ही देख पड़ती है और इस तरह के शब्द उसी को सुन पडते हैं। उस के पास जो लोग मौजूद होते हैं उन्हें किसी तरह की खबर नहीं होती। वह कहता भी है कि देखो अमुक रूप सामने है या अमुक शब्द सुन पड़ता है, परन्तु दूसरे लोग इतने पर भी न देख सकते हैं और न सुन सकते हैं। ऐसी घटनाओ की बडी सरल व्याख्या यही हो सकती है कि सकटापन्न या भयग्रस्त या क्रोधातुर या किसी भावोद्वेग से पीडित प्राणी के सुषुप्त चेतन की ओर से जिन शब्दो और चित्रों की विवश प्रेरणा होती है उन्हें ग्राहक की प्रच्छन्न किन्तु प्रबल ग्राहिका-शक्ति मानसिक शब्दों और रूपो मे परिणत कर लेती है और जैसा कि हम अन्यत्र दिखा आये हैं वास्तविक सुनने और देखने की इंद्रिया तो दिमाग के भीतर ही हैं जो शब्द या चित्र का अनुभव कर लेती हैं। फिर उन्ही शब्दो या चित्रो का अनुभव कोई

बाहरवाला कैसे कर सकता है ? ऐसे उदाहरण इतने असख्य हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा अकस्मात् ही या सयोग से ही हो जाता है।

कभी कभी ऐसी घटनाओ से झूठे निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं। एक माझी की मा सपना देखती है या प्रत्यक्ष देखती है कि उस का लड़का उस की खाट के पास खड़ा है और उस के भीगे कपड़े से पानी चू रहा है। वह समझती है कि लड़का डूब मरा और रो-पीटकर सतोष कर बैठती है। छः महीने बाद वह भला चगा लौट आता है और पूछने पर मालूम होता है कि सचमुच छः महीने पहले एक मस्तूल से वह समुद्र में गिर गया था और बड़ी मुश्किलों से डूबने से बचा लिया गया। जिस तारीख को यह घटना हुई थी ठीक उसी दिन मा को छाया दिखी थी।

मरने के बहुत काल पीछे भी लोगों को मरे हुए मनुष्यो की जो छाया देख पड़ती है उस का भी कारण मरनेवाले की ओर से विचार-प्रेरणा ही समझी जाती है और मरण-काल का ही रूप दिखा भी देने से ऐसा समझा जाता है कि शायद विचार की प्रेरणा मरणकाल में ही हुई हो और उस के ग्रहण करने मे देर लगी हो।

जो हो, विचारप्रेरणा के द्वारा हर तरह की छाया के दिखाई देने की व्याख्या नहीं हो सकती। जैसे कहा जाता है कि अमुक अमुक घर या स्थान प्रेतावास है और वहा एक कोई प्रेत दिखाई दिया करता है। ऐसी जगहो पर किसी अनभिज्ञ मनुष्य को भी जिसे वहाँ का इतिहास बिल्कुल नही मालूम है और उसके प्रेतावास होने का बिल्कुल पता नहीं है विशेष विशेष समयो पर छाया या रूप देख पड़ता है। परचित्तज्ञान या विचारप्रेरणा से ऐसी घटनाओ की व्याख्या नहीं हो सकती। पहली बात तो यह है कि इसकी अच्छी तरह खोज होनी चाहिये कि असलियत क्या है और क्या वस्तुतः ऐसी छाया नियत समयों पर पड़ती है। यदि ऐसा ठीक है तो किसी पक्ष मे अपने विचार को झटपट पुष्ट कर लेना उचित नही है। अपने मन को निर्मल और निष्पक्ष रखना ही बुद्धिमानी है। इस प्रकार की छाया के प्रमाण तो बहुत मिले हैं परन्तु वह इतने अच्छे निर्णायक नहीं समझे जाते जितने कि पहली श्रेणी की छाया के लिये समझे गये हैं। ऐसे मामलों में कोई प्रेरक समझ मे नहीं आता और जो क्रियाए प्रेत के द्वारा कभी-कभी की हुई बतायी जाती हैं वह केवल मानसिक चित्र नहीं मालूम होते। हो सकता है कि ग्राहक प्रत्यक्ष स्वप्न देखता हो। अनुभव मे आयी हुई छाया वस्तुतः देखनेवाले के दिमाग के बाहर की चीज है यह सिद्ध करने का भार देखनेवाले पर ही रहता है। उदाहरण व्यर्थ हैं। भूतों की कहानिया सभी जानते हैं। विस्तार की बाते याद रखना कठिन है, यद्यपि बना लेना अत्यन्त सरल है।

यदि ऐसी छायाओ का दिखाई पड़ना तथ्य है तो इनकी बुद्धि-पुरस्सर व्याख्या क्या हो सकती है ? इस गुत्थी को सुलझाने के लिये क्या यह कहा जा सकता है कि जड़ और चेतन का सम्बन्ध ऐसा है कि कभी कभी शरीर से चेतन अलग हो सकता है ? या स्वतत्र हो सकता है ? एकाध बातो मे तो ऐसा कुछ हेतु मालूम होता है कि अपने शरीर के भीतर के सिवाय बाहरी पदार्थों का भी इन्द्रियो के साधन के बिना ही चित्त को

कुछ काल के लिए विशेष प्रकार का रूप भी दे सकता है जो दूसरे जीवित प्राणियो के लिये गोचर है।

९—गति की लकड़ी

कभी-कभी किसी के हाथ एक टहनी या लकड़ी किसी विशेष स्थान पर पहुंचने पर झुकने या मुड़ने लगती है और टूट तक जाती है। ऐसे स्थान पर खोदने से जल का सोता निकलता है। अथवा इष्ट खनिज पदार्थ या गड़ा हुआ धन निकल आता है। कितने ही मनुष्यो ने इस तरह का अनुभव किया है। किसी-किसी को अपनी इस शक्ति का पता न था परतु एका-एकी लकडी के टूट जानेवाली घटना से मालूम हुआ कि उस मे यह शक्ति है। इस तरह कई आदमियो ने भूगर्भ से निकलेवाले चश्मो या अन्य पदार्थों का पता लगाने का पेशा भी कर लिया है। इस प्रकार की घटना मे किसी तरह की धोखेबाजी या ठगी की बात नहीं हो सकती है। इस की व्याख्या कठिन है। ऐसा समझा जाता है कि विकास-क्रम मे पशुत्व की दशा मे जीव के लिए अत्यत आवश्यक पदार्थ जल की बड़ी आवश्यकता होने से ऐसी नैसर्गिक या सहज बुद्धि अवश्य ही होगी जिस से जल या भोजन के पदार्थ धरती के भीतर से निकालने के लिए भी क्षमता हो या बहुत सम्भव है कि उसी निसर्ग का कोई अवशेष किसी मनुष्य के सुषुप्त चेतन मे अब भी मौजूद हो जिस के प्रभाव से धरती के भीतर मौजूद इष्ट वस्तु के होने पर लकड़ी टूट जाती हो या मुड़ जाती हो। कम-से-कम इतना स्पष्ट है कि इस लकड़ी से काम लेनेवाले मनुष्य के सुषुप्त चित्त का प्रभाव विना उस की इच्छा या सकल्प के उस लकड़ी पर पडता है। ऐसी घटनाओ को हम परचित्त प्रेरणा नही कह सकते और इस मे किसी प्रकार की दूसरे की विचार-प्रेरणा काम कर सकती है। इसी प्रकार दूसरी जगहों से चीजों का हटवा लेना या मॅगवा लेना भी ऐसी घटनाएँ हैं जिन मे केवल विचार-प्रेरणावाले वाद से काम नहीं चल सकता। किसी वस्तु के लाने के लिये या एक स्थान से दूसरे स्थान तक हटाने के लिए किसी चित्त मे विचार-प्रेरणा मे जितनी शक्ति चाहिए उस से कहीं असाधारण-शक्ति की आवश्यकता होती है। इसलिए ऐसा मानने से इन घटनाओं की सतोषजनक व्याख्या हो जाती है कि चाहे चित्त इस भौतिक शरीर से अलग होकर काम करे अथवा इस के भीतर ही काम करे उस की प्रेरणा शक्ति बहुत अधिक हो सकती है और शरीर से स्वतन्त्र होकर भी काम कर सकती है।

१०—मरणान्तर जीवन

परलोकगत प्राणियो के सबंध में परान्वेषण-परिषद ने बडी मुद्दत से असख्य परीक्षाएँ की हैं। उन का विवरण यहा देना असम्भव है। परन्तु इतना निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि निश्चय ही मनुष्य का चित्त मरने के बाद नष्ट नहीं हो जाता है। वरन् किसी-न-किसी सूक्ष्म अवस्था मे कुछ काल तक तो अवश्य मौजूद रहता है। इस तरह मौजूद रहने का प्रमाण प्रो० मायर्स सरीखे परान्वेषण-परिषद के प्रमुख

सदस्यो ने अखंडनीय रीति से दिया है। लिखाने की विधि से उन्होंने किसी अत्यत गहन दार्शनिक विषय पर अपने मौलिक विचार प्रकट किये जो साधनों वा माध्यमो के द्वारा कभी लिखे नही जा सकते थे। प्रकट करने की रीति भी अद्भुत थी। एक ही वाक्य के टुकड़े एक ही समय मे भिन्न-भिन्न दूर-दूर स्थानों पर लिखनेवाले मध्यमो के द्वारा लिखाये गये। और समझने योग्य वाक्य तभी बना जब सब टुकड़े मिलाये गये। ऐसी क्रिया मे माध्यमा द्वारा छल तो असम्भव ही था परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ कि भिन्न भिन्न स्थानो मे लिखानेवाली व्यक्ति एक ही थीं। केवल मायर्स ही नही बल्कि और परलोकगत आत्माओ से इस विधि द्वारा यह पूर्ण निश्चय हो गया कि मरने के बाद मनुष्य की चेतना नष्ट नही हो जाती, प्रत्युत उस का व्यक्तित्व इस स्थूल शरीर से अलग किसी स्वतत्र अवस्था मे रहता है।

जीवित अवस्था मे ही रोग की आत्यन्तिक दशा मे कभी-कभी किसी रोगी को यह अनुभव होता है कि मै अपने शरीर से बाहर निकल कर विचर रहा हूँ और मेरा सकटमय शरीर अलग पड़ा हुआ है। दक्षिण अफ्रीका मे ,शल्य चिकित्सा के बड़े नामी विद्वान् और डाक्टर प्रोफेसर सर अलेक्ज़ेडर आगस्टन ने अपनी लिखी पुस्तक मे अपना एक विचित्र अनुभव वर्णन किया है।* उन्हे आन्त्रज्वर या मोतीझिरा हो गया था। उस समय बहुधा वह यह प्रतीत करते थे कि मै अपने शरीर से अलग हो गया हूँ। उस समय उन्हे अपने शरीर से कुछ घृणा सी होती थी। यद्यपि वह लाचार होकर उस समय पर उस मे प्रवेश करते थे। धीरे-धीरे उन का इस तरह से शरीर से बाहर जाना आना बहुत घट गया। यह उस समय हुआ कि जब उन की देख-भाल करनेवालो को उन के बच जाने की आशा हो गयी। वह लिखते हैं "इस प्रकार से शरीर से बाहर निकलकर घूमने मे मुझे एक अद्भुत अनुभव यह हुआ कि मै उस घर की भीतों के आरपार भी देख सकता था यद्यपि मै जानता था कि बीच मे दीवारे हैं। मेरी इद्रियो के लिये कोई रुकावट न थी। जैसे, मैने यह साफ-साफ देखा कि एक फौजी जर्राह डाक्टर जिस बेचारे के सबध मे मुझे कुछ नही मालूम था उस अस्पताल के बिल्कुल दूसरे भाग में था। वह बहुत बीमार हुआ, चिल्लाता रहा, और मर गया। मैने देखा कि लोगों ने उस की लाश को कफनाया और बहुत आहिस्ता से नगे पॉव बाहर ले गये। चुपके-चुपके और चोरी से कि जिस मे हम लोग यह न जाने कि वह मर गया। और मुझे ऐसा ख्याल मे आया कि वह उसे दूसरी रात को कब्रिस्तान मे ले गये। पीछे जब मैने यही घटनाएँ देख-भाल करनेवाली बहिनों को सुनायीं तो उन्होंने कहा कि जैसी आपने कल्पना की है ठीक उसी तरह से घटना भी घटी है। परतु मुझे उस बेचारे का नाम कभी मालूम नहीं हुआ।"

इस तरह के अनुभव विचित्र रूपों मे ऐसे लोगों ने वर्णन किये हैं जो मरते-मरते से बच गये हैं या बहुत गहरी बेहोशी से जाग पड़े हैं। ऐसे लोगों ने यह बयान किया है कि एक तरह के डोरे से हम स्थूल शरीर से बधे हुए थे और हमे ऐसा प्रतीत होता था कि

---

* "रिमिनिसेंसेज़् आफ थ्री केम्पेन्स" लेखक, सर अलेक्ज़ेंडर आगस्टन।

अगर यह डोरी टूट जायगी तो स्थूल शरीर मे लौट आना असम्भव हो जायगा। परतु बहुधा लौटने की इच्छा नहीं होती। इस पाशविक देह मे कितनी असम्भव वासनाएँ, पीड़ाएँ और कष्ट हैं, यह शरीर पाशविक है, बँधा हुआ है, सकुचित है और कारागार सा है। इस की अपेक्षा शरीर से निकले पीछे की स्वतत्रता बड़ी मनोमोहक होती है। इसलिये निकल कर बहुधा जीव लौढना नहीं चाहता। ऐसी घटनाओं से यह निश्चय हो जाता है कि चित्त इस स्थूल शरीर का मुहताज नहीं है उस के लिये कोई अधिक स्वतत्र वाहन है जिस से वह अधिक स्वतत्रता से काम ले सकता है। इस विषय के अन्वेषण बराबर जारी हैं, इस का साहित्य बहुत बढ चुका है, इस विद्या को मनोविज्ञान का एक बहुत बृहत् विस्तार समझना चाहिए।

पांचवाँ खंड

शक्ति-विज्ञान

और

सूक्ष्म प्रकृति के रहस्य

अठारहवां अध्याय

परमाणु-संसार

१—करण और उपकरण

हमने यह देखा कि इस "महतोमहीयान्" विश्व में हमारी धरती की क्या स्थिति है, किस प्रकार विकास करते हुए वह वर्त्तमान स्थिति मे पहुँची है, किस प्रकार इस जड़ पिंड पर आदि प्राणियो का उद्भव हुआ, फिर कैसे विकास करते-करते वारवार की सृष्टि और प्रलय के पीछे इस पर असख्य प्रकार के जीवाणुओ से लेकर बड़े-से-बड़े विशालकाय प्राणी हुए, फिर कैसे पिंडजो में विकास करते-करते मनुष्य का आरभ और विकास हुआ, फिर किस प्रकार मनुष्य जातियो का इस विकासक्रम मे आरम्भ और अन्त हो चुका है। हमने प्राणियो के जीवन का उन के शरीर के सहारे थोड़ा-सा अनुशीलन किया और फिर मनुष्य के शरीर की रचना और उस के अग-अग के व्यापारो का अध्ययन किया। फिर हमने देखा कि किस प्रकार मनुष्य का चित्त जैसा कुछ दिखाई पड़ता है उस से कहीं अधिक गम्भीर, विस्तीर्ण और अमेय है और हमने यह भी समझा कि वह अपने स्थूल शरीर से स्वतत्र अस्तित्व भी रखता है और उस के मर जाने पर भी उस का व्यक्तित्व नष्ट नहीं होता वल्कि उस की स्वतत्रता वहुत वढ जाती है। हमने यहाँ तक विकासक्रम से "महतोमहीयान्" से लेकर "अणोरणीयान्" सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनुष्य के मन तक का विचार किया। यह सब कुछ हमने उसी वल पर किया जिस की चर्चा हम आगे करना चाहते हैं।

हम यह देख चुके हैं कि वाहरी जगत् की वाते जानने के लिये मनुष्य के पास पाच करण या इद्रियाँ हैं। जिन के अनुभव का द्वार कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और नाक हैं। परतु इन सब की शक्ति परिमित है। यद्यपि हम कान से बरावर शब्द सुनते रहते हैं तथापि सभी शब्द नहीं सुन सकते। यदि सभी सुन सके तो हमारा जीना दूभर हो जाय। हमारी परिस्थिति मे जितना सुनने की आवश्यकता है हम उतना ही सुन सकते हैं। हम छूकर कडा, नरम, ठढा, गरम का अनुभव भी अपनी जरूरत भर कर सकते हैं। हमारी दृष्टि भी अत्यन्त सकुचित है। स्वाद और गन्ध भी हम उतना ही जान सकते हैं जितने की हमे आवश्यकता

है। इन स्वाभाविक यन्त्रों के द्वारा हमें जितना थोड़ा ज्ञान होता है वह भी हमारी भीतरी इन्द्रियों के संयोग से होता है। मन यदि इन्द्रिय में मौजूद न हो और अनुभव की ओर ध्यान दे तो शब्द आते हों तो भी सुन नहीं पड़ते। आखें खुली हों तब भी देख नहीं सकती। भोजन करते हुए भी स्वाद नहीं मिल सकता और गन्ध का पता नहीं लग सकता। चित्त के उजाले में मन बाहरी जगत् को देखता है, बुद्धि समझती और पहचानती है और अहंकार यह मान करता है कि यह सब कुछ करनेवाला और जाननेवाला मैं हूँ। परिस्थिति के अनुसार इन्द्रियों की शक्ति बहुत कम होने से चित्त जो थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त करता है उससे संतुष्ट नहीं रह सकता। तो भी शरीर के बंधन में जब तक पड़ा हुआ है तब तक तो उसे अपने ज्ञान की प्यास इन्हीं इन्द्रियों से बुझानी पड़ेगी। बहुत सम्भव है कि करोड़ों बरस आगे विकास करते-करते परिस्थितियां बदल जायें और इन्द्रियां अधिक-से अधिक शक्तिसम्पन्न हो जायें। परंतु मनुष्य का चित्त ज्ञान के लिये अधीर है और प्रकृति के रहस्यों की खोज में निरंतर यत्न करता रहता है। वह चाहता है कि हमारी सत्ता बराबर बनी रहे, हमें सब कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाय, हम उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक सुखी हों। इस यत्न में उस ने अपनी इन्द्रियों की शक्तियां बढानी शुरू की। अत्यंत बारीक वस्तुओं को देखने के लिये उस ने अनुवीक्षण और परमाणु-वीक्षण यन्त्र बनाये। दूर से-दूर के पिंडों को देखने और उनका रहस्य जानने के लिये दूर-वीक्षण और रश्मिमापक यन्त्र बनाये। अत्यंत ठंढ और अत्यंत तेज़ आंच और ताप नापने के लिये, बिजली और प्रकाश का वेग जानने के लिये और इन सब की मात्रा नापने के लिये, पृथ्वी का कम्पन और चराचर प्राणी के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्फुरण और स्पंदन नापने के लिये उस ने यन्त्र बनाये और उपाय किये।

बंदूक की गोली बड़े वेग से चलती है परंतु उसका हिसाब निकालना सहज है। एक परदा नली के पास लगाया और दूसरा उस से नपी हुई दूरी पर लगा दिया। दोनों परदों को बिजली के तारों के द्वारा ऐसी घड़ियों में लगा दिया जो बहुत सूक्ष्म समय नापती हों और गोली का परदे से ज्योंही स्पर्श हो त्यों ही रुक जायें। बिजली के विधान से दोनों घड़ियां ठीक-ठीक एक ही समय देती हैं। अब गोली स्वयं छूटती है तो पर्दों को छूकर अपना समय बता देती है। यह तो बहुत मोटा और मामूली उपाय हुआ। वैज्ञानिक तो नाप-तौल में सूक्ष्मता की हद कर देते हैं। बहुत सूक्ष्म तौल जानने के लिये ऐसे-ऐसे कांटे बने हुए हैं कि सादे कागज पर पेंसिल से किये हुए निशान से जो तौल में अंतर पडता है वह भी ठीक-ठीक तौल लिया जा सकता है। रश्मिमापक यन्त्र इससे चालीस लाख गुनी कम मात्रा के पदार्थ का पता लगा सकता है। विद्युन्मापक-यन्त्र रश्मि-यन्त्र से भी दस लाख गुना अधिक तेज है। सूक्ष्मताप मापक यन्त्र जिसे बोलोमीटर कहते हैं, तापक्रम के एक अंश के दस लाखवें भाग का पता लगाता है। इस प्रकार मनुष्य ने हर तरह के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म उपकरण बनाये हैं और नाप-तोल के सुभीते के लिये अद्भुत उपाय किये हैं। भौतिक विषयों की तो बात ही क्या है वैज्ञानिकों ने मनुष्य के विचार का वेग नापने के लिये भी यान्त्रिक साधन उत्पन्न किये हैं।

वह निरतर नये-नये यन्त्रो या उपकरणो और नये-नये साधनो के आविष्कार मे बराबर लगा हुआ है इन उपायो से वह अपने ज्ञान का बडा विस्तार कर चुका है और बराबर करता जा रहा है। विज्ञान का सागर अथाह और अपार है परन्तु मनुष्य का साहस और अध्यवसाय उसी के जोड़ का देख पड़ता है। सब तरह की इन्द्रियो को करण कहते हैं। वह उपेन्द्रिया या उपकरण बनाता जाता है और इन उपकरणो मे अपने अतःकरण की शक्ति लगाकर वह आज भी अपने ज्ञान की प्यास को बुझाने मे लगा हुआ है। हम जो कुछ पीछे वर्णन कर आये हैं वह इन्हीं साधनो का फल है। परन्तु अभी तक हमने जड और चेतन और मनुष्य के विकास की थोड़ा सा अनुशीलन किया है। आगे चलकर हम यह देखना चाहते है कि मनुष्य ने उपकरणो के द्वारा अब तक विशेष ज्ञान प्राप्त किया है और अपनी परिस्थिति को सुधारने मे क्या-क्या उपाय सफलता पूर्वक कर पाया है।

२—विश्वभवन की ईंटें

खपरैल की छत मे या फूस के छप्पर मे कहीं-कहीं बहुत बरीक सूराख की राह से जब कभी सूरज की किरणें धरती पर आती हैं तो एक सीधी रोशनी की रस्सी सी दिखाई पडती है जिस मे असख्य कण वेग से उड़ते दिखाई पड़ते हैं। कोई कण किसी की अपेक्षा तेज होता है और कोई धीमा। इन्हें कोई उस रोशनी की डोरी से अलग करके देखना चाहे तो नहीं देख सकता। इन कणो को हमारे ऋषियो ने त्रसरेणु कहा है। उन्होने इसी पर यह कल्पना की थी कि हम किसी पदार्थ को अत्यन्त छोटे खडो मे विभक्त होने की कल्पना करें तो अन्तत. ऐसे छोटे कणों तक पहुँचेंगे जिन के खड-खड करने से उस विशेष पदार्थ के गुण नष्ट हो जायेंगे। इन अन्तिम खडो का नाम अणु अर्थात् अत्यन्त छोटा रखा। जब खड इस प्रकार के हो जायँ कि जिस विशेष पदार्थ के खड किये गये हैं उस के गुण ही नष्ट हो जायँ तो वह सब से छोटे कण अथवा परमाणु कहलायेंगे। हमारे ऋषियो ने अणुओ और परमाणुओ की कल्पना को बहुत बड़ा विस्तार दिया। इन के सम्बन्ध मे भारतीय वैशेषिक और जैन शास्त्रो मे विस्तार पूर्वक विचार है। पाश्चात्य देशों मे यूनानियों ने इसी तरह की कल्पना की और अतिम अणु वा परमाणु का नाम आटम अर्थात् अखडनीय रखा। पाश्चात्य देशों मे इस विचार का विकास पिछले डेढ सौ बरसों के पहले तक कल्पना और तर्क-मात्र पर होता रहा। कोई सवा सौ बरस से ऊपर हुए कि मैनचेस्टर के एक अध्यापक जान डाल्टन ने परमाणुवाद की धारणाओं को बहुत स्पष्ट कर दिया। उस के समय के और पीछे के रासायनिक और भौतिक खोजियों ने असख्य प्रयोगो और परीक्षाओं के द्वारा उस की धारणाओं की पुष्टि की और परमाणुवाद के सिद्धान्तो को ईसा की उन्नीसवीं सदी भर मे पूर्णतया स्थापित कर दिया। डाल्टन का परमाणुवाद यह है कि जितना कुछ विश्व हमारे करणों और उपकरणों का विषय हो सकता है वह सब गिने हुए परिमित सख्या के मौलिक पदार्थों की कमी और बेशी के साथ मिश्रित और सयुक्त रूप मे उन के कम या अधिक घनत्व के साथ

मिलकर बना हुआ है। इन मूल पदार्थों के अंतिम टुकड़े जिन में कि उन के गुण मौजूद हैं, परमाणु कहलाते हैं। प्रत्येक पदार्थ के परमाणु के विशिष्ट गुण हैं जो दूसरे पदार्थों के परमाणुओं के गुणों से नितात भिन्न हैं। जब दो या अधिक मूल पदार्थों के परमाणु एक में मिल जाते हैं और मिल-जुल कर अपने मडल के बाहरी पदार्थों पर प्रभाव डालते हैं तो उन मिले हुए परमाणुओं के समूह का नाम सयुक्त अणु होता है। जहा एक ही पदार्थ के कई परमाणु मिले हुए होते हैं वहा ऐसे सयुक्त समूह को मौलिक अणु कहते हैं। ससार में चराचर पदार्थ इन्हीं सयुक्त और मौलिक अणुओं के समूहन से बना हुआ है। यदि हम बाल के सिरे को या उस की चौड़ाई को दस लाख टुकड़ो में बॉट दें तो उन में से एक टुकड़ा भी एक परमाणु से शायद बड़ा ही निकलेगा। इस लिये सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थों को जिन उत्तम-से-उत्तम अनुवीक्षण यन्त्रों के द्वारा हम देख सकते हैं उन के द्वारा भी हम परमाणुओं को नहीं देख सकते। तो भी जैसे किसी पदार्थ को एक सेर तौल कर उस के बहुत छोटे-छोटे समान अंशों का हम हिसाब से तौल निकाल सकते हैं उसी तरह अणुओं के छोटे छोटे समूहों की उपकरणों द्वारा जाच करके पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने उन के तौल और आकार का भी अनुमान किया है। निदान उन्नीसवीं सदी के अन्त तक अणुओं परमाणुओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों को बहुत विस्तृत ज्ञान हो गया।

योग-साधन से हमारे ऋषियो ने अपनी इन्द्रियो की शक्ति ऐसी बढ़ायी थी कि जो बातें आज उपकरणों के सहारे मालूम की जा सकती हैं उन का अनुभव वह इन्द्रियो से कर लेते थे। हम थोड़ी देर के लिये मान लें कि हमारी आखो में ऐसी विचित्र शक्ति पैदा हो गयी है कि हम तेज अणुवीक्षण यत्र की तरह प्रत्येक पदार्थ की ठीक बनावट देख सकें तो हम देखेंगे कि हर ठोस चीज उसी तरह नहीं बनी हुई है जैसे ईंटो से ठोस दीवार बनी हुई है। देखने में जो ठोस मालूम होती हैं वह चीजें वस्तुत. परमाणु की ईंटों के कसे हुए या ठस बैठने से ठोस नहीं हुई हैं। यह ईंटें सब एक ही आकार-प्रकार की बड़ाई-छोटाई की नहीं हैं। इन ईंटों के भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के समूह बने हुए हैं। यही परमाणुओं के समूह अणु हैं जो अत्यत पास-पास होने से ठोस, कुछ दूर-दूर होने से द्रव और अधिक दूर-दूर होने से वायु बनाते हैं। ठोस में किसी शक्ति के खिंचाव से यह समूह पास-पास रहते हैं। द्रव में किसी शक्ति के कारण यह एक दूसरे को खींचते तो रहते हैं। परतु सारा पदार्थ भारी समूह के रूप में उन्हें साथ लिये हिलता-डोलता रहता है। इस आपस में एक दूसरे को खींचते रहने की शक्ति को "ससक्ति" कहते हैं। ठोस में ससक्ति अधिक होती है, द्रव में कम। वायव्य पदार्थों में अणुओं को पूरी स्वतन्त्रता है। यह बड़े वेग से एक दूसरे से टकराते रहते हैं और समूह में नहीं रहते। यदि हम चाहें कि इन की गति और वेग को कम कर दें तो अत्यत ठढक और दबाव के द्वारा ऐसा हो सकेगा। आजकल वैज्ञानिक हवा को इसी अत्यत ठढ के सहारे पानी की तरह द्रव के रूप में बदल देते हैं। यह ऐसी अत्यत शीत की दशा होती है, कि उस के सामने बरफ का एक टुकडा अगारे की तरह जलती हुई आच देनेवाला है। द्रव रूप में वायु को एक

चाय की केतली में लेकर बरफ की चट्टान पर रख दें तो बरफ की आँच की तेजी से यह द्रव उसी तरह खौलकर उड़ने लगेगा जैसे लाल तपते तवे पर पानी खौलने लगता है।

कोई ताकत ऐसी नहीं है जो साधारण दशा में हवा को पानी सा बना दे। किसी सुदूर भविष्य काल में शायद अरब दो अरब बरस बाद जब सूर्य बहुत ठंडा हो जायगा और पृथ्वी बरफ से भी दो सौ दर्जा नीचे ठंढी हो जायगी अर्थात् वह चन्द्रमा की शीतल दशा को

चित्र १२१ - बरफ पर द्रव का खौलना

पहुँच जायगी तो इस धरती के, वायु-मंडल की दशा विचित्र हो जायगी। उस समय पानी जमकर फौलाद की तरह कड़ा हो जायगा और वायुमंडल जमकर धरती पर पानी की तरह हो जायगा और सिमटकर अठारह हाथ गहरा सारी धरती पर महासागर की तरह फैल जायगा। उस समय धरती पर आजकल के से न तो पेड़ रह जायगे और न कोई प्राणी।

ठोस पदार्थों के अणु बड़ी मजबूती के साथ परस्पर लगे रहते हैं। एक इंच मोटे लोहे के छड़ को फाड़ने के लिए छः सौ इक्यासी मन के बराबर की ताकत चाहिये। परन्तु तो भी ठोस का यह अर्थ नहीं है कि अणु-अणु आपस में ऐसे ठस सटे हुए हैं कि बीच में कोई जगह खाली नहीं है। सोने का टुकड़ा देखने में कैसा ठस ठोस लगता है, परन्तु उसी को पारा भरे एक प्याले में डाल दें तो वह पारे को ऐसा चूसता है जैसे स्पंज पानी को चूसे। अग

अणुओं के बीच-बीच में खाली जगह न होती तो ऐसा न होता। ठस-से-ठस ठोस चीज की बनावट में अणुओ के बीच-बीच मे इतनी जगहें छूटी हुई है कि हमारी दृष्टि अगर अनुवीक्षणयत्र से भी ज्यादः सूक्ष्मदर्शी हो जाय तो हम देखे कि यह ठस नही है बल्कि झज्झरी की तरह है। झज्झरी में स्थिरता होती है परतु यहा सभी अणु बड़े वेग से आगे पीछे गति कर रहे हैं। उन्हें इस गति के लिए काफी जगह भी मिलती है और वह बड़े नियम से चलते हैं और अपनी स्थिति को कायम रखते हैं।

चित्र १२२ – अणुओं की बड़ाई और छोटाई की तुलना।
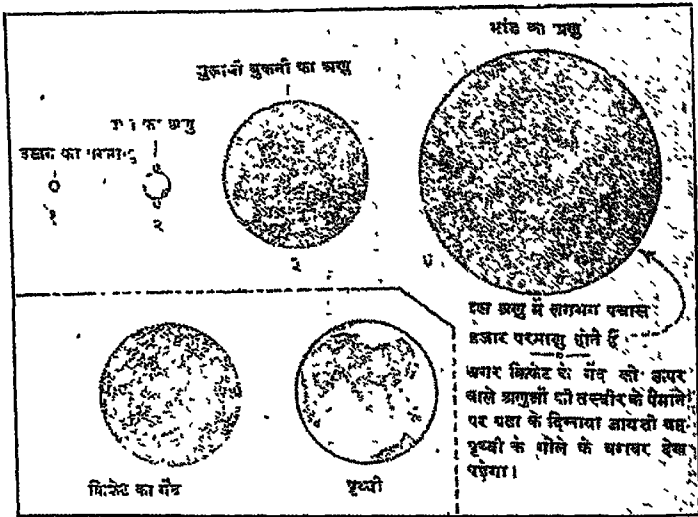
[ड्यार्स न्यूल्स की अनुमति से] [टामसन से अनुवर्तित

अणुओ की इस तरह की गति का प्रमाण भी मिला है। अत्यत सूक्ष्मदर्शी अनुवीक्षण यत्र के द्वारा ब्रौन नाम के एक वैज्ञानिक ने देखा कि एक घोल के ऊपर जब बहुत से सूक्ष्म कण बिना घुले हुए होते हैं तो वह निरतर बडे वेग से चलते रहते है, उन की गति स्वतत्र होती है, एक दूसरे से टकराते हैं और सभी दिशाओं मे उछलते और घूमते हैं। एक सेकड मे हजारो बार टकराते हैं। साधारण दशाओ मे भी यही तेज गति, यही बारम्बार का टकराते रहना, निरतर जारी रहता है। एक भी अणु स्थिर नही है। कणो की इस गति का हिसाब लगाया गया है। अब यह बात मालूम है कि यह कण निरतर इसीलिए घूमते और टकराते रहते हैं कि उस घोल के अणु बराबर इन कणो के ऊपर गिरते और टकराते रहते हैं। अणुओ के धक्को की इन कणो पर वर्षा होती रहती है, जैसे गोलो या ओलो की वर्षा

होती हो। अणु तो इतने छोटे होते हैं कि यत्र से भी नहीं दीख सकते परन्तु कण इतने बड़े हैं कि उन के ऊपर अणुओं का जो अत्यत वेगमय गति पैदा करनेवाला प्रभाव होता है उसे हम यन्त्रद्वारा देख सकते हैं। अणुओं की गति की वास्तविकता जानने के लिये यह प्रयोग, जिसे वैज्ञानिक ब्राउनवाली गति कहते हैं, बड़े महत्व का है।

३—परमाणु-जगत्

गणित विद्या के विशेषज्ञों ने जैसे विश्व के महापिंडों का हिसाब लगाया है वैसे ही परमाणु ससार के लिए भी उन का चमत्कार दर्शनीय है। सोना पीट कर बारीक पत्तर कर दिया जाता है, यह तो सभी लोग जानते हैं। गणित जाननेवाला अगर पीट कर बढाये हुए सोने की तौल और लम्बाई-चौडाई जानता हो तो मोटाई निकालना कोई बडी बात नहीं है। एक ग्रेन सोने की ७५ वर्ग इन्चों के पत्र का रूप दे सकते हैं। इस की मोटाई हिसाब से एक इञ्च का तीन लाख ६७ हजारवा भाग होगी अर्थात् ऐसे ऐसे एक हजार पत्र सटा दिये जायँ तो शायद इस किताब के एक वर्क़ की मोटाई को पहुँच सके। तो भी इतने बारीक पत्र मे अनेक अणुओं की मोटाई होगी। अब साबुन का एक बुलबुला लीजिये जिसे फूँककर बहुत बड़ा कर दिया गया है। बडे ध्यान से देखिये तो इस की बारीक भीत पर कहीं कहीं धुमले धब्बे हैं। यह उस बुलबुले के बहुत पतले भाग हैं। दो बिल्कुल स्वतत्र रीतियों से,—एक बिजली की और दूसरी प्रकाश की,—यह पता लगा है कि इन धब्बों की जगह पर भीत की मोटाई एक इञ्च के तीस लाखवे भाग से भी कम है। इतनी बारीकी मे भी आपस मे ऐसी मजबूती से अणुओं का सगठन है कि ऐसी जगह पर भी बीस से लेकर तीस अणुओं की मोटाई अवश्य होगी। अर्थात् हर एक अणु की मोटाई इञ्च के दो करोड़वे से लेकर तीन करोडवे अश तक होगी। परतु इस से भी बारीक तह पानी के ऊपर तेल की होती है। फरासीसी विशेषज्ञ प्रो० पेरिन ने तेल की तह मोटाई इञ्च के पाच करोडवे भाग तक निकाली। उन्होंने पानी पर तेल की नपी हुई बूँद डाली। जब तेल फैल गया तब उस का विस्तार जानने के लिये एक ऐसी बारीक बुकनी उस पर डाली जिस से उस की बाहरी रेखाएँ स्पष्ट हो गयीं और तह नापी जा सकी। फिर तो मोटाई जानना आसान था। यह अनुमान किया गया कि यह तह कम-से-कम दो अणु गहराई की होगी। इसलिये इस जाँच से यह अनुमान किया गया कि एक अणु का व्यास इञ्च के दस करोडवे भाग से भी कम लम्बाई का होगा। और भी अनगिनतियों जाचे की गयीं परतु सब का फल यही निकला। नील का एक ग्रेन सवा सत्ताईस मन पानी को रगीन कर देता है। इस से मालूम होता है कि एक ग्रेन नील मे गिनती के नीलो अणु होंगे। एक ग्रेन कस्तूरी से सारा कमरा सुगधित हो जाता है और अनेक वर्ष तक बना रहता है। परतु कस्तूरी की मात्रा मे साल पीछे दस लाखवें अश की भी कमी नहीं आती। अच्छी-से-अच्छी विधियों से जाँच करके मालूम किया गया है कि एक औसत अणु इञ्च के साढे बारहवे करोड से भी कम लम्बाई का होता है। वायु के एक घन-शताश-मिति मे जो खेलनेवाली एक छोटी गोली के बराबर होगा, तीन महाशख से कम अणुओं की सख्या न होगी।

अभी तक हम अणुओं पर विचार करते रहे हैं। अब परमाणुओं पर विचार करेंगे। हम तो कह आये हैं कि अनेक परमाणुओं के मिलने से एक अणु बनता है। और अणुओं में भी आपस में आकार का बहुत बड़ा भेद है। रासायनिकों ने हिसाब लगाया है कि मंड के एक अणु में पचीस हजार के लगभग परमाणु होते हैं और पानी की भाफ के अणु में केवल तीन परमाणु होते हैं। इस से यह तो स्पष्ट है कि बड़ाई-छोटाई के हिसाब में अणुओं में आपस का बहुत बडा भेद होगा। जब बड़े-से-बड़े आकार के अणु में पचीस हजार परमाणु
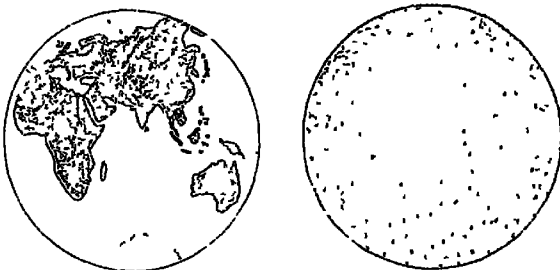
चित्र १३३—यदि उज्जन वायु के सरसों बराबर आयतन को बढाकर पृथ्वी के बराबर होने की कल्पना करें तो उस सरसों भर में स्थित एक-एक परमाणु बढकर केवल टेनिस के गेंद के बराबर होंगे।

ग्रंथकार की कृपा] [सौर-परिवार से

हो सकते हैं तो यह सहज ही समझा जा सकता है कि अणुओं की अपेक्षा परमाणु कितने अधिक छोटे होंगे। परंतु यह बात भी रासायनिकों ने कई जाँचों से मालूम कर रखी है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं में आपस में भार, आकार, बडाई, छोटाई और गुणों का बड़ा भेद है। उज्जन एक वायु है जिस के परमाणुओं से हलके किसी के परमाणु नहीं हैं। उसी को प्रमाण मानकर सवा दो सौ गुने से भी अधिक भारी परमाणु मौजूद हैं। जब अणु नहीं देखे जा सकते तो एक परमाणु के देखे जाने की क्या कथा है। तो भी हिसाब लगाया गया है कि अनुस्वार के सबसे छोटे बिन्दु की व्यासवाली रेखा पर सीधी या ऋजु रेखा में रखे जाँय तो सम्पूर्ण रेखा में पचास लाख हीलियम के परमाणु आ सकेंगे। कुछ परमाणुओं के लिए यह अन्दाजा किया गया है कि एक इञ्च की रेखा में चालीस करोड़ आ सकेंगे। यह परमाणु बडे भयानक वेग से चक्कर लगा रहे हैं। हाथ में हम एक ककडी उठा लेते हैं तो देखने में तो वह बडी क्षुद्र सी लगती है परन्तु उस के प्रत्येक कण जो सटे दीखते हैं ऐसे अणुओं से बने हुए हैं जो बडे वेग से आपस में धक्कम-धक्का कर रहे हैं। पर यह धक्कम-धक्का करनेवाले अणु भी ऐसे परमाणुओं से बने हुए हैं जो उन अणुओं के विस्तार के भीतर ही बड़े भयानक वेग से चक्कर मार रहे हैं। इस हिसाब से यह क्षुद्र ककड़ी बडी भयानक

वा विद्युत्कण अब तक के माने हुए परमाणु से ही निकल रहे थे। क्रुक्स की नलिका मे वस्तुः परमाणु के खड-खड हो रहे थे। परतु उस समय ऐसी बात नहीं सोची जा सकती थी। इसलिए क्रुक्स ने कहा कि वायव्य के कण बिजली से लगकर नलिका की भीत से टकराते है। और यह साधारण वस्तु की नयी अवस्था है जिसको विकीरक अवस्था कह सकते हैं। एक दूसरे वैज्ञानिक लेनार्ड ने यह भी देखा कि नलिका की काच की भीत मे अल्युमिनियम का छोटा सा पत्तर लगा देते हैं तो किरणे उसके भीतर से उसी तरह से निकलती हैं जैसे एक खिड़की से। उसने समझा कि यह किरणे आकाश-तत्त्व की लहरे होंगी।

सन् १८९५ मे राइटगेन वा रजन ने एक्स किरणों को ढूढ निकाला। वह लेनार्ड-वाला प्रयोग कर रहा था। क्रुक्स की नलिका मे उस ने एक काली सी चीज देखी। नलिका के पास ही रखा हुआ रासायनिक विधि से बन्द एक पर्दा चमकने लगा। बात यह हुई कि उस काली चीज के भीतर से होकर किरणे निकल गयी और अधिक जाच करने से पता लगा कि यही किरणे पत्थर मास आदि सभी तरह की अ-पारदर्शी वस्तुओ मे पैठकर निकल जा सकती हैं। इससे मनुष्य की हड्डी की ठठरी का चित्र लिया जाना सहज हो गया। बच्चे ने आलपीन निगल ली है, वह कहाँ पहुँच गयी है इसका पता लग सकता है, पत्थर के नीचे नीचे पड़े हुए रुपये की छाया की फोटो ली जा सकती है। यह एक्स किरणे ऐसे नये प्रकार की ज्योति हैं जिसमे घुसने की अद्भुत शक्ति है। यह किरणे साधारण प्रकाश की किरणों से अत्यधिक सूक्ष्म होती है, और तब से आज तक बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

दुनिया इन किरणों को देख कर चकरा ही रही थी कि बेकरेल ने कुछ और अद्भुत बाते निकाली। कुछ ऐसी वस्तुए हैं जो कुछ काल तक सूर्य की किरणो मे रहकर ज्योति देने लगती हैं। बेकरेल यह खोज कर रहा था कि देखे ऐसी वस्तुओ मे से एक्स किरणे तो नही निकलती। उसने युरेनियम धातु वा पिनाकम का एक लवण लिया। एक कागज पर स्वस्तिक चिह्न बनाया और फोटोवाली प्लेट के साथ लपेटकर और बीच मे एक अपारदर्शी पर्दा रखकर लपेट दिया। वह प्रतीक्षा मे था कि धूप निकले तो इसे धूप मे रखू। परतु इसकी जरूरत न हुई। स्वस्तिक् का चित्र प्लेट पर उतर आया। उसने प्रकाश या अन्धकार की परवाह न की। यह देख कर बारम्बार सभी दशाओं मे जाच की गयी। पता लगा कि यह अद्भुत किरणें पिनाकम् के लवण से निरतर निकला करती हैं और एक्स किरणों की तरह उन्ही अ पारदर्शी पदार्थों मे पैठकर आर-पार निकल जाती हैं।

क्युरी दम्पती ने भी इस सबन्ध मे खोज की। यह पता लगाने के लिए कि किरणे पिनाकम् के लवण से ही आती हैं या उसके साथ और कोई चीज मिली हुई है जो यह किरणे उपजाती है। उन्होने उस तरह के खनिजो की बडी मात्राए लेकर विश्लेषण किया। उन्हे पता लगा कि एक तरह का पिचब्लेंडी बहुत ही तेज है। उस मेल का सैकडो मन पिचब्लेंडी लेकर उन्होंने विश्लेषण कर डाला। अलगाते अलगाते दो-सौ-बीस मन पिचब्लेंडी से उन्होने चाय के आधे चम्मच भर एक ऐसी चीज़ निकाली जो युरेनियम की अपेक्षा दस लाख गुना अधिक किरणों के निकालने की शक्ति रखती थी। उन्होने इस पदार्थ का नाम रेडियम या रश्मिम रखा।

इस नये पदार्थ ने विज्ञान-संसार में हलचल पैदा कर दी। संसार की सभी प्रयोग-शालाओं से इस अनमोल धातु के लवणों की मांग आने लगी और सैकड़ों भारी-भारी
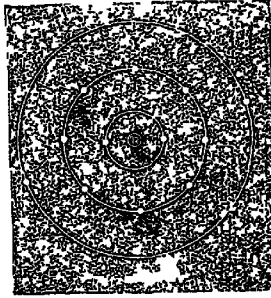
चित्र १२५—मगनीशियम परमाणु का कल्पित चित्र जिसके बीच में धनाणु है जिसकी बिजली की मात्रा १२ है। चारों ओर बारह ऋणाणु चक्कर लगाते हैं।

विद्वान् इस सम्बन्ध की खोज करने लगे। ऐसी किरणें निकालनेवाले विकीरक पदार्थ प्रायः हर साल नये नये निकाले जाने लगे। अब आज तो यह दशा है कि प्रायः सभी तरह के पदार्थ उत्तेजित करके विकीरक बनाये जा सकते हैं।
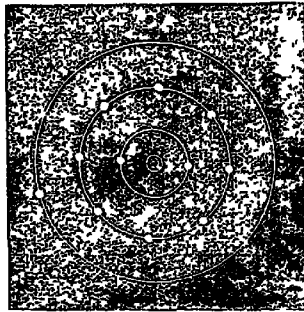
चित्र १२६—इसी के यावनीकरण पर इसका एक ऋणाणु निकल जाता है। इस चित्र में अब ग्यारह ही ऋणाणु रह गये हैं।

इस क्रिया को यावनीकरण कहते हैं। इस विकिरण का अर्थ क्या है? विकीरक पदार्थ के ऊपर प्रयोग-पर-प्रयोग करके यह पता लगाया गया है कि परमाणुओं के खंड-खंड

हो जाते हैं और उसके टुकड़े जो निकलते हैं वह चमकीले विद्युत्कण हैं जो सबके सब एक ही प्रकार के हैं चाहे कितने ही भिन्न पदार्थों के परमाणुओं से टूटकर निकलते हों। इन में अद्भुत शक्ति और तेजस है। इन को विद्युत्कण या ऋणाणु कहते हैं।

हजा
प्रकाश
ड़े के लो पृथ्वी पर सूर्य से विद्युत्कण की वर्षा

बहुत संभव णा से अधि के धब्बे जो कभी कभी देख पड़ते हैं विद्युत्कणों की अत्यन्त प्रचंड आंधी ही हो नी नलिका में के रूप में प्रकट होती है।

ज्यार्ज न्यून परन्तु यह समर्स] [टामसन का अनुवर्त्तन

आज न किरणों का - अखंडनीय नहीं रहे। खंड्य हो गये। वास्तव में वह बराबर स्वतंत्र बिजली के का र अपने-आप टुकड़े हो-होकर विश्व में विद्युत्कणों की वर्षा करते तब समझे गये विषय में विज्ञान-संसार में क्रान्तिकारी खोजें हो चुकी हैं। यह पता ल गयी। पता लगा कि - से चमकती हुई धातु इन विद्युत्कणों की धारा बहा रही रमाणु से टूटकर निक

है। बादल की हर गरज और बिजली की हर चमक के साथ इन की वर्षा होती रहती है। हर तारा आकाश मे विद्युत्कण बरसाता रहता है। हम लोग जिन परमाणुओं को अखड समझते थे वह हमारी आखो के सामने अपने-आप बराबर टूटते रहते हैं। सूरज से विद्युत्-कणो की केवल अपार धारा ही नही आती रहती, बल्कि पराकासनी किरणे भी आती रहती हैं जिन्हें हम देख तो नही सकते पर जिन मे ऐसी रासायानक शक्ति है कि धरती के ऊपरी तल के परमाणुओं के खड-खड करती हैं और विद्युत्कण निकालती रहती हैं। हमारे लिये यह कुशल है कि हमारा वायु-मडल इन अदृश्य किरणों के अधिकाश को सोख लेता है। नही तो शायद सूरज से उस की पूरी धारा आ पाती तो हमारी सब धातुएँ बिखर जातीं और हमारी फौलादी सभ्यता मिट्टी में मिल जाती। कुरी दम्पती ने वस्तुतः रेडियम का पता लगाकर असली अखड परमाणुओ के ज्ञान का फाटक खोल दिया जिस का फल यह हुआ कि प्रकृति के इस मन्दिर मे प्रवेश करके पिछले तीस वर्षो मे हमारा ज्ञान-विज्ञान का भडार जितना बढ गया पिछले तीन सौ बरसो की भी जानकारी उस के सामने थोड़ी सी लगती है।

उन्नीसवां अध्याय

अखंड परमाणुओं द्वारा विचार-क्रान्ति

१—बिजली के परमाणु

रेडियम ने ज्ञान का नया द्वार खोल दिया और इस द्वार से सर जे० जे० टामसन, प्रोफेसर रदरफोर्ड, सर विलियम रैमज़े, प्रो० साडी सरीखे अनेक प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों ने प्रवेश किया और पाँच बरस के भीतर में उन्होंने प्रकृति के रहस्यों का एक भंडार संसार के सामने रख दिया। उन्हें तुरत यह मालूम हुआ कि क्रुक्स की नली में जैसी किरणें निकलती हैं ठीक वैसी ही रेडियम से भी निकलती हैं। यह तो शीघ्र ही निश्चय हो गया कि रेडियम से तथा और धातुओं से परमाणुओं के खंड-खंड होते जाते हैं। ऐसा किस प्रकार होता है इस का पता नहीं लगा। पहले-पहल उन्होंने यह परखा कि (रेडियम) रश्मिम और पिनाकम् (युरेनियम) आदि से तीन तरह की किरणें निकला करती हैं। उन तीनों के नाम क्रमशः अ, ब, ग रखे गये।

"अ" किरणें तुरत पहचान ली गयीं। वह हिलिअम नामक वायव्य के परमाणु थे जो सेकण्ड पीछे बारह हजार मील के वेग से निकल रहे थे और "ग" किरणें एक्स किरणों की तरह अव्यक्त प्रकाश की किरणें हैं जो अपारदर्शी पदार्थों में भी घुस जाती हैं यहां तक कि एक फुट मोटाई के लोहे में भी उन की गति अव्याहत है।

"ब" किरणों से अधिक महत्व का आविष्कार विज्ञान में आज तक नहीं हुआ था। क्रुक्स ने अपनी नलिका में इन्हें ही देखकर कहा था कि यह वस्तु की चौथी अवस्था मालूम होती है। परन्तु यह समस्त पदार्थों के प्रत्येक अणु में पाया जानेवाला गुण निकला। इन किरणों का नाम आगे चलकर एलेक्ट्रन ऋणाणु या विद्युत्कण पड़ा। यह स्वतंत्र बिजली के कण हैं जो परमाणुओं से छूटकर निकलते रहते हैं। यह पहले-पहल तब समझे गये जब परमाणुओं के टूटने से इनकी अलग सत्ता की जाँच की गयी। पता लगा कि ये परमाणुओं के बनानेवाले घटक हैं और यह अनेक विधियों से परमाणु से टूटकर निकल सकते हैं। यह सब तरह के परमाणु में मौजूद भी हैं।

इन की स्वतन्त्र स्थिति तभी रह सकती है जब यह सेकण्ड पीछे कम-से-कम लगभग छः सौ मील के वेग से चल रहे हों। यदि वेग कम हुआ तो जो ही पहला परमाणु मिलेगा उसी में यह लग जायगे। इन का वेग अद्भुत है। एक सेकण्ड में दस हज़ार से लेकर एक लाख से अधिक मीलों का वेग साधारणतया होता है। पहले जभी यह मालूम हुआ कि ये बिजली के से गुणवाले पदार्थ हैं, क्योंकि इनकी किरणें चुम्बक के पास लाने से अपने सीधे मार्ग से झुक जाया करती थीं, तभी वेगवाली महत्व की बात इस तरह मालूम की गयी। शून्य नलिका में एक प्रकार का छोटा सा रासायनिक पर्दा दिया गया और इस तरह पर प्रबन्ध किया गया कि एक बहुत पतली किरणमाला पर्दे पर पड़ सके। फिर चुम्बक के द्वारा वह किरणमाला अपने मार्ग से हटायी गयी और ज्योतिर्बिन्दु जहाँ से जहाँ तक खसका था उसे बिल्कुल ठीक ठीक नाप लिया गया। चुम्बक और उस के क्षेत्र की ठीक नाप और उस से उपजाये झुकाव और चलनेवाले कणों की मात्रा मालूम होने से यह पता लगाया जा सका कि झुकनेवाले कण कितने वेग से दौड़ रहे हैं। इन का वेग अच्छी स्थितियों में लगभग प्रकाश के बराबर पाया गया जो कि प्रति सेकण्ड एक लाख छियासी हजार मील है। अनेक परीक्षाओं से इस वेग का समर्थन हुआ है।

वैज्ञानिकों ने इन कणों के आकार का भी पता लगाया है। यह बहुतों को मालूम है कि वायु-मंडल में धुएं और धूल के कण पर भाफ के कणों के पड़ जाने से कुहरा या कुहासा हो जाता है। छोटी काच की नलिकाओं में पहले ... विशेष धूल फैला दी गयी और उस में अतिसम्पृक्त भाफ का प्रवेश कराकर उन कणों पर इकट्ठा होने दिया गया। अन्त में वर्षा की छोटी-छोटी बूंदें अपने अन्तःस्तल में एक-एक रज-कण लिये हुए चांदी के दर्पण पर गिरीं और गिनी जा सकीं। धूल के यह कण दिखाई नहीं पड़ते थे। इसलिए अलग-अलग गिने नहीं जा सकते थे। यह बूंदों के सहारे गिन लिये गये। ऐसी ही विधि से विद्युत् कणों की भी गिनती कर ली गयी। एक रासायनिक परदा बनाया गया जिस पर विद्युत् कणों की धारा छूटकर टकराती थी और परदे के परमाणुओं को चमका देती थी। एक सूक्ष्मदर्शी ताल के द्वारा चिनगारियों के रूप में इस चमक को देखा गया और चिनगारियाँ गिन ली गयीं। इस तरह का यन्त्र पहले-पहल क्रूकसने ही बनाया और स्फुलिंगमापक नाम रखा। ऐसे अनेक बड़े ही सुंदर प्रयोग संसार की बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं में हुए जिन में एक दूसरे की पूरी जाँच की गयी और विद्युत्कणों के गुणों का निश्चय-पूर्वक अनुशीलन हो गया। बिजली के सिवाय और कोई बात इन कणों में नहीं मिली। इसलिए ये बिजली के कण ही समझे गये। उज्जन के एक परमाणु का आयतन यदि हम एक माने तो एक विद्युत्कण का आयतन उसका १८४५ वां अंश होता है। यह कण विद्युत् का एक परमाणु है। इस का आयतन अत्यन्त छोटा है और शरीर पूर्णतया विद्युन्मय है। विद्युत्कणों ने प्रकृति के बड़े भारी रहस्य का उद्घाटन कर दिया। जिसे हम अब तक बिजली की धारा कहते थे वह वस्तुतः बड़े वेग से चलनेवाले विद्युत्कणों की धारा है। जिन वस्तुओं को हम सर्वथा अपारदर्शी समझते हैं उन में से भी होकर विद्युत्कण निकल जाते हैं, और उन वस्तुओं के

गुणों से इन्हे कोई सरोकार नहीं होता। केवल घनत्व का थोडा प्रभाव उन की गति पर पड़ता है। जिन वस्तुओं पर उन का धक्का लगता है वह अँधेरे मे चमकने लगती हैं। वह फोटो के काचखड पर प्रभाव डालते हैं और वायु को बिजली का चालक बना देते हैं। नम हवा मे वह बादल पैदा कर देते हैं। उन के कारण रासायनिक क्रिया होती है। अभी तक खोज का काम जारी है और यह नहीं कहा जा सकता कि विद्युत्कणो के ज्ञान से मानव जाति को कहाँ तक लाभ पहुँच सकता है।

२—विद्युत्कण-वाद

विद्युत्कणो के सम्बन्ध मे अबतक जो बाते हम कह आये हैं वह विज्ञान ससार मे आज एक मत से मानी जाती हैं। हमे यह मालूम हो चुका है कि चाहे अपने-

चित्र १३८—लार्ड अर्नेस्ट रदरफोर्ड, जन्म सं० १९२८

आप और चाहे कोई उत्तेजना पाकर निरतर पदार्थों के परमाणु टूट-टूटकर विद्युत्कण फेकते जाते हैं। इस से मालूम होता है कि उन मे विद्युत्कण हैं और साथ ही यह भी पूरे तौर पर सिद्ध हो गया कि परमाणु और विद्युत्कण दोनो स्वतत्र रूप से अवश्य अपनी-अपनी सत्ता रखते हैं। परतु जब वैज्ञानिक यह बताने की कोशिश करता है कि किस प्रकार विद्युत्कण परमाणुओ का सगठन करते हैं तो वह कल्पना से ही काम ले सकता है। अभी तक उसे प्रयोग द्वारा अपनी कल्पनाओ को पुष्ट करने का आधार नहीं मिला है। ऐसे सूक्ष्म पदार्थों के सम्बन्ध मे जो किसी यत्र द्वारा देखे नहीं जा सकते आकार का ठीक-ठीक जानना सम्भव नहीं है। यह जानने के लिये कि किसी एक परमाणु मे विद्युत्कण किस तरह मौजूद हैं कल्पना से ही काम लिया जा सकता है।

जो कल्पना जाने हुए तथ्यों के अनुकूल पड़ती है वही ठीक समझी जाती है। जो प्रतिकूल पड़ती है उसे त्याग देते हैं। इस तरह की कई कल्पनाएं परमाणु-रचना के सम्बन्ध में की गयी हैं। जो कल्पनाएं सब से अधिक मान्य हुई हैं वह इस प्रकार हैं। जैसे सूर्य के चारों ओर अनेक ग्रह चक्कर लगाया करते हैं और सब को लिये-दिये सूर्य का एक ब्रह्माण्ड समझा जाता है उसी तरह एक धनाणु या प्रकण के चारों ओर विद्युत्कण या ऋणाणु चक्कर लगाया करते हैं। इसी को एक परमाणु कहते हैं। प्रकण या धनाणु विद्युत्कण से कुछ बड़ा धन-बिजली का एक कण या बीज है जिस के चारों ओर ऋण बिजली के कण परिक्रमा करते हैं।
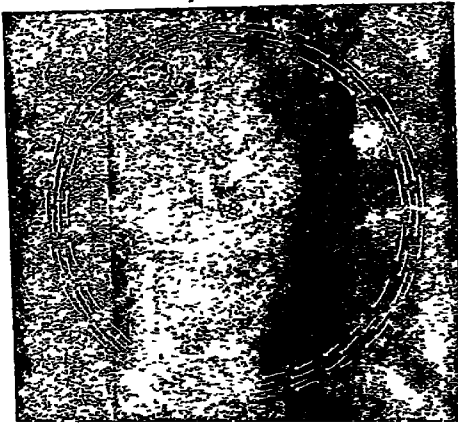
चित्र १३२—एक परमाणु का काल्पनिक रूप

ग्रन्थकार की कृपा] [सौर-परिवार से

बड़े से बड़ा परमाणु पराणुवीक्षण यंत्र से देखा नहीं जा सकता। परन्तु वह स्वयं अनेक विद्युत् णों की अतीयस चक्र-गति से बनी हुई एक सामूहिक सत्ता है। वैज्ञानिकों ने उसके रूप की अनेक कल्पनाएं की हैं। इन में से एक का रूप ऊपर दिखाया गया है।

डाक्टर लागम्योर की यह धारणा है कि विद्युत्कण चक्कर नहीं लगा रहे हैं बल्कि प्रकण से निश्चित दूरियों पर बड़े भयानक वेग से हलचल की अवस्था में हैं। जो हो, चाहे चक्कर हो चाहे हलचल हो, बड़े वेग से किसी तरह की गति अवश्य है. इसलिये एक-एक परमाणु में शक्ति बहुत भारी परिमाण में भरी हुई है।

मोजले नामके के एक वैज्ञानिक ने जो पीछे युरोपीय महासमर में मारा गया कुछ

तब से अब तक बराबर ठढी होती जा रही है। जो वस्तुएँ ठढी होती जाती हैं वह सुकड़ती भी जाती हैं और सुकड़ने से आच भी देती जाती हैं। इस सुकडने और आच देने का हिसाब लगाकर उन्होंने पृथ्वी की अवस्था लगभग दो करोड़ वर्षों की आँकी थी। केल्विन को तब यूरेनियम आदि विकीरक धातुओं का और विकिरण का पता न था। इस विद्युत्कणवाद ने उन के हिसाब को भी बदल दिया। अब तो यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी का पिड दिन-पर-दिन ठढा होने के बदले गरम होता जाता हो तो कोई अचभे की बात नहीं है। बहुत सभव है कि सुकड़ने से ताप में जो कमी आती रहती है वह पृथ्वी के पदार्थों की विकिरण-क्रिया से पूरी होती जाती है। इस तरह का अदाजा लगाने से इस पिड की अवस्था बहुत बढ जाती है। वैज्ञानिको ने कई मौलिक पदार्थों की जो निरतर टूटते रहते हैं अवस्था निकाली तो पिनाकम् की अवस्था सात-आठ अरब वर्षों की ठहरी। परतु टूटने रहनेवाले मौलिक पदार्थ तो अल्पायु समझे जाते हैं। जिन का टूटता रहना अव्यक्त सा लगता है वह तो और भी दीर्घायु होगे। इस से तो यह स्पष्ट है कि जिस मसाले का यह पृथ्वी-पिंड बना है वह अनत काल से विश्व मे मौजूद है। उसी से अदल बदलकर विश्वो का सर्ग और प्रतिसर्ग, जन्म और विनाश होता रहता है। अब तो यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी पिंड पर चराचर प्राणियों की आदिम सृष्टि हुए कम-से-कम एक-अरब बरस अवश्य हो गया होगा। यह जड़ पिंड इससे कई अरब बरस पहले बन चुका होगा। और यह भी अनुमान किया जा सकता है कि आगे कई अरब बरसों तक इस का जीवन रहेगा।

विकास सबधी विचार मे भी परिवर्तन हो गया है। अब ऐसा समझा जाता है कि भारी-से-भारी मौलिक पदार्थ धीरे-धीरे हलके मौलिक पदार्थों से बने होगे। उज्जन से हिमजन बना होगा, हिमजन से ओणम्, ओणम् से वेरीलम्, उस से टकम और टकम से कर्बन, और कर्बन से नोपजन और नोपजन से ओपजन बना होगा। इसी तरह उत्तरोत्तर बढते-बढते भारी-से भारी मौलिक पदार्थ पिनाकम् तक बना। यह विकास-क्रम आज विज्ञान-ससार मे निश्चित है।* इसी तरह ह्रास भी समझा जाता है। जो मौलिक पदार्थ बहुत भारी हैं वह टूटते रहते हैं और अपने से हल्के मौलिको में परिणत होते रहते हैं शायद मौलिक परमाणु की अपनी घनता भारी मौलिको मे अपनी हद को पहुँच चुकी होगी। इसी से यूरेनियम से भारी कोई धातु पायी नहीं जाती।

इसी तरह की एक बात का और भी निश्चय है। हम देख चुके हैं कि इस सृष्टि मे अनत विश्व हैं जिन मे से प्रत्येक में अनत ब्रह्माड हैं। कोई ब्रह्माण्ड स्थिर नहीं है। प्रत्येक ब्रह्माड मे असख्य पिंड हैं। कोई पिंड स्थिर नहीं है। प्रत्येक पिंड मे चराचर प्राणी हैं और जड़ पदार्थ हैं, सब के सब अणुओं से बने हुए हैं, परतु एक भी अणु स्थिर नहीं है। प्रत्येक

---

* सूक्ष्म से ही स्थूल का उत्तरोत्तर विकास "आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यां पृथ्वः" यह श्रुति भी स्थापित करती है। परस्पर-सम्भूतिवाद भारतीय सृष्टिक्रम की विशेषता है जिस को विज्ञान आज पुष्ट कर रहा है। इस का उलटा महाप्रलय का क्रम है।

परमाणु विद्युत्कणो और एक प्रकण का बना हुआ है, परतु विद्युत्कण और प्रकण स्थिर नहीं हैं। निदान विश्वभर मे कहीं स्थिरता नही है। सब कुछ निरतर चलता रहता है। जो पिंड जितना ही सूक्ष्म है उतना ही अधिक वेग से चलता रहता है। जो पिंड जितना ही स्थूल है वह उतना ही कम वेग से चलता है। परतु चलते सभी हैं। सृष्टि में स्थिर कुछ भी नहीं है। इसीलिए हमारे ऋषियो ने दुनिया को "जगत्" या "ससार" कहा है जिस का अर्थ हैं निरतर चलनेवाला। वेदातवादियो ने जीवन-मात्र को अत्यन्त चचल बताया है। बौद्धों ने ससार को क्षणिक कहा है और सतत परिवर्तनशील बनाया है। सौ सयाने एक मत, विज्ञान आज इसी तरह के निष्कर्ष पर पहुँचा हुआ है।

४—पारमाणविक शक्ति

इस विश्व की रचना मे केवल विद्युत्कण ही हो ऐसी बात तो नहीं है। विद्युत्कण के सिवाय शक्ति भी है। वह आत्यन्तिक गति जिस से कि विद्युत्कण, परमाणु, अणु और इस विश्व के सभी बड़े-बड़े पिंड बड़े वेग से चल रहे हैं, अपार है और विश्व मे भरी हुई है। अब तक हम जिन शक्तियो से काम लेते रहे हैं उन की तो इस अगाध भडार के सामने कोई गिनती ही नही है। यदि हम बदूक की एक गोली को एक विद्युत्कण की तेजी तक पहुँचाना चाहें तो एक करोड़ चौतीस लाख बदूक की नालियो भर बारूद की जरूरत पड़ेगी। एक तांबे की एक पाई मे आठ करोड़ घोड़े की ताकत कमी पड़ी हुई है। सेर भर कोयले के पारमाणुओं मे जितनी शक्ति भितरायी हुई है उतनी शक्ति करोड़ो मन कोयला जलाकर हम पा नही सकते। क्या यह अपार शक्ति कभी मनुष्य के हाथ मे आ सकती है? अब तो मनुष्य ने एक मौलिक पदार्थ से दूसरा मौलिक पदार्थ और एक धातु से दूसरी धातु बनाने की कीमियागरी सीख ली है। फिर भी परमाणु की असीम अन्तःशक्ति का लेशमात्र उसके हाथ नही लगा है। प्रो॰ साडी की नीचे लिखी आशा अभी पूरी होनी नहीं दीखती। उन्होंने कभी* लिखा था—

"प्रायः नित्य इस बात की आशा बँधती जाती है कि कृत्रिम रीति से एक धातु से दूसरी धातु के बनाये जाने की क्रिया सफलता से पूरी हो जायगी। प्राचीनों को साधारण इशारा ही नहीं मिला था बल्कि उन्हें कुछ इस बात का अधिक ज्ञान था कि जो शक्तिया अभी तक देवताओं के ही हाथ मे हैं वह धातु परिवर्तन की क्रिया के पूर्ण हो जाने से मनुष्यों के हाथ आ जायेगी। परन्तु अब हम निश्चय रीति से यह जानते हैं कि धातु-परिवर्तन की क्रिया के सफलतापूर्वक पूर्ण होने से भीतरी पारमाणविक शक्ति के अक्षय भडारों पर जो हमारा अधिकार अनिवार्य रीति से हो जायगा उन के मुकाबिले तो धातुपरिवर्तन से पाये हुए पार्थिव लाभ की कोई गिनती ही नहीं है। अब जो समस्या हमारे सामने है वह कीमियागरों के निकृष्ट युगवाली नहीं है बल्कि वह ऐसी भारी समस्या है जिस के सुलझाने से यह आशा की जाती है कि सारे ससार का एक प्रकार का पूर्ण भौतिक कायाकल्प हो जायगा।"

* नेचर के ६ नवम्बर, सन् १९१९ के साडी के एक लेख से।

यदि उनकी आशा अब भी पूरी हुई तो निःसन्देह सारे संसार का आर्थिक रूप ही बदल जायगा।

५—बिजली का रूप

कोई तीस बरस हुए विज्ञान को यह बिल्कुल पता न था कि बिजली क्या है। तार और बेतार चल रहे थे। घंटियाँ बज रही थीं। दूर-दूर से लोग बातें कर रहे थे। समाचार
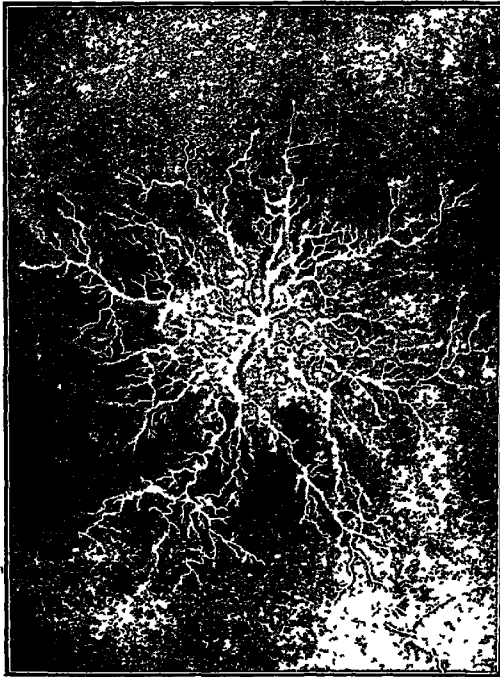
चित्र १४२—बिजली कौंधने का एक दृश्य

का विनिमय हो रहा था। रोशनी से काम लिया जाता था। बिजली के पंखों से हवा खा रहे थे। बिजली की गाड़ियों पर सवारी कर रहे थे। सब तरह के यंत्र बिजली के बल से हम चला

रहे थे। परन्तु हमें यह मालूम न था कि बिजली क्या है। हम समझते थे कि एक तरह की कोई बहनेवाली ताकत की धारा है जो तारों की राह बहती है। परन्तु आज हम यह जानते हैं कि तार में या और जहाँ कहीं बिजली की धारा है वहां बड़े वेग से एक परमाणु से दूसरे परमाणु को विद्युत्कणों की गति हो रही है। इसी बात को हम यहाँ कुछ समझने की कोशिश करेंगे।
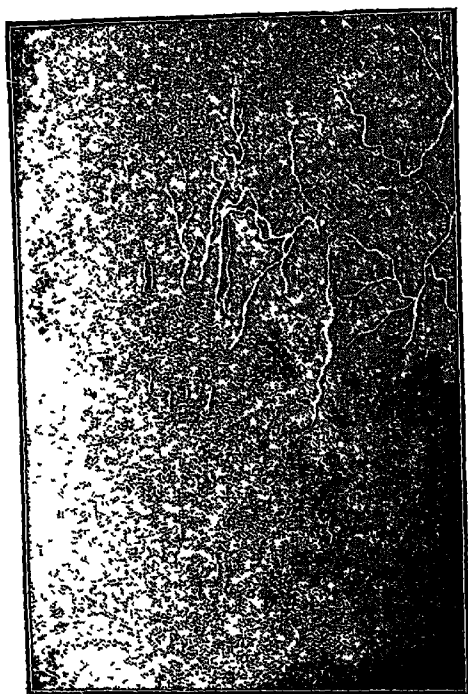
चित्र १४२—बिजली कौंधने का दूसरा दृश्य

हम देख चुके हैं कि प्रत्येक परमाणु के मध्य भाग में एक बिजली का धनाणु है जो ऋणाणुओं या विद्युत्कणों से घिरा हुआ है। यह बिजली के ऋण-कण हैं। अब हमें यह बात मालूम है कि बिजली भी कणों की बनी हुई है, जिसकी इकाई यही धन या ऋणकण हैं। बिजली की प्रत्येक मात्रा इन्हीं इकाइयों की बनी हुई है। एक नपी

हुई मात्रा मे इन कणो की विशेष सख्या रहा करती है। पहले हम यह समझा करते थे कि जिस मे अधिक बिजली का सचार है वह धन है, और जिस मे कम है वह ऋण है। परन्तु अब आजकल कोई पदार्थ धन इसलिये कहा जाता है कि उस के परमाणुओ से कुछ विद्युत्कण निकल गये है, और ऋण उसे कहा जाता है जिस के परमाणुओं मे प्रमित सख्या से अधिक विद्युत्कण मिल गये है।

यह क्रिया केवल बाहर की ओर रहनेवाले विद्युत्कणों मे ही होती है। इस तरह विद्युत्कण एक परमाणु से दूसरे मे और दूसरे से तीसरे में जा सकते है। यदि यही क्रिया बहुत बड़े पैमाने पर हो तो एक धारा सी चलने लगे। इस तरह बिजली की धारा असल मे विद्युत्कणो की धारा है जो एक परमाणु से दूसरे परमाणु पर बराबर चलते हुए अटूट धारा बना लेती है। किसी एक रासायनिक पदार्थ मे एक ओर जस्ते का टुकड़ा और दूसरी ओर तांबे का टुकड़ा एक बर्त्तन मे डुबो रखने से बिजली का एक घट बन जाता है। और बिजली की एक पतली धारा चलने लगती है। इसका मतलब यह हुआ कि जस्ता एक धातु है जिस के परमाणु अपने बाहरी कुछ विद्युत्कणों को छोड़ने के लिये तैयार है। क्यो तैयार है यह हम नहीं जानते। परन्तु तथ्य यह है कि जस्ते के परमाणुओं से निकलकर तांबे के परमाणुओ तक विद्युत्कण जाया करते हैं, यही धारा है। प्रत्येक परमाणु अपने पासवाले को अपने विद्युत्कण दे देता है। इस तरह से सिलसिला चलते रहने का ही नाम "धारा" है। अगर इन दोनो धातुओ के टुकड़ों को तांबे के तार से जोड दें तो धारा तेज होने लगती है। अर्थात् अधिक तेजी के साथ विद्युत्कण निकलने लगते हैं। बात यह है कि जिस रासायनिक पदार्थ के भीतर जस्ता प्रवेश किये हुए है वह जस्ते के परमाणुओं को ले रहा है। यह परमाणु जस्ते मे उन विद्युत्कणों को छोड़ते जाते हैं। वह जस्ते मे विद्युत्कणों की सख्या बढा देते हैं। इस तरह जस्ते के पास तांबे को भेजने के लिये अधिक विद्युत्कण हो जाते हैं। जस्ता इसीलिए तांबे को विद्युत्कण भेजता रहता है।

यह तो एक घट की बात हुई। इस तरह के कई घटो को तार से जोड़कर घटमाला या बाटरी बना लेते हैं। आजकल एक घट को भी बाटरी कहते है। इसी सिद्धान्त के ऊपर भिन्न-भिन्न रासायनिक पदार्थों के साथ कोयला, जस्ता, तांबा आदि अनेक वस्तुओ के चुने हुए प्लेट लगाकर विविध प्रकार की बाटरियां तैयार की जाती हैं। सिद्धान्त एक ही है। प्रयोग विविध हैं। बिजली का प्रवाह विद्युत्कणों का ही प्रवाह है। परन्तु ऐसा कोई न समझे कि जल की धारा की तरह उस के अणु मिले-जुले बहते है। विद्युत्कण अत्यन्त वेग से टूट कर उड़ते हैं, और एक परमाणु से दूसरे परमाणु मे जाते हैं। जैसे बच्चे एक पंक्ति मे जरा-जरा सी दूरी पर ईंटे खड़ी कर देते हैं और पहली ईंट को दूसरी पर गिरा देते हैं तो दूसरी तीसरी पर और तीसरी चौथी पर गिरकर गिरनेवाले धक्के को अन्तवाली ईंट, तक पहुंचा देती है। इस तरह धक्के की या गति की एक धारा बन जाती है जो अन्तिम ईंट तक पहुंचती है। इसी तरह गति की धारा हो इन परमाणुओं के टूट-टूटकर एक अणु से दूसरे अणु पर जाने मे बन जाती हैं। हां, इतनी बात जरूर है कि परमाणु मे

परमाणु तक इतने वेग से गति चलती है कि गति की धारा बेटूटे हुए जाती सी लगती है और वेग भी अप्रतिम होता है।

जैसे जस्ता अपने विद्युत्कणो को देने के लिए तैयार बैठा रहता है वैसे ही ताबा भी उन्हे आगे बढाने के लिये उत्सुक रहता है। ताबा सब से उत्तम चालकों मे है अर्थात्
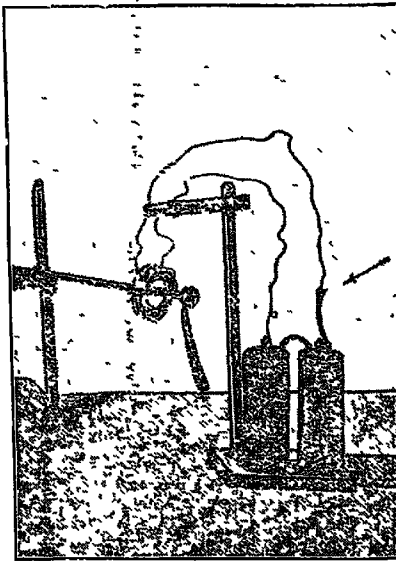
चित्र १४४—धारा बँधी रहने से लोहे का छड़ चुंबक बन जाता है और चाकू को खींच लेता है।

अनुमति से] [सायंटिफिक ऐडियाज़ आफ़ टुडेसे

इस के भीतर विद्युत्कणो की गति मे अत्यन्त कम रुकावटे पडती हैं, यद्यपि इसी तरह प्रायः हर एक धातु मे विद्युत्कणो की गति बह सकती है। इस तरह की बाटरी से प्रत्येक प्लेट से तावे के तार लगे होते हैं। जिन दो तारो के मिलने से चक्कर पूरा हो जाता है उन के सिरो पर बराबर विद्युत्कण मानो आगे बढने के लिये और गति पहुंचाने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। जब और जहा यह दोनो सिरे जुट जाते हैं गति को धारा बंध जाती है। इस धारा को, गति को या शक्ति को प्रकट करने के लिए इन दोनो सिरो का छू जाना या अगर ग बहुत तेज हुई तो पास आ जाना भी काफी होता है। इसी तरह के दो सिरो के मिला

देने से वह गति या शक्ति प्रकट होती है जिससे कि घंटी बजती है, पंखा चलता है प्रकाश होता है, ट्राम गाड़ी चलती है और मशीनें साधारणतया चलने लगती हैं।

जैसे ताँबा बड़ा अच्छा चालक है वैसे ही कई चीज़ें बड़ी रुकावट डालने वाली हैं। यह विद्युत्कणों का मार्ग एक दम रोक देती है। इनका नाम रोधक है। काच, चीनी, मिट्टी गन्धकित रबर, रेशम आदि अच्छे-अच्छे रोधक हैं। इसलिए हम चाहें तो इस गति के चलने के लिए ऐसा बन्द रास्ता बना दें कि भटक कर इधर-उधर न जाने पावे। बाटरी इन्ही वस्तुओं की बनती है और तांबे के तार पर रेशम आदि पदार्थ लपेट दिये जाते हैं कि इस गति का मार्ग निश्चित रहे।
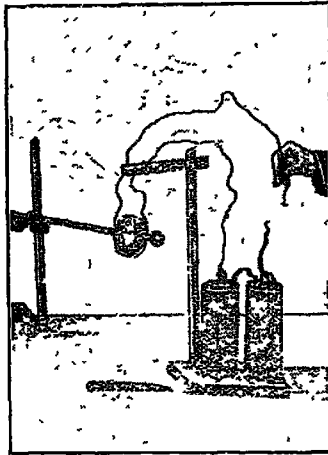
चित्र १४५—धारा तोड़ देने से छड़ का चुम्बकत्व नष्ट हो जाता है और चाकू छूट कर गिर जाता है।

प्रकाशक की अनुमति से] [सायंटिफिक ऐडियाज़ आफ टुडे से अनुवर्त्तन

आजकल के शिल्प के बड़े-बड़े कारखानों में इन मामूली बाटरियों से काम नहीं चलता और यह शक्ति की धारा दूसरी तरह पर पैदा की जाती है। अदृश्य विद्युत्कण जब तार में से गुजरते रहते हैं तो उस के चारों ओर एक तरह का चुम्बकीय क्षेत्र बना देते हैं। इस का अर्थ यह है कि किसी बेजानी हुई विधि से विद्युत्कणों की इस वेगवती गति की धारा से एक अद्भुत प्रकार का खिचाव चारों ओर फैल जाता है। इस खिचाव की तेजी ज्यों-ज्यों धारा के पास जाया जाय त्यों-त्यों बढ़ती जाती है। यह खिचाव चुम्बकीय हुआ करता है

अर्थात् यह वही खिचाव होता है जो किसी बलिष्ठ चुम्बक के चारों ओर लोहे के कणों के लिए साधारणतया देखा जाता है। चुम्बक के क्षेत्र में यदि कोई तांबे का तार लाया जाय तो उस के भीतर विद्युत्कणों की धारा चलने लगेगी। इसी का उलटा किया जाय अर्थात् जिन तारों में से विद्युत्कणों की धारा बह रही हो उन की कुंडली के भीतर से यदि कोई लोहे का छड़ निकला हुआ स्थिर रखा जाय तो वह चुम्बक बन जाता है और एक चाकू को भी पकड़ सकता है। परन्तु ज्यों ही धारा तोड़ दी जायगी त्यों ही चाकू छूट कर गिर जायगा।
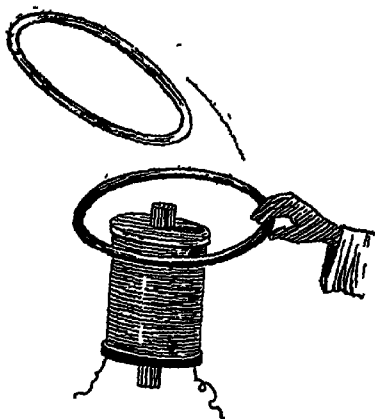
चित्र १४६—उलटी-सीधी धारा बहानेवाले विद्युच्चुम्बकीय यंत्र के ध्रुव पर जब एक तांबे का छल्ला ले जाते हैं तो वह जोर से फेंका जाता है और छूटते ही उछलकर ऊपर को चला आता है।

यदि ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि किसी बड़े चुम्बक के चारों ओर बिजली के तारों की कुंडली बड़े वेग से घुमायी जाय तो विद्युत्कणों के भारी समूह उन में से चमक-चमक कर निकलने लगेंगे। यही कुंडली चुम्बकीय क्षेत्र को छोड़ने लगती है तो फिर उसी तरह चमक के साथ विद्युत्कणों का समूह निकलने लगता है। परंतु धारा की दिशा बदल जाती है। यह कुंडली जब इसी प्रकार बहुत तेज घूमती रहती है तो दोनों दिशाओं में बिजली की बड़ी मजबूत धारा बहने लगती है। इसी को हम उलटी-सीधी धारा कहते हैं। ऐसे भी यंत्र हैं कि जहाँ जरूरत पड़े वहाँ इन उलटी-सीधी धाराओं को बदलकर एक ही दिशा में बहा सकते हैं। इन यंत्रों को "परिवर्त्तक" कहते हैं। डाइनमो यंत्र ऐसी ही उलटी-सीधी धारा उत्पन्न करने के लिए यंत्र है जिस में हम बहुत बड़े पैमाने पर काम कर सकते हैं। इस में यांत्रिक शक्ति बिजली की शक्ति में परिणत हो जाती है। प्रो० साडी का कहना है

कि डाइनमो को एक तरह का विद्युत्कण निकालने का पप समझना चाहिए। इस मे एक बहुत बड़े चुम्बक के दोनो ध्रुवों के बीच मे उस के चारों ओर तावे के तारो की एक बड़ी घनी कुडली बड़े ज़ोरो से चक्कर लगाती रहती है। डाइनमो के निर्माण का यही तत्व है। बहुत भारी धाराओ के लिये डाइनमो काम मे आता है। इन्ही धाराओं के बल से कारखानो मे दानवाकार यत्र चलते हैं।

कभी-कभी बहुत से विद्युत्कण एक पिंड से फूटकर या टूटकर बड़े वेग से दूसरे पिड को जाते दिखाई देते हैं। यही विजली की चिनगारिया हैं जो यत्रो मे या कभी-कभी ट्राम-गाड़ियो मे देख पड़ती हैं। इसी प्रकार का सब से उत्तम दृश्य आकाश मे बिजली की चमक है और सूर्य की दुर्दम्य ज्योति से और ताप के भट्ठे से तो विद्युत्कणो की बाढ सारे आकाश मडल मे फैलती रहती है। वायु-मडल के बीच में कुछ रुकावट पड़ जाती है। ऊपरी भाग मे सौर विद्युत्कणो की धारा से धनीकृत और ऋणीकृत परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं। समुद्र के ऊपरी तल से निरतर उठती हुई भाफ अधिकाश धनीकृत परमाणुओ के चारो ओर घिर आती है और वर्षा के रूप मे उन्हें धरती पर ले आती है। इस तरह वायु की ऊपरी तह धन विद्युत् से कुछ हीन हो जाती है अथवा उसका ऋणीकरण हो जाता है। जब बादल घिरे होते हैं तो दोनों तरह के बादलो मे खिंचाव सा रहता है। कुछ ऋणीकृत होते हैं और कुछ धनीकृत। खिंचाव बढ़ते-बढते विद्युत्कण बड़े वेग से एक बादल से दूसरे की ओर अथवा धरती की ही ओर आते हैं। यह भी वही बिजली की चिनगारी है जो भयानक पैमाने पर प्रकट होती है।

६—चुम्बकत्व

चुबक पत्थर का एक टुकड़ा लोहे कणो को अपनी ओर खींच लेता है। इसी गुण को हम चुम्बकत्व कहते हैं। परंतु हम पिछले प्रकरण मे यह समझ चुके हैं कि जहा कहीं बिजली की धारा चलती है। अपने चारो ओर चुम्बक की शक्ति का क्षेत्र बना लेती है इसे विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र कहते हैं। जिस शक्ति से यह प्रभाव उत्पन्न होता है उसे विद्युत्-चुम्बकीय शक्ति कहते हैं। यदि हम एक पुट्ठे के टुकड़े के भीतर से आरपार ऊपर नीचे एक बिजली के तार को प्रवेश करावे और उस गत्ते पर लोहे का चूर्ण बिखेर दे तो देखेंगे कि लोहचूर्ण गत्ते पर गोलाकार रूप मे हो जाता है। जान पड़ता है कि बिजली की धारा से उत्तेजित चुम्बक शक्ति तार के चारो ओर गोलाकार रहती है। एक अकेला विद्युत्कण भी चलते हुए अपने मार्ग में इस तरह का चुम्बक-मडल बनाता चलता है। जहा कहीं विद्युत्कणो की गति होगी वहीं यह चुम्बक-मडल भी होगा। जब तक यह रहता है तब तक विद्युत्कण की गति भी रहती है। इस सबध मे अब ऐसा समझा जाता है कि विद्युत्कणो की चक्करदार गतियो से ही चुम्बकत्व प्रकट होता है। इतनी बात तो प्रयोगों से मालूम है कि विद्युत्धारा जिस धरातल पर चलती रहती है उस पर के लम्ब की दिशा मे ही चुंबकत्व का धरातल होता है।

यहाँ इस बात पर विचार करना कठिन है कि चुम्बकत्व किस तरह से प्रकट होता है या यह कि लोहे पर ही क्यों उस का ऐसा प्रभाव पड़ता है। परन्तु इतनी बात विज्ञान से अवश्य ही स्थापित है कि धरती का यह पिंड एक बहुत भारी चुम्बक है जिस के कारण दिशा-सूचक यंत्र काम करता है। हम यह अन्यत्र लिखा चुके हैं कि पृथ्वी का अन्तरतम भाग अनेक

चित्र १४७—शून्य नलिका में विद्युत् का विसर्जन

एक नलिका हवा से प्रायः शून्य करके बन्द कर दी जाती है। उस के दोनों सिरों पर से धन और ऋण तार निकले हुए हैं। धारा से जोड़ देने पर नली से शून्य देश में बिजली का विसर्जन होता है। अँधेरे में एक सिरे से दूसरे सिरे तक सीधी प्रकाश की दौड़ती स्फुलिंगमाला दिखाई देती है, जैसा कि ऊपरवाली नलिका में चित्रित है। परन्तु ज्यों ही नलिका को चुम्बकीय क्षेत्र के अन्तर्गत कर दिया जाता है, स्फुलिंग माला, नीचेवाली नली में जैसा दिखाया गया है, झुक जाती है। रेडियम की किरणें भी इसी तरह झुक जाती हैं। अतः दोनों में एक ही तरह के विद्युत्कणों की धारा निकलती है।

वैज्ञानिकों के मत से लोहा है। और यह बात भी अच्छी तरह मालूम है कि जब सूर्य में काले धब्बे दीखते हैं तब पृथ्वी के चुम्बकत्व पर बड़ा उग्र प्रभाव पड़ता है और यह बात अभी हाल में मालूम की गयी है कि यह धब्बे विद्युत्कणों के विशालभ्रमरावर्त्त हैं और इन का चुम्बकत्व पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। इन सब बातों में परस्पर क्या और कितना सबंध है और यह क्रियाएं किस प्रकार होती हैं इस पर अभी खोज बराबर जारी है।

७—आकाश-तत्व और लहरें

प्रकाश के संबंध में एक विचार यह है कि आकाशतत्व के भीतर लहरों के रूप में प्रकाश आता है अथवा यह कि आकाशतत्त्व की लहरें जो विविध बड़ाई-छोटाई की

होती हैं जब आँख के परदे पर लगती हैं तब हम प्रकाश का अनुभव करते हैं। वैज्ञानिक आकाश-तत्त्व की कल्पना मात्र करता है और वह इसलिये करता है कि प्रकाश के सबध के नियमो की उस से व्याख्या हो जाती है। वह आकाश तत्त्व को अखड मानता है। उस के परमाणु नहीं होते और वह ओतप्रोत भाव से सर्वत्र व्यापक है। इसी तरह की कल्पना आकाश के सबध मे वैशेषिक शास्त्र की भी है। हम इस बात को जानते हैं कि अनन्त दूरी से भी प्रकाश हमारे पास पहुँचता है और पहुँचने मे समय सभी लेता है। वास्तविक सूर्योदय हो जाने के आठ मिनिट बाद हमे सूर्य का बिम्ब देख पड़ता है क्योंकि सूर्य की दूरी हम से सवा नौ करोड़ मील के लगभग है। उसे आठ
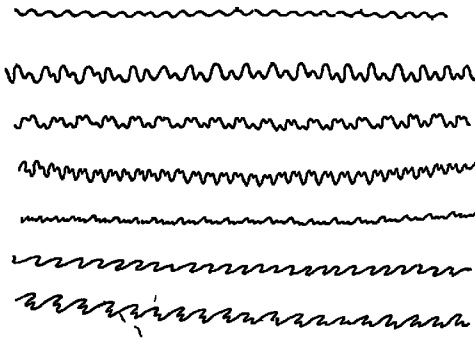
चित्र १४८—लहरों के विविध रूप

मिनिट मे तय करके प्रकाश हमारे पास आता है। यदि हम व्योम-मडल को शून्य कहें और आकाशतत्त्व से व्याप्त न मानें तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि तेजस की शक्ति शून्य मे से होकर हमारे तक पहुँचती है। इस तरह हम को उस की निराधार गति माननी पडेगी। साथ ही हमें यह मालूम है कि प्रकाश लहरो के रूप मे आता है। ध्वनि भी लहरो के रूप मे आती है, परतु हवा की लहरों के विना वह हमारे कानों तक नहीं पहुँच सकती। शून्य काँच के पात्र मे बिजली द्वारा घटी बजायी जाय तो उस का सुनना असम्भव हो जाता है। परतु घटी को देखने मे हमें कोई कठिनाई नहीं पडती। इस से यह स्पष्ट है कि शून्य मे से आते हुए प्रकाश को हम अनुभव कर लेते हैं। ध्वनि को नहीं। वैज्ञानिक यह मानते हैं कि विश्व का सारा शून्य देश मात्र आकाशतत्त्व से भरा हुआ है जो केवल तेज ही नहीं बल्कि सब तरह की शक्ति का वाहक है। जिस चुम्बकत्व की शक्ति पर हम विचार कर आये हैं वह भी इसी आकाश तत्त्व के भीतर खिचाव वा उपद्रव रूप है। सूर्य मे जितनी शक्तियाँ गरमी रोशनी विद्युत्कण आदि रूपों मे हम पाते हैं उस का एक मात्र मध्यम यही आकाश

तत्त्व है, और शक्ति चाहे जिस रूप मे हमे मिले इसी तत्व के भीतर लहरों के रूप मे होकर प्रकट होती है। वैज्ञानिकों का एक दल सैकड़ो वर्षों से यह मानता आया है कि प्रकाश लहरो के रूप मे आता है और भिन्न-भिन्न रग की किरणों की लहरों की लम्बाई भी नापी गयी है। सब से लम्बी लहर गहरी लाल किरण की है जो इञ्च का २ लाख ५० हजारवा अश लबी रहती है। गहरी बैंगनी किरणों की लहरे प्रत्येक लम्बाई मे एक इञ्च का ६७ हजारवाँ अश होती हैं। परन्तु इस से कम और अधिक लम्बाई की लहरे होती हैं। जिन्हें हम देख नहीं सकते। कम लम्बाई की लहरो का पता फोटो से लगता है। सब से कम लम्बाई की लहरें जो अब तक मालूम हुई हैं एक्स किरणे हैं। ज्यादा लम्बाई की भी लहरो का पता लगाया गया है। लाल किरणों से ज्याद: लम्बाई की लहरे गरमी की होती हैं जो देख नहीं पडती। आँच भी आकाश-तत्त्व की एक प्रकार की लहर है। प्रकाश से कुछ बड़ी लहरो को हम गरमी के रूप में अनुभव करते है। परन्तु गरमी की लहरो से भी बहुत बड़ी लहरें हैं जो हमारी इन्द्रियों के अनुभव मे नही आ सकतीं। परन्तु यन्त्रो के द्वारा हमे उन का पता लगता है। ऐसी लहरे बेतार के समाचार मे और ध्वनि मे काम मे आती है। इन मे से अनेक इतनी लम्बी होती हैं कि उनकी लम्बाई मीलो मे बतायी जाती है। इन को विद्युत्-चुम्बकत्व लहरे कहते हैं। प्रकाश, ताप, आँच और विद्युत्-चुम्बक सभी एक ही प्रकार की वस्तुए हैं, केवल लहरों की लम्बाई मे अन्तर पड़ता है।

८—दृश्य और अदृश्य प्रकाश

यदि प्रकाश विद्युत्-चुम्बक ताप आदि सभी लहरे है, तो इन लहरो को उठानेवाला या आरम्भ करनेवाला कौन है? जिस किसी शक्ति से ऐसी अत्यन्त वेगवती और अद्भुत लहरें निरतर उठती रहती हैं वह सचमुच बडी भयानक और बहुत भारी शक्ति होगी, जिस मे बड़ा ही प्रचण्ड स्फुरण उठता रहता होगा। इस की व्याख्या करने के लिये फिर भी हम विद्युत्कणों पर ही आते हैं और उन्ही मे इन लहरो की व्याख्या पाते हैं।

ठडे लोहे के एक टुकड़े के भी कण बराबर वेग से स्फुरण कर रहे हैं। इन के हिलने से जो लहरे उठती हैं हमारी इन्द्रिया उन का अनुभव नहीं कर सकती। परन्तु वास्तविक बात यह है कि ठढा चीमटा भी चारों ओर लहरे फेक रहा है। यह बात इसी से समझ मे आ सकती है कि हम हर एक अणु और परमाणु को गतिशील समझ आये हैं। अब चीमटे को दहकते हुए कोयले मे थोड़ी देर तक रखते हैं तो क्या होता है? दहकते कोयले के कणो मे बड़े वेग की हलचल है। यही हलचल चीमटे के अणुओं मे भी अपनी शक्ति पहुचा देती है, उस मे भी हलचल पड़ जाती है। उससे जो लहरे उठती हैं उन का असर हमारे हाथ की नाड़ियो तक पहुँच जाता है और हम उन्ही लहरों से चीमटे मे गरमी का अनुभव करने लगते हैं। चीमटे को इतनी देरतक आँच मे रखते है कि लाल हो जाय। अब वही हलचल चीमटे मे इतनी बढी और उस के कण ऐसे प्रचड वेग से हिलने लगे कि उत्तरोत्तर छोटी-से-छोटी और तेज़-से-तेज़ लहरे उठाने लगे। लहरे इतनी छोटी और तेज

हो गयी कि आँखे अब देख सकती हैं। यह दृश्य प्रकाश हो गया। परन्तु फिर भी इस का प्रभाव फोटो के पट पर नहो पड़ता। अब आँच और तेज की गयी और चीमटे को उसी मे रहने दिया। अब और भी छोटी और ज्यादा तेज़ लहरे उठने लगीं जिस से सफेद रोशनी बन गयी। वास्तव मे हो यह रहा है कि अब विद्युत्कणो मे हलचल बढ गयी है और वह अपने घेरे मे एक सेकड मे खरबों और नीलो चक्कर लगा रहे हैं। आँच और भी बढाए तो नीले रग का प्रकाश निकलने लगता है। इस प्रकाश के साथ-साथ और भी छोटी लहरे उठने लगीं जो दिखाई नही पड़ती हैं। परन्तु फोटो के पट पर अपना प्रभाव डाल सकती हैं। इन के बाद और भी अधिक छोटी लहरे उठती हैं, जिन के अन्त मे एक्स किरणे है जो पत्थर और मास के परमाणुओ के अन्तराल से भी अपना मार्ग कर लेती हैं।

कोई ढाई सौ बरस पहले यह अन्दाजा किया गया था कि रोशनी ध्वनि की अपेक्षा छः लाख गुने अधिक वेग से चलती है। परतु अस्सी बरस हुए प्रकाश का वेग भी यत्र द्वारा नाप लिया गया। घुमानेवाले यत्र मे एक दातेदार पहिया इस तरह पर लगाया गया कि प्रकाश की एक किरण दो दातो के बीच मे से पैठ कर एक दर्पण पर पडे और दर्पण से प्रतिफलित होकर फिर उसी पहिये पर दातो के पास पड़े। पहिये से दर्पण की दूरी सचमुच बहुत ही थोड़ी है और इतनी दूर चलने मे प्रकाश को सचमुच एक सेकड का अत्यन्त सूक्ष्म अश लगेगा। तो भी यत्र द्वारा यह सम्भव है कि हम पहिये को इतनी तेजी से घुमावे कि जब रोशनी दर्पण से लौटे तब बादवाले दाते पर पड़कर रुक कर जाय। वेग और भी बढा कर ऐसा कर सकते हैं कि जिस राह से किरण आकर दर्पण पर पड़ी उस के प्रतिफलित होने पर बादवाली राह से निकले। पहिये का वेग मालूम है। इस लिये किरण का भी वेग हम मालूम कर सकते हैं। यदि छोटी-से-छोटी भी लहर १।६७ हजार इच लम्बी है और रोशनी एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकड चलती है तो सीधा हिसाब है कि लगभग ८ नील लहरे प्रतिसेकड हमारी आँख मे आती रहती हैं, तब हम नीले रग की रोशनी देखते हैं।

जब विद्युत्कण अपने चारो ओर छोटी-छोटी लहरे फेकते फेकते ३५,००० इन्च लम्बाई की फेकने लगते हैं तब वह लहरे बहुत धुमली-सी दिखाई देने लगती हैं। लहरों की छोटाई और तेजी ज्यो-ज्यो बढती जाती है त्यो-त्यो हमे क्रम से लाल नारगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंगनी रग का प्रकाश दिखाई देने लगता है। हर रंग का अर्थ है लहर की भिन्न लम्बाई, परतु जब सब मिल जाते हैं तब सफेद रोशनी मालूम होने लगती है। सूरज की सफेद रोशनी जब काच मे प्रवेश करती है तो लहरो का वेग कुछ घट जाता है और अगर तिपहले काच के भीतर पैठे तो अलग-अलग लम्बाई की किरणे उसमे से अलग-अलग राह से निकलने लगती हैं और इन्द्र-धनुष के विविध रगो का फैलाव देखने मे आता है। तिपहले बिल्लौर मे यह तमाशा हर आदमी देख सकता है या सातों रगों को ठीक दिये हुए चित्र के अनुसार बडाई छोटाई का लिहाज करके एक गोले गत्ते पर चढाकर एक पहिये मे लगा दे और बडे वेग से चक्कर दे तो सब मिलकर एक ही सफेद रग होगा। यदि इस चक्कर मे से कोई एक रग छिपा दिया जाय तो छहों का मिला-जुला कोई रग तेज घुमाने से दिखाई पडेगा। अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं कि जो आख के सामने रखकर सफेद रग

को देखा जाय तो सभी किरणें उस के भीतर से नहीं गुजरेंगी कुछ रुक जायँगी। जिस में से छः तरह की किरणे रुक जायँगी और केवल उस गुजरनेवाले रग का दिखाई पड़ेगा। हमे किसी काच मे हरा रग इसलिये दीखता है कि हम यदि उसे आँख के सामने रखते है तो सफेद रोशनी के और बाकी रग आने नहीं पाते, रुक जाते हैं।

तिपहले काच मे जैसे हम रोशनी के किरणों के टूटकर अलग-अलग रगों मे बँटते हुए देखते हैं उसी तरह प्रकृति मे बराबर इस तरह पर प्रकाश का विश्लेषण होता रहता है। इन्द्र धनुष तभी दिखाई पड़ता है जब कि वायु के भीतर की घनी नमी तिपहले काच का काम करने लगती है। सीप का एक टुकड़ा या गिरा हुआ तेल या पानी पर फैली हुई तेल की तह यही काम करती है। वायुमडल इसी तरह प्रकाश के लहरों को दिन भर अलगाया करता है। रग-बिरग के बादल यही तमाशा दिखाते हैं। धरती पर की फूल पत्तियो और सभी वस्तुओं मे यह क्रिया देख पड़ती है। हमारे सर पर का नीला आसमान क्या प्रकट करता है? ऊपरी वायुमडल के बहुत सूक्ष्म कण बहुत नन्हे-नन्हे नीले रग की लहरो को पकड़कर बिखेरा देते हैं। आकाश की नीलिमा हम सहज मे जब चाहे तब प्रयोगशाला में एक परख-नली के भीतर देख सकते हैं। जहाँ कहीं हम को सफेदी दिखाई पड़ती है हमे समझना चाहिये कि यह पदार्थ जो सफेद दीखता है सभी किरणों को फेक देता है या लौटा देता है। जो चीज काली दीखती है वह सभी किरणों को सोख ले रही है। प्रत्येक पदार्थ मे विद्युत्कण स्फुरण कर रहे हैं और उन के पास नीली लहरो की बाढ आती रहती है। अपनी स्फुरण की दशा के अनुकूल वह लम्बी मझोली या छोटी लहरों को या उन के मिले-जुले अशो को सोख लेते हैं। जिन को वह छोड़ देते हैं उन का मिला-जुला या असली रग हमें देख पड़ता है। कभी-कभी सूरज के छिप जाने पर भी या धूप के चले जाने पर भी वह प्रकाश की लहरें देते रहते हैं। यही काला प्रकाश या अदृश्य प्रकाश है, इस से हम फोटो ले सकते हैं। काच की तरह कई पदार्थ ऐसे भी हैं जिन का स्फुरण बिल्कुल प्रकाश की लहरों के ही वेग से होता है। इसलिये उन के भीतर से यह लहरे गुजर जाती हैं।

ऐसी भी वस्तुएँ हैं जो विचित्र रीति से अपना ही प्रकाश देती हैं, अँधेरे मे चमकती है। इन की ज्योति मे आँच नहीं होती। यह विज्ञान का एक बहुत बड़ा रहस्य है कि ठढी ज्योति किस तरह निकाली जाय। रोशनी करने मे व्यर्थ ही बहुत-सी शक्ति आँच और अदृश्य प्रकाश उपजाने मे लग जाती है, जिन की हमें जरूरत नहीं होती। यह भेद जुगनू से खुल सकता तो कैसा अच्छा होता! स्फुर यह काम दे सकता है परतु उस मे भयानक दुर्गंध है। हम बडा खर्च करके रात को रोशनी करते हैं परतु वह अच्छे रग नहो देती जो हमें सूरज से मिलते हैं। इस तरह रात को रगीन कपड़े खरीदने मे हम धोखा खाते हैं।

बैगनी रोशनी से भी छोटी लहरोंवाली तेज अदृश्य किरणें होती हैं जो फोटोवालो के बड़े काम की होती हैं। यह या नीली बैगनी आदि किरणे लाल या नारगी परदे से गुजर नहीं सकती। इसलिये फोटोलेनेवाला ऐसे परदों से काम लेता है। प्रकाश की यही लहरे हरियाली के कणों को यह शक्ति देती हैं कि वह वनस्पति की रचना कर सके और इसलिये सभी पेड़ों की गति ऊपर की ओर होती है और अपने पत्ते वह पखे की तरह इसलिये फैलाये रहते

हैं कि नीले आकाश से जितना अधिक हो सके इन किरणों को वह अपने पत्तों की हथेलियों में रोप ले। कोयले की खानों में इसी विधि से प्राचीन युगों में बटोरी हुई शक्ति गड़ी हुई है जिसे आज हम खोद-खोद कर निकालते हैं और कारून के खजाने की रत्नराशि को बेपरवाही से खर्च कर रहे हैं।
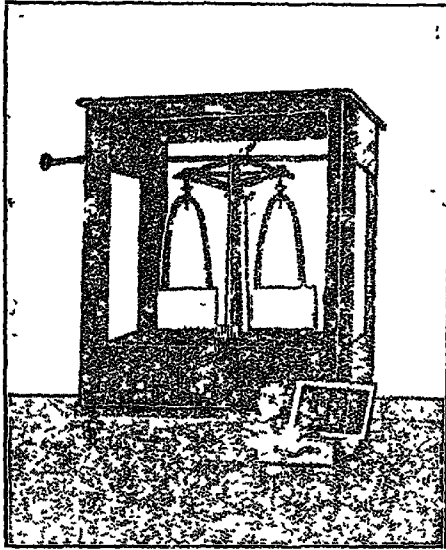
चित्र १४४—रासायनिक तुला के दोनों पलड़ों पर बराबर कटा सफेद कागज रखा हुआ है। दोनों तौल में बराबर हैं। कांटा ठीक शून्य पर है।

प्रकाशक की अनुमति से] [साइंटिफिक आइडियाज आफ टुडे से

इन लहरियों की माला के अन्तिम सिरे पर एक्स किरणें आती हैं। इन की लम्बाई भी नापी गयी है, और एक सहस्राश-मिति का करोड़वां भाग अथवा एक इञ्च का लगभग पचीस करोड़वां भाग पायी गयी है।

कोई दस बरस हुए सूर्यग्रहण के समय यह बात भी मालूम की गयी है कि गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव प्रकाश की किरण पर भी पड़ता है और एक तारे से आती हुई किरण जब

सूर्य के पिंड के पास से होकर गुजरती है तब सूर्य की ओर अपनी सीधी राह छोड़ कर झुक जाती है। प्रो० एडिंगटन कहते हैं कि रोशनी भी तौली जा सकती है और उन का अन्दाजा है कि धरती पर सूर्य से प्रतिवर्ष ४३६० मन के लगभग रोशनी आया करती है।

९—शक्ति के रूप

जैसे एक कण को उत्पन्न करने या नष्ट करने की शक्ति मनुष्य मे नही है, वैसे ही शक्ति की एक छोटी-से-छोटी मात्रा भी न वह उपजा सकता है और न नष्ट कर सकता है।
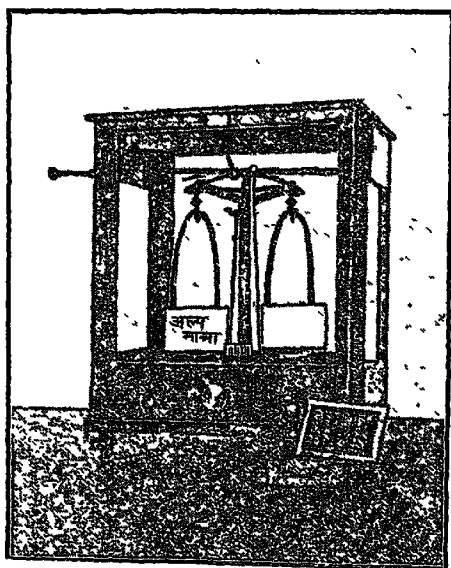
चित्र १५०—बायें पलड़े के सफेद कागज पर पेंसिल से "अल्पमात्रा" लिखकर रखा गया और फिर डांडी उठायी गयी तो कांटा शून्य से हटकर दाहनी ओर चला गया। यह तुला इतनी अल्पमात्रा को भी तोल सकती है। फिर भी आंच और रोशनी जैसी अति सूक्ष्म वस्तुओं को नहीं तौल सकती। इसी लिए इन्हें लोग वस्तु नहीं समझते थे।
प्रकाशक की अनुमति से] [सायंटिफ़िक ऐडियाज़ आफ़ टुडे से

जैसे हम यह नहीं जानते कि बिजली के धनाणु और ऋणाणु क्या हैं वैसे ही हमें यह भी पता नहीं है कि वास्तव में शक्ति या सामर्थ्य क्या है। उस के भिन्न-भिन्न रूप तो मनुष्य मुद्दत

से जानता है। किसी गिरती हुई वस्तु में कितनी शक्ति है यह तो हर पनचक्कीवाला जानता है। ईंधन जलानेवाले गर्मी की शक्ति जानते हैं। पिछले सवा सौ वर्षों में वैज्ञानिकों ने यह अच्छी तरह निश्चय कर लिया कि एक ही शक्ति के अनेक रूप हैं, एक रूप दूसरे रूप में बदल सकता है और शक्ति की मात्रा विश्व में स्थायी है और शाश्वत है।

शक्ति के सभी रूपों पर विचार कर उस के दो मुख्य रूप माने गये हैं। लुढकता हुआ पत्थर, बहता हुआ पानी, गिरता हुआ कोई पिंड, अथवा, गति की दशा में कोई भी पदार्थ जो शक्ति रखता है, उस शक्ति को "गति-जनित सामर्थ्य" कहा जाता है। यदि कोई पत्थर का भारी टुकड़ा किसी चट्टान के सिरे पर पड़ा हुआ है तो वह गति की दशा में नहीं है परन्तु उस की अवस्था ऐसी है कि वह गति-सामर्थ्य अपने में छिपा हुआ रखता है। इस तरह के सामर्थ्य को "अवस्था-जनित सामर्थ्य" कहेंगे। इन्हीं दोनों रूपों में हम सामर्थ्य के और सब रूपों को बांट सकते हैं। जो कोयला जल नहीं रहा है उस में अवस्था-जनित-सामर्थ्य भरा पड़ा है। जो जल रहा है उस के अणु परमाणु और विद्युत्कण बड़े वेग से गति कर रहे हैं। इसलिये जलते हुए कोयले में गति-जनित सामर्थ्य है। यह दोनों तो शुद्ध वैज्ञानिक विभाग हुए। परन्तु साधारणतया हम देखते क्या हैं? हम ताप को कहीं गर्मी के रूप में देखते हैं कहीं खिंचाव के, कहीं रोशनी के, कहीं यन्त्रों के, और कहीं बिजली के रूप में देखते हैं। यह भी हम देखते हैं कि एक रूप की ताकत दूसरे रूप में बदली जा सकती है। जैसे गिरते हुए पानी के बल से चक्की भी चलती है और डायनमो भी। पानी में सामर्थ्य है धरती के खिंचाव से। इस खिंचाव को हम पनचक्की में यन्त्रबल बना देते हैं। और डायनमो में उसे बिजली का रूप देते हैं। बिजली से गरमी भी पैदा करते हैं और रोशनी भी और यन्त्र भी चलाते हैं, तार और टेलीफोन से ध्वनि भी पैदा करते हैं। इस तरह गुरुत्वाकर्षण के बल को भिन्न-भिन्न रूपों में हम काम में लाते हैं। एक रूप से दूसरे रूप में ताकत या सामर्थ्य का बदल जाना प्रकट ही है। परन्तु सब से अधिक महत्व की बात यह है कि सब तरह का सामर्थ्य गरमी का रूप धारण करने के लिए प्रवृत्त रहता है। गिरते हुए पत्थर से गरमी पैदा होती है। झरने का पानी ऊपर की अपेक्षा नीचे अधिक गरम होता है क्योंकि जल के कण धरती से टकरा-कर गर्मी पैदा करते हैं। अधिकांश रासायनिक क्रियाएं गरमी पैदा करती हैं। तुलसीदास जी ने लिखा है।

एक दारुगत देखिय एकू।
पावक सम युग ब्रह्म विवेकू।

इस से मालूम होता है कि भारत के लोगों को यह बहुत काल से मालूम है कि लकडी में गरमी या आग मौजूद है परन्तु छिपी हुई या सोयी हुई है। लकड़ी जलती है तब वह प्रकट हो जाती या निकल पडती है। रश्मिम् या किसी और रश्मिशक्तिक पदार्थ के परमाणु टूटती हुई अवस्था में गरमी पैदा करते हैं। हर घंटे में रश्मिम् इतनी आंच निकालता है कि उस के ही आयतन के बराबर जल बरफ की ठंडक की अवस्था में खौलाया जा सकता है।

यह गरमी क्या है ? हम कह चुके हैं कि सभी वस्तुओं के सब से छोटे टुकड़े जिस में उस वस्तु के सभी गुण मौजूद हों अणु कहलाते हैं और यह अणु बड़े वेग से बराबर हिलते रहते हैं। इनके हिलते रहने से वस्तु में गरमी की एक अवस्था बनी रहती है। परन्तु किसी कारण से भी हो यह जब ज्यादा तेजी के साथ हिलने लगते हैं तब गरमी बढ जाती है और हम कहते है कि यह चीज गरम हो गयी। लकड़ी या कोयला जब जलता है तब अणुओं में भयानक गति होती रहती है और अणु टूट-टूटकर परमाणु रूप में अलग होते रहते हैं और परमाणु टूट-टूटकर विद्युत्कण निकालते रहते हैं। जो गति केवल अणुओं में बढी थी वह परमाणुओं में हलचल पैदा करने लगी और परमाणुओं की बढी हुई हलचल विद्युत्कणों तक पहुँची। इन तीनों हलचलों की उत्तरोत्तर बढती हुई सूक्ष्मता के हिसाब से आकाश तत्त्व में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म लहरे उठने लगीं। बडी लहरें हमारी त्वचा की नाड़ियों में आँच का अनुभव कराने लगीं और छोटी लहरें प्रकाश की किरणों के रूप में हमारी आँख की नाड़ियों को रोशनी दिखाने लगीं। इस तरह यह बात बहुत साफ हो जाती है कि हम को सामर्थ्य का अनुभव चाहे जिस तरह पर हो वह अन्त में गति ही है, जिस से आकाश तत्त्व में तरह-तरह की लहरें पैदा होती हैं। आकाश तत्त्व बहुत सूक्ष्म है, इसलिये सूक्ष्म-से-सूक्ष्म लहरें उठा सकता है। जो लहरें वायु में पैदा होती हैं वह बड़ी स्थूल होती हैं। उन में से कुछ का प्रभाव हमारे कानों पर पड़ता है, तब हम शब्द सुनते हैं। यह शब्द भी वायु में उस के अणुओं के भीतर हलचल पैदा होने से प्रकट होता है, चाहे वह हलचल दो जड़ वस्तुओं को टकराकर पैदा की जाय और चाहे किसी चेतनप्राणी के वाग्यन्त्र द्वारा पैदा की जाय। इस तरह शब्द उत्पन्न करनेवाली जो हलचल पैदा की जाती है वह बडी ही स्थूल हलचल है। अणुओं की हलचल से गरमी पैदा होती है तब नापी जा सकती है, जब यह हलचल अधिक पैदा की जाय और भरसक ध्वनि में बदलने न दी जाय। जूल ने पानी को तेजी से मथकर यह नाप लिया कि कितने यान्त्रिक बल से गरमी की कितनी मात्रा पैदा की जा सकती है। इस प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य अपना सामर्थ्य नपे हुए यान्त्रिक बल में बदल देता है। उस से जल में जो हलचल पैदा होती है और अणुओं में अधिक वेग उत्पन्न करती है तो वह यान्त्रिक बल गरमी में बदल जाता है, गरमी से बढकर वही रोशनी में बदल जाता है। परंतु परिवर्त्तन चाहे कितना ही हो सामर्थ्य की पूर्ण मात्रा में कमी-बेशी नहीं आती। वह ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

पत्थर का कोयला काम में लानेवाली पच्छाहीं उद्योगी दुनिया आजकल इस बड़ी चिन्ता में है कि जब कोयलों की खानें खाली हो जायँगी और करोड़ों बरस का सूर्य से लेकर इकट्ठा किया हुआ ताकत का खजाना खाली हो जायगा तो कल-कारखानों के लिये ताकत कहाँ से आवेगी ? इस समस्या को सुलझाने के लिए बहुत से उपाय सोचे जा रहे हैं। गिरता हुआ जल, बहता हुआ पानी, ज्वार-भाटा, सूरज की रोशनी, भूगर्भ की आँच इत्यादि सामर्थ्य के अनेक भंडारों पर विचार किया गया है। परन्तु कोयले के मुकाबिले में इन में से हर एक भंडार बहुत छोटा जंचता है। परन्तु परमाणु के भीतर जितनी ताक़त बन्द है, वह बेहद है। परमाणु सामर्थ्य का अटूट भंडार है। फिरभी अभी तक वैज्ञानिक इस भंडार

में हाथ लगाने का साधन नही पा सका है। इस विपुल धन को वह दूर से ललचाई निगाहों से देख रहा है, परन्तु कोई राह नही पाता जिस से वह बिना जोखिम के उसे निकाले और अपने काबू में कर के उसे काम मे लावे।

हम यह कह चुके है कि सामर्थ्य या ताकत के रूप तो बदलते रहते हैं परन्तु ताकत नष्ट नही होती। फिर वह हो क्या जाती है? वह खर्च हो जाती है या अपने अधिकार से बाहर निकल जाती है और फिर उसे हम काम मे नही ला सकते। वह कही दूर नहीं चली जाती। यह सारा जगत सामर्थ्य का विशाल महासागर है जिस मे से अत्यंत सूक्ष्म अश हम लोगों को मिल सकता है और हम जब उस से काम ले लेते है तब वह उसी अनत महासागर मे विलीन हो जाता है और फिर हमे नही मिल सकता। हम लोहे को तपाकर सफेद कर दे और फिर उसे ज्यो-का-त्यो छोड़ दे तो धीरे-धीरे उस की आच निकलती जायगी और अन्त मे वह उसी तापक्रम को पहुंच जायगा जिस पर उस के चारों ओर की चीजे हैं। यह गरमी, यह ताकत भी ताकत के उसी अनत महासागर मे मिल गयी, और वह हमारे लिए अप्राप्य हो गयी। परन्तु इन सब बातो से यह भी स्पष्ट है कि सामर्थ्य सब जगह बराबर नहीं है, बल्कि जैसे पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता रहता है उसी तरह सामर्थ्य भी बहता रहता है। यदि सामर्थ्य की मात्रा इस विश्व मे सभी वस्तुओ में बराबर होती अथवा सब वस्तुओं मे गरमी समान होती, तापक्रम एक-सा होता, तो हम गरमी का कुछ भी अनुभव न करते क्योंकि गरमी तो आखिर एक पदार्थ के ठण्डे और दूसरे के गरम होने से ही मालूम होती है।

गरमी बराबर वस्तुओं मे से निकल-निकलकर विश्व के अनन्त देश में समाती जाती है और अप्राप्य होती जाती है। इस तरह हो सकता है कि किसी सुदूर भविष्य मे हमारे जगत का तापक्रम समान हो जाय। इस का यह अर्थ न होगा कि वस्तुओ मे सामर्थ्य रह ही न जायगा। जो सामर्थ्य वस्तुओ को धारण किये हुए है वह तो बना रहेगा और साथ ही जितना ताप सब वस्तुओ ने सोखकर अपने में मिला लिया है वह भी कही गया नहीं है। परन्तु सब का तापक्रम बराबर होने से अब गरमीवाला सामर्थ्य अप्राप्य है। इस का यह अर्थ है कि सारे ससार मे शक्ति के भरे रहते भी ससार का सारा काम बन्द हो जायगा। इसी अवस्था को हमारे हिन्दू शास्त्रों ने प्रलय-काल की "साम्यावस्था" कही है। प्रकृति के गुणों का वैषम्य ही तो सर्ग की रक्षा करता रहता है। दुनिया का काम चलता रहता है। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया हैं कि ठढक की एक ऐसी दशा हो सकती है जिस मे अणुओं की गति भी बिलकुल रुक जाय। यह ठढक गलते हुए बरफ से २७३ दर्जा नीचे होती है। इस से अधिक ठण्डक हो नहीं सकती। वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई दिन ऐसा आवेगा जब कि सूर्य का ज्वलन्त पिंड भी ठण्डा होकर गलते हुए बरफ से २७३ अश नीचे पहुँच जायगा।

परन्तु कोई नही जानता कि आगे किसी प्रकार से परमाणुओं मे छिपी हुई शक्ति काम में लायी जा सके, अथवा जो सामर्थ्य अप्राप्य हो गया हो उसे किसी विधि से प्राप्त किया जा सके, और इस तरह ससार को परम शून्य ताप तक पहुँचने और नष्ट हो जाने से बचाया जा सके।

बीसवां अध्याय

सापेक्षवाद द्वारा विचार-क्रान्ति

१—गुरुत्वाकर्षण

जो लोग समुद्र के किनारे रहते हैं वह ज्वार-भाटे का तमाशा अकसर देखा करते हैं। यह बड़े अचरज की बातें मालूम होती हैं कि चन्द्रमा जो हम से २ लाख ३८ हजार मील दूर है और सूरज जो ६ करोड़ मील से भी ज्यादा दूर है हमारी धरती पर ऐसा खिचाव पैदा करे कि समुद्र में लहरे उठने लगे और धरती दोनों ध्रुवों पर चिपटी हो जाय और बीच में उस की तोंद निकलती आवे। परन्तु यह बात आज विज्ञान से सिद्ध मानी जाती है और पहले-पहल न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के साथ-साथ ज्वार-भाटा के विषय को भी प्रमाणित किया था।

हम धरती के उस भाग पर यदि विचार करे जिस पर प्रशात महासागर का विस्तार है और यह मान लें कि यही भाग चन्द्रमाके सम्मुख पड़ रहा है तो हम सहज मे समझ सकते हैं कि जल के ढीले और चचल कणों पर च द्रमा का खिचाव ऐसा पड़ सकता है कि जल को चबूतरों और टीलों की तरह ऊ चा उठा दे। खिचाव तो सारी धरती पर पड़ता है पर तु ठोस भाग पर खिचाव का वह प्रभाव नही पड सकता जो ढीले और स्वतत्र जल पर पड़ सकता है। वैज्ञानिको को तो यह भी अनुमान करने का हेतु है कि धरती के ठोस चिप्पड़ मे भी ज्वार-भाटा के तरह की एक गति होती है। परन्तु जल भी सर्वत्र फैला और मिला हुआ है। इस लिये प्रशान्त महासागर के दूसरी ओर इसी तरह का जल का टीला बन जायगा। और यदि पृथ्वी का सारा ऊपरी तल जल की तरह तरल होता तो पृथ्वी के दैनिक चक्कर के साथ-साथ जगदव्यापी जल के दोनों टीले या उभार चौबीस घटे मे जगत् का चक्कर लगाया करते। यह भी सहज मे सोचा जा सकता है कि इस प्रकार धरती के किसी भाग में भी समुद्र के जल का दो बार ऊँचे होना अथवा नित्य दो टीलों का उठना ज़रूरी है। ज्वार-भाटे के गुरुत्वाकर्षण वाले सिद्धान्त का यह मोटे-से-मोटा रूप है। परन्तु वास्तव मे जो बातें देखी जाती हैं वह बहुत जटिल हैं और यह समस्या इतनी सीधी नही है

जितनी यहाँ समझायी गयी है। समुद्रतट का रहनेवाला यह भी प्रायः जानता है कि ऊँची लहरें ठीक उसी समय नहीं उठतीं जिस समय चन्द्रमा मध्याकाश या याम्योत्तर रेखा से गुजरता है। उनके उठने का समय कई घंटे पहले या पीछे हुआ करता है। परन्तु ज्यौतिषी लोग हिसाब लगाकर बहुत पहले से ऊँची लहरों के उठने का ठीक-ठीक समय बता देते हैं। यद्यपि यहाँ वह हिसाब तो नहीं दिया जा सकता और पूरे सिद्धान्त की व्याख्या नहीं की जा सकती तो भी इतना सहज में समझा जा सकता है कि अकेले चन्द्रमा ही नहीं खींच रहा है, सूर्य भी खींचता है। यद्यपि सूर्य का पिंड चन्द्रमा के पिंड से दो करोड़ साठ लाख गुना बड़ा है और इसलिये उसका खिंचाव अधिक होना चाहिये तथापि वह चन्द्रमा से ३८६ गुना अधिक दूरी पर है। इस दूरी के कारण उसका खिंचाव पिंड की इतनी बड़ाई होते हुए भी बहुत कम पड़ जाता है और चद्रमा का खिंचाव अधिक पास होने के कारण उसके दूने से अधिक मज़बूती का होता है। इसीलिए जब सूर्य और चद्रमा दोनों मिलकर खींचते हैं तो सबसे ऊँची लहरें उठती हैं। उसे पूर्ण ज्वार-भाटा कहते हैं। और जब एक दूसरे के विरुद्ध खींचते हैं तब छोटी लहरें उठती हैं और उसे "लघु ज्वार-भाटा" कहते हैं। इन के सिवाय कई और कारण भी हो जाते हैं जिनसे विविध स्थानों में विविध प्रकार की लहरें उठती हैं।

हम पहले खंड में यह दिखा चुके हैं कि धरती की रचना के आरम्भिक युग में यह पिंड अत्यन्त वेग से चक्कर लगा रहा था। चक्कर इतना तेज था कि दो तीन घंटे में दिन और रात दोनों हो जाते थे। उस समय इतने वेग से चलने के कारण इस पृथ्वी से अनेक टुकड़ों का टूटकर उड़ने लगना स्वाभाविक है। चद्रमा उन्हीं में से एक बहुत बड़ा टुकड़ा है जो पहले-पहल पृथ्वी से बिल्कुल रगड़ खाते हुए घूम रहा था। फिर धीरे-धीरे दूर होता गया और उसका चक्कर भी धीमा होता गया। धरती का भी चक्कर तब से बराबर धीमा होता आ रहा है। अब चौबीस घंटे का अहोरात्र है। चन्द्रमा का भी चक्कर ऐसा धीमा हो गया है कि वह प्रायः २९ दिनों में धरती की परिक्रमा पूरी करता है। पृथ्वी के धीमे होने में चन्द्रमा का खिंचाव और उससे उठनेवाली लहरें भी कारण हैं। यह लहरें पृथ्वी के चक्कर मारने में रुकावट डालती हैं और उसकी गति धीमी करती रहती हैं। पृथ्वी को चद्रमा और सूर्य के खिंचाव के विरुद्ध इन लहरों को घसीटते हुए चक्कर लगाना पड़ता है, जिससे चक्कर का वेग बराबर कुछ न कुछ घटता जाता है। दो चार हजार वर्ष में तो इसका पता नहीं लगता, परंतु करोड़ों बरसों में तो इस अत्यन्त थोड़े-थोड़े घटाव का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ जाता है।

२—सापेक्षवाद का [illegible]पात

गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत पाश्चात्य देशों में न्यूटन के समय से माना जाता है और भारतवर्ष में उस के समय के कई सौ वर्ष पूर्व से अब तक ज्यौतिष शास्त्र की जटिल से जटिल गुत्थियों को इसी सिद्धांत से सुलझाया गया है। परंतु जर्मनी के प्रसिद्ध गणिताचार्य आलबर्ट ऐंस्टैन ने अपने नये सिद्धान्तों से विज्ञान का एक दम कायापलट कर दिया है। उनकी यह धारणा है कि गुरुत्वाकर्षण कोई शक्ति या बल या सामर्थ्य नहीं है। यह केवल "देश का एक गुण

या स्वभाव है। उनकी यह भी धारणा है कि प्रकाश भारवान् वस्तु है और उसके परमाणु या कण विशेष मात्राओ मे नापे या तोले जा सकते है। और उनकी यह भी धारणा है कि प्रकाश की लहरो की गति मानने के लिये जो आकाशतत्त्व मान लिया गया है उसकी कोई आवश्यकता नही है। उन्होंने काल को एक चौथी दिशा या चौथा परिमाण माना है और गणित विज्ञान से अपनी इन धारणाओं के द्वारा प्रायः सभी नियमों को स्थापित कर दिया है और अनेक त्रुटियो को भी सुधार दिया है। यह सारे क्रान्तिकारी विचार ऐस्टैन के सापेक्ष वाद के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं और इनसे वैज्ञानिक ससार मे बड़ा उथल-पथल मच गया है।

एक सफेद कागज़ के तख्ते पर एक फुट लम्बी सीधी लकीर एक सेकड मे एक पेन्सिल से हम खीचते हैं। हम समझते है कि यह बिल्कुल सीधी है और हमने इसे एक सेकन्ड मे सादे कागज पर खीचा है। परन्तु मान लो कि सूर्य्य के पिड मे रहनेवाला कोई प्राणी हमारी इस क्रिया को देख सकता है। उसने क्या देखा ? कि हाथ मे पकडी हुई पेन्सिल केवल एक फुट नही दौड़ी बल्कि पृथ्वी के धुरे पर वाले चक्कर के साथ एक बहुत लम्बी परन्तु झुकी हुई लकीर बन गयी। परन्तु इतनी ही बात नहीं हुई। धरती जो सूरज के चारो ओर चक्कर लगा रही है उसके साथ-साथ पेन्सिल लिये हाथ घूम गया है। और जहाँ केवल एक फुट लम्बी सीधी लकीर हम देखते हैं वहाँ सूर्य के पिड वाले पुरुष के देखने मे अन्तरिक्ष देश मे पूरे चालीस मील वक्र या झुकी हुई लकीर दिखाई पड़ती है। अब जो कुछ उसने देखा वह ठीक है या जो हमने देखा वह ठीक है ? ठीक दोनो ही हैं। हम बिलकुल पास से देखते हैं और धरती के साथ दोनों तरह का चक्कर लगाते हुए देखते हैं। परतु सूर्य के पिडवाला दर्शक धरती के चक्करों के बाहर से और नौ करोड़ मील से भी अधिक दूरी से देखता है। दोनों अपने हिसाब से ठीक देखते हैं और दोनों की दृष्टि अपनी-अपनी परिस्थिति से सापेक्ष है। गति और दिशा सदा देखनेवाले की स्थिति पर निर्भर है। किसी वस्तु को हम चलती हुई इसी लिये समझते हैं कि वह किसी दूसरी वस्तु से अधिक पास या दूर हो जाती है। अगर दूसरी वस्तु न हो तो पहली वस्तु को चल या अचल कुछ भी नही कह सकते। इसलिये गति का विचार सापेक्ष है। कभी-कभी दो रेलगाड़ियाँ एक ही दिशा मे चलती हैं और हम तेज गाड़ी मे बैठे होते हैं तो देखते हैं कि दूसरी गाड़ी मन्द गति से पीछे की ओर जा रही है। परतु बाहरवाला यही देखता है कि एक गाड़ी दूसरे के साथ चली जा रही है। देखना दोनो का ठीक है और दोनों का विचार अपनी स्थिति से सापेक्ष है। इस तरह गति और दिशा देखनेवाले के लिये सापेक्ष है।

हम रेलगाड़ी मे बैठे हुए हैं और सारी खिड़कियाँ बन्द हैं। गाड़ी बहुत तेज चली जा रही है, मगर रास्ता सीधा है और वेग समान है, गाड़ी हिल नहीं रही है। ऐसी दशा मे यह पता नहीं लगता कि गाड़ी चल रही है या नही। जब तक गाड़ी से बाहर की किसी चीज से हम मिलान न करे तब तक न गति का पता लग सकता है, न दिशा का। खिड़की खोल दी और दूसरी गाड़ी गुजरती हुई देख पड़ती है तो यह कहना मुश्किल होता है कि वस्तुतः हमारी गाडी चल रही है या दूसरी अथवा कौन सी गाड़ी खड़ी है या कौन हमारे साथ या हमारे

विपरीत दिशा मे दौड़ रही है। सापेक्षवाद देखनेवाले की स्थिति के अनुसार विचार करनेकी विधि है। हमने यह छोटे-छोटे उदाहरण विचार के ढग को दिखाने के लिये दिये हैं। वस्तुतः ऐंस्टैन के विचार बड़े गम्भीर और दुरूह हैं।

भारतीय वेदान्तवालों के निकट देश, काल और वस्तु का विचार नया नहीं है। इन्हीं पर ऐंस्टेन ने भी विचार किया है। उनका कहना है कि देश की कल्पना भी सापेक्ष है। देश मे अगर कोई वस्तु न रह जाय तो नितान्त शून्य देश हमारे विचार मे आ नही सकता। देश मे वस्तुओ की कल्पना ही हमे देश का भान कराती है। अगर हमारा सारा दृश्य जगत् दबकर नारगी सा छोटा हो जाय तो उसके भीतर की सारी चीजे उसी अनुपात से छोटी हो जायँगी। फल यह होगा कि सूर्य्य की दूरी तब भी हम से ६॥ करोड़ मील ही रहेगी। इसलिये बड़ाई छोटाई या परिमाण भी सापेक्ष है।

अगर कभी कोई घटना न हो तो समय कहाँ रह जाय? उस का पता कैसे लगे? जिस तरह गज और हाथ से हम दूरी नापते हैं उसी तरह घड़ी की सुई की चाल से हम समय नापते हैं। वस्तुतः देश क्या है, कितना है, या काल क्या है, कितना है, इसका कोई पता हम को नहीं है। यह सोच लेना कि दो घटनाओ के बीच मे जितना समय या जितनी दूरी लगती है सदा बराबर ही होती है, भारी भूल है। हर देखनेवाला अपनी तरह पर विचार करता है। हर एक का अन्दाजा अलग अलग होता है। समय के लिये हम नपना क्या बनाते हैं? वह तो किसी वस्तु की एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक गति मात्र है चाहे वह वस्तु एक सूई हो या एक ग्रह।

परतु यह गति और देश तो सचमुच कोई वस्तु नहीं है बल्कि देखनेवाले की सापेक्ष दृष्टिमात्र है। यदि किसी अज्ञात शक्ति के सहारे इस दृश्य जगत् की सारी घटनाएँ एक हजार गुना अधिक धीमी हो जायँ तो क्या होगा? घड़िया जितनी देर मे पाच हजार मिनिट की दूरी तय करेगी या जितनी देर मे हम एक हजार बार सास लेते उतनी देर मे एक बार सास लेगे। दिन, रात, महीने, ऋतु पौधो का अकुर निकलना और बढना जीव-जन्तुओ की सारी क्रियाएँ, जीवन-मरण, सब कुछ एक हजार गुना ज्यादा सुस्त हो जायगा। हमारा जीवन एक हजार गुना अधिक लम्बा हो जायगा? यह सब होते हुए भी किसी को रत्ती भर यह पता न लगेगा कि समय मे कुछ भी हेर-फेर हुआ है।* ऐंस्टैन ने यह प्रमाणित कर दिया है कि देश और काल सब सापेक्ष है और असल मे यह गुणमात्र हैं जिन का हम वस्तुओ पर आरोप करते हैं। ऐंस्टैन यह भी कहता है कि किसी पदार्थ की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई, और देखने मे वह जितने देश मे अमाया हुआ है वह सब देश, उस पदार्थ के वेग पर निर्भर है। किसी वस्तु का रूप और उस की बड़ाई-छोटाई उस की गति की दिशा पर और वेग पर निर्भर हैं। यह सब बाते एक सापेक्षताके विचार पर निर्भर हैं।

---

* "मास दिवसकर दिवस भा मरमु न जानइ कोइ" रामचरितमानस के इस दोहे की गुत्थी ऐन्स्टैन के सापेक्षवाद से ख़ूब सुलझ सकती है।

३—गुरुत्वाकर्षण पर नया विचार

ऐंस्टैन का विचार है कि गुरुत्वाकर्षण कोई शक्ति या बल नही है। यह केवल देश का एक गुण है। इसे समझने के लिये कल्पना कीजिये कि आकाश के किसी सुदूर अन्तरिक्ष देश में किसी स्वतत्र तारे की तरह आप का कमरा अकेला निश्चल शून्य देशों में स्थिर है, उस के भीतर आप बैठे हुए हैं, तो वहाँ आपके शरीर में कोई भी भार नही हो सकता। आपके पाँव नीचे धरती को नही दबावेंगे और अगर आप एक गेंद छत की ओर फेंके तो वह छत में जाकर रुक जायगा और वहीं रह जायगा। एक भारी चीज कमानी-वाले काँटे पर लगा दीजिये तो भी कमानी नहीं खींचेगी क्योंकि खिंचने के लिये उस में बोझा नहीं है। अब यह मान लीजिए कि आप का कमरा उस देश में ठीक वैसे ही बढते हुए वेग से चलने लगा जिस बढते हुए वेग से धरती पर कोई चीज गिरती है। अब क्या होगा ? उस कमरे का फर्श आप के पाँवों को ऊपर की तरफ दबाने लगेगा और गेंद को पकड़ लेगा परन्तु यह पकड़ना ऐसा मालूम होगा कि गेंद गिर गया है। अब काँटा जो ऊपर की तरफ लगाया हुआ है ठीक ठीक तौलने लगेगा। कोई ऐसा प्रयोग नही है जिसे आप करके जान सकें कि आप का कमरा निरंतर बढते हुए वेग से दौड रहा है या स्थिर है और सब चीजों को अपनी ओर खींच रहा है। आपको तो यही ख्याल होगा कि कमरे में आकर्षण शक्ति है। परन्तु आप की यह भारी भूल हो सकती है। इसी तरह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्ध मे भी हमारी ऐसी ही भूल हो सकती है। इस प्रकार के सापेक्ष विचार से इस में तो सन्देह नहीं रह जाता कि गुरुत्वाकर्षण के समझने की और भी विधियां हो सकती हैं।

न्यूटन ने पेड से सेब गिरते देखा तो समझा कि धरती उसे खींचती है। ऐंस्टैन कहता है कि सेब इसलिए गिरता है कि जहाँ कहीं पदार्थ होता है वहां स्वय देश ही वक्र हो जाता है। एक बहुत थोडे नतोदर दर्पण में कहीं सीधी रेखाएँ नहीं होतीं और उस पर कोई चीज चलायी भी जाय तो वक्र रेखा में ही चलेगी। एक नतोदर कमरे के ठीक बीचो-बीच एक तकिया पडा हुआ है। उस कमरे में भीत के पास जिस ही ओर गोली फेंको, वह लौटकर तकिये के पास आ जाती है। देखने में ऐसा मालूम होगा कि तकिया हर तरफ से गोली को खींच लाता है। परंतु असल बात यह है कि कमरे का फर्श कुछ नतोदर है जैसे एक चिलमची। इसी से गोली तकिये के पास चली आती है। वास्तव में तकिया से उस से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी तरह देशमात्र वक्र है और इसीलिये जितनी चीजें देश के भीतर चल रही हैं सब की ही वक्र गति है। यहाँ तक कि प्रकाश भी वक्र गति से चलता है। इस भौतिक ससार में जो कुछ हमारे जानने में आता है, देश काल वस्तु से मिलकर बना हुआ है। यह तीनों एक ही सत्ता के तीन पहलू हैं। वस्तुमात्रा देश काल के भीतर चल रही है, भरसक सीधे ही रेखा में चलती हैं, परन्तु वक्रता को क्या करें। देश और काल में एक साथ ही स्थिति-परिवर्त्तन मात्र गति है। जितनी ही अधिक वस्तु की सत्ता होती है उतनी ही अधिक वक्रता देश में आती है। देश काल के भीतर वस्तु-सत्ता के होने से वक्रता के बढ जाने का ही नाम गुरुत्वाकर्षण है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्त

मार्ग में घूमती है, इसलिये नहीं कि सूर्य उसे इस प्रकार खींच रहा है बल्कि इसलिये कि सूर्य के महापिंड के होने से देश काल में वक्रता बढ़ गयी है। इसीलिए देश के भीतर गति करते
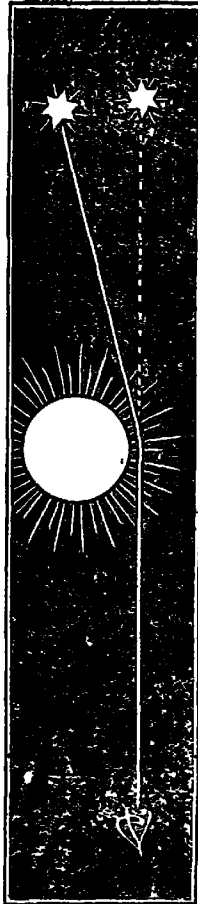
चित्र १४१—"सूर्य के ठीक पीछे रहनेवाले तारे का प्रकाश उस के पास से झुककर हमारी आँखों तक पहुँचेगा", यह बात ग्रहण के समय प्रत्यक्ष हो गयी।

ज्यार्ज न्यून्स की अनुमति से] [टामसन से

हुए भूपिड के लिये चलने का सबसे निकट का और सीधा मार्ग दीर्घवृत्ताकार है। इसलिये गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की कोई आवश्यकता नहीं है। असल बात यह है कि वस्तुकी अधिकता से देश की वक्रता बढ जाती है। सूर्य के ठीक पीछे रहनेवाले तारे का प्रकाश उस के पास से झुककर हमारी आँखो तक ठीक उसी तरह पहुँचेगा जैसे कि रेलगाड़ी कभी-कभी घूमकर आया करती है। यह बात पूर्ण ग्रहण के समय आँखो से देखी जा सकती है और फोटो ली जा सकती है। इस तरह तारा अपनी सच्ची जगह से हटा हुआ जान पड़ेगा। लगभग पन्द्रह बरस के हुए कि ग्रहण के समय में ठीक यही बात देखी गयी और ऐन्स्टैन ने पहले से हिसाब निकालकर तारे की जो स्थिति बतायी थी वह भविष्यवाद बिल्कुल ठीक निकला।

निष्कर्ष यह निकला कि गुरुत्वाकर्षण देश का एक गुण या धर्म्म है और वस्तु की कोई शक्ति नहीं है।

४—वक्रता की समस्या

प्राचीन उकलैदस के रेखागणित का यह सिद्धान्त है, कि जिस रेखा के एक अंतिम विन्दु की सीध में दूसरे अंतिम विन्दु को इस तरह पर रख सके कि पहले विन्दु के पीछे दूसरा इस तरह पर छिप जाय कि सारी रेखा अदृश्य होकर एक विंदु ही दिखाई पडे तो वह रेखा सीधी रेखा होगी।* यह परिभाषा स्पष्ट ही इस बात पर अवलम्बित है कि प्रकाश की किरण सीधी ही रेखा में चलती है। परतु अभी हम देख चुके है कि प्रकाश का भी सीधी रेखा मे चलना आवश्यक नहीं है। इसलिये जिसे रेखागणित मे सीधी रेखा कहते हैं वह शुद्ध कल्पना है क्योकि जब देश का एक गुण ही वक्रता है तब सीधी रेखा वास्तव में कभी हो नहीं सकती। यह विषय बहुत कठिन है। परतु हम कोशिश करेंगे कि पाठको को भरसक कुछ समझ मे आ जाय।

हम वस्तुओ के तीन परिमाण जानते हैं और उसी के भीतर हमारा जीवन है। यह तीन परिमाण हैं लम्बाई, चौड़ाई, और मोटाई। जितनी वस्तुएँ हैं सब में यह तीन बातें जरूर पायी जाती है। परतु थोड़ी देर के लिये मान लो कि कुछ ऐसे प्राणी हैं जिन के शरीर मे लम्बाई और चौड़ाई तो है परतु मोटाई नहीं है। उन्हें मोटाई की खबर भी नहीं है। उन की दुनिया मे लबाई और चौड़ाई यही दो चीजे हो सकती हैं। न तो वह ऊँचाई या गहराई का पता रखते हैं और न वह एक रेखा को लाघ कर दूसरी रेखा तक पहुँच सकते हैं। क्योंकि लाघने में ऊँचाई का पता होना जरूरी है। वह सीधे चल सकते हैं। परतु जहाँ उन्हें रेखा मिलेगी वहाँ उन की गति रुक जायगी। वह अवश्य ही सीधी रेखा के सिवाय कुछ नही जानते। वह समानातर रेखा खींच सकते हैं और अवश्य हीउन के निकट दो विंदुओं के बीच मे सब से छोटी रेखा ऋजु रेखा ही होगी और ऐसी रेखा इन्हीं दो विंदुओं के

---

* उकलैदस के अरबी संस्करण का अनुवाद जयपुर के सम्राट जगन्नाथ ने संस्कृत में किया है। इस में ऋजुरेखा की यही परिभाषा दी गयी है।

बीच में एक ही हो सकती है। अब ऐसे ही किसी प्राणी को ठीक चपटे तल से उठाकर एक गोले के ऊपर रख दो। इस गोले पर अब वह प्राणी सीधी रेखा में रेंगेगा और सीधे बराबर चलेगा तो जहाँ से चला था वहीं लौट आवेगा। कागज के चपटे तल पर उस की रेखा अनन्त होती है और वह कभी जहाँ से चला था वहाँ लौट नहीं सकता। उस की समझ में गोले पर की रेखाएँ भी बिल्कुल सीधी ही होंगी। परन्तु वह ऐसी समानान्तर कई सीधी रेखाएँ बना सकेगा जो दो बिन्दुओं के बीच में होंगी और जो नाप में सब से छोटी रेखाएं समझी जायँगी। आज कल के रेखागणित में यह परिभाषा दी हुई है कि दो बिंदुओं के बीच में सब से कम दूरी ऋजु रेखा की होती है और इस प्रकार की रेखा एक ही हो सकती है। परंतु इस प्राणी को यह पता चलेगा कि दो बिन्दुओं के बीच में सब से कम दूरी रखने-वाली अनन्त रेखाएँ हो सकती हैं और उसके निकट सब की सब रेखाएँ बिल्कुल सीधी होंगी। चिपटे तल पर केवल दो ऋजु रेखाओं से देश का कोई भाग बंद नहीं हो सकता था। परंतु गोले के ऊपर उस प्राणी को यह प्रतीत होगा कि दो रेखाओं से देश का एक भाग बिल्कुल घिर जाता है। अब हम उन्हीं प्राणियों की स्थिति में अपने को रख कर देखें तो हम को जान पड़ेगा कि धरती की अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ वस्तुतः वक्र होते हुए भी हमारे लिये क्यों बिल्कुल सीधी हैं और सीधी रेखा अगर अनन्त देश तक बराबर बढ़ायी जाय तो क्यों अपने पहले बिन्दु पर आकर मिल जायगी। यदि वह कल्पित प्राणी रेखागणित ठीक ठीक जानते हैं तो जरूर यह कहेंगे कि हमारा देश अवश्य ही वक्र है और वक्रता के कारण ही यह सब बातें होती हैं। साथ ही वह इस वक्रता को ठीक-ठीक नाप भी लेंगे। ऐंस्टैन का कहना है कि देश के सम्बन्ध में हमारे ठीक विचार भी इसी तरह के होंगे। इस देश का वक्रता प्रधान गुण है। इसी के कारण पदार्थ-मात्र वक्र या गोलाकार होकर निरंतर चली हुई गति करता रहता है। वक्रगति होने से गति का मार्ग अनन्त नहीं है, सान्त है। भिन्न-भिन्न देश हमारे लिये अनन्त नहीं है, सान्त है। हम निरन्तर सीध में एक ही ओर चले तो जहाँ से चले थे वहीं फिर पहुँच जायँगे। पृथ्वी आदि ग्रह, चंद्रमा आदि उपग्रह, नक्षत्र और तारे सभी पिंड अपने-अपने सान्त देश में निरन्तर चक्कर लगाते रहते हैं। इनमें से किसी का देश अनन्त नहीं है। परन्तु प्रत्येक की गति सान्त देश में होते हुए भी देश स्वयम् असीम है और अनन्त है। यह वक्र ठीक गोलाकार नहीं है। अंडाकार होने की इसमें अधिकता देख पड़ती है। एक तारे से प्रकाश की किरण चलती है तो सारे विश्व में घूम कर उसी तारे तक पहुँच जाती है। यदि हम सीधे न चल कर इधर-उधर भटक के चलें कि देश की सीमा का पता लग सके तो हम निराश होंगे कि कहीं उसका अन्त नहीं है। परन्तु यदि हम सीधे किसी दिशा को चलते जायँ तो फिर अन्त में वहीं पहुँच जायँगे जहाँ से चले थे। इस तरह देश तो अनंत है परंतु वह अंडाकार है या वक्र है। इसलिये किसी पिंड का मार्ग अनंत नहीं हो सकता।

५—सापेक्षवाद और देश-काल-वस्तु की एकता

मान लो कि कोई देवदूत जो शुद्ध बुद्धि रखनेवाला किसी दूसरी सृष्टि का प्राणी है,

एकाएकी इस जगत् मे आ गया और एक बाग मे होश मे आकर उसने आँखे खोलीं। उसे इस सृष्टि का बिल्कुल पता नहीं है। वह आँख खोलते ही देखता है कि सामने कुछ दूरी पर एक सुंदर गुलाब का फूल है जिस पर एक भौंरा बैठा हुआ है। देखने में उसे भौंरा फूल और पेड़ एक ही जान पड़ता है। उसे मालूम नहीं है कि भौंरा और फूल अलग अलग चीजे हैं। वह अपने को फूल से दूर, फूल को वहा और अपने को यहाँ पाता है। थोड़ी देर बाद भौंरा जब उस पर से उड़ता है और देवदूत के अग पर बैठ कर काटता है, उस समय देवदूत को यह पता लगता है कि पहले फूल और काला भौंरा एक चीज थी, अब दो चीजे हो गयीं। इस तरह यहाँ वहाँ से देश, और तब और अब से काल का विचार पैदा हुआ। परंतु देवदूत ने यह देखा कि भौंरा वही है जो फूल पर बैठा था। इसलिये उसे यह पता चला कि भौंरा ऐसी वस्तु है जो देश और काल दोनों मे बराबर रहता है। अर्थात् देश के भिन्न-भिन्न अंशों मे और काल के भिन्न-भिन्न अंशों में मौजूद रहता है। इस प्रकार देवदूत ने देखी तो एक ही घटना, एक ही बात अर्थात् वस्तु का बराबर बना रहना,—वस्तु की सत्ता,—और इसी वस्तु की सत्ता को उसने तीन नाम दिये, वस्तु, उसका देश में होना, उसका काल में होना। उसने जिस के तीन विभाग किये वह वास्तव में एक ही है। इस एक का विस्तार चार दिशाओं में है। लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई यह तीन दिशाएँ तो देश की पड़े तो और चौथी दिशा सत्ता अर्थात् बराबर बना रहना यह काल की दिशा हैं। देश की तीन प्रकाश ओं का तो हम को इसलिये अनुभव है कि हम देश की तीनों दिशाओं में रहते और भी सीध फिरते हैं, परंतु काल की एकही दिशा का ज्ञान इसलिये है कि जन्म से मरण तक हमारी कहते हैं काल की एक ही दिशा में निरंतर चलती रहती है। जिस तरह दो ही दिशाओं का वास्तव मे खनेवाला प्राणी, जिस का उदाहरण हमने पिछले प्रकरण मे दिया है, ऊँचाई या पाठको को नीचाई की कल्पना नहीं कर सकता, उसी तरह काल की और दिशाओं की कल्पना हम र सकते। देश और काल वस्तु की सत्ता के दो पहलू हैं जो उससे कभी अलग तीन परिमा ते। जो घटना होती है वह किसी देश और काल के भीतर ही होती हैं।

जरूर पायी तु सब से बड़े महत्व की बात जो ऐन्स्टैन ने ढूंढ निकाली वह यह है कि हर दो शरीर में लग नेवाले के लिए,—यदि दोनों अनुभव करनेवालो की स्थिति भिन्न-भिन्न है—दो हैं। उन दं जो देश और काल का अन्तर लगता है वह एक ही नहीं होता। मान लो कि या गहराई जी का निर्णय करनेवाले दो तरह के हैं। एक तो फीते के पास खड़े हैं और हैं। क्योंकि में घंटा पीछे सौ मील के हिसाब से आकाश में उड़ रहे हैं। दोनों की घड़ियाँ जहाँ उन्हें रे मिली हुई हैं। विमानवालो के पास बड़ी अच्छी दूरबीने हैं। एक आदमी सिवाय कुछ के पास पहुँच जाता है। उस जगह खड़े निर्णायक एक स्वर से कहते हैं कि विदुओं के व दौड़ ग्यारह सेकंड में हुई परंतु विमान पर बैठे हुए निर्णायक दोनों मे से एक मे हो सकते। यह मत-भेद निश्चित है और ठीक-ठीक हिसाब पर अवलंबित धारणतया यही मालूम होता है कि खड़े और उड़ते हुए निर्णायको के देश की नाप में अतर नहीं पड़ सकता। असल बात यह है कि जितना कुछ कि वास्तविक गअंरि है वह हर देखनेवाले की दृष्टि से देश और काल के मिल जाने से एक विशेष ढंग पर

अनुभूत होता है। देश और काल इस तरह पर परस्पर मिले हुए हैं कि हम विभेद नहीं कर सकते। परन्तु अपने सुभीते के लिए अपनी-अपनी दृष्टि से देश और काल का अंतर निकाल लिया करते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि हर आदमी सदा एक ही तरह से देश और काल का भेद किया करे। जिस तरह एक ही घटना के संबंध में दो व्यक्तियों की दो भिन्न रायें हुआ करती हैं। उसी तरह से देश और काल के संबंध में आदमी-आदमी में अनुभव का भेद हो सकता है। हमने जो दौड़ की बाजीवाला उदाहरण लिया है उसमें दोनों प्रकार के निर्णायकों में तभी मतभेद हो सकता है जब उनके देखने और नापने के यंत्र साधारण रीति से परम विशुद्ध हों। वास्तविक बात यह है कि इस भूतल के ऊपर जितना वेग हम उत्पन्न कर सकते हैं उस से देश काल के नाप में वह अंतर नहीं पड सकता जिस का हमारे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म यंत्रों को पता लग सके। देश और काल के नाप में अंतर पड़ने के लिये हमें हजारों मील प्रति सेकंड का वेग चाहिये। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी घंटे में ७० हजार मील चलती है। यदि विमानवाले निर्णायकों की गति भी इसी वेग की होती तो स्थल पर खड़े निर्णायक की घड़ी दिन भर में केवल १।२३०० सेकंड सुस्त होती और एक फुट रूल केवल इंच का पौने दो करोड़वाँ अंश कम जान पड़ता। परन्तु यदि इससे भी अधिक वेग से विमान चल सकते,मान लो कि एक सेकंड में १,६१,००० मील चलते तो घडी बारह घंटे सुस्त हो जाती और फुट रूलर ६ इंच का लगता। और अगर एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकंड चलते तो घड़ी तो बिल्कुल बन्द दीखती और फुटरूल लापता हो जाता। यह प्रकाश का वेग है। इस से अधिक वेग की कल्पना असंभव समझी जाती है। देश और काल की अलग-अलग सत्ता तो कल्पना-मात्र है परन्तु दोनों को एक में मिली हुई दशा में मानने को तो सभी तैय्यार हैं। चाहे जो हो समिलित देश-काल को भिन्न-भिन्न विधियों से अलगाने में मतभेद हो सकता है, परंतु एक में समझने में मतभेद नहीं है।

ऐंस्टैन का सापेक्षवाद केवल दार्शनिक कल्पना नहीं है। वह वैज्ञानिक प्रयोगों पर अवलम्बित है और गणित द्वारा सिद्ध किया गया है। रेलगाड़ी अगर ठहरी हुई है और एक चिड़िया उसकी लम्बाई भर एक सिरे से दूसरे सिरे तक उड़ जाती है तो एक निश्चित समय लगाती है। यदि गाड़ी चल रही हो और चिड़िया की ओर आती हो तो बहुत कम समय लगेगा। यदि चिड़िया से गाड़ी दूर भाग रही हो तो चिड़िया को ज्यादा समय लगेगा। माइकेल्सन और मोर्लेने इसी तरह का प्रयोग प्रकाश के वेग के सम्बन्ध में किया। परन्तु वेग समान ही पाया। यह रहस्य समझ में नहीं आया। परन्तु ऐन्स्टैन के सापेक्षवाद से इसकी पूरी व्याख्या मिल जाती है। हम गाड़ी से ही उडने की दूरी और समय नाप रहे हैं परन्तु देश और काल की नाप हमारी गति के अनुसार बदलता रहता है और ठीक उतना ही बदलता है जिस से कि लेखे की कमी बेशी ठीक पूरी हो जाती है। और हर हालत में प्रकाश का वेग नाप में एक सा ही ठहरता है। गाडी चाहे कितनी ही तेज जा रही हो। गाडी की तेज़ी जो अधिक से अधिक हो सकती है वह प्रकाश के वेग के सामने नगण्य है।

सापेक्षवाद और भी विचित्र बातें बताता है, पदार्थ का कोई पिंड जितने ही अधिक वेगसे चलेगा उतना ही उसका भार बढ़ेगा। साधारण वेगों पर यह बात नहीं मालूम

इक्कीसवां अध्याय

रसायन के चमत्कार

१—विश्व की सूक्ष्म ईंटों की जांच

घर गृहस्थी मे हम सैकड़ों तरह की चीजे देखते हैं खाने-पीने की चीज़ो मे चावल, दाल, आटा, घी, शकर, मैदा, जलाने के लिये लकडी, तेल, पहनने के कपड़े और बैठने-सोने आराम करने के लिये लकड़ी, बास, रस्सी, नेवाड़ आदि के बने हुए चौकी, मोढ़ें, खाट, पलग, और चीजों के रखने के लिये अलमारियॉ खूटिया आदि, जितनी चीजे हम गिना सकते हैं सब देखने मे तो भिन्न चीज़े हैं परन्तु रसायन-विज्ञानी से पूछा जाय तो वह हमारे समझने लायक शब्दो मे तो कहेगा कि इन सारी चीजों मे जो तुम गिना गये हो, दो वस्तुऍ प्रधान हैं, कोयला और पानी। मतलब यह कि इन सब चीजों में मुख्य रीति से कोयला पानी ही सब से अधिक है। परन्तु विज्ञान की दृष्टि से पानी भी ओषजन और उज्जन, इन दो पदार्थों से बना है। साराश यह कि जितने पदार्थ हमने गिनाये वह सब-के सब तीन मूल पदार्थों से बने हैं, उज्जन-ओषजन और कोयला या कर्बन, क्योकि रसायन-विज्ञानवाले जिस मूल पदार्थ का नाम कर्बन देते हैं, वह शुद्ध कोयला ही है। परन्तु जिस धरती पर हम रहते हैं और हमारा घर है वह धरती और हमारे घर की दीवारे ईंट, चूना और पत्थर आदि की बनी हुई चीज़े उन गिनाई हुई चीजों से कुछ भिन्न हैं और इन मे अधिक भाग उज्जन ओषजन आदि के सिवाय सिलकन का भी है। रसायन-विज्ञानवालों ने पृथ्वी पर मिलनेवाले सभी पदार्थों की जॉच की है। इतना ही नहीं, जहाँ से रोशनी आती है उन अनन्त दूरी पर से टिम-टिमानेवाले तारो और नीहारिकाओं मे कौन-कौन से तत्त्व या मौलिक पदार्थ मौजूद हैं इस बात का भी पता रसायन-विज्ञानियो ने लगाया है और अन्त मे यह निष्कर्ष निकाला है कि सारे विश्व मे जहाँ तक विज्ञानी के करणों और उपकरणों की पहुँच है, वहाँ तक कुल सत्तासी से लेकर बानवे तक मूल पदार्थ या तत्त्व हैं जिन के सयोग और मिश्रण मे विश्व की असख्य वस्तुऍ, सजीव और निर्जीव, जड़ और चेतन, चर और अचर, सभी बनी

हुई हैं। इस विश्व की बड़ी भारी इमारत मे जो ईंटे लगी हुई हैं उन की चर्चा हम पिछले अध्यायों मे कर आये हैं। यह विश्व वस्तुतःविद्युत् का बना हुआ है जिस के दो कण विद्युत्करण और प्रकण हैं। प्रत्येक परमाणु मे एक प्रकण और एक या अनेक विद्युत्कण हैं। और हर एक अणु मे एक या अनेक परमाणु हैं और हर एक पदार्थ का छोटे-से छोटा टुकड़ा असख्य अणुओं का बना हुआ है। सस्कृत के व्याकरण मे माहेश्वर सूत्रों में केवल तैंतालीस अक्षर गिनाये हैं। इन्हीं तैंतालीस से मिलकर असख्य शब्द बनते हैं और इन्हीं शब्दों से विविध विषयो और विद्याओं पर लिखे हुए बड़े विशाल ग्रन्थ हैं। चारों वेद चारों उपवेद छहो अग अट्ठाईसो स्मृतिया बारहो दर्शन, अठारहो पुराण, अठारहो उपपुराण अगणित तन्त्र तो धार्मिक साहित्य के हैं। इन के सिवाय रामायण, महाभारत, आदि इतिहास ग्रथ और चौसठो महाविद्याओं के सम्बन्ध का अपरिमित साहित्य इन्हीं थोड़े से अक्षरों की करामात है। उसी तरह यह सारा विश्व इन्हीं सत्तासी तत्त्वों के मेल से अत्यन्त विविध और असख्य प्रकार का बना हुआ है। यह अद्भुत अनेकता और विविधता केवल एक पदार्थ से उत्पन्न हुई है और वह पदार्थ विद्युत् है।

धनाणु और ऋणाणु दोनों प्रकार के विद्युत्कण एक से गुण रखते हैं। विद्युत्कणो की भिन्न सख्याएँ भिन्न गुणोंवाले परमाणु बनाती हैं। विविधता का आरम्भ यहीं से होता है। एक ही प्रकार के विद्युत्कणो से बने हुए सत्तासी तत्त्व एक दूसरे से भिन्न गुण रखनेवाले हैं। इन तत्त्वों के भिन्न-भिन्न गुणोवाले अणुओं के मेल से असख्य प्रकार के विविध गुणवाले पदार्थ बने हुए हैं। परन्तु सभी तरह के पदार्थों मे यह बात देखी गयी है कि हर एक तीन अवस्थाओं में रह सकता है, धन, द्रव और वायव्य। यह सभी जानते हैं कि जल का ठोस रूप बरफ है, द्रव रूप पानी है और वायव्य रूप भाफ है। और यह भी सब को मालूम है कि गरमी पहुँचाने से बरफ से पानी और पानी से भाफ बन जाता है और ठढा करने से भाफ से पानी और पानी से बरफ बन जाता है। घन मे पदार्थ के अणु अधिक पास-पास होते हैं और बहुत कम वेग से स्पन्दन करते रहते हैं। द्रव मे अणु कुछ दूर-दूर रहते हैं और कुछ अधिक वेग से स्पदन करते हैं। यही वेग और परस्पर की दूरी बढ़ने से घन की स्वाभाविक दृढ़ता बदलकर द्रव की तरलता और बहाव के रूप मे दिखाई पड़ती है। वायव्य मे अणु अधिक दूर-दूर होते हैं और अधिक वेग से स्पन्दन करते हैं। इसलिये इस मे तरलता बढ़ी हुई है और चारों ओर गाँजने का गुण रखती है।

इन सत्तासी मूल पदार्थों के परमाणुओं के मेल से सयुक्त पदार्थ के बनने मे समूचे परमाणु ही मिलते हैं। परमाणुओं के टुकड़े नहीं होते, और न टुकड़ो के मेल से सयुक्त पदार्थ ही बनता है। जल का एक अणु दो परमाणु उज्जन और परमाणु ओषजन से मिल कर बनता है। जल कहीं से भी लिया जाय उस के अणु इस तरह बने हुए मिलेंगे। शुद्ध गन्ने की शक्कर के एक अणु मे कर्बन के बारह उज्जन के बाइस और ओषजन के ग्यारह परमाणु मिले हुए होते हैं। इसी तरह शुद्ध खड़िया मिट्टी के एक अणु मे एक परमाणु खटिकम् एक परमाणु करबन, और तीन परमाणु ओषजन मिले हुए होते हैं। इस से कम या अधिक से खड़िया मिट्टी नहीं बन सकती। इस तरह से अलग-अलग गुण रखने-

कर उड़ा दे तो चीनी भी मिल सकती है। परन्तु कोयला और पानी के सयोग से चीनी बनी है और पानी स्वय उज्जन और ओपजन नाम के दो वायव्यों के मिलने से बना है, यह बाते जल्दी समझ मे नही आती। बालू और चीनी का मिश्रण चाहे जितना चाहो जिस परिमाण मे चाहो मिला लो। परन्तु चीनी मे कोयले और पानी का परिमाण बिल्कुल निश्चित है। घट-बढ नहीं सकता। पानी मे भी दो आयतन उज्जन से एक आयतन ओपजन का मिला हुआ है। तौल मे भी उज्जन का एक भाग और ओपजन के आठ भाग मिलने से ही पानी बनता है। इस से कमोवेश मे मिश्रण भले ही बन जाय, परन्तु जल नही बन सकना। मिश्रण को तो हम सहज मे अलगा सकते हैं पर जल जैसे सयुक्त-पदार्थ को तोडकर मौलिको मे परिणत कर देना जरा कठिन काम है। फिर भी मिश्रण और यौगिक मे भेद समझ लेना कभी-कभी कठिन हो जाता है। जिस वायु मे हम सास लेते हैं उस मे सात मौलिक और दो यौगिक वायव्य मिले हुए हैं। परतु ऐसा जान पड़ता है कि सारा वायु-मडल एक-रस है। इसी तरह जो जल साधारणतया शुद्ध और निर्म्मल समझा जाता है उस मे हवा घुली हुई है और अनेक घन वस्तुए उस मे घुली हुई हैं। पीने लायक पानी मे जो ईषत् मिठास है उस का कारण है घुली हुई वायु। विश्लेषण द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों के पेय जलों मे भी लवण आदि अनेक वस्तुएँ घुली पायी गयी हैं। सच तो यो है कि जल ऐसा प्रचड घोलक है कि उस मे घुलने से ससार की कोई चीज बच नहीं सकती। भाफ से टपकाकर खींचा हुआ शुद्ध जल शुद्ध काच के बोतल मे रखा जाता है तो बोतल को ही घुलाकर अपने को अशुद्ध कर लेता है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिस के बरतन मे पानी रखा जाय और उस के एक अश को घुला न ले।

इस तरह यद्यपि सत्तासी मौलिक पदार्थ और लाखो यौगिक पदार्थ रसायन-विज्ञान ने मालूम किये हैं तो भी कोई पदार्थ ऐसा नही है जो परम शुद्ध कहा जा सके। परम शुद्ध पदार्थ तो वस्तुतः मिलना ही असम्भव है। इतने पर भी जहाँ तक शुद्धता हो सकती है वहाँ तक व्यवहार मे लाकर वैज्ञानिक इन समस्त पदार्थों का परिशीलन करता है। किसी ने सच ही कहा है कि रसायन विज्ञान के मौलिक और यौगिक सभी पदार्थ काल्पनिक हैं, क्योंकि वास्तविक जगत् मे रसायन की एक भी परम विशुद्ध चीज नहीं मिलती। रासायनिक अशुद्धताएँ इतनी सूक्ष्म हैं कि साधारण व्यवहार मे उन का अभाव ही मान लेना पडता है। परन्तु वैज्ञानिक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अशुद्धि का पता लगा सकता है।

यह रासायनिक अशुद्धियाँ अनेक स्थलो मे बडे महत्व के प्रभाव डालती हैं। विवियन का कहना है कि आजनम का सहस्राश कण उत्तम-से-उत्तम तावे को निकम्मा कर डालता है। केल्विन ने लिखा है कि यदि विस्मथ 'विशदम का सहस्राश भी मिल जाय तो ताबा सामुद्रिक तार मे लगने लायक नही रह जाता। आस्टिन का कहना है कि यदि उत्तम सोने मे विस्मथ का पाँच-सौवा भाग भी मिल जाय तो सोना सिक्का ढालने लायक नही रह जाता, तावे मे तडित की चालकता नही रह जाती और सोना ठप्पे के दबाव मे टुकडे-टुकड़े हो जाता है।

सोडियम (सैन्धकम) और हरिन् इन दो मौलिकों के सयोग से खाने का नमक बना

है। इस का एक अत्यंत छोटा टुकड़ा लेकर छोटे-से-छोटे भाग मे विभक्त करो। विभाजन की किसी क्रिया से इस के टुकडे सैधकम् और हरिन् मे परिणत नही हो सकते। छोटे से-छोटा अन्तिम टुकडा नमक का ही होगा जिसे हम अणु कह सकेगे। इस अणु के दो ही टुकड़े हो सकते है, एक होगा सैधकम् का परमाणु और दूसरा होगा हरिन् का परमाणु। नमक की एक छोटी सी डली मे अरबो अणु मौजूद हैं, जिनमे से प्रत्येक अणु एक-एक परमाणु सैंधकम् और हरिन् से बना है। मौलिक पदार्थ मे अणु उसी एक जाति के परमाणुओ से बने होते हैं। परन्तु यूरेनियम और थोरियम आदि कुछ ऐसी धातुएँ भी है जिन के अणु टूट-टूटकर दूसरी धातुएँ और हीलियम नाम का अधातु मूलक तत्व बनाती रहती है।

३—बिजली और रसायन

जब पानी मे बिजली की धारा चलती है तो एक ध्रुवे से उज्जन वायु और दूसरे से ओषजन वायु निकलती है। बात यह है कि जल जिन दो वायव्यो से बना है फटकर उन्हीं मे बँट जाता है। यह तो वह बात है जो हम आंखो से देखते हैं परन्तु अनुमान यह किया जाता है कि ओषजन के अणु एक ओर और उज्जन के दूसरी ओर चले जाते है। जब तक यह अणु जल मे होते हैं तब तक इन के परमाणुओ के समूह वायव्य रूप धारण नही किये होते। ऐसा अनुभव किया गया है कि परमाणु जितने ही अधिक भारी होगे उतनी ही अधिक उन की गति होगी। सोने चाँदी आदि भारी परमाणुओं की गति अधिक होती है। इसी सिद्धान्त पर एक धातु के पदार्थ पर दूसरी धातु बिजली की धारा के द्वारा, चढायी जाती है। तावे पर चाँदी या सोना इसी विधि से चढाकर बरतनो और जेवरो को रुपहला या सुनहला रूप दे देते हैं। एक बरतन मे चाँदी या सोने का (सैनैड) श्यामिद जैसा लवण जल मे घुला हुआ रहता है। इस मे दो ध्रुवो की जगह एक ध्रुव तो वह धातु की चीज होती है जिस पर सोना या चाँदी चढानी है, और दूसरा ध्रुव सोने या चादी का पत्तर होता है। जो धातु चढानी है, उसी धातु के पत्तर और घोल दोनों हुआ करते हैं।

हम जितने पदार्थों का अपने चारो ओर अनुभव करते रहते हैं, जल, वायु, मिट्टी, भोजन और पहनने की सामग्री, घर और घर की सजावट का सामान, लिखने-पढने की सामग्री, यत्र आदि सभी चीजे अपने अपने मूल रूप मे रासायनिक परिवर्त्तन के फल हैं और चाहे अत्यंत धीरे-धीरे हो और चाहे वेग से हो बराबर लगातार रासायनिक क्रिया जारी है। हमारे शरीर मे स्वय और हमारे सिवा भी जितने प्राणी हमारे चारो ओर देख पड़ते है सब के शरीरो मे निरतर रासायनिक क्रिया जारी है। जलवायु की क्रिया धातु पर होने से मोरचा लग रहा है. हमारे शरीर के भीतर जलवायु और अन्न से बराबर बड़ी ही जटिल और असख्य क्रियाए प्रतिक्षण होती रहती हैं। मिट्टी मे अनेक क्रियाएँ होती रहती हैं जिन का पता हमे नहीं लगता। इसी तरह इस दृश्य और अदृश्य जगत् मे कोई चीज़ ऐसी नही है जो थोड़े या बहुत वेग से बराबर परिवर्त्तन न करती जा रही हो।

४—रासायनिक क्रियाएं

इन परिवर्त्तनों का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया गया है। प्रत्येक परिवर्त्तन में पूर्व और उत्तर दशाओं का पूरा विवरण रखा गया। प्रत्येक सामग्री ठीक-ठीक तौली और नापी गयी, उस की शुद्धता की पूरी जाच कर ली गयी। गरमी और दबाव ठीक-ठीक नाप लिये गये। इस तरह ठीक-ठीक हिसाब लगाकर मौलिकों और यौगिकों के सयोग और वियोग के सारे नियम मालूम कर लिये गये। वह नियम ऐसे ठहरे कि उन के बल से अनेक परिणामो को काम के शुरू में ही विस्तार से जान लिया जाता है। रासायनिक क्रिया इतने धीरे-धीरे होती है कि राई से भी छोटा बीज धीरे-धीरे ही बढकर भारी बरगद का पेड़ हो जाता है। लोहे मे मोरचा लगकर उसे धीरे-धीरे गला डालता है। हमारे भोजन का पाचन धीरे-धीरे होता है। परतु रासायनिक क्रिया के वेग भी भिन्न-भिन्न हैं। तोप के भीतर ऐसे वेग की क्रिया होती है कि फूट या फट पडती है। पिस्तौल और बन्दूक से तेजी से जो गोली चलती है, रासायनिक क्रिया है। दियासलाई के जलने से लेकर प्राणियों के जीवन के अगणित अनुभव, अनन्त घटनाएँ, सब कुछ रासायनिक क्रियाओ से सबध रखती है। इंधन जलता है तो लकड़ी के भीतर की सभी चीज़ें जो अधिकाश कर्बन और उज्जन की ही बनी हुई हैं, हवा के ओषजन से मिलकर कर्बन द्वयोषिद वायव्य और जल का वाष्प बनाती हैं। जो अश पूरी तौर से जल नही जाता वह धुआ होकर उडता है। धुएँ मे अधिकाश शुद्ध कर्बन है। हमारे पेट के भीतर भी जो अन्न जाता है वह भी एक तरह से धीरे-धीरे जलता ही है। वहा भी सास के द्वारा भीतर जानेवाला ओषजन ही अन्न को जलाता है और अन्न मे भी लकडी की तरह अधिकाश कर्बन और उज्जन है जिससे कर्बन द्वयोषिद वायव्य और जलवाप्प बनता है। भीतर जानेवाली सास ओषजन को लेकर भीतर जाती है। ऊपर आनेवाली सास मे नोषजन के साथ ही जलवाप्प और कर्बन-द्वयोषिद बाहर निकल जाया करते हैं। कुछ बे-जले अश भी उस के साथ-ही-साथ निकल जाते हैं।

५—वायुमंडल

हम इन चर्चाओं में तीन तरह की वस्तुओं का नाम ले आये। अधिकाश घन या दृढ हैं, जैसे कलम, कागज, मिट्टी, धातुएँ, पत्थर कॉच आदि कुछ द्रव हैं जैसे जल, दूध, शरबत, शराब, शहद, सिरका आदि जिन में अपनी दृढता या रूप नहीं है, जो अपने पात्रों के अनुरूप रूप ग्रहण करते हैं। कुछ वायव्य हैं जो प्रायः देख नहीं पडते परतु जो अपने होने का प्रमाण बराबर देते रहते हैं। एक कॉच के बड़े मर्त्तबान को पानी के ऊपर इस तरह रखो कि हवा भरी रहे और उस में तार के एक टीवट पर एक टुकडा स्फुर रखा हो। स्फुर हवा में अपने-आप जल जाता है। जब इस बन्द हवा मे जलकर उस का सफेद धुआ जल मे बैठ जाता है तब हम देखते हैं कि पानी कुछ ऊपर चढ गया है। और बाकी बची वायु मे हम कुछ जलाना चाहें तो वह जला नहीं सकती। इन दोनों वायव्यों को अलग-अलग विविध रीतियो से निकाल कर अच्छी तरह जाचा और परखा गया है। जलानेवाली वायु

ओषजन है। न जलानेवाली नोषजन। दोनों में बड़ा भेद है। वायु में ओषजन एक भाग है, नोषजन चार भाग। नोषजन की तरह, बल्कि उस से भी अधिक नितात अकर्मण्य पाच और मौलिक वायव्य भी इस हमारे वायु मडल मे हैं परतु उन का परिमाण बहुत कम है। इस वायुमडल के सिवा अनेक वायव्य खनिजों मे सोखे हुए हैं और सयुक्त रूप मे भी मौजूद हैं। हम अन्यत्र यह बता आये हैं कि घन से द्रव, द्रव से वायव्य उत्तरोत्तर आच के बढाने से बनते हैं। इसी तरह अत्यन्त ठढ से वायव्य से द्रव और द्रव से घन भी बन जाते हैं। इस तरह अदृश्य वायव्य भी दृश्य द्रव और घन बन जा सकते हैं।

ओषजन ही मोरचा लगाकर लोहे को खा जाता है। हमारे सास का कर्बन-द्वयोषिद् वायव्य चूने के पानी को दूधिया कर देता है। कर्बन-एकोषिद से भरी खानि मे चूहे मर जाते हैं। यह वायव्य हलके भी होते हैं भारी भी। उज्जन वायु इतनी हलकी होती है कि गुब्बारे मे भरते है तो भारी चीज से बना हुआ होने पर भी वह वायु में उड़ जाता है। वायु रूप मे भूगर्भ मे जो लोहा है वह पानी से पचगुना भारी आका जाता है।

हलका भारी सभी तरह का वायव्य अब अत्यत ठढ और दबाव से सुकडकर द्रव और द्रव से घन बन चुका है। जिस वायु के भीतर हम रहते और सास लेते हैं उसे भी ठढ और दबाव से द्रव और घन कर दिया गया है। अब तो वायव्य को द्रव बनानेवाले कारखाने खुले है जहा फौलाद की भारी और मोटे दल की पेचदार बोतलों मे यह द्रवीभूत वायव्य भरी हुई बिकती है और कई कामों मे इस की जरूरत पड़ती है। यह विचित्र बात इसी पिछले सौ बरसो के भीतर व्यवहार-साध्य हो गयी है।

६—एक मौलिक पदार्थ से दूसरे का बनना

परन्तु सब से बडा चमत्कार तो रसायन का यह है कि अब एक धातु से दूसरी धातु भी बनने लगी है। पहले के लोग कहते थे कि पारस पत्थर के स्पर्श से लोहे को सोना बनाया जा सकता है। यह बात तो ठीक इसी रूप मे अब तक देखने मे नही आयी है। परन्तु पिछले दस-पन्द्रह बरसो मे एक मौलिक पदार्थ से दूसरे मौलिक पदार्थ बनाये गये हैं, और प्रकृति मे तो सदा से निरन्तर बनते आये हैं। युरेनियम और थोरियम धातु से निरन्तर विकिरण होता रहता है, विद्युत्कण निकलते रहते हैं, हीलियम वायव्य निकलता रहता है और रेडियम भी बनता रहता है, टूट-टूटकर उस से भी हलकी धातु बनती जाती है। फिर इसी हलकी धातु से और भी अधिक हलकी धातु बनती जाती है। यहा तक कि अन्त मे सीसा बनता है। इसी विधि से सोना भी बनाया गया है। ईसा की उन्नीसवी सदी भर एक धातु से दूसरी धातु का बनना असभव समझा जाता था। परन्तु अब देखा गया है कि प्रकृति मे यही क्रिया निरन्तर होती रहती है और जिन खनिजो मे युरेनियम और थोरियम मिलते हैं उन्ही मे रेडियम और सीसा तथा हीलियम वायव्य भी घुले मिलते हैं। प्रोफेसर साडी का कहना है कि खनिज मे युरेनियम के प्रत्येक शताश सीसे का यह अर्थ है कि सीसे मे परिणत होने मे युरेनियम को आठ करोड़ बरस लगे हैं। यह हो सकता है कि परिणाम के पहले का उस मे सीसा मौजूद रहा हो, परन्तु परीक्षा तो खनिज के सैकड़ो नमूनो

से की गयी है और यह निश्चय हो चुका है कि जो सीसा युरेनियम के साथ निकलता है वह उसी से उत्पन्न होता है। हीलियम वायव्य उस के साथ निकलता है। उस के प्रत्येक सीसी के प्रति ग्राम युरेनियम के अनुपात से यह पता लगता है कि नव्वे लाख बरस लगे हैं। यह तो निश्चय है कि हीलियम वायव्य किसी और पदार्थ से नहीं जुडता। इस लिये उस का पहले से होना सभव नहीं है। परन्तु इस से ठीक हिसाब इस लिये नहीं हो सकता कि बहुत-कुछ हीलियम वायव्य के रूप मे उड़ भी गया होगा। इस लिये नव्वे लाख या एक करोड बरस तो बहुत घटी हुई सख्या होगी। इसे ही हम कम-से-कम की कालावधि मान लेगे। सीसे के हिसाब से जो सख्या मिलती है उसे ऊची-से-ऊची मान लेगे। इस तरह कुछ कर्बन-भरी चट्टानो की आयु पैंतीस करोड बरसो के लगभग होगी और सब से प्राचीन चट्टानो की आयु कम-से-कम डेढ अरब बरसों के लगभग होगी।

परमाणुओ के टूट-टूटकर विद्युत्कण देते रहने का वर्णन हम अन्यत्र कर चुके हैं। भारी परमाणुओ से इस भूमडल पर हलके परमाणु बनते हुए हमे प्रतीत होते हैं। मौलिक पदार्थों के सयोग-वियोग से निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। एक क्षण के लिये भी इस ससार मे किसी एक दशा की स्थिरता नहीं है। इसी तरह इस भूतल से अत्यन्त दूर, इस ब्रह्माड के बाहर विश्व मे किसी विशाल विस्तीर्ण आकाश-देश मे ताप और चाप की आत्यन्तिक भिन्न परिस्थिति मे हलके-हलके परमाणु जुट-जुटकर भारी-भारी परमाणु बनते जाते होगे और किसी भावी स्थूल ब्रह्माड की दृढ नीव रखते होगे।

७—प्राणि-शरीर में रासायनिक पदार्थ

अट्ठासी मौलिक पदार्थों मे से उन्तीस के लगभग प्राणियो के शरीर मे पाये जाते हैं। इन मे से बारह तो अत्यन्त कम मिलते हैं। सत्रह अच्छे परिमाण मे पाये जाते हैं। उज्जन, कर्बन ओषजन, नोषजन, स्फुर, गन्धक, पाशुजम् (पोटासियम), मगनीसम् खटिकम्, और लोहा, यह दस तो सदा सर्वत्र पाये जाते हैं। और सैंधकम्, (सोडियम्), हरिन्, और सिलकन भी अधिकाश प्राणियो मे अवश्य पाये जाते हैं। चुल्लि-ग्रन्थियो मे एव सामुद्रिक वनस्पतियो मे नैल (अयोडीन), अधिकाश प्राणियो मे चिह्नमात्र की तरह मागनीज, अति अल्पाश में कुछ प्राणियो मे और अधिकाश सामुद्रिक भूरे उद्भिज्जो मे अरुणिन् (ब्रोमीन), हड्डियों और कुछ उद्भिज्जो मे अब यह चार भी अधिक पाये जाते हैं। यह सब मिलाकर सत्रह हुए।

यह एक बहुत विलक्षण बात है कि जड और चेतन दोनो तरह की वस्तुओ मे इन्हीं मूल पदार्थों की अधिकता है। इस बात मे जड़ चेतन प्रायः समान हैं। परन्तु प्राणियो के शरीर मे सब से अधिक महत्व के उपादान चार हैं. उज्जन, कर्बन, ओषजन और नोषजन। इन के बाद अधिकाश प्राणियो की सेलो मे पाये जानेवाले गधक और स्फुर का नम्बर आता है। जलस्थ उज्जन यवन (आयन) शरीर के भीतर श्वसन और पाचन क्रिया के लिये बडे उपयोगी हैं। प्राणि-शरीर के भीतर अन्न के दाह मे शक्ति

वा सामर्थ्य देना और दूसरे उपयोगी मौलिको को आकृष्ट करना ओपजन का काम है। जीवित पदार्थ मे सैकड़ा पीछे सत्तर भाग से अधिक उपादान जल रहता है। सभी प्राणी, अण्डज, पिण्डज और उद्भिज्ज, प्रत्यमिनो (प्रोटीन्स) से बने हुए है जो सेलो के मुख्य उपादान है, जो निरन्तर टूटते-जुड़ते रहते है। प्रत्यमिनो मे नोपजन से कर्बन, उज्जन, ओपजन और गधक जुटे हुए है। इन पाचो मे कर्बन एक ऐसा मौलिक है जो असख्य यौगिक बनाता है। इस के लाख से अधिक यौगिक पदार्थ अब तक जाने गये है और अभी सूची पूरी नहीं हुई है।

कर्बन कई रूपो मे इस धरती पर पाया जाता है। एक तो साधारण कोयला या दीपक की या धुए की कजली है। पत्थर का कोयला भी यही चीज है पर उस मे असख्य और वस्तुए भी मौजूद है। दूसरा रूप है चमकीला काला पदार्थ जिसे ग्रेफाइट (लेखनिक) कहते है जिस मे चिकनी मिट्टी मिलाकर भाति-भाति की काली पेसिले बनाते है। तीसरा रूप है हीरा जो शुद्ध वर्णहीन चमकीला रवा होता है और बड़े दामो को मिलता है। इस मे अन्य पदार्थों की अत्यल्प अशुद्धि से भी रग आ जाते हैं। फ्रास के मोइसा नामक प्रसिद्ध रासायनिक ने प्रचड ताप और चाप के प्रभाव से कुछ कृत्रिम हीरे बनाये परन्तु वह ऐसे श्वेत नहीं बन सके और न निर्माण-व्यय इतनी सीमा के भीतर हुआ कि नकली हीरे के व्यवसाय मे सुभीता हो।

प्रत्यमिन मे गधक और हड्डी और मस्तिष्क के पदार्थों मे स्फुर विशेष महत्व रखते है। पाशुजम् के लवण प्राणशक्ति के नियमन मे बड़ा काम करते है। पत्तियों में हरापन लानेवाले पदार्थ पर्णहरिन मे मगनीस एक विशेष उपादान है। क्लोरोफिल या पर्णहरिन की रचना मे सहायक रूप से लोहा भी काम देता है। रक्त-कणों मे लोहा होता है। इसी के प्रभाव से बाह्य जगत् से रक्त-कण ओपजन वायु को चूसते रहते है। शरीर की जीवनी शक्ति की क्रियाओं मे उत्तेजना या ह्रास उपजाने मे खटिकम् के लवण बड़े महत्व का काम करते है। इस तरह जीवन की क्रिया मे शरीर के इन उपदानो के विविध कर्तव्य है जिन से जीवनी शक्ति की रक्षा और ह्रास दोनों क्रियाए चलती रहती है।

८—परिवर्त्तन-चक्र

ससार मे जीवो की उत्पत्ति, रक्षा और विनाश बराबर चलता रहता है। नये शरीर बनते हैं, बढते हैं और अपने सरीखे शरीर उत्पन्न करते हैं, और फिर नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक शरीर अपनी तृप्ति और सुख के लिये दूसरे शरीरो को नष्ट करता है अथवा नष्ट शरीरों और मलो को खा जाता है। "जीवो जीवस्य जीवनम्" "जीवै जीव अहार, बिना जीव जीवै नही।" उद्भिज्ज खनिज का भोजन करता है और उद्भिज्ज को भी खाता है। अडज और पिंडज उद्भिज्जो और अपनी जातिवालो को भी खाते हैं। स्वेदज, पराश्रित, परसत्वाद सभी तरह के प्राणियों को खाते हैं। इस प्रकार वह सत्रहो वा उन्तीसो मूल पदार्थ भी एक से दूसरे शरीर मे, और दूसरे से तीसरे मे चक्कर लगाते रहते हैं। इस तरह आहार के रूप मे यह प्रकृति-

परिविर्त्तन का महाचक्र निरतर चलता रहता है। परन्तु इस स्थूल रूप के सिवा सूक्ष्म रूप मे भी भारी परिवर्त्तन चक्र चलता रहता है। जो हवा हम भीतर ले जाते हैं वह रक्त मे घुस जाती है। उस के बदले कर्वनद्वयोषिद के रूप मे हम अपने शरीर का मल बाहर निकालते हैं। इसी कर्वनद्वयोषिद को सूर्य्य की किरणो के बल से पत्तियो की हरियाली चूस लेती है और अपने मल के रूप मे शुद्ध ओषजन अपने मे से निकालकर बाहर करती है। यह शुद्ध ओषजन हमारा प्राण है और इसे ही हम शुद्ध वायु के रूप मे सास से भीतर की ओर ले जाते हैं। ओषजन और कर्वनद्वयोषिद का यह परिवर्त्तन-चक्र निरंतर चलता रहता है और चमत्कार की बात यह है कि इन को अनुपात हमारे वायुमडल मे प्रायः निरतर समान और स्थिर बना रहता है।

नत्रजन का परिवर्त्तन चक्र इस से कम अद्भुत नहीं है। उद्भिज्ज और अन्य प्राणि-शरीर धरती मे सड़ता है और उस से नोषजन के ऐसे लवण बन जाते हैं जो उद्भिज्जो के लिये भोजन हैं। इन्हें जड़ के ततुओं के सहारे पेड़ खीच कर खा जाता है। साथ-ही जो नोषजन और ओषजन वायुमडल मे हैं जब बिजली कौदती है तब मिलकर यौगिक बनाते हैं और मेघ के जल से मिलकर नोषिकाम्ल या शोरे का तेजाब बनाते हैं। यह वर्षा के जल मे मिलकर धरती पर गिरता है और उस मे समाकर उद्भिज्जों का भोजन बन जाता है। साथ ही जो प्राणि-शरीर एक दम जल जाता है या पूर्णतया विघटित हो जाता है उस से भी नोषजन और ओषजन तथा कर्वन सभी किसी-न-किसी रूप मे निकलते ही हैं और फिर वायुमडल मे मौलिक या यौगिक रूप में लौट आते हैं। इस प्रकार वायुमडल मे सभी उपादानों का अनुपात सतत परिवर्त्तन के होते भी स्थिर बना रहता है।

समस्त पदार्थों के उपादानो के अनुपात मे स्थिरता बनी रहने के लिये भी सतत परिवर्त्तन आवश्यक सा जान पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सारे विश्व मे सम्पूर्ण पदार्थों का, एक एक परमाणु और विद्युत्कण का, एक नियमित और निश्चित रूप से नाच हो रहा है। इस नाच के ताल अनत प्रकार के हैं जिन की अवधि एक पल के कोटि-कोटि अश से लेकर ब्रह्मा की आयु तक है। सारे विश्वों की सारी सृष्टि, बड़े कड़े नियमो के बधन मे बँधकर निरतर नाच रही है। उस की गति मे तनिक भी अतर नहीं पड़ता। उस की गति अप्रमेय और अनत है। हम रसायन की दृष्टि से जिन परिवर्त्तन चक्रो की चर्चा कर आये हैं वह इस अनत अखड और अज्ञेय नाच का एक अत्यन्त छोटा, अत्यन्त सूक्ष्म, अश है। यह परिवर्त्तन चक्र जिन के दो ही उदाहरण हमने दिये हैं, प्रत्येक मौलिक तत्त्व मे वर्त्तमान है। प्रत्येक मौलिक तत्त्व वा पदार्थ इन विश्वों मे अनवरत चक्कर मारते हुए अपना अनुपात बनाये रहता है। विद्युत्कणो के टूटने और जुटने की अनवरत क्रिया मे भी यही नृत्य का नित्यत्व बना रहता है। सब को इसीलिये 'जगत्' या "ससार" या "भव-सागर" कहते हैं। सचमुच यह "जगत्" प्रकृति की रगभूमि है जहा उस की रासलीला निरतर होती रहती है।

९—परिवर्त्तन की उत्प्रेरणा

ईसा की वर्त्तमान शताब्दी के आरभ से ही रसायन-विज्ञान के परीक्षण और

परिशीलन करनेवालों ने अशुद्धियों की उत्प्रेरणा-शक्ति पर विशेष ध्यान दिया जिस से एक बड़ी ही विलक्षण बात मालूम हुई। उज्जन और ओषजन ठीक परिमाण में किसी पात्र में मौजूद हों तो उन में बिजली की एक चिनगारी से भी विस्फोटनपूर्वक संयोग हो जाता है और जल बन जाता है। परंतु यदि पूरा प्रबंध कर के दोनों वायुओं और पात्र को भी पूर्ण अनार्द्र कर दिया जाय, पूरी तौर पर सुखा लिया जाय, तो एक नहीं हजारों चिनगारियों के निरंतर चलते रहने पर भी विस्फोटन नहीं होता और जल नहीं बनता। अत्यन्त थोड़ी नमी, नाम-मात्र को, मौजूद रहे तो एक चिनगारी से विस्फोटन हो जाता है यद्यपि आर्द्रता या नमी इस विस्फोटन में बिल्कुल तटस्थ रहती है और कोई काम नहीं करती। बिल्कुल सूखी हरिन् वायु और बिल्कुल सूखी उज्जन वायु सूखे पात्र में हों और उस पात्र पर धूप भी पड़ती हो तब भी विस्फोटन नहीं होता, यद्यपि साधारण दशा में नमी नाम-मात्र को भी मौजूद रहने से सूर्य की किरणों के पड़ते ही विस्फोटन होता है और उद् हरिकाम्ल वायव्य बन जाता है। इन दोनों क्रियाओं में आर्द्रता या नमी का मौजूद रहना ही प्रेरणा करता है और दोनों उपादानों या घटकों को मिला देता है। इन दोनों उदाहरणों में आर्द्रता या जल वायव्य अशुद्धि के रूप में मौजूद है। ऐसी अशुद्धि के रासायनिक क्रिया के उत्प्रेरक होने के सैकड़ों उदाहरण हैं। अब तो रसायन-विज्ञान में अशुद्धियों की उत्प्रेरणा शक्ति या क्रिया से बड़े महत्त्व के परिणाम माने जाते हैं और इस उत्प्रेरणा क्रिया से अनेक रासायनिक उद्योगों में अब बहुत लाभ उठाया जाता है। अब थोड़े से प्लाटिनम के उत्प्रेरण के सहारे गंधक जल और ओषजन वायु का संयोग कराकर बड़े परिमाण में गंधकाम्ल बनाया जाता है। प्लाटिनम् इस काम में रत्ती भर भी खर्च नहीं होता। उत्प्रेरक पदार्थ स्वयं कोई भाग नहीं लेता, परंतु वह मैदान में मौजूद रहता है तो मानो उस की आज्ञा चलती है कि अमुक काम हो या अमुक काम न हो। वह तनिक सा होने पर भी बड़ी हुकूमत रखता है।

कर्बन के कुछ अत्यंत सूक्ष्म यौगिक होते हैं जो अणुरूप में प्रेरणा का ही काम करते हैं। खमीर नामक उद्भिज्ज से और कीटाणुओं से यह प्रेरकाणु पैदा होते हैं। खमीर का एक सेल चौड़ाई में इञ्च के तीन सहस्रांश भाग के बराबर के व्यास का होता है। इस सेल से अनेक अद्भुत रासायनिक परिवर्तन होते हैं। इस से प्राप्त प्रेरकाणुओं की अत्यंत अल्प मात्रा से थोड़े ही समय में आप-से आप भारी से-भारी रासायनिक परिवर्त्तन हो जाते हैं, जिन के सम्पन्न करने में प्रयोगशाला में बहुत ऊंची आंच और बड़ी तेज दवाओं या रासायनिक घोलों की आवश्यकता बड़ी-बड़ी मात्राओं में पड़ती। यह जीवित प्राणी तो नहीं समझे जाते किंतु जीवन के लिये अनिवार्य्य अवश्य समझे जाते हैं और किसी निश्चित ताप और दबाव की सीमाओं के भीतर ही काम करते हैं। मुंह के लाला में टायलिन ऐसा ही प्रेरकाणु है जो मंड को शर्करा बन जाने में प्रवृत्त करता है। आमाशय में पेप्सिन से इसी विधि से प्रत्यमिन को पेप्टोन बनने की उत्तेजना मिलती है। क्लोम में ट्रिप्सिन से, और पत्तियों की हरियाली में एक विशेष डायस्टेज से मंड अपने आप विलेय शर्करा में परिणत हो जाता है। इन प्रेरकाणुओं से जो-जो क्रियाएं होती हैं वह तो हमें समझ में आती हैं परन्तु आज तक किसी की समझ में नहीं आया है कि यह प्रेरकाणु हैं क्या?

१०—स्फटोद और कलोद*

अनेक लवणों के अनेक तरह के रवे देखे जाते हैं। जो नमक हम खाते हैं उस के रवे ठीक घन के आकार के होते हैं। तूतिया के रवे उस से भिन्न आकार के होते हैं। फिटकिरी के रवे और ही तरह के होते हैं। हर चीज के रवे एक विशेष आकार-प्रकार के होते

चित्र १५३—स्फटिक मणि (क्वार्ट्ज़)
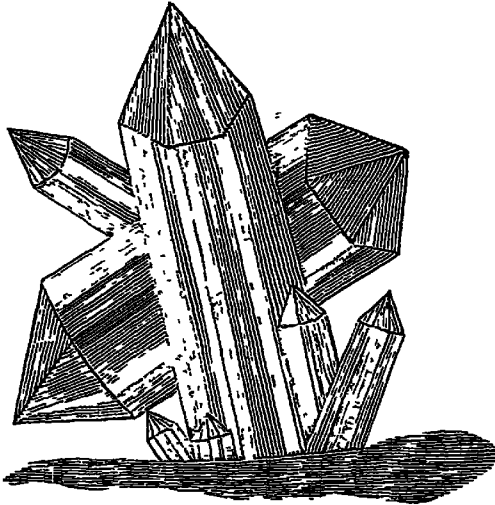
[परिषत् की कृपा

हैं। जब कभी जमाया जाय वही रूप देखने में आता है। यह पता अभी नहीं लगा है कि किसी रवे का कोई विशेष ही रूप क्यों होता है। इतनी बात जानी गयी है कि नमक के रवे में प्रत्येक सैंधकम् के परमाणु के छः-छः हरित् पड़ोसी होते हैं और प्रत्येक हरित् के परमाणु के छः-छः सैंधकम् पड़ोसी होते हैं। परमाणुओं के बीच अन्तरवकाश एक इञ्च के दस लाखवें भाग के लगभग है। हीरे का रवा चौपहला होता है जिस का हर एक पहल सम कोण त्रिभुज है। उस में त्रिभुज के सिरों पर एक-एक कर्बन का परमाणु है जो चारों ओर समान अन्तरवकाश पर चार कर्बन परमाणुओं से घिरा रहता है। इस प्रकार उस का एक-एक अणु बना होता है। उस की सब में अधिक कड़ाई और घनता का कारण उस के

---

* क्रिस्टलोइड और कलाइड।

अणु की इसी प्रकार की रचना समझी जाती है। रवो का रूप-रग सदा से मनुष्य को मोहित करता आया है। उस का आकार और उस के पहलो की काट से ही उस मे रग विरगी चमक पैदा होती है। उस के और भी अनेक गुण समझे जाते हैं जिन के कारण लोग उन्हें धारण करना शुभ या अशुभ समझा करते हैं। रवो का आकार प्रकार अभी गभीर अनुशीलन का विषय है और सभव है कि शीघ्र ही यह पता लगे कि इन आकारो की विविधता से परमाणुओ और विद्युत्कणो के सघठन और रचना का घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध ही इन्हें निश्चित् रूप देता है।

सवत् १९१८ वि० में ग्रेहम नाम के एक रसायनतत्त्वविद् ने भिल्ली का एक छन्ना बनाया। उस मे यह बात देखी गयी कि उस मे से रवेदार पदार्थों के घोल तो झट छन जाते हैं परन्तु कई बे-रवेवाले पदार्थों के घोल बहुत काल मे अत्यन्त धीरे-धीरे छनते हैं। उस ने जल्दी छन-जानेवाले पदार्थों को "स्फटोद" और अत्यन्त धीरे छननेवाले पदार्थों को "कलोद" नाम दिया। नमक शकर आदि स्फटोद के उदाहरण है। गोद अडे की सफेदी आदि "कलोद" के उदाहरण है। परन्तु एक ही पदार्थ कलोद और स्फटोद दोनो दशाओं मे पाया जाता है। इसलिये यह दोनो पदार्थ की दो दशाए समझी जानी चाहिये। कलोद घन और द्रव दोनो दशाओं मे पाये जाते हैं। कलोदो का भी अनुशीलन और परीक्षण जारी हैं। ऐसा समझा जाता है कि किसी और घन, द्रव वा वायव्य मे किसी घन के पराणुवीक्ष्य सूक्ष्म कण या द्रव के सूक्ष्म सीकर अवलम्बन या विकिरण की दशा मे जब मौजूद होते हैं तब हम उस पदार्थ को कलोद की अवस्था मे समझते हैं। शरीर-विज्ञानवाले के निकट कलोद की अवस्था बडे महत्त्व की है। जीवन-मूल, कललरस वा प्रोटोप्लाज्म कलोद की ही अवस्था मे होता है जिस मे घन और द्रव पदार्थों के सूक्ष्म कण और सीकर तरल अवस्था मे रहते हैं। जीवन और प्राणि-शरीर की अनेक समस्याए इसी कलोद विषयक खोजो से सम्बद्ध हैं।

११—दुर्लभ मौलिक पदार्थ और उन के उपयोग

अस्सी से ऊपर जो मौलिक पदार्थ अब तक मालूम किये गये हैं उन मे से आधे से अधिक ऐसे हैं जिन के नाम भी साधारण लोग नहीं जानते। फिर उन को देखने-जानने-पहचानने की बात तो बड़ी दूर की है। हवा मे पाच मौलिक वायव्य ऐसे हैं जो किसी से कभी मिलते-जुलते नही। उन की मात्रा भी वायुमडल मे इतनी कम है कि वह दुष्प्राप्य हैं। उन मे से हीलियम (हिमजन) इतनी हलकी वायु है कि हवाई जहाज मे उज्जन की जगह भरी जा सकती है। उज्जन वायुमडल के ओषजन मे बडी भयानकता से जल जाती है, इस से हवाई जहाज बहुधा जल जाया करते हैं। जितनी चाहिये उतनी मिले तो हिमजन वायु में तनिक भी जोखिम नहीं है, परन्तु वायु से अलगाकर बड़ी मात्रा मे इस का इकट्ठा करना अत्यन्त व्ययसाध्य है। अमेरिका मे टेक्सास की खान मे से यह बहुतायत से युरोपीय महायुद्ध के अन्त में उपलब्ध हुई थी। परन्तु इस की दुष्प्राप्यता साधारण उपयोग मे बाधक है।

इसी तरह लाथानम् आदि बहुत सी दुष्प्राप्य धातुएं हैं जिन का अनुशीलन करके वैज्ञानिकों ने अच्छे अच्छे उपयोग निकाले हैं। सब से उत्तम काम जो इनसे लिया जा सका है वह है प्रकाश। ईसाकी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त के लगभग वेल्सबग्ग ने परीक्षा से यह पाया कि यदि लाथनम जैसी दुर्लभ धातु के किसी घोल में रुई की जाली तर करके सुखा ली जाय और फिर गैस की तेज आंच में उसे जला दिया जाय, तो उस समय धातु का ओषिद तेज आंच में लाल होकर बड़ी तेज रोशनी देता है। इस विषय में तब से अब तक बहुत सुधार हुए। अब तो चीना घास की जाली को निन्नानबे भाग थोरिया और एक भाग सीरिया से सपृक्त करके जलाते हैं। उसमें क्रिया किस प्रकार होती है यह तो अभी नहीं मालूम हुआ है, परन्तु रोशनी बहुत तेज होती है।

स० १९५४ वि० में नर्न्स्ट ने पता लगाया कि इन दुर्लभ मिट्टियों का तार या पतली धज्जी बना ले तो यद्यपि साधारण दशा में वह बिजली का चालक नहीं है तथापि आंच देने पर चालक हो जाती है। इस रीति से बिजली के लम्प बनने लगे। इसमें भी सुधार हुए, अब कर्बन, आस्मियस्, टंग्स्टेन आदि के तार लगाये जाते हैं। निदान यह दुर्लभ धातुएं अब बिजली के लम्पों में घर-घर काम में आ रही हैं।

बाईसवा अध्याय

रासायनिक के चमत्कार

१—रासायनिक की शक्ति का विकास

स्वाभाविक दशा मे प्राणी सर्वथा प्रकृति के भरोसे रहता था। उस के भोजनाच्छादन और छाया के लिये जो साधारण सामग्री प्राप्त थी उसी पर सतोष करता था। भोजन के लिये कच्चे दाने फल-फूल-मूल, छोटे शरीरो के कच्चे मास, आच्छादन के लिये पत्ते, खाल आदि और छाया के लिये वृक्ष और गुफाएँ काफी थीं। परन्तु मनुष्य ने अपनी बुद्धि के विकास से, जो सभी प्राणियो से बढी चढी थी पहले घास-फूस की छाया कर के घर, रेशो को बटकर और बुनकर कपडे, और अग्नि का आविष्कार कर के पकाकर भोजन बनाये। आग पैदा करना मनुष्य का सब से बड़ा चमत्कार था। इसी ने मनुष्य को रासायनिक बनाया, क्योंकि ईधन जलाकर उस से काम लेना मनुष्य की अपनी इच्छा और बुद्धि से की हुई प्रायः पहली रासायनिक क्रिया थी। इस के बाद तो उस ने न केवल भोजन पका-
सीखा बल्कि मिट्टी के बरतन बनाना, कच्ची धातुओ से पक्की धातुएँ निकालम से आबे से
औजार हथियार गहने बरतन तथा इमारत आदि की सामग्री बनाना, पको देखने-जानने-
वस्तुओ का उबालना, मिश्रण तैयार करना, यौगिक बनाना, ये ऐसे हैं जो किसी से
मौलिको म अलगाना आदि सभी क्रियाएँ अग्नि के आविष्कार से पे है कि वह दुष्प्राप्य
सौ बरसो के पहले तक मनुष्य ने व्यावहारिक रसायन की सैकड़ो आवश्हाज मे उज्जन की
जिन की मजबूत नींव पर ही आधुनिक रसायन का महल खड़ा किया ता से जल जाती
इमारत खड़ी है उस की कल्पना स्वप्न मे भी नींव भरनेवाले नही कर सनी मिले तो हिम-
चालीस-पचास बरसो मे सभव है कि रगरूप सजावट और नकशे मे आत्रा मे इस का
बदल जाय कि हमारे सामने जो नकशा मौजूद है उस से बिल्कुल न मिल सके बहुतायत से

मनुष्य ने पहले प्रकृति से ही अपने पसन्द की चीज़े तैयार करानी शुरू। साधारण
और बागबानी कर के उस ने भाँति-भाँति के नाज और फल-फूल आदि उपजाये।

पाल डालकर कृत्रिम विधि से फलों का पकाना सीखा। दही जमाना, पनीर बनाना, शराब और सिरका बनाना, अचार डालना आदि सीखा। इसी प्रकार उस ने अनेक धातुओं से दवाएँ बनायीं। निदान जो वस्तुएँ उसे प्रकृति में तैयार मिलीं या जिन के तैयार करने के साधन प्रकृति मे मिले उन से काम लेकर उस ने भाँति-भाँति की वस्तुएँ तैयार कीं। कीड़ो से रेशम, पशुओं से ऊन, घासो और पौधो से रेशे लिये और काम में लाया। मधु-मक्खियो से शहद इकट्ठा कर उस के स्वाद लेने लगा। पेड़ो के छालों और रसो और आसवों से गन्दा बिरोजा, रबड़, गोंद, लाख आदि पदार्थ लेकर काम मे लाने लगा। फूलो, छालों, पत्तियो छिलको और खनिजो से भाँति-भाँति के रग निकालने लगा। इस तरह और आगे बढ़कर उसने गन्ने चुकन्दर आदि को निचोड़ कर मीठा रस और शक्कर निकाला। उस ने बीजो से भाँति-भाँति के तेल निकाले और पक्षियो और पशुओं की चर्बी से भी चिकनाई निकाल कर काम में लाया। उस ने पृथु बनकर पृथ्वी रूपी गऊ के चारो थन अच्छी तरह दुहकर अनन्त रत्न और धन निकाल लिये और आज भी उसी उद्योग में लगा हुआ है।

उस की रत्नलिप्सा घटी नही। उस ने रासायनिक सिद्धातो का अनुशीलन किया और जितने पदार्थ उस के हाथों पड़ सके और उस के करणो और उपकरणो के काबू में आये सब की ओत-प्रोत भाव से पूरी परीक्षा की, प्रकृति की शक्तियो के काम करने के नियमों की जाच की, उन का प्रयोग करके यौगिको को तोड़-फोडकर देखा और मौलिको को जोड़-जोड़कर भाँति-भाँति के यौगिक बनाये। उसने रसायन के मूल तत्वो के सामान्य और विशेष गुणो का ऐसा विश्लेषण किया कि उस की अदालत के सामने एक एक परमाणु हाजिर हो हो कर इजहार देने लगा। उस ने इस विश्व की ईंट ईंट का पता लगा लिया। एक एक का स्वभाव जाच लिया। अब वह कागज पेंसिल लेकर बैठता है और चतुर्भुज कर्बन के चौपहले रूप की कल्पना कर के उस की भुजाओं में विविध मौलिको का मेल कराकर, उन मे भी तरह-तरह के जोड़-तोड़ करके, कागज पर ही कर्बन के यौगिको की रचना करता है और फिर अपनी प्रयोग शाला में जाकर उस को वास्तविक जगत् में पैदा करके बोतलों में भरकर रख लेता है और कल्पना और नियमो के अनुसार जो गुण उस यौगिक में आरोपित करता है वही गुण उस वास्तविक यौगिक मे पाये जाते हैं। सचमुच आज वह ब्रह्मा और विश्वामित्र की तरह नयी सृष्टि करता है और जगत् को बिलकुल नयी चीजे देता है जो ब्रह्मा ने नहीं रची थीं।

सौ बरस से कुछ ऊपर हुए कि लोग ऐसा समझते थे कि शक्कर, सिरका, शराब, यूरिया, चरबी, तेल आदि पदार्थ जो हम को चेतन ससार से ही मिलते हैं हम कृत्रिम रीति से नहीं बना सकते। हम केवल जड़ ससार की वस्तुएँ ... बुरादे से उसे ... ले
१८८५ वि० में वूलर नामक एक रासायनिक अमो... करनेवाला पदार्थ भी इसी से बनता है
को गरम कर रहा था। वह एकाएकी यूरिया ... है।
मिलता है जो चेतन जगत् के शरीर में जीवन की क्रि...
प्रकार का पहला परिवर्तन था। इस परिवर्तन ने मनुष्... ा प्रतीकार
दिया। अब यह सिद्ध हो गया कि जड़ जगत् से मिल... ईंधन की तरह जला डालते हैं। इन

चेतन जगत् के शरीर के द्वारा उपजे हुए पदार्थ भी कृत्रिम विधियो से बनाये जा सकते हैं। फिर तो ऐसी और वस्तुओ के निर्म्माण की बराबर कोशिशे होने लगी और रसायनवेत्ता ब्रह्मा की होड़ करने के लिये प्रस्तुत हो गया। अब शक्कर, सिरका, शराब, चरबी, तेल, वानस्पतिक खटाइया आदि सभी चीजे वह कृत्रिम तैयार करने मे समर्थ हो गया।

२—कोयले से हीरा

भारत मे नील के सैकड़ो गोदाम और कारखाने थे और आज भी बहुतेरे मौजूद हैं। नील जिन पौधो से निकाला जाता है उन की खेती होती है, परन्तु अब उस का रोजगार नष्टप्राय है, क्योंकि कृत्रिम नील बहुतायत से तैयार होता है। इसी तरह फ्रास में पहले मजीठ की खेती बहुत हुआ करती थी। परन्तु जब से "अलीजरीन" रग तैयार होने लगा इस खेती का फ्रास मे अन्त हो गया। इसी प्रकार जितने तरह के रग पहले बरते जाते थे उन के बदले के रग तथा उन के सिवा हजारो और तरह के रग कोलतार वा अलकतरे से निकाले गये और पुराने रगों का रवाज उठ गया।

पत्थर का कोयला जो पहले केवल आँच देता था, रासायनिको के प्रयोगो में आया। उन्हांने उसे बन्द मूषा यत्र मे तेज आच दी। उस मे से जलनेवाले वायव्य निकले जो रोशनी देने के काम मे आने लगे। इस के साथ ही कोलतार या धूना और पकाया हुआ कोयला जिसे "कोक" कहते हैं, निकलने लगे। कोलतार लकड़ी और धातु पर लेप करने से कीड़ो और मुरचे से रक्षा करने लगा और कोक अत्यन्त तेज आच देने के काम मे लाया जाने लगा। परन्तु रासायनिक इतने से ही सतुष्ट न हुए। उन्हांने वायव्यो की परीक्षा की और यह मालूम किया कि वह भाँति-भाँति के अनेक वायव्यो के मिश्रण हैं। उन्होंने कोलतार को देग मे चढाकर आच दी और खौलाकर उसे भभके से चुलाया। उस मे से अनेक प्रकार की वस्तुएँ निकलीं। इनके हम पॉच विभाग करेगे। (१) अमोनिया, (२) नफता, (३) क्रियोसोट (४) अर्थासीन तेल और (५) पिच या कोलतार की काली कीचड़ जिसे तारकोल कहते हैं और जो दीमक से बचाने को पोतने के काम मे लायी जाती है। नफता को भी देग मे चढाकर भपके से खींचा तो बानजावीन, तोलवीन, घोलक नफता और कार्वोलिकाम्ल मिला। क्रियोसोट से नफतलीन मिला जिसे भूल से फुनेल की गोलिया कहते हैं, परन्तु जो कपड़ो को कीड़ो से बचाने और कृमिनाशक होने के सिवा सैकड़ो रगों एव पदार्थों का पिता है। अन्थ्रासीन ... अली-
सौ ... तक मनुष्य ... पिता नहीं है बल्कि गधकाम्ल के सयोग से सैकड़ो
जिन की मजबूत नींव पर ही आधुनिक रसा- कार्वोलिकाम्ल तो स्वय असख्य यौगिको और
इमारत खडी है उस की कल्पना स्वप्न मे भी सार के पहले के सभी रगो की प्रतिष्ठा उठ
चालीस-पचास बरसो मे सभव है कि रगरूप स्थान ले लिया। कोलतार से निकलनेवाले पदार्थों
बदल जाय कि हमारे सामने जो नक्शा ससार के लिये सवत् १९७१ वि० तक अकेले जर्मनी
मनुष्य ने पहले प्रकृति से ही आ- लिये ससार के लिये सामग्री जुटाने लगा था, इतने
और बागबानी कर के उस ने भाँति-भाँ-

मे युरोपीय महायुद्ध छिड़ गया। इन रगों मे केवल विविध प्रकार के वस्त्रों के रगने का ही गुण न था। अनेक रग दवाओं के गुण रखनेवाले हैं। आख आयी हो तो गुलाबी बुकनी मलना अपने ही देश मे बहुत गुणकारी सिद्ध हुआ है। "फ्लेवीन" नामक रग कृमिनाशक है और फोड़ो पर लगाया जाता है। इन्ही रगों के सहजात पदार्थ अनेक दवाइया भी कोलतार से निकली हैं। इनमे से अधिकाश गुणदोष दोनो रखती हैं। "अस्पिरिन" "फिनासिटिन" "सलफोनल" "वीरोनल" आदि इसके उदाहरण हैं। अनेक वस्तुए इसी कोलतार से कृत्रिम भी बनी हैं। परन्तु कृत्रिमता से कोई यह न समझे कि घटिया वस्तुए होगी। कोलतार से बनी कस्तूरी मृगमद-कस्तूरी से रत्ती भर भी कम नही होती। बनावटी रूहे-गुलाब असली रूहे गुलाब से किसी बात मे कम नही होता।

स्वाभाविक और बनावटी पदार्थों मे इतना ही अतर होता है कि दोनो भिन्न विधियो से तैयार होती हैं परतु तैयार हो जाने पर रासायनिक दृष्टि से दोनों समान होते हैं, वल्कि शुद्धता की दृष्टि से कृत्रिम वस्तु अधिक शुद्ध होती है।

स्वाद की दृष्टि से भी कोलतार से अनेक अभूतपूर्व स्वादिष्ट पदार्थ निकले हैं। यो तो कृत्रिम शर्करा की अष्टोत्तर-शतवाली माला बन चुकी है, परतु सकरीन नाम की चीज, जिस का आविष्कार सयोगवशात् अमेरिका के इरा रेमसेन नामक रासायनिक के हाथो हुआ इसी कोलतार से निकली, जो साधारण शर्करा से कई-सौ गुनी अधिक मीठी होती है और जो वस्तुतः शकर नही है और जिसे वह रोगी भी सेवन कर सकते हैं जिन को शकर से परहेज है।

पेड़ो के गोंद से मनुष्य भाति-भाति के काम लेता है। रबड़ भी कुछ पेड़ो का गोद है। इस की सैकड़ो तरह की चीजे बनती हैं। गट्टा परचा दूसरी तरह का गोद है। गदा-विरोजा चीड़ का गोद है। परतु गोद भी कृत्रिम बनने लगा है। आलू के मड से रबड़ बनाया गया है। यद्यपि अभी बड़े पैमाने पर नही बनता तथापि कोयले और चूने के योग से कृत्रिम रबड़ बनाने मे सस्ता पड़ेगा और सभव है कि आगे इस का रोजगार जोरो से बढे।

रासायनिक आज जादूगर का काम कर रहा है। नकली घी, नकली मयदा, नकली शकर वह बात-की-बात में तैयार करने लगा है। अब मिठाइयो के बनाने मे उसे न तो गाय पालने की जरूरत है और न खेती करने की। वह कोयला पानी के सहारे सब कुछ कर सकता है। उस ने लकड़ी से कागज, बरतन, झाड़न, प्याले, रस्सियाँ और कई और वस्तुओं के योग से नकली रेशम तक बना लिया है। लकड़ी के बुरादे से उत्तम-से-उत्तम तख्ते और सेलूलोइड तक बनता है। बड़े-से-बड़ा विस्फोट करनेवाला पदार्थ भी इसी से बनता है जो वर्त्तमान काल के महायुद्धों मे काम आता है।

३—नोषजन के ह्रास का प्रतीकार

परतु लकड़ी और पत्थर का कोयला तो हम ईंधन की तरह जला डालते हैं। इन

मे नोपजन के बहुत से यौगिक जल जाते हैं और शुद्ध नोपजन वायुमडल मे मिल जाती है। मुर्दों के जलने से भी इसी तरह बहुत सा नोपजन निकलकर वायु मे मिल जाता है। इस तरह वायु मे नोपजन की मात्रा बढ जाती है। परन्तु नोपजन बडा अकर्म्मण्य है। साधारण दशा मे वह किसी और मौलिक पदार्थ से मिलता-जुलता नही। परतु प्राणिमात्र को बड़ी अच्छी मात्रा मे सयुक्त रूप मे नोपजन चाहिये। सास लेने से नोपजन शरीर मे जाता है परतु बिना मिले ज्यो-का-त्यों लौट आता है। पत्तिया और पौधे नोपजन को वायु मे से ले नही सकते। फिर नोपजन इन के शरीर मे कैसे प्रवेश करता है? पौधे लकड़ी आदि से तथा जानवरो की लाशों से धरती मे नोपजनीय पदार्थ अलग होते हैं। अत्यत बारीक कीटाणु इन पदार्थों को सड़ाकर नोषेत उत्पन्न करते हैं। विष्ठा और मूत्र से भी नोपजनीय पदार्थ धरती मे समाते हैं। इन्ही से पौधे उगते-बढते और फूलते-फलते हैं। इन्ही पौधो से असख्य पशु अपनी तृप्ति करते हैं। और पशुओ और पौधो से मनुष्य समेत अनेक प्राणी तृप्त होते है और नोपजन को आत्मसात् करते हैं। परतु जितना नोपजन हम जलाकर अलग करते हैं, उस की मात्रा बड़ी है। बारूद द्वारा भी नोपजन का एक बड़ी मात्रा वायु मे मिल जाती है। यह देखकर कुछ काल हुए मनुष्य जाति की चिन्ता बढ गयी थी कि नोपजन धीरे-धीरे वायु मे बढ जायगा तो नोपजन के दुर्भिक्ष से पीड़ित शरीरो का अन्त हो जायगा। इस चिन्ता का निवारण अन्तरिक्ष देश मे बिजली किया करती है। जब-जब बिजली कौंदती है, एक विशाल-काय विद्युल्लेखा वायुमडल मे एक मेघमाला से दूसरी मेघमाला तक चली जाती है। इस वेगवती गति से वह अपने मार्ग की हवा पर विचित्र प्रभाव डालती है, नोपजन और ओपजन को इतना उत्ताप देती है कि दोनो सयुक्त हो जाते हैं और मेघ के जल से मिलकर नोपिकाम्ल बनाते हैं। वर्षा के जल से यह अम्ल हलका घोल होकर धरती मे समा जाता है और पौधो को पुष्ट करता है। वैज्ञानिक ने भी इसी विधि से बिजली की चिनगारियाँ चलाकर मध्यवर्त्ती वायु को सयुक्त करके नोषिकाम्ल बनाना आरभ किया। इस विधि से बड़े परिमाण मे वायव्य नोपजन को सयुक्त किया जाने लगा।

(जन ... (४) अ ... तब खेतो मे पौधो के जो अश खड़े रह जाते है उन्हें जोत ... तारकोल ... काट लेत हे दीमक। उस मे वह सड़कर मिल जाता और खाद बन कर हल के द्वारा धरती मे मिला देते है ... खिलाते खिलाते घाटा आ जाता है। परतु बारबार इस तरह खेत की पूँजी से ही खेत को खिलाते खिलाते घाटा आ जाता है। खेत कमजोर हो जाते हैं। उन की सहायता के लिये शोरा डालने की विधि है। स० १९७० वि० मे अमेरिका के सयुक्त राज्यो ने जर्मनी के शोरे के खेतो से दो करोड़ साढ़े बहत्तर लाख मन शोरा खरीदा था जिस के लिये वहा के किसानो ने साढे पाच करोड़ रुपये दिये। रुपये मे साढे पाच मन के अत्यत सस्ते भाव पर खरीदकर भी कितनी रकम देनी पड़ी। परतु शोरे के खेत अक्षय नही हैं। उन के खतम हो जाने पर क्या होगा? इसी समस्या को सुलझाने के लिये कृत्रिम बिजली से नोपजन का सयोग किया जाने लगा। स्कन्दीनवीय देश मे जल-बल की प्रचुरता के कारण बिजली सस्ती पड़ती थी। इसलिये यह विधि वहा बड़े परिमाण से चल पड़ी।

परन्तु जर्मनी मे जल बल की प्रचुरता न होने से एक और विधि बरती गयी। यहा

कुछ दुर्लभ धातुओं के उत्प्रेरणा-बल से काम लिया गया। विशुद्ध नोपजन और विशुद्ध उज्जन का सयोग पिनाकम् या अश्मिम् जैसी धातुओं की उपस्थिति में बहुत भारी परिमाण मे निरन्तर होते हुए अमोनिया उत्पन्न किया जाता है। फिर प्लाटिनम की उत्प्रेरणा से अमोनिया का परिवर्त्तन नोषिकाम्ल मे हो जाता है। इस तरह खाद बनाने की दूसरी विधि जर्मनी मे बरती जाती है। वायु से कितने काम लिये जाते हैं, सोचकर बुद्धि चकरा जाती है। वायु से विशुद्ध नोपजन इसलिए निकालते हैं कि खाद बनावें। ओपजन इसलिये निकालते हैं कि इजिनियरी के कामो मे असीटलीन के साथ उत्तप्त करके गलाने और जोड़ने के लिये प्रचड आच पैदा करे। अब बचा हुआ अर्गन और नीयन बिजली की रोशनी के कुमकुमो मे भरे जाते हैं। इन मे यदि हवा भरी जाय तो तार तुरत जल जायें और शून्य करने मे कठिनाई और दोष आते हैं। और अरगन आदि भरने से न तो तार जलता है और न कोई दोष है और न कठिनाई। निदान हमारे वायुमडल के कर्म्मण्य, उदासीन और अकर्मण्य सभी घटक बड़े पैमाने पर हमारे उद्योग-धधो मे काम आते हैं।

हमारे रासायनिक कूड़े से कुवेर का धन निकाल लेते हैं। कोयले सी निकम्मी चीज से उन्होने कितनी असख्य अनमोल वस्तुए निकाली और अरबो रुपयो का नया रोजगार ढूँढ निकाला। पौधो के छिलको से शराब निकाली। लकड़ी से सैकड़ो अनमोल चीज़े बनायीं। मिट्टी के तेल से बड़े-बड़े काम लिये। तेलहन की खली फेकते थे पर उस के भी सदुपयोग निकाले। कपास के बीज जिन्हें वह फेक देते थे पेले गये और खाने योग्य तेल निकला। उस की खली मवेशी के लिए उत्तम भोजन सिद्ध हुआ। उसी से खाद का काम लिया। लिखने का कागज बनाया। पुटीन और साबुन और वार्निश भी तैयार किये। यहा तक कि बे-धुएँ की बारूद भी बनायी। टमाटर के बीज से उस का पचमाश खाने लायक तेल भी निकाला। रासायनिक की निगाहो मे ससार मे कोई वस्तु व्यर्थ और फेकने योग्य नहीं है। वह धुएँ मे हीरा, धूल मे रत्न और रेत मे सोना खोज निकालता है। वह इस समय विधाता की होड़ कर रहा है और विश्वामित्र की तरह नयी सृष्टि की रचना मे लगा हुआ है।

सातवां खंड

परिस्थिति-विज्ञान

तेईसवां अध्याय

सागर-विज्ञान

१—जल खारी क्यों है ?

धरती के रचना के आरंभ में किसी युग में सारा स्थल छिछले जल से ढका सा था। न पहाड़ बने थे और न समुद्र। और वह जल भी था अत्यन्त तप्त और भारी। बादल भी जलते हुए जल की वर्षा किया करते थे। इसी समय जल की बहुत बड़ी मात्रा उत्तप्त धरती के गर्भ में भी समाती जाती थी और अनेक स्थलों में उबलते हुए जल के फौवारे भी फूटे पड़ते थे। करोड़ो बरस तक यह तमाशे होते रहे, धरती का ऊपरी चिप्पड़ धीरे-धीरे ठंढा होता रहा, कहीं सुकड़ता था तो कहीं तेज आँच से फैलता था। इसी सुकड़ने और फैलने की क्रिया से धरती का ऊपरी तल ऊँचा-नीचा होता गया पहाड और मैदान बनते गये। कहीं-कहीं धरती का ऊपरी तल उभरता गया और सुकड़ता गया और कहीं-कहीं फैलता गया और धँसता गया। यह सब क्रियाएं हजारों मीलों के फैलाव में, बड़े विस्तृत देश में बहुत दीर्घकाल तक बराबर होती गयीं जिन से पहाड़ बने, घाटियां बनीं और समुन्दर बने, धरती के धसते जाने से गहरे महासागर बन गये और उधर नये बने पहाड़ों पर चट्टानें पानी के जमकर फैलने से चिर गयीं, फट गयीं, चूर-चूर हो गयीं और रेते और मिट्टी बनकर पानी के साथ बहीं। पानी की धारा ने चट्टानों को तोड़-फोड और विशाल वृक्षों को बहाकर घाटियों के भीतर से अपनी राह बनायी और गहराई को रेते और मिट्टी और पत्थर के रोडों से पाटकर मैदान बनाया।

समुद्र और मैदान के फैलाव में पानी के ऊपरी तल का सूरज की गरमी से भाप बनता रहना निरन्तर जारी है। बादल बनते रहते हैं और जितना पानी भाप के रूप में ऊपर जाता है सब ओस, बूंदे, ओले बनकर बरस जाता है और बह-बहकर सोतों, नालों की राह नदियों और नदियों की राह समुन्दर में जाता है। यह जलवहन-चक्र निरन्तर जारी रहता है जिस से समुद्र देखने में न तो घटता है न बढता है वरन् अपनी मर्य्यादा बनाये रहता है।

जो पानी धरती पर बरसता है वह तो प्रायः घन पदार्थों से शुद्ध और निर्मल होता है परन्तु ज्योंही धरती पर गिरता है त्योंही घुलनेवाले घन पदार्थ उस में मिलने लगते हैं। चट्टानों के अनेक स्तरों में होता हुआ, ऊपरी और भीतरी नमकों को घुलाता हुआ नदी की धाराओं में भांति-भांति के नमकों को घोलता हुआ समुद्र में पहुँचता रहता है। अरबों बरस से इसी तरह पहाड़ों के और चट्टानों के घुलनशील अंश घुल-घुलकर समुद्र के भीतर आते रहे हैं। समुद्र में इस तरह नमक का अंश बराबर बढ़ता रहा है। भाफ बनकर जब पानी उड़ने लगता है तब अपने में घुले हुए नमक को जल में ही छोड़ जाता है, क्योंकि ठोस पदार्थ भाफ में नहीं मिल सकते। इस तरह समुद्र में चट्टानों से बराबर नमक की आमदनी अनेक युगों से होती रही है परन्तु खर्च न होने के कारण समुद्र में नमक बराबर घुलता रहा है और बढ़ता आया है। आरंभ में स्थल से यह नमक बड़ी मात्रा में आता रहा होगा, परन्तु ऊपरी तल का नमक ज्यों-ज्यों घटता गया त्यों-त्यों जल के द्वारा समुद्र में पहुँचनेवाले नमक की मात्रा भी घटती गयी। समुद्र का जल सर्वत्र इन्हीं कारणों से अत्यन्त खारी है। इस समय औसत सामुद्रिक जल में प्रत्येक सौ मन में लगभग साढ़े तीन मन के विविध नमकों की मात्रा आंकी जाती है। यह औसत है। वास्तविक बात यह है कि समुद्र के भिन्न-भिन्न भागों की लावण्यता विविध सान्द्रताओं की पायी गयी है। जहां-जहां शोषण अत्यधिक होता है वहां लवण की मात्रा भी अत्यधिक होती है। लाल समुद्र और ईसा के पवित्र देश का मृत समुद्र और राजपूताने का साम्भर झील इस बात के कुछ उदाहरण हैं। जहां वर्षा बहुत होती है वहां सामुद्रिक लावण्यता अत्यन्त कम होती है। समुद्र की औसत लावण्यता रुपये में बारह आने से अधिक साधारण खाने के नमक के कारण होती है। शेष चार आने से कम भाग में मगनीस हरिद सब से अधिक है। इसी के बराबर की मात्रा में मगनीस खटिकम और पाशुजम के गंधेत हैं। खटिक कर्बनेत, मगनीस कर्बनेत, मगनीसब्रोमिद और कोई-कोई और लवण अत्यन्त थोड़ी मात्रा में हैं। यह घुलित अंश का लेखा है। वैसे तो शंख सीपी आदि अनन्त प्राणियों के शरीर की रचना में खटिक-कर्बनेत और स्पञ्ज आदि की देह में रेते की मात्रा अत्यधिक है। स्थलचर और नभचर प्राणियों के शरीर में भ्रमण करनेवाले रक्त में भी लावण्यता या लवणों की मात्रा समुद्र जल के ही अनुरूप है, बल्कि वैज्ञानिकों का कहना है कि यह अनुरूपता इस बात का प्रमाण है कि समस्त प्राणियों की सृष्टि का आरम्भ समुद्र के भीतर ही हुआ है और हमारा यह रक्त भी उसी समुद्रजल (नार) का ही अंश है।

२—गहराई गरमी और दबाव

इस पृथ्वी का सम्पूर्ण ऊपरी तल का क्षेत्रफल, लगभग उन्नीस करोड़ सत्तर लाख वर्गमील है। इस में से तीन चौथाई से कुछ कम और एक तिहाई से उतना ही अधिक अर्थात चौदह करोड़ वर्गमील सागरों समुद्रों और झीलों का तल है। स्थलचर मनुष्य समझता है कि सागर का जलतल सीधा-सपाट दर्पण-सा होगा, न कहीं ऊंचा न कहीं नीचा

परन्तु वास्तविक तथ्य यह नहीं है। अनेक कारणों से जलतल में जगह-जगह ऊँचा-नीचा पड़ा हुआ है। महाद्वीपों के और उन में के पहाड़ों के खिंचाव से कहिये, या देशमात्र की वक्रता के कारण कहिये, सागरों का जलतल मध्य में गहरा होता है जिस में किसी महासागर को एक छिछले प्याले के अनुरूप अनुमान किया जा सकता है। हिमालय के कारण हिन्द महासागर का मध्य जलतल बहुत धँसा हुआ है। यह ऊपरी जलतल की चर्चा है। जल की गहराई के भीतर नीचे की तली की बात नहीं है। तली की गहराई जानने के लिये तो हजारों परीक्षाएँ की गयी हैं। हिसाब लगाया गया है कि समुद्र की गहराई ढाई मील के औसत में है। महासागर की तली के छठे अंश के लगभग तो किनारे से लेकर एक हजार पोरसों तक की गहराई का होगा। आधे के लगभग दो से

चित्र १४४—सागर-तल बड़ी गहराई के नीचे का दृश्य

लेकर तीन हजार पोरसों तक होगा। सागरों और समुद्रों में बहुत से ऐसे गड्ढे और नालियाँ और बिलें और सुरंग भी हैं जो तीन हजार पोरसों से भी अधिक गहराई के हैं। प्रशान्त महासागर के वायव्य कोण पर सवा पाँच हजार पोरसों से भी अधिक गहरे गर्त्त हैं अर्थात् छः मील से भी अधिक गहरे। कहीं हिमालय का गौरीशङ्कर शिखर जो संसार की सब से ऊँची चोटी है, इन गर्त्तों में डाल दिया जा सके तो ऐसा डूबे कि उसके ऊपर आधे मील से अधिक ऊँचाई तक जल रहे, अर्थात् उस का पता लगाने को आधे मील से अधिक गहराई तक गोता लगाने की जरूरत पड़े। इस प्रकार गौरीशङ्कर शिखर की ऊँचाई से लेकर प्रशान्त

महासागर की अधिकतम गहराई तक इस धरती की ऊँचाई-नीचाई की हद है। यह हद कुल साढे ग्यारह मील है। इसी हद के भीतर अडज, पिडज, उद्भिज्ज और स्वेदज सभी तरह के प्राणी इस ससार मे रहते हैं।

जल की ऐसी प्रचड गहराई के भीतर सूर्य के ताप की पहुँच बहुत थोड़ी दूर तक है। ढाई सौ पोरसो से अधिक सूर्य की किरणे नही जाती। इस तरह जल का अधिक भाग ठढा ही रहता है। जो गरमी ऊपरी तल पर बढती है वह भाफ बन कर पानी के उड़ते रहने से ऊपरी तल पर ही खर्च होती रहती है। उस के नीचे जाने की नौबत नही आती। यदि ऊपरी तल अधिक ठढा हो जाय तो भाफ का एक आवरण बन कर उस की बिखरनेवाली गरमी को रोक रखता है। यद्यपि ऊपरी तल पर कही कम और कही अधिक गरमी होती है तो भी यह तारतम्य बहुत थोडी गहराई पर जाकर समाप्त हो जाता है, क्योंकि जल गरमी का बुरा चालक है। सागर-विज्ञान के विशेषज्ञ सर जान मरेने हिसाब लगाया है कि पाच सौ पोरसो के नीचे तापक्रम प्राय: ४० फ० से कुछ कम ही रहता है। इस तापाश पर पानी सबसे अधिक घनी दशा मे होता है इसलिये दक्षिणी ध्रुव की ओर से हिमसागर का अत्यत ठढा जल अपने भार के कारण तली मे से ही धीरे-धीरे रेंगता हुआ सारे सागर मे फैल जाता है। यह जल प्राय: बरफ के लगभग शीतल होता है। इसके गरम होने की कभी नौबत नही आ सकती। निदान गहरे समुद्र मे शाश्वत शीत का साम्राज्य है।

जब एक लकडी के टुकड़े मे बोझ बाँध कर समुद्र मे गहराई मे पहुँचाते है और फिर उसे ऊपर खीच लेते हैं, तो बोझ से अलग कर लेने पर वह लकड़ी अब पानी पर नही तैरती। कारण यह है कि लकड़ी के सूक्ष्म रध्रो मे से वायु निकल भागती है और दबाव पाकर पानी भर जाता है। लकड़ी भारी हो जाती है और तैर नही सकती। इस मे यह पता लगता है कि गहराई के भीतर पानी का दबाव बहुत है। हिसाब से पता चलता है कि ढाई हजार पोरसो के नीचे की गहराई मे प्रत्येक वर्ग इच पर अठहत्तर मन के लगभग दबाव है। इतने भयकर चाप पर भी ऐसी गहराई मे अत्यत कोमल और निर्बल शरीरवाले पदार्थ वहाँ सहज मे ही पनपते हैं और रहते हैं। यह बडी विचित्र बात मालूम होती है परतु अचरज का कोई कारण नही है। पानी का भारी दबाव चारो ओर से अणुओ को अत्यत अधिक सटा देता है। खुला बरतन अगर बहुत गहराई मे डाल दिया जाय तो वह तुरत पानी से भर जाता है और गहराई का उस पर कोई असर नही दीखता। अब एक बोतल लीजिये जो बिल्कुल भरी नही है मगर काग कसा हुआ है। उसे गहराई मे डालिये तो या तो काग उसके भीतर घुस जायगा या बोतल दब कर पिचक जायगी। भौतिक विज्ञानी श्री बुकानन् ने सन् १८७३ मे चलेजर नामक जहाज से पौने अडतीस सौ पोरसो की गहराई मे दो तापमापक यन्त्र उतारे थे। वह बिल्कुल चिपके हुए वापस आये। तब उन्होंने एक काच की नली ली जो दोनो ओर बन्द थी। उसे कपड़े मे लपेटा और फिर बेलन के आकार के ताँबे के पात्र मे उसे बद कर दिया। इसके दोनो सिरो पर पानी जाने के लिये छेद बने हुए थे। यह डब्बा तीन हजार पोरसो के नीचे डाला गया और फिर निकाल लिया गया। जान पड़ता था कि इस डब्बे पर जहाँ काँच की बन्द नलिका रखी हुई थी वहाँ घन से पीटा गया है। काँच की

नलिका तो भीतर ही-भीतर ऐसा चूर्ण बन गयी थी कि बारीक बरफ की धूल की तरह लगती थी। सर जान मरे ने इस घटना की व्याख्या इस तरह की कि जान पडता है कि भीतरी नली डूबते समय बहुत देर तक दवाव का मुकाबला करती रही परन्तु अन्त में उसे हारना पडा।

चित्र १५९—अष्टपाद जलदानव

इतनी जल्दी यह डब्बा पिचक गया कि पानी को समय नही मिला कि छेदों के भीतर से आर-पार जा सके। यदि जा सकता तो पिचकने की नौबत न आती। यही बात अत्यत गहरे देश में बहुत नाजुक चीजों के सही सलामत रहने का भी कारण बताती है। रन्ध्रों में से होकर

चारों ओर समान भाव से जल पहुँच जाता है और व्याप जाता है और दबाव समान हो जाता है। इसलिये इतने भयंकर दबाव का कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता। जब कोई चीज बहुत गहराई तक डूबने लगती है तो उसके छिद्र भरने लगते हैं। जल्दी भरने के कारण जो जगह भर नहीं सकती तुरन्त पिचक जाती है इसी से आकृति बिगड़ जाती है। परन्तु जो वस्तुएं उस दबाव के भीतर ही उत्पन्न होती हैं उन में तो वहाँ का जल ओत-प्रोत भाव से आरम्भ

चित्र १२६—मूगा मछली

जार्ज न्यून्स की कृपा] [थामसन से
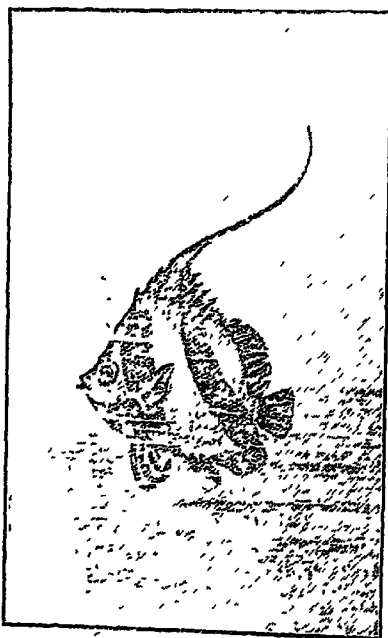
से ही व्याप्त रहता है। उस में पिचकने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। समुद्रवाले माझियों का साधारण विचार यह है कि जो चीजें समुद्र में डूबती हैं वह कहीं सुभीते की जगह पर पहुँचकर तैरती रह जाती हैं। परन्तु यह भ्रम है। ज्यों-ज्यों जल डूबनेवाली चीज में व्यापता जाता है या पिचका कर ठोस कर देता है त्यों-त्यों डूबनेवाली चीज नीचे की ओर चलती जाती है और अन्त में तली तक पहुँच जाती है। इसी के विपरीत अपने

शिकार का पीछा करते हुए कोई जलजन्तु अपने शरीर के अनुकूल दबाववाले प्रदेश से ज्यादा ऊपर को उठ जाता है तब दबाव की कमी के कारण उस का शरीर फूलकर हलका हो जाता है और उस के लाख जतन करने पर भी वह ऊपर की तरफ लुढ़के बिना रह नहीं सकता। दबाव के कारण पानी उसे ऊपर को फेंक देता है और जब वह बिलकुल ऊपर को आने लगता है तभी उस का शरीर फैलकर फूट जाता है और प्रत्येक अवयव के फटने से वह बिलकुल चिथड़े-चिथड़े हो जाता है।

समुद्र निरन्तर चञ्चल रहता है। पृथ्वी के बराबर घूमते रहने से और ग्रहों के खिंचाव से ज्वार-भाटा उठता ही रहता है। परन्तु जब और जहां कहीं तूफान आता है वहां तूफान के बीत जाने पर भी कई घंटे तक बराबर जल में थर्राहट बनी रहती है क्योंकि जल बड़ा ही स्थितिस्थापक है। तूफान का कम्पन बड़ी देर में मिटता है और बहुत दूर तक जाता है। वायु के कारण तो लहरें उठती ही रहती हैं। कहीं कहीं तो जैसे फराडी की खाड़ी में, सैंतालीस-अड़तालीस हाथ ऊंची मेंड़े उठती हैं और कन्याकुमारी के घाट की तरह कहीं-कहीं जल शांत होता है। जैसे साधारणतः तालाबों में हुआ करता है। समुद्र की गति में सब से भयानक चीज़ भंवर या भ्रमरावर्त्त है जो लहरोंवाली धारा के दो भागों में बँट जाने से बनता है। यह चूसने की विचित्र शक्ति रखता है और इस के चक्कर में पड़ कर कोई चीज़ नहीं बच सकती।

३—धारा, तूफान और तली

सूर्य की भिन्न-भिन्न स्थितियों से सागर के ऊपरी तल के तापक्रम, घनता और वायुवेग में बराबर देश-देश में अन्तर पड़ता रहता है। इन कारणों से जल के नीचे ऊपर की गति तो बहुत मन्द हुआ करती है परन्तु सीधी दिशाओं में वेग से धारा चलती रहती है। सम्पूर्ण सागर में सर्वत्र धाराओं की सी गति नहीं है। महाद्वीपों को घेरते हुए सागर के भागों में नदियों की धारा की तरह पचासों मील के पाट में सागर की धाराएं बहती हैं। विशाल विस्तृत जल के फैलाव के भीतर ऐसी धारा भी दीखती है और उसके दोनों किनारे भी साफ अलग मालूम पड़ते हैं। खाड़ी नदी (गल्फ स्ट्रीम) के नाम से प्रसिद्ध धारा मील की चौड़ाई में पाँच मील प्रति घण्टे के वेग से बहती है। इस का नाम खाड़ी नदी इसलिये पड़ा कि यह मेक्सिको की खाड़ी से चलती है और अत्यंत नमकीन गरम पानी के नदी के रूप में फ्लारिडा के डमरूमध्य से होकर निकलती है और हटेरस के अंतरीप को छोड़कर पूरब की तरफ को बल खाती हुई अतलांतिक महासागर में फैल जाती है। इस से कई शाखाएँ निकलती हैं। उत्तर को जानेवाली शाखाएं ब्रिटेन और नार्वे के समुद्र तट के पास से होकर जाती हैं। परन्तु मुख्य भाग दक्षिण की ओर जाती है और कनारी द्वीपों से दूर पर उत्तरी भूमध्य रेखावाली धारा में मिल जाती है। और उत्तरी भूमध्य-वाली रेखा अनुकूल वायु की उन भाग से उठती है जो अफ्रीका के समुद्र तट से बहा करती है। सागर में ऐसी धाराएँ नियम से बहती रहती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि समुद्र का मथन हो रहा है जिस में परमेश्वरी मथानी उत्तर की ओर तो घड़ी की सूइयों

की दिशा में चलती है और दक्षिण की ओर उलटी दिशा में। जब यह मथन है तो बीच की शात जगह भी कोई होनी चाहिये। ऐसी पाच जगहे सागरो मे पायी जाती हैं जिन में से मुख्य सर्गस्सा समुद्र है जो अतलातिक महासागर मे उत्तरी भाग में स्थिति है और जिस के किनारे से होते हुए कोलम्बस ने अपनी पहली यात्रा की थी। यहा का जल प्रशात होने के कारण आस-पास से बहती हुई चीजे आकर इकट्ठी हो जाती हैं। लाखो बरस से टूटे हुए जहाज बहते हुए पेड़ आदि के सिवाय सामुद्रिक सेवार यहाँ इकट्ठा होता रहा है। लैटिन भाषा में शैवाल या सेवार को सर्गस्सा कहते हैं। इसलिये इस का सर्गस्सा समुद्र नाम पड़ा। बहुत काल पीछे यही समुद्र का विस्तार पटते पटते एक महाद्वीप बन जा सकता है और काल पाकर प्राचीन ससार की सभ्यता अपने प्राचीन स्थान को छोडकर यहा नवीन रूप धारण कर सकती है।

ऊपर से नीचे की ओर वेग से बहती हुई वायु के प्रबल धक्को से जलतल दबकर गहरा हो जाता है, परन्तु जिधर धक्के की गति होती है उसी ओर को। दबा हुआ जल ऊंची लहर का रूप ग्रहण करता है और धक्के के कारण आगे बढता है। तुग तरगमाला का यही कारण होता है। लहर का शिखर जितना ही आगे बढता है उतना ही उस का खड पीछे को हटता है। जब यही तरगमाला छिछले जल मे पहुँचती है तो खडकी गति धरती से लगकर शिथिल हो जाती है और शिखर का भाग टूटकर विन्दु-सीकरमाला का रूप ग्रहण कर लेता है। यह टूटनेवाली लहरे ऐसे धक्के देती है कि चट्टाने चिर जाती और चूर-चूर हो जाती हैं। लहर के एक शिखर से दूसरे की दूरी पाव मीलत तक हो सकती है और शिखर की ऊचाई पचास फुट से भी अधिक हो सकती है। कुछ भी हो कितनी ही अधिक वेग और बलवाली लहर हो उस का प्रभाव गहराई में सौ पोरसा से अधिक नहीं होता। अधिक वेग से चलनेवाली वायु बड़ी-बड़ी विशाल लहरे उठाकर इसी तरह तूफान पैदा करती है। कभी-कभी छिछले चलनेवाली आधी जल की एक पतली तह को वेग से अपने आगे उडाकर बहा ले जाती है जो या तो स्थल पर एका-एकी बाढ लाती है अथवा जल को समुद्र की ओर खींच ले जाकर किनारे को खाली छोड़ देती है। भूकम्प और बड़वानल के फूटने से भी विशाल मेड़े उठती हैं। दो विरोधी दिशाओं मे जानेवाली वायुधारा के वेग से मिलने पर बवडर या वायु का भ्रमरावर्त्त बनता है और समुद्र मे वायु के भ्रमरावर्त्त से जल का फौवारा उठता है। परन्तु जल में इस से बहुत वेग का भ्रमरावर्त्त नहीं बनता।

भूपिड के सारे धरातल पर विचार करे तो हम धरातल को तीन प्रकारो मे बाट सकते हैं। एक तो महाद्वीपीय धरातल हैं जिन मे (१) समुद्र तट से सवा दो हजार फुट की औसत ऊँचाई की धरती, (२) महाद्वीपो के चारो ओर के छिछले पानीवाले धरातल, और (३) महाद्वीपीय टापू जो महाद्वीप से छिछले जलाशयो द्वारा ही अलग हुए हैं, यह तीन शामिल हैं। दूसरे, महाद्वीपीय ढाल है जो छिछले पानीवाले धरातल से आरम्भ होकर समुद्र की गहराई तक पहुँचा हुआ है, जो धरती के सपूर्ण धरातल के पष्ठाश के लगभग घेरे हुए हैं। तीसरे समुद्र की प्रकृत गहराई के नीचे की विस्तीर्ण धरातल है जो सब मिलाकर लगभग एक अरब वर्ग मील के विस्तार में फैला हुआ है। इतने विस्तीर्ण क्षेत्र मे

कहीं-कहीं ऊँची-नीची लहरीले तल की धरती भी है और कही-कही अत्यत ऊँचे शिखर और बड्वानल के बनाये द्वीप हैं जो जल से ऊपर गये हैं। परतु यह सब इस विशाल विस्तार मे विंदु के समान हैं। कही-कही भयानक गहराई के गर्त भी इसी क्षेत्र मे हैं। मरे महोदय का विश्वास है कि विस्तीर्ण क्षेत्र बड़े-बडे भयानक बडवानलीय चिरावो के द्वारा विशाल भागो में विभक्त है और इन्हीं चिरावो मे से धरती अपनी भीतरी ज्वाला उगलती और धरातल मे परिवर्त्तन करती रहती है। जान पड़ता है कि सामुद्रिक बड़वानल से धरती धॅसती है और स्थलीय ज्वालामुखी से धरती उभरती है। लगभग साढे पाच करोड़ वर्ग मील के फैलाव मे लाल मिट्टी की जमती हुई तह है जो विलक्षण है और जिस के कारण का पता अभी नहीं लगा है।

४—सामुद्रिक जीवन

स्थलचरों और नभचरों, स्वेदजो और उद्भिज्जो आदि सब को मिलाकर भी देखा जाय तो गिनती मे जल के प्राणियो की अपेक्षा कम ही ठहरेंगे। जल का एक नाम "जीवन" भी है। जल का अनन्त पारावार वास्तव मे सभी अर्थों में जीवन का अनन्त पारावार है। हम अन्यत्र जल के सभी तरह के प्राणियो के जीवन का दिग्दर्शन विकास के प्रसग मे कर आये हैं। यहा हम इतना कह देना आवश्यक समझते हैं कि सूर्य्य की प्रत्यक्ष किरणे पाच सौ पोरसे तक पहुच जाती हैं और अप्रत्यक्ष रासायनिक किरणे और अधिक गहराई तक पहुँचती हैं। इस प्रकार सूर्य्य का उत्पादक प्रभाव बहुत बड़े क्षेत्र तक पहुँचता रहता है। शैवाल आदि जलोद्भिज्जो के बहते बागों से लेकर पारमाणिवक जलोद्भिज्ज तक इन्ही किरणो के आश्रित हैं। इनमे निरतर प्रकाश द्वारा रासायनिक क्रिया से असख्य प्रकार के यौगिक बनते रहते हैं। कर्बन-द्वयोषिद के टूटने से और जल मे वायवीय ओषजन के घुलते रहने से ऊपरी तल मे अनन्त प्रकार के प्राणी एवं मछलिया ओषजन पाकर जीवन-रक्षा करती हैं। अत्यत सूक्ष्म [illegible] भी दुर्भेद्य प्राणी एक-एक जलविंदु मे कोटि-कोटि की सख्या मे रहनेवाले समुद्र मे अनन्त हैं। बड़े-बड़े प्राणियो की भी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है।

समुद्र का जल कहीं आसमानी, कहीं नीला, कही गाढा नीला, कहीं काला, घोर काला, और ध्रुव प्रदेश आदि मे बिल्कुल हरा देख पड़ता है। शुद्ध स्वच्छ जल का वास्तविक रग आसमानी है जो खाडी-धारा का भी रग है। जान पडता है कि खाड़ी धारा में शुद्ध जल बहता है। ध्रुव प्रदेश मे जलोद्भिज्ज, घुलित लवण, प्रकाश के किरण आदि अनेक कारणो से हरा रग दीखता है। आकाश के रग के प्रतिफलित होने से भी समुद्र के जल का रग नीला, काला आदि दीखता है।

समुद्र अत्यत उत्तर खड मे जाड़ो मे बरफ की चट्टानो से पटा रहा करता है। समुद्र के नमक से लदे जल का बरफ शुद्ध जल के बरफ से भारी होता है, पर तो भी उस पर एसकिमो जाति के लोग अपनी बे-पहिया की, फिसलनेवाली नावगाडी पर निर्भय चढे दौड़ते रहते हैं। बरफ की चट्टाने स्थिर धरती सी हो जाती हैं।

जहाँ दिन-रात साल-के-साल बरफ़ जमा रहता है वहाँ भी भीतर गहराई में जल रहता है। उत्तरी और दक्षिणी मेरु-प्रदेशों में यही हाल है। जल में धीरे-धीरे बहते हुए बरफ़ के पहाड़ जो देख पड़ते हैं उन के नव भाग से अधिक जल के भीतर रहते हैं, केवल एक भाग जल के ऊपर रहता है। यह पहाड़ बह-बह कर गरम प्रदेशों में भी पहुँच जाया करते हैं और भयंकर उपद्रव के कारण हुआ करते हैं। समुद्र के पानी के ठंडे रहने के कारण यह बड़ी देर में गलते हैं। सौर संवत १९६९ वि० के पहले दिन टैटनिक नाम का जहाज़ एक ऐसे ही चल हिमशैल से टकराकर नष्ट हो गया और १५१७ मनुष्यों के प्राण लिये। यह हिम-शैल लंबे-चौड़े टापुओं की तरह होते हैं। इन के साथ बहुत-कुछ विजातीय पदार्थ और लवण आदि भी रहते हैं और इन के गलने से समुद्र के ताप और लावण्यता दोनों में कमी-बेशी पड़ जाती है।

समुद्र जैसे जीवन से भरा हुआ है उसी तरह सामाजिक जीवन की रक्षा में इस से बहुत सहायता भी मिलती है। समुद्र में उष्ण कटिबंधवाली सूर्य्य की भयानक गरमी का शोषण हो जाता है और वह उन जगहों पर पहुँचायी जाती है जहाँ शीत अधिक है। जहाँ अत्यंत गरमी है वहाँ बहाव से मेरु प्रदेशों की जलधारा आकर ठंढक पैदा कर के गरमी की तेज़ी को घटा देती है। समुद्र के जल की ही गरमी सरदी से सब तरह की हवा उठती है जिस से भलाई-बुराई दोनों होती है। समुद्र के ही कारखाने से संसार को जल मिलता है। समुद्र नदी की आदि और अन्त दोनों है। वायुमंडल के वायव्यों के शोषण और विसर्जन से यह वायुमंडल को एकरस बनाता रहता है। समुद्र रत्नाकर है। इस से मनुष्य अनेक रत्न पाते हैं।

जल का आरम्भ भी चट्टानों से हुआ है। उन्हीं में से अत्यंत उत्ताप दशा में उद्जन और ओषजन अलग हुए। फिर ताप के कुछ कम होने पर दोनों ने मिलकर जल का रूप ग्रहण किया था। सुदूर भविष्य में जब सूर्य्य शीतल हो जायगा और धरती पर अत्यंत शीत का साम्राज्य हो जायगा तब सारा समुद्र जम [illegible] का धरातल हो जायगा और उस के ऊपर द्रवीभूत वायुमंडल का समुद्र लगभग चालीस फुट औसत गहराई का बहने लगेगा।

चौबीसवां अध्याय

ऋतु-विज्ञान

१—तब की और अब की दुनियां

पृथ्वी का धरातल दो बड़े वेष्ठनो से घिरा हुआ है। एक तो जल है जिस का वर्णन हम पिछले अध्याय मे कर आये हैं। दूसरा वेष्ठन वायु है जिस पर ही प्रायः इस ससार मे ऋतु-परिवर्तन अवलबित है और जिसकी ऊँचाई दो सौ मील से भी अधिक समझी जाती है। इन दोनो महावेष्ठनो मे निरतर परिवर्तन होते रहने से धरातल के आकार और ऊँचाई-नीचाई में बराबर परिवर्तन होता रहता है। भूगर्भ के वड़वानल से भी पृथ्वी भर मे उस के धरातल का परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन दस-बीस बरस मे ऐसे भारी और स्पष्ट नहीं होते कि जिन पर साधारण लोगों की निगाह पड़े। परन्तु लाखो बरस के बीच तो ससार का इतना प्राकृतिक परिवर्तन हो जाता है कि पृथ्वी का नक्शा ही बदल जाता है।

भूगोल आज दो भागो मे बँटा समझा जाता है। एक मे उत्तर मध्य और दक्षिण अमेरिका है और दूसरे मे यूरोप एशिया अफ्रीका और आस्ट्रेलिया है। पहले विभाग के पूर्व मे अतलातिक और पश्चिम मे प्रशान्त महासागर है। दक्षिण मे दक्षिण महासागर और उत्तर मे उत्तर तथा हिम महासागर है। इसी प्रकार दूसरे विभाग के उत्तर मे उत्तरीय तथा हिम महासागर और दक्षिण मे हिन्द तथा दक्षिण महासागर है, और पूर्व तथा पश्चिम मे क्रमश. प्रशान्त तथा अतलान्तिक महासागर है। आस्ट्रेलिया के ईशान कोण मे प्रशान्त महासागर के विशाल वक्षस्थल पर नकशे मे अनेक नन्हे-नन्हे टापू देखे जाते हैं जिन सब के समूह को पालिनीशिया कहते हैं। उत्तर और दक्षिण मेरुओं पर भी बरफ से ढका स्थल का बड़ा विस्तार है परन्तु यह द्वीप प्राय जनशून्य हैं यद्यपि जीवन-शून्य नहीं हैं। उत्तरी अमेरिका के ईशान मे हरितद्वीप के नाम का विस्तीर्ण टापू है जिस पर एस्किमो जाति के मनुष्य रहते हैं। आस्ट्रेलिया के पास तस्मान्या और नवजीलैंड नाम के द्वीप भी हैं जो आस्ट्रेलिया से ही सम्बद्ध समझे जाते हैं।

प्राकृतिक रूप से अमेरिकावाला गोलार्ध जिसे नयी दुनिया भी कहते हैं एक ही भूखंड का विस्तार है, उत्तरी अमेरिका से मध्य और दक्षिण अमेरिका बिलकुल मिला हुआ है। इधर एशिया वा जम्बूद्वीप के उत्तरी अमेरिका हमारे ईशान और अमेरिका के वायव्य कोण में अलूशियन द्वीपमाला के द्वारा मिला सा ही है। दूसरे गोलार्ध में एशिया और युरोप का भूखंड तो एक ही है। यह दोनों महाद्वीप वस्तुतः प्राकृतिक रीति से अलग नहीं हुए हैं। अफरीका भी इतना अधिक मिला हुआ है कि हम एशिया और अफरीका को भी एक ही भूखंड मानने को लाचार हैं। आस्ट्रेलिया और इस महाभूखंड के दक्षिण एवं अग्निकोणवर्त्ती द्वीप तो सभी अलग हैं। परन्तु इन द्वीपसमूहों को एक अलग विभाग मान लें तो इस पुराने गोलार्ध में केवल दो भूखंड हुए।

हमने धरती के वर्त्तमान रूप को हस्तामलकवत् यहां दिखा दिया। परन्तु अत्यंत प्राचीन काल में, जिस की कोई सुधि या स्मरण मानव इतिहास को नहीं है और जिस के लाखों बरस से अधिक बीते होंगे, धरती का नकशा वर्त्तमान से बिलकुल भिन्न था। अनुमान से हम उस का वर्णन यहां देते हैं।

पालीनीशिया द्वीपपुंज की जगह एक बहुत विस्तृत महाद्वीप था जिस के बड़े ऊंचे-ऊंचे पर्वत-शिखर आज छोटे छोटे टापू से दीखते हैं। आस्ट्रेलिया आदि द्वीप उस से प्राय-द्वीप के रूप में मिले हुए थे। दक्खिणी अफरीका का भाग उत्तरी से सहारा महासागर द्वारा बिलकुल अलग था और अपने आस-पास के द्वीपों से मिलकर एक छोटा-सा महाद्वीप था जो एशिया से सर्वथा अलग था। सहारा सागर और भूमध्य सागर और काला और कश्यप और लाल समुद्र सब एक थे। और इस महासागर के भीतर बहुत छोटे-छोटे टापू छिटके हुए थे। यह नैऋत्य महासागर था जो नैऋत्य दिशा में दूर तक बढ़कर अतलांतिक महा-द्वीप से वर्त्तमान दक्षिण अफरीका को अलगाता था। वर्त्तमान अतलांतिक महासागर जहां लहरें मार रहा है वहां एक अत्यन्त विस्तीर्ण और सभ्य समृद्ध महाद्वीप था जहां मायावी दानवों का निवास था। इस के पच्छिमी किनारे पर उसी जगह प्रशान्त महासागर फैला हुआ था जहां आज उत्तरी अमरीका बसा हुआ है। इस प्रशान्त महासागर का पच्छिमी किनारा उस समय के पालिनीशिया महाद्वीप का पूर्वी तट था। मेक्सिको और दक्खिणी अमेरिका एक और महाद्वीप बनाते थे। इधर एशिया में भी भारतवर्ष में बंगाल में समुद्र लहराता था। राजस्थान भी एक स्थलावेष्ठित समुद्र था। शेष प्रांत जैसे आज हैं वैसे ही तब थे। परंतु एशिया में गोबी महासागर उधर उत्तर कुरु को उत्तर में और चीन को पूर्व में, तिब्बत को दक्षिण में अपने किनारे पर बसाये हुए था। पश्चिम में इस का एक खंड नैऋत्य सागर से और अग्निकोण में इस का दूसरा खंड चीन समुद्र से जाकर मिलता था। उस समय महा-ब्रिटेन का अधिकांश उत्तर महासागर के जल के नीचे था। उत्तर और दक्षिण महासागर के उत्तरी और दक्खिणी किनारों पर क्रमश. सुमेरु और मेरु महाद्वीप थे। यह महाद्वीप जना-कीर्ण थे, सभ्य और समृद्ध थे, क्योंकि उस समय इन द्वीपों में आज-कल की सी घोर सरदी न थी। उस समय बारहों मास वहां बसन्त ऋतु बनी रहती थी। संसार के और महाद्वीपों की भी ऋतुएं बहुत ही अनुकूल थीं। यह सचमुच सतयुग रहा होगा।

चित्र १५७—समुद्रतल से सत्ताईस मील अन्तरिक्ष तक मनुष्य के कार्यों और उपकरणों की पहुँच की सीमा [हामण्डन का अनुकरण

ऋतुओं की दशा प्राचीनकाल में और प्राचीन देशों में जैसी थी वैसी आजकल नहीं है। इस बात का प्रमाण तो प्राचीन वैदिक मंत्रों से भी मिलता है और यह बातें विज्ञान से भी इसी तरह प्रमाणित होती है।

ऋतुओं की दशा आज विभिन्न है। उत्तर खंड में आत्यंतिक शीत के कारण बहुत कम मनुष्य रहते हैं। छः मास की रात में विद्युज्ज्योति का प्रकाश रहता है। [चित्र ५६ क, ख, देखिये।] परन्तु हिम के आधिक्य से इस प्रकाश में भी मनुष्य कुछ कर नहीं सकता। जीवन रक्षा ही कठिन होती है। समझने के सुभीते के लिये धरती का जो विभाग कटिबन्धों में किया गया है, उसमें समशीतोष्ण कटिबंधों में सरदी भी घोर पड़ती है और गरमी भी। उष्ण कटिबंध में गरमी अधिक पड़ती है। सरदी तो पड़ती ही नहीं। मनुष्य प्रायः सभी ऋतुओं और सभी देशों में रहता है और अपने जीवनक्रम को तदनुकूल बना लेता है।

हमारा भूमंडल वायुमंडल के महासागर से घिरा हुआ है जिसका निचला भाग अधिक घना है और ऊँचा भाग बहुत तरल है। निचले में भारी भारी वायव्य हैं, जैसे नोषजन, ओषजन, कर्बनद्वयोषिद, आर्गन, जलवाष्प आदि। ऊपरी भाग में शायद उज्जन और हिमजन यही दोनों हलके वायव्य हैं। इन दोनों में हिमजन या हीलियम की ही मात्रा अधिक समझी जाती है। सरदी गरमी की दृष्टि से भी दो विभाग माने जाते हैं। धरातल से कुछ ऊँचाई तक तो ज्यों ज्यों ऊपर उठते हैं सरदी बढ़ती जाती है, परंतु एक हद तक पहुँच जाने के बाद सरदी अपनी हद को पहुँची जान पड़ती है और प्रायः स्थिर सी हो जाती है। इस ऊपरी तह को स्थिर मंडल और निचली तह को अस्थिर मंडल कहते हैं।

२—वायुमंडल की जांच

वायुमंडल के ऊपरी भाग को जाँचने और थहाने के लिये गुब्बारे काम में आते हैं। गुब्बारे के भीतर ऋतुमापक यंत्र लगा रहता है। यह इतना छोटा होता है कि एक डाक के टिकट से छिप जा सकता है। परंतु इसके चारों ओर बाँस की खपाच्चियों का एक पिंजरा सा बना रहता है। जब निर्दिष्ट ऊँचाई तक पहुँच कर गुब्बारा फट जाता है तब उस का बचा-बचाया चौखटा उस बाँस के पिंजरे के भीतर उस नन्हे से यंत्र को लिये झोंके को सँभालता हुआ धरती पर गिरता है। पिंजरे के कारण यंत्र को तनिक भी धक्का नहीं पहुँचता। चढ़ते हुए मार्ग में यंत्र वहाँ के ताप चाप आर्द्रता आदि अनेक बातों को अंकित कर लिये रहता है। इसी विधि से बारबार के प्रयोग से ऊपरी वायुमंडल की दशा की अटकल लगायी जाती है। इस यंत्र का अंकन बड़ा सूक्ष्म होता है और अणुवीक्षण यंत्र से पढ़ा जाता है। ऐसे गुब्बारों में एक सूचना यंत्र के साथ रखी रहती है कि इसे जो अमुक कार्यालय तक पहुँचा देगा उसे इतना धन पुरस्कार में मिलेगा।

एक और तरह के गुब्बारे जो बहुत छोटे होते हैं और फूलने पर १८ इंच से लेकर २४ इंच तक ही बढ़ सकते हैं छोड़े जाते हैं। यह नष्ट नहीं होने पाते और इनकी चाल दूरबीन लगाकर देखी जाती है। यह पहले रबड़ के बने रहते हैं और किसी गहरे रंग में रंगे

रहते हैं कि आसानी से दिखाई पड़ सके। हवा की विविध दिशाओं में पड़कर विविध मार्गों से यह गुब्बारे चलते हैं और दूरवीक्षण यंत्र लगाकर इन्हें बराबर देखा जाता है।

गुब्बारों की विधि से यह देखा गया है कि ज्यों-ज्यों गुब्बारा ऊँचाई पर चढ़ता है त्यों-त्यों ठढक पड़ती ही जाती है। परंतु यह बाढ छः मील से अधिक ऊँचे नहीं जाती। सब से अधिक दूरी जो अब तक इस तरह थहायी गयी है बाईस मील है। यह मालूम हुआ कि छः से लेकर बाईस मील तक ठढक स्थायी सी रहती है, न घटती है और न बढ़ती है। हवा, आंधी, तूफान, बादल, सब की सीमा छः मील तक है। इसके ऊपर शान्त और क्षीण

चित्र १२८—आर्कटिक-शीत से रुई के गाले की तरह जमता हुआ हिम छत से लटक रहा है और कहीं-कहीं टपक रहा है।

[टामसन का अनुकरण

वायुमंडल है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस सीमा से ऊपर भी इसी प्रकार शान्त अवस्था है। ऊँचाई के साथ मिलान करने पर यह पता लगता है कि भूमध्य रेखा पर अधिक-से-अधिक तीन मील की ऊँचाई तक जीवन का अस्तित्व पाया जाता है। ज्यों-ज्यों यहां से ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों जीवन-योग्य वायुमंडल की ऊँचाई और गरमी धीरे-धीरे घटती जाती है। यहां तक कि मेरु देश में पहुँचते-पहुँचते यही सीमा धरातल के लग-

भग पहुँच जाती है। तात्पर्य यह कि जीवित प्राणी भूमध्य रेखा पर तीन मील की ऊँचाई पर पाये जाते हैं परतु ध्रुवो के प्रदेश मे धरातल पर ही जीवन का सुरक्षित रहना कठिन होता है।

३—ऋतुपरिवर्तन के कारण

वायुमडल मे जो परिवर्तन निरतर होते रहते हैं उनका कारण ताप और चाप का निरतर होते रहनेवाला परिवर्तन है। एक तो धरती में ही भीतरी गरमी है जो बाहरी चिप्पड़ को निरतर एक गरमी पर रखे रहती है। दूसरे सूरज की किरणो से बराबर उसपर बाहरी गरमी का भी प्रभाव पड़ता रहता है। धरातल की दशाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। कही मिट्टी है कही रेत, कहीं पत्थर है कही जल, कही हरियाली है और कहीं ऊसर-बजर। इस प्रकार ऊपर से आनेवाली गरमी कही बिलकुल सोख ली जाती है और कहीं उलटकर ऊपर को ही आँच उठती है। कही कुछ-कुछ दोनो बाते होती हैं। जल पर जब धूप पड़ती है तब उसे गरमा देती है, साथ ही ऊपरी तह भाफ बनकर उड़ जाती और वायु मे मिल जाती है। सूखी धरती बडी जल्दी तप जाती है परतु जल के तपने मे बड़ी देर लगती है। यही बात है कि दुपहरी मे धरती पर बड़ी गरमी होती है परतु जल मे फिर भी ठढक ही होती है। इसीलिए समुद्रतट से दूर ग्रीष्म ऋतु में भयानक गरमी पड़ती है परतु समुद्र के आस-पास के देशो मे वायु मे बड़ी आर्द्रता होती है और तपन कम होती है। इसी तरह जाडे मे समुद्र से दूरवाले देशो मे दिन भर की तपी हुई भूमि विकिरण के कारण बहुत जल्दी ठढी हो जाती है और जाड़ा तेज पड़ने लगता है। परतु समुद्र तट पर पानी से गरमी का विकिरण बहुत ही मद होता है। इसीलिए जाड़ो मे समुद्रतट पर सरदी भी तेज नही पड़ती। इस प्रकार समुद्र के आस-पास ऋतुओ की कड़ाई कम होती है।

वायव्यमात्र मे कुछ विशेष गुण होते हैं। गरमी से वायु चारो ओर फैलती है और आयतन बढ़ जाता है। आयतन बढने से वायु ठढी हो जाती है और तापाश घट जाता है। ठढक से सकोच होता है। दबाव से आयतन घटता है और गरमी बढ जाती है। दबाव घटा देने से आयतन बढ जाता है और साथ ही ठढक भी बढ जाती है। हमारे वायुमडल मे जब एक ओर [illegible] से आयतन घट जाता है। तो उस ओर और तरफ से हवा बह आती है और इस तरह हवा मे बहाव पैदा होता है। साथ ही अधिक दबाव की दिशा से कम दबाव की दिशा मे भी हवा का बहाव होना स्वाभाविक है। इसी तरह हवा की धारा बध जाती है।

४—हवा की धाराएं और मौसमी हवा

अब यदि भूतल के एक भाग मे गरमी के बढने से हवा मे फैलाव बढ़ जाय तो उस के ऊपर की हवा बहुत दब जायगी। अब यहा की हवा मे उसके चारों ओर की हवा की अपेक्षा अधिक दबाव होगा। इसलिए जिधर दबाव कम है उधर की ओर हवा की धारा

वह चलेगी। परन्तु इस धारा के बहने से आगे की ओर नीचे की तहों की हवा दबती जायगी। इसका फल यह होगा कि अब जिस स्थान में हवा में ज्यादा तपन पैदा हुई थी उसके चारो ओर की हवा मे ज्यादा दबाव पैदा हो जायगा और चारो ओर से उमड़कर गरम हवा की ओर धारा बहेगी। इस तरह वायु के प्रवाह का एक चक्र बन जायगा जिससे वेग से हवा बहने लगेगी। घर में जब नीचे और ऊपर दोनों ओर खिड़किया खुली होती हैं तब गरम हवा ऊपरवाली से बाहर को निकल जाती है और नीचेवाली से ठढी हवा भीतर की ओर आती है। इस प्रकार का वायुचक्र हर जगह ससार के सभी भागो में बराबर चलता रहता है। परन्तु यह सभी स्थानीय वायु-प्रवाह हैं।

परतु सूर्य्य की तपन भूमध्यरेखा पर सब से अधिक होती है और ऐसे देशों मे वर्ष के भीतर सूर्य्य की ऊचाई मे बहुत कमी-वेशी पड़ती रहती है। इसलिए यह तो स्पष्ट ही है कि वर्ष के भीतर ही ऋतुओं में बड़े-बड़े परिवर्त्तन होने चाहियें। यह महान परिवर्त्तन यदि यहा विस्तार से वर्णन किये जायें तो पाठको को उन के एच-पेच मे रस न आयेगा। इसलिये हम यहा बहुत मोटी मोटी बातें बतायेंगे।

भूमध्यरेखावाले प्रदेशों मे सूर्य्य का सब से अधिक ताप काम करता है। हवा गरम होकर ऊपर की ओर उठती है और फैल जाती है और उस की जगह लेने के लिये उत्तर और दक्षिण की ओर से, विशेषतया कर्क और मकर रेखाओं की ओर से, ठढी हवा बहती है। यह भी ध्यान रहे कि यह हवा की धाराए एक गोल और अपनी धुरी पर घूमते हुए महापिंड पर चल रही हैं। इस लट्टू की सी-गति के कारण सीधे पिंड के साथ-ही-साथ धारा नहीं चल सकती, वरन एक ओर को फेंकी सी जाती है। उसे लाचार हो धरती की गति की दिशा से चलना पड़ता है। इस प्रकार उत्तरी गोलार्ध मे वायु की धारा दाहिनी ओर को और दक्षिणी गोलार्ध मे बायीं ओर को, मुड़ती और घूमती रहती है। अब भूमध्य रेखा की दक्षिण और उत्तर की ओर जो हवा बहती रहती है उसे मुड़ते रहना पड़ता है और क्रमशः ईशान, आग्नेय कोणो से बहते रहना पड़ता है। इन्हें ईशान और आग्नेय व्यापारी हवाए कहते हैं। इस के विपरीत भूमध्य प्रदेशो मे जो गरम हवा ऊपर को उठी है वह व्यापारी हवाओं के ऊपर होकर बहती है और इस की दिशाए क्रमशः नैऋत्य या वायव्य हैं और यह धाराए प्रति-व्यापारी हवाए कहलाती हैं। यह धाराए कर्क और मकर रेखाओं के प्रदेशों मे धीरे-धीरे उतरती हैं। कर्क रेखा के उत्तर की ओर धरातल को छूनेवाली हवा की एक मुख्य धारा नैऋत्य दिशा से आती है, पर मकर रेखा के दक्षिण अथवा दक्षिण गोलार्ध मे इसी तरह की धरातलस्पर्शी धारा पश्चिमी वायव्य कोण की ओर से आती है। ऊपरी वायुमडल मे यह दिशाए लगभग पश्चिमावर्त्ती हो जाती हैं। दक्षिणी गोलार्ध मे सागर की अधिकता और उत्तरी में स्थल की अधिकता के कारण ऋतुओं का आत्यन्तिक घट-बढ उत्तरी गोलार्ध में ही होता है।

ऋतु-परिवर्त्तन का एक महत्व का प्रभाव सारे ससार में हमारे भारत देश की मौसमी हवाओं में ही देखा जाता है। प्रतिवर्ष नियमपूर्वक भारत देश पर मौसमी हवा की धारा आया करती है। हमारे देश मे जाड़ो में ईशान कोण मे हवा की धारा बहती है। जाड़ों में

एशिया के ईशान भाग मे वायुमंडल का दबाव बहुत बढा हुआ रहता है और उस ओर से हवा की धारा का बहाव बाहर की ओर चलता है। इसीलिए यह वायु ठढी और सूखी हुआ करती है। परतु जब गरमी पड़ने लगती है तो एशिया के ईशान का अत्यधिक दबाव एक साधारण घटे हुए दबाव मे बदल जाता है। यह घटा हुआ दबाव चारो ओर ईरान और बलूचिस्तान के ऊपर अपना केन्द्र बनाकर फैलता है। साथ ही उसी समय हिन्द महासागर के दक्षिण मे मदागास्कर और आस्ट्रेलिया के बीच के आकाश मे आत्यन्तिक दबाव की अवस्था होती है और जब इस ऊचे दबाव से हवा कम दबाव की ओर बहती है तो दहिनी ओर उस का मुड जाना आवश्यक है, इसलिये जब वह भारतवर्ष के किनारे टकराती है तो दक्षिण के बदले नैऋत्य दिशा से आती है। भूमध्य रेखा के नीचे सागर के विशाल विस्तार से वाप्प लेकर यह वायु जल से लदी हुई आती है। भारत के पच्छिमी किनारे पर ऊचे पर्वत शिखरो से यह टकराती है, उसे ऊचे उठना पड़ता है, उस का दबाव घट जाता है, वायु ठढी हो जाती है और अब पहले की तरह अधिक मात्रा मे भाफ को रख नही सकती। इसी भाफ के बादल बन जाते हैं और उसी नैऋत्य वायु से प्रेरित होकर देश के भीतर पहाड़ो को पार करके आकर बरसते हैं। इस प्रकार भारत के पच्छिमी किनारो पर नैऋत्य मौसमी हवा बादलो को लाकर मूसलाधार पानी बरसाया करती है। इसी तरह बगाल की खाड़ी से आनेवाली दक्षिणी हवा आसाम के दक्खिन के पहाड़ो से टकराती है और बरमी किनारो तक भयानक वर्षा होती है। दोनों ओर से आनेवाली मौसमी हवाओं की सारी नमी पूरब और पच्छिम किनारों पर ही खर्च नही हो जाता। इसका बहुत सा भाग लबी यात्रा करके हिमालय के दक्षिणी भाग से जाकर टकराता है और समस्त उत्तर भारत को जल से भर देता है। मध्य भारत मे भी सब ओर से बादल आते हैं। निदान भारतवर्ष मे उस की भौगोलिक स्थिति के कारण मौसमी हवाए ठीक समय पर निश्चित रूप से आती रहती हैं। खासिया पर्वतमाला मे दक्षिण आसाम मे चेरापूजी नामक स्थान मे साल मे लगभग पाच सौ इन्च पानी बरसा करता है। ससार मे कही इतना पानी नही बरसता।

५—अन्तरिक्ष-विद्या और अन्तरिक्ष-मान

सभ्य देशो मे प्रायः ऋतु वर्षा आदि अतरिक्ष सबधी विषयों की जाच के लिये मान-मदिर बने होते हैं। मानमदिरो मे भाति-भाति के यत्रो के प्रयोग से अतरिक्ष सबंधी सभी बातों की जाच नित्य क्षण-प्रति-क्षण होती रहती है। केन्द्रीय मानमदिरो को चारों ओर के मान-मदिर तार द्वारा बराबर रिपोर्ट भेजते रहते हैं। केद्रकार्य्यालय सब का सग्रह करके ऋतु सबंधी अनुमान-पत्र निकाला करता है। केद्र मानमदिर मे जो विवरण आते हैं उन में प्रत्येक स्थान के दबाव, तापाश, वायुधारा की दिशा और शक्ति, आर्द्रता, दृश्यता, धूप, वर्षा, मेघाच्छन्नता, ऋतु की विशेषता आदि अनेक बड़े काम की बाते दी हुई रहती हैं। इन बातो के जानने के लिये मानमदिरो मे यत्रो का सुभीता रहता है और कही-कही बड़े मोल के यत्रो की कमी बड़े चतुर और परिश्रमी कार्य्यकर्त्ता ही पूरी करते हैं। वायु का दबाव

जानने के लिये वायुभारमापक यंत्र काम में आता है। पारा भरी प्याली में एक गजभर की काच की नली, एक ओर बंद दूसरी ओर खुली, शुद्ध पारे से पूरा भरकर प्याली के भीतर उलट दी जाती है। नली के साथ नापने के चिह्नों से युक्त एक चपटा सा गज लगाया जाता है। पारे की ऊँचाई से ही वायुमंडल के दबाव का पता लगता है। घड़ी की तरह का कमानीदार वायु-भार-मापक भी मिलता है। वायुभारमापक यंत्र के साथ-ही-साथ एक बेलन भी रहता है जिस पर ब्रोमाइड-पेपर इस तरह लिपटा रहता है कि उसके साथ के लगे हुए फोटो यंत्र के द्वारा इस घड़ी-यंत्र से घूमते हुए बेलन पर वायुभार के उतार-चढ़ाव की रेखाएं बराबर अंकित होती रहें। यह फोटो-यंत्र कमानीदार वायुमापक में इसलिये नहीं लगाया जाता कि उसमें नलिकावाले मापक की तरह बिलकुल ठीक अंक नहीं आते। तब भी ऐसे आठ यंत्रों को एक शृंखला में इस तरह मिलाकर रखते हैं कि सब की सम्मिलित गति से एक कलम घूमे और एक बेलन पर फैलाये हुए कागज पर रेखा अंकित करता रहे। यह बेलन भी यंत्र द्वारा धीरे-धीरे घूमता रहता है और सप्ताह में प्रायः एक चक्कर पूरा करता है।

वायु का तापांश तापमापक यंत्रों (थर्मामीटरों) से नापते हैं। पारे की नलिका में बहुत सूक्ष्म ताप पहुँचने पर भी पारा उठता है और बहुत सूक्ष्म कमी होने पर पारा उतर आता है। यंत्र पर अंशों के अंक बने रहते हैं जो तापांशों की कमी-बेशी की सूचना देते रहते हैं। मानमंदिरों में चार यंत्र विशेष ढंग से एक विशेष रचना के काठ-घर में लगाये रहते हैं। इस घर को स्टीवेंसन का चौकठा कहते हैं। यह घर पूरब पच्छिम २० इंच, दक्खिन उत्तर की दिशा में १३ इंच और भीतर-ही-भीतर पेंदे से छत तक १४ इंच ऊँचाई का होता है। छत दोहरी होती है जिस के भीतर की पोल हवादार होती है। इसी तरह सब ओर से इस घर में हवा आती है, परन्तु धूप नहीं पड़ने पाती। इस के भीतर एक चौकठे पर दो तापमापक खड़े लगे रहते हैं। इन में से एक की घुंडी बारीक तंजेब के गीले टुकड़े से ढकी रहती है जो पास रखे हुए एक जलपात्र में डूबे हुए धागों से बराबर भीगती रहती है। दूसरा यंत्र वास्तविक तापांश और पहला गीली घुंडीवाला उस से कुछ कम, प्रकट करता रहता है। सूखी ऋतु में दोनों का अन्तर बहुत रहता है। आर्द्र ऋतुओं में कम। कुहरा पड़ती बर दोनों में अन्तर बहुत कम वा कुछ भी नहीं होता। परन्तु वर्षा के समय कभी-कभी बड़ा अन्तर होता है क्योंकि पानी बरसने से यह तो आवश्यक नहीं है कि हवा नम हो। इसी में दो और चौकठे लगे हुए हैं जिनमें आड़े तापमापक यंत्र लगे हुए हैं। इन यंत्रों से यह पता लगता है कि दी हुई अवधि में सबसे कम और सबसे अधिक कितना तापांश रहा है।

आँधी का बल और दिशा जानने के लिये वात-धारा मापक यंत्र काम में आता है। इस में एक इस्पात के दंड के ऊपर नलीदार पंखा लगा रहता है। दंड की लम्बाई ७५ से ८० फुट तक होती है। इसके सिरे पर का पंखा इस तरह बना होता है कि नली का खुला मुँह सीधे वायु की ओर रहा करता है जिस से वायु उसमें सीधे निरन्तर प्रवेश करती रहती है। उससे सम्बन्ध रखनेवाली नलियों के द्वारा नलिका के मुख पर की वायु के दबाव को नीचे के लेखन-यंत्र तक पहुँचाया जाता है। लेखन-यंत्र में एक खोखली बन्द चीज पानी पर कलम
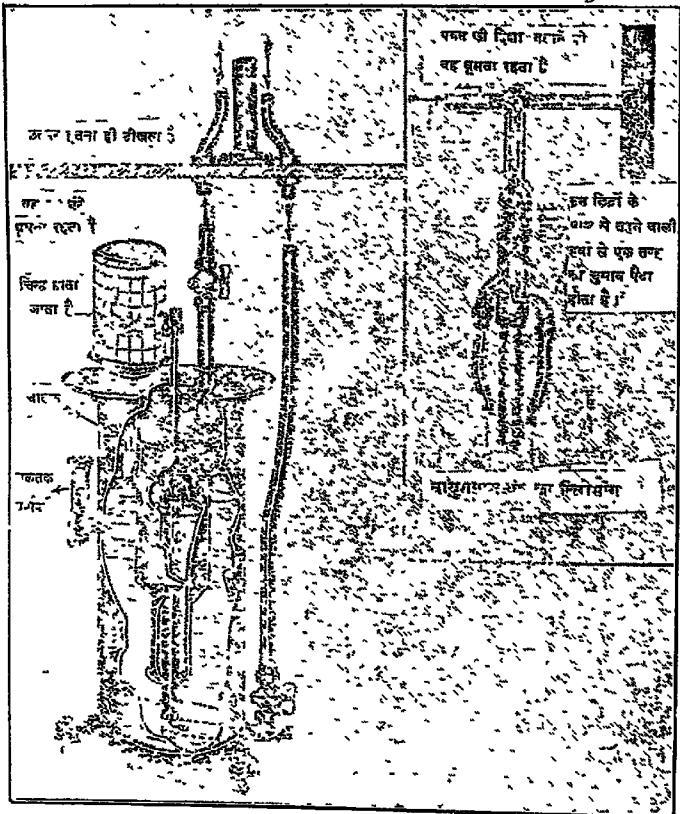
चित्र १२१—वातावरण यन्त्र

ज्यार्ज न्यूज्स की कृपा] [टामसन से अनुवर्त्तित

पकडे बराबर बहती रहती है। वायु के दबाव से यह बहती चीज चढती-उतरती रहती है। इसी से कागज पर अपने आप स्याही से रेखा करनेवाला कलम चलता रहता है। हवा के हर झोंके की कमी-बेशी से कलम बढता घटता हुआ चलता रहता है और रेखापुंज खिंचता रहता है। इसी रेखा-पुंज के मध्य भाग से नाप लेकर वायु की गति वेग और दिशा आदि का अनुमान किया जाता है। जिस कागज पर यह रेखाएँ होती हैं वह एक बेलन पर लिपटा रहता है जो घडी के यंत्र के सहारे दिन-रात में एक फेरा कर देता है। इसी तरह वायु की धारा क्षण-पर-क्षण नपती जाती है। जब आंधी चलती है तब उस का वेग औसत ५० मील तक हो जाता है। परन्तु अलग-अलग झोंके तो अस्सी-अस्सी मील प्रति घंटे के हो जाते हैं और मन्द वायु २० मील प्रति घंटे तक गिर जाती है। दिशा का लेखन भी पंखे के फिरने से उसी बेलन के नीचे एक और यंत्र के सहारे होता है।

वर्षा नापने के लिये एक विशेष प्रकार का नपना काम में लाते हैं। इसमें ऊपर एक कीप लगी रहती है। इसी पर से पानी बटुरकर कांच के नपने में जाता है जिस में घन इंच के शतांश तक की रेखा बनी होती है। ऊपर की कीप ५ या ८ इंच व्यास की होती है। इसी यंत्र से यह पता लगता है कि कितने इंच पानी बरसा है।

धूप नापने के लिये भी एक यंत्र कैम्बेल-स्टोक्स का बनाया हुआ काम में आता है, परन्तु अभी उस में बहुत से सुधारों की आवश्यकता है।

६—चक्रवात और मेघ

कभी-कभी असाधारण कारणों से वायुमंडल में बडे भयानक चक्रवात और प्रति-चक्रवात भी उठते हैं जिन्हे बवंडर तूफान आदि नामों से लोग पुकारते हैं। यह साधारण नियमों के अपवाद के रूप में एकाएकी निकल पड़ते हैं, परन्तु इन की सीमा मर्य्यादित होती है और उस मर्यादा के भीतर-ही-भीतर जितने क्षेत्रफल पर यह तूफान आ पड़ते हैं उनकी बरबादी में एक रत्ती भी बाकी नहीं रह जाता। भारतवर्ष के भीतर इस तरह के बवंडर आते तो बहुत हैं परन्तु भयंकर बहुत कम होते हैं। कभी-कभी आसाम की ओर ऐसे भी सुने गये हैं जिन से भारी हानि हुई है। परन्तु शायद चालीस-पचास बरस में एक बार। अनुमान किया जाता है कि चक्रवातों और प्रतिचक्रवातों का कारण अस्थिर नीची वायु में ही नहीं है। इस का कारण स्थिर वायुमंडल अथवा अन्तरिक्ष में होगा जहाँ की असाधारण अस्थिरता से अस्थिर वायुमंडल में भयानक परिणाम देखने में आते होंगे। अमेरिका, जापान, एशिया के पूर्वी समुद्रतट पर एवं अमेरिका और युरोप के पश्चिमी तटों पर कभी-कभी भयानक चक्र-वात आ जाते हैं जो बस्ती-की बस्ती उजाड़ डालते हैं।

समुद्र, झील, ताल नद नदी तालाब, गड्ढे कुएँ, निदान सभी जलाशयों में निरंतर भाफ के रूप में परिणत होकर जल उड़ता रहता है। यह भाफ हवा में मिलकर उसे आर्द्र बनाये रहती है। गरम हवा भाफ को वायव्य रूप में अपने में मिलाये रहती है परन्तु जब

ठढी होती है, भाफ जम जाती है, नन्हे-नन्हे सीकर वन जाते हैं, और ओस-कण, कुहरा, मेघ और वर्षा का रूप देख पड़ता है। ठढी हवा बिलकुल अनार्द्र तो नहीं हो जाती परन्तु वह गरम होकर जिस मात्रा मे आर्द्रता को धारण करती थी, ठढी होकर उतनी ही आर्द्रता नहीं धारण कर सकती। अन्तरिक्ष देश मे अत्यन्त सूक्ष्म जलसीकर वा हिमसीकर जो वायु की शीतलता के कारण अलग-अलग जम जाते है वायु में भाफ की ही तरह अवलम्बित रहकर कुहरे या कुहासे का रूप ग्रहण करते है। इन के समूह का विस्तार और गहराई दोनो अत्यधिक होने के कारण यह बहुत घने होकर हमे जिस रूप मे दिखाई देते है उसे हम "घन" या बादल कहते हैं। नीचे की धरती से यह अनेक रूपो मे दिखाई पडते हैं। ऊँचाई-नीचाई, प्रकाश के सीधे या आड़े तिरछे पड़ने या न पड़ने से, धूपछाँह के तारतम्य से, तरह-तरह के रूप देख पडते हैं। पच्छाही अन्तरिक्ष विद्यावालो ने इसी हिसाब से बादलो के भाँति-भाँति के नाम रखे हैं।

आकाश मे अनन्त रूपो और आकारो के बादलो मे से कुछ का वर्णन करके हम वर्गीकरण का प्रयत्न करेगे। सब से ऊँचे बहुत पतले परो के समूह की तरह घूघराले बादल जो दिखाई पडते हैं उन्हे कुन्तलमेघ (सिर्रस) कहते हैं। यह लगभग पाच मील की ऊँचाई पर होते हैं। यह हिमकण के बने हुए होते हैं। इन पर प्रकाश पड़ने से बड़े विचित्र दृश्य देखने मे आते हैं। चद्रमा पर सूर्य्य के चारो ओर बड़े-बड़े मडल भी इन्ही से बनते हैं।

इन से कुछ ही नीचे उतर कर ऊँचे कुज और उनीले मेघ (आल्टो-क्युम्युलस और सिरो क्युम्युलस) होते हैं। इन मे अधिक सुन्दर मेघ आकाश मे देखने को नही मिल सकते। बडे विचित्र क्रम से तह-ब-तह रिसाले से छा जाते हैं। बरफ की तरह सफेद चौडे सीधे समानान्तर रुई के गालो के बीच बीच मे छोटे-छोटे लहरीले बादलो की अनन्त राशि देख पडती है। कभी-कभी जब आकाश थोड़ी देर को खुला रहता है इन्ही बादलो की राशि मे सूर्य्य और चद्रमा के चारो ओर छोटी रगीन मडली दीखती है। इन की ही जगह कभी-कभी ऊँचे परतीले (आल्टो स्ट्रेटस) भी दीखते हैं। जान पड़ता है कि आकाश पर चिकना भूरा रग सा चढ गया है जिस के बीच सूर्य्य या चद्रमा का गोल प्रकाश सा धब्बा सा दीखता है। यह दृश्य साधारणतया तब दिखाई पड़ता है जब आगे तो वायुमडल मे चाप की कमी होती है और उस के पीछे कुतल मेघमाला आ चुकी रहती है। इस दृश्य के बाद पानी जरूर बरसता है।

इस मे भी नीचे धरती से लगभग एक मील की ऊँचाई पर काले मेघो की बहुत भारी राशि देख पडती है जिस के किनारे चाँदी की तरह चमकते सफेद होते हैं। यह कुजमेघ (क्युम्युलस) कहलाते हैं। ऊपर चढती हुई धरती के स्पर्श से गरमायी हुई वायु की धाराओ मे जो भाफ ऊपर को चढती जाती है, उसी के ठढे पड़ जाने से यह कुज मेघमाला बन जाती है। इसी जगह इन्ही मेघो के ऊपर प्रायः बरसनेवाले "जलद" (निम्बस) बादल की भारी स्याही या काली चौपड़ो मे बनी हुई चादनी पड़ी दिखाई पड़ती है। कभी-कभी इन कुज जलदो के मिलकर बढते-बढते यह बादल डेढ-डेढ कोस तक की गहराई की

मेघराशि या कादम्बिनी बन जाते हैं। यही कुञ्ज रूप के घने जलद हैं जो देर तक छाये नहीं रह सकते। इन्हीं से घोर मूसलाधार जल बरसता है और ओले भी पडते हैं। इन्हीं में बिजली चमकती और कडकती है। बादल के भीतर जल-सीकरों पर बिजली इकट्ठी हो जाती है। यही बिजली एक ओर से दूसरी ओर को चिनगारियों के रूप में टूटकर बडे वेग से चली जाती है इसी क्रिया में कडक होती है, यही बादल की गरज है। परन्तु शब्द में लगभग दस लाख गुना अधिक वेग से प्रकाश चलता है। इसीलिये हमें बिजली की चमक पहले दिखाई देती है और गरज कुछ देर बाद सुनाई देती है, यद्यपि दोनों क्रियाएं बिलकुल एक साथ होती हैं और बादल से पृथ्वी की ओर भी आती है।

बड़े-बड़े ओलों की परीक्षा से पता लगा है कि यह ओले बरफ के छोटे-छोटे परतों से मिलकर बने हैं। कारण यह समझा जाता है कि जहां हिमसीकर बन जाते हैं वहाँ हवा की बड़ी वेगवती धाराएं ऊपर नीचे की दिशा में बहती हैं, और यह हिमसीकर भी उन्हीं धाराओं में पड़कर बड़े वेग से अनेक बार ऊपर-नीचे चक्कर खाकर एक दूसरे से टकराकर बढते जाते हैं और जब काफी बड़े हो जाते हैं कि वहां के झोकों में बहुत देर तक ठहर नहीं सकते और धरती से आकृष्ट होकर गिरते हैं, तो वेग के साथ गिरते हैं।

कुहरा या कुहासा वस्तुतः वह बादल है जो धरती को छूता हुआ रहता है। यह जलसीकरों का समूह है जो अत्यन्त दूर से देखने पर बादलों सा ही दीखता है। जब यह बहुत घना होकर पहाड़ों पर जलदवाले कुहासे के रूप में रहता है तो इस के भीतर चलने फिरनेवाले छतरी लिये भी और बिना वर्षा हुए भी पानी से शराबोर हो जाते हैं। रात में जब धरती बहुत जल्द ठंढी हो जाती है तो वायु की आर्द्रता उस के सम्पर्क में आकर जलसीकर बनकर ठंढी चीजों पर ओस के रूप में जम जाती है। जाडों में जहां अत्यंत सरदी पड़ती है, कुहासे के जलसीकर जमकर हिमसीकर बन जाते हैं और हिमसीकर ही इकट्ठे होकर रुई के गाले की तरह छतों, पेड़ों आदि पर जम जाते हैं। यही "पाला" कहलाता है। टपकता हुआ जल भी जमकर पाला बन जाता है। इन के भांति-भांति के अद्भुत रूप और आकार बन जाते हैं।

इस जगतीतल में सर्वत्र वायुमंडल रज-कण से लदा हुआ है। मिट्टी के, धुए के रेते के, सामुद्रिक सीकर के, नमक के, ज्वालामुखी की राख के, उल्कापात की धूल के फूलों के, पराग के, अत्यंत नन्हे-नन्हे कणों की अनंत राशि सारे वायुमंडल में फैली हुई है; सूरज की रोशनी और धूप के और हमारे बीच में इन का बहुत गहरा-सा परदा पडा हुआ है। इनकी बदौलत आकाश में नीलिमा है नहीं तो घोर काला और भयानक सा लगता और आकाश में जो रंग बिरंगे दृश्य देखने को मिलते हैं वह न मिलते। उषा और गोधूलि वेला की मनोहारिणी अरुणिमा एवं अन्य मनोहर रंग इन्हीं कणों के प्रभाव से दीखते हैं। और वास्तविक बात तो यह है कि काफी ठंढक होने पर भी यह धूल और धुए के कण न हों तो जलसीकर और हिमसीकर न बनें और न बादल ही बरसें। बादलों के बनने की ही नौबत न आये। धुए की ही महिमा में तुलसीदास जी ने कैसी वैज्ञानिक बात कही है—

सोइ. जल अनल अनिल सघाता,
होइ जलद जग-जीवन-दाता।

नन्हे-नन्हे जलसीकरों की राशि पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं और यह राशि सारे नभोमडल में एक ही धरातल में होती है तो हर एक सीकर त्रिपार्श्वकाच का काम करता है और किरणों का प्रतिफलन और त्रोटन दोनों होने से इन्द्रधनुष की छवि देखने में आती है। यह जब निकलते हैं तब दो, एक चटकीला होता है तो दूसरा कुछ मद। इन में से प्रत्येक में क्रम से बैगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारगी लाल यह सात रङ्ग दिखाई पड़ते हैं। जब कभी त्रिपार्श्व काच में सूरज की किरणें पैठती हैं तो इन्ही सातों रगों में उन का विश्लेषण हो जाता है।

रगों की विचित्रता सब से सुदर भव्य मनोहर उन विद्युज्ज्योतियों में देख पड़ती है जो उत्तर और दक्षिण के सुमेरु और कुमेरु प्रदेशों में और उन के पास के अक्षांशों पर छः महीनों की रात में बराबर दिखाई पडती है और जिन की बदौलत वहा रात में भी उषा का-सा उजाला बना रहता है। इस ज्योति की पीली-हरी, गुलाबी या ईगुरी किरणें जाड़ों में ध्रुव रेखाओं के बाहर के देशों में भी चमकती दिखाई देती हैं। यह ज्योति इग्लिस्तान के वायुमडल में लगभग ५० मील की ऊचाई पर दिखाई देती है। हमारे देश में यह मनोरम दृश्य देखने में नहीं आ सकता। ऐसा समझा जाता है कि यह ज्योति सूर्य की ही ऋण विद्युत्कणों से आती है क्योकि उन दिनों जब सूर्य के धब्बे सब से अधिक और बड़े होते हैं तब यह ज्योति सब से अधिक तेजोमय और विस्तृत दिखाई देती है। [देखिये चित्र ५६ क, ५६ ख, पृष्ठ ७६-८०]

ऋतु के सबन्ध में भारतीय ज्यौतिष विद्यावाले अपनी गणना से वर्षा आदि के सम्बन्ध में लगभग ठीक ही अनुमान किया करते हैं. परतु उनकी गणना ग्रहोपग्रह के योग पर निर्भर है। यह असभव नहीं कि ग्रहोपग्रहों का ऋतु पर प्रभाव पडता हो क्योकि अभी पाश्चात्य अन्तरिक्ष विद्या ऐसी अवस्था को नहीं पहुंची है कि सभी बातों को उसने नियमों के शिकजे में बाध लिया हो और साधारण परिवर्त्तनों और विपर्ययों के मूल कारण को ठीक-ठीक समझ सकी हो। अनेक कहावतें भी अपने देश में प्रचलित हैं जो घाघ, भड्डर आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिन की सत्यता की जाच हजारों बरस से अनुभव की कसौटी पर होती आयी है। इस तरह की कहावतें सभी देशों में चलती हैं, परन्तु हमारे देशों में यह बहुत हैं और किसान इन पर निर्भर करते हैं।

पचीसवां अध्याय

जीवाणु-विज्ञान

१—जीवाणुओं की खोज

जल स्थल और वायु तीनों से मनुष्य घिरा हुआ है। इनके बिना वह रह नहीं सकता। परतु वह इस जलस्थल वायु-ससार मे अनत प्राणियों से भी घिरा है। यों तो छोटे-बड़े सभी तरह के प्राणी उस के चारों ओर जल स्थल और वायु तीनों मे मौजूद हैं फिर भी यह तो बडे-बड़े शरीरधारियों की बात हुई। वह पशुओं-पक्षियों जलचरों से कुछ काल के लिए एकात पा सकता है। मक्खियों-मच्छरों से भी वह नजात पा सकता है क्योंकि यह भी आखों से दीखते हैं। परतु ऐसे अनत और असख्य जीवाणु जल-स्थल-वायु तीना मे भरे पड़े हैं जिन्हें अणुवीक्षण यत्र से भी देखना कठिन है और जिन से एक इच जगह भी बिल्कुल खाली मिलना प्रायः असभव है। सारा जगत ही इन से भरा नहीं है हमारी देह भी इन से खाली नही है। निदान यह सर्वत्र व्याप रहे हैं। अणुवीक्षण यत्रों मे आज तक ज्यों ज्यों उन्नति हुई है त्यों-त्यों इन की व्यापकता की वैज्ञानिक कल्पना बढती ही गयी है। इन का परिशीलन दिना-दिन अधिकाधिक महत्व का समझा जा रहा है।

इस विषय का परिशीलन अणुवीक्षण यत्र से आरभ होता है। उस समय के वैज्ञानिकों ने जब पहले-पहल जीवाणुओं का निरीक्षण आरभ किया तो उन की धारणा यह हुई कि यह चेतन प्राणी जड पदार्थ से ही किसी अविज्ञात रसायनिक क्रिया से बन जाते हैं। विकास सिद्धान्त पर विचार करते हुए हम इस धारणा की चर्चा कर आये हैं। यहा दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इस धारणा पर साम्प्रतिक विचार यह है कि करोड़ो बरस पहले की आज की परिस्थिति से नितान्त भिन्न परिस्थिति मे सभव है कि जड मे चेतन की उद्भावना हुई हो, परन्तु वर्त्तमान काल मे तो जड से चेतन की उत्पत्ति असभव समझी जाती है। फिर ज्यों-ज्यों इस विज्ञान का विकास हुआ त्यों-त्यों ठीक स्थिति के जानने मे उन्नति हुई जान पडा कि जीवाणु दो प्रकार के हैं एक

तो उद्भिज्जाणु और दूसरे कीटाणु। फिर इन मे भी अनेक प्रकार हैं। कीटाणुओ के विकास की चर्चा अन्यत्र हो चुकी है। उद्भिज्जाणुओं की चर्चा हम इस अध्याय मे करेंगे।

यह जीवाणु अत्यत सूक्ष्म छड़ की तरह लम्बे, या रेशेदार जलीय पौधे होते हैं। यह अत्यन्त सीधे-सादे आकार और बनावट के होते है और आड़े-तिरछे फटकर वृद्धि पाते हैं। यह विविध रासायनिक क्रियाओ के प्रवर्त्तक होते हैं, अनेक तरह के खमीर उपजाते हैं, परतु जो शक्करों को फाड़कर मद्यसार बनाते हैं खमीरों से नितान्त भिन्न होते हैं। यह इकट्ठे करोड़ों की सख्या मे एक साथ मिलते हैं और चौड़ाई मे इच के पचास सहस्र अश होते है और लम्बाई मे दूने अर्थात् इच के पच्चीस सहस्र अश होते है। इन राशियो मे बहुतेरे सात आठ गुने लम्बे और कुछ अधिक चौड़े भी पाये जाते हैं। यह जब फटकर बढते हैं तो कोई तो सीधे छड़ो के रूप मे, कोई सर्पाकार और कोई-कोई कुडल्याकार हो जाते हैं। कुडल्याकार अणुओं के भी टुकड़े जो कामा (,) के रूप में कट जाते हैं, हैजा पैदा करनेवाले उद्भिज्जाणु होते हैं।

यह सूक्ष्म पौधे बड़ी तेजी से बढते और एक से अनेक होते हैं। घास का एक विशेष उद्भिज्जाणु हर आध घटे मे दूनी लम्बाई का होकर कट जाता है और एक से दो हो जाता है। इसी प्रकार का एक और उद्भिज्जाणु अनुकूल दशा मे पाच घटे मे १०२४ उद्भिज्जाणुओ मे परिणत हो जाता है, दस घटे मे दस लाख से भी अधिक हो जाता है और २४ घटो मे तो दस खरब से भी अधिक हो जाता है। जिस द्रव मे यह बन जाते हैं उस मे देखने मे तो गौजनेवाले बादल से जान पड़ते हैं क्योंकि उन की ऊपरी तह पर प्राथमिक जीवपक के बड़े कोमल रेशे प्रेरक गति उत्पन्न करते रहते हैं। कभी-कभी यह रेशे इन उद्भिज्जाणुओं से छूट जाते हैं। उस समय उद्भिज्जाणुओ के स्थिर रहने की दशा आ जाती है। तब यह बरतन की तली मे स्थिर रूप से ठहर जाते हैं। इन रेशों का पता हाल मे बहुत सूक्ष्म अणुवीक्षण यन्त्रों मे रगों के सहारे लग सका है।

उद्भिज्जाणुओं की वृद्धि योनिज नही जान पड़ती क्योंकि इन मे नर-मादे का कोई भेद नहीं देखा गया है। पौधो की तरह इन मे से अनेको मे बीजो का होना देखा गया है। यह अत्यत सूक्ष्म बीजाणु होते हैं जो सहज ही अनुकूल अवस्था पाकर बढते हैं। यो तो फटकर इन सूक्ष्म जलीय पौधो की वृद्धि होती ही है परतु बीजो के द्वारा यह सहज मे स्थान परिवर्त्तन भी करते हैं, वृद्धि भी पाते हैं। इस तरह इन जीवाणुओं की वृद्धि के दो उपाय देखे जाते हैं।

इन के मूल पक की बनावट का जानना अब तक अणुवीक्षण यन्त्रो की शक्ति के बाहर है, क्योंकि इन की सूक्ष्मता आत्यन्तिक है। अब तक इस सबध मे अनुमान से ही काम लिया जाता है। परतु इस मे सदेह नही कि सभी जीवित प्राणियो की तरह इन के मूलपक मे भी कर्बन उज्जन नोषजन ओषजन हैं। कुछ गधक है और अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा मे कुछ स्फुरेत, चूना और क्षार भी हैं। इस के जीवन के लिये भी जल का ओत-प्रोत भाव से व्यापा रहना यद्यपि आवश्यक है तथापि इन जीवाणुओं मे अद्भुत बात देखी गयी है कि यदि इन्हें सर्वथा अनार्द्र कर दिया जाय तो भी इन मे की अनेक जातिया ऐसी हैं कि मर

नहीं जातीं। इन का जीवन स्तम्भित सा रहता है। अनुकूल दशा हो जाने पर यह फिर बढ़ने और काम करने लगती हैं।

२—परिस्थितियों का प्रभाव और जलवायु-परीक्षा

बहुतेरे उद्भिज्जाणु शून्य शतांश के ठंडे समुद्र-जल में भी जीवित रहते हैं। परीक्षा से पाया गया है कि द्रव उज्जन में भी (–२५२ श) इन की क्रिया-मात्र बन्द हुई परंतु कोई हानि नहीं पहुँची। परन्तु अधिकांश तो ५५° शतांशवाले ताप पर ही मर जाते हैं। कुछ ऐसे हैं जो ७२° श की गरमीवाले सोतों में भी जीते हैं। जितने उद्भिज्जाणु बीजाणु नहीं उपजाते खौलते पानी में पड़ते ही तुरत मर जाते हैं। जो उपजाते हैं उन के बीजाणु यदि पुराने और सूखे हों तो तीन घंटे तक उबालने पर भी जीवित रह जाते हैं। ताजे और गीले होने पर सहज में मर जाते हैं। यदि कोई द्रव इन से मुक्त तैयार करना अभीष्ट हो तो इन बातों पर विचार रखना आवश्यक है। फल तरकारियां मछली मांस आदि बहुत कालतक बिना बिगड़े रखने के लिये जो उपाय किये जाते हैं उन में इन बातों के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

अब तो यह बात पूर्ण रीति से सिद्ध हो गयी है कि सूर्य की किरणों से अनेक तरह के उद्भिज्जाणु नष्ट हो जाते हैं। सब से अधिक नाशक बैंगनी किरणें हैं। छिछली झीलों, खुले जलाशयों और नदियों में धूप के पड़ने से अनेक रोगाणु नष्ट हो जाते हैं, जैसे आंत्रज्वर, जहरबाद, प्लीहा, ज्वर आदि। जो जीवाणु आत्यंतिक शीत से नहीं मरते, वह बैंगनी किरणों से मर जाते हैं।

जो जीवाणु जल के ऊपरी तल पर रहते हैं, ऊपर से भारी चूना मिट्टी आदि पदार्थों के पड़ने से तली में पहुँच जाते हैं, और भार से नष्ट भी हो जाते हैं। इस तरह जिन तालाबों या झीलों का पानी सड़ गया हो उनके ऊपरी भाग को इस तरह सहज ही साफ कर सकते हैं। भार का जीवाणुओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वह हवा में बहुत देर तक बहते नहीं रह सकते। धूल के साथ हवा में जीवाणु भी उड़ते फिरते हैं परन्तु जहां धूल नहीं उड़ती और हवा थमी हुई है जैसी कि एक शान्त कमरे की या किसी खमने की दशा हो सकती है वहां हवा में प्रायः जीवाणु नहीं होते। अन्यथा वह सभी ऊपरी तलों पर इकट्ठे हो जाते हैं। विशेष कर के आदमी की अंगुलियों पर और द्रवों में तो इकट्ठे होते ही जाते हैं।

यदि कहीं के वायु या जल की परीक्षा जीवाणुओं के लिये करनी हो तो जीव-विहीन भोज्य-द्रव में जिसमें अगर-अगर वा अन्य किसी लपसी की तरह जम जानेवाली चीज जरा गरमाकर मिलायी गयी हो, नपी हुई वायु का प्रवेश कराया जाता है या जल की नपी हुई मात्रा डाल दी जाती है, और मिश्रण किसी निर्जीवीकृत तश्तरी में डाल कर ढककर जमने को रख दिया जाता है। परीक्ष्य वस्तुओं का प्रत्येक जीवाणु उस लपसी में फँसकर एक ही जगह रह जाता है और बिना जगह बदले उसकी उसी जगह

वृद्धि होती है। दूसरे दिन जब तश्तरी उघाड़कर देखते हैं तो जीवाणुओं के समूह का प्रदर्शक एक एक बिंदु या घुंडी सरीखा उस लपसी में देख पड़ता है। इन घुंडियों की संख्या गिन सकते हैं और इस तरह बता सकते हैं कि कितने जीवाणु कितनी मात्रा में मौजूद थे। जो जीवाणु पकड़े जा सके हैं उनके प्रकार की भी जाच हो सकती है। म्युनिसिपलिटियों में पानी की जीवाणिवक जाच प्रायः इसी तरह की जाती है।

जीवाणुओं के प्रकारों की ठीक-ठीक जाच और विधि से की जाती है। लार्ड लिस्टर ने दूध के सम्बन्ध में इसी विधि से जाच की थी। जिस वस्तु की जाच करनी है उसका ठीक एक सीसी या घन-सहस्राशमीटर लेकर उसे एक वर्ग-खानेदार काचखड पर फैलाकर अणुवीक्षण-यत्र द्वारा जीवाणुओं की गिनती कर ली। मान लो कि प्रति सीसी एक सहस्र मिले तो हम उतना ही वह द्रव लेकर उसके हजार गुने शुद्ध जीवविहीन जल में घुलाकर खूब हिला देते है। अब इस घोल में प्रायः प्रति सीसी एक जीवाणु होगा। अब एक निशान लगी नपनी नली से उसमें से एक सीसी घोल निकाल लें तो मानों एक जीवाणु निकाला गया। इसी तरह पचास नमूने लेकर अलग-अलग पचास भोज्य द्रव की नलिकाओं में रखकर देख सकते हैं कि निश्चित अवधि बीत जाने पर किस-किस में क्या फल आता है। किसी-किसी में तो एक भी जीवाणु न होगा। किसी-किसी में दो-दो तीन-तीन होंगे। परन्तु अधिकाश में एक-ही-एक जीवाणु देख पड़ेंगे। इनमें अलग-अलग जाति के जीवाणुओं के अलग-अलग मिलने से परीक्षा का सुभीता होता है। अब परीक्षक इन की अलग-अलग परीक्षा कर सकता है और अलग अलग ही वृद्धि भी कर सकता है। हा, उसे बड़े धीरज से निरन्तर हर एक प्रकार को किसी और के मेल से बचा रखना पड़ेगा और बड़ी चौकसी रखनी पड़ेगी। क्योंकि जीवाणुओं की वृद्धि के लिये केवल भोजन ही पर्याप्त नहीं है जरा-जरा सी जोखिम से उसकी रक्षा भी होनी चाहिये। जैसे कुछ जीवाणु ऐसे हैं जिन्हें अत्यन्त जरा सी खटाई मार डालती है। चूना, कारबोलिक, अम्ल, हरिन और तैल और विविध धातुज लवण और अनिलिन रग भी जीवाणुओं के लिये घातक हैं। परन्तु यह साधारण अवस्थाओं में बरतनों में अशुद्धि के रूप में नहीं पाये जाते तो भी लोग जीवाणुओं के मारने के लिये ही प्रायः अपने पास रखते हैं जिससे उनका विनाश सहज हो जाता है। कुछ जीवाणुओं के जीवन के लिये शुद्ध ओषजन आवश्यक है और कुछ के लिये घातक भी है। इन्हीं गुणों पर कुछ जीवाणुओं की रासायनिक क्रिया सर्वथा निर्भर है।

३—जीवाणुओं के काम

हम अन्यत्र दिखा आये हैं कि सेल का प्रथम पक प्रत्यमीन का बना होता है। प्रत्यमीन में कर्बन उज्जन नोषजन ओषजन और गधक यह पाच मूल पदार्थ होते हैं। इन्हीं से समस्त मासकण बना हुआ है, समस्त प्राणियों के शरीर के कोमल अश इसी प्रत्यमिन के बने हुए हैं। प्रत्यमिन यदि जल में भिगोया हो जैसा कि तालाबों या गढ्ढों के

थमे हुए जल में पत्तियाँ आदि गिरने से होता है या उनका काढ़ा किया हुआ हो जैसा कि माम के शोरबे में होता है तो इनमें जो सड़ाइँ व उत्पन्न होती हैं उनके पैदा करनेवाले एक प्रकार के उद्भिज्जाणु ही होते हैं। सड़ान में दुर्गंधवाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उद्भिज्जाणुओं की वृद्धि होती है, यह दो बातें मुख्य रूप से दिखाई पड़ती हैं। वस्तुतः होता यह है कि यह उद्भिज्जाणु अपने भोजन के लिये प्रत्यमिन को तोड़ डालता है और उसके टुकड़े करके अनेक तरह के पदार्थ बनाता है जिनसे बहुत दुर्गन्ध निकलती है। प्रत्यमिन को खाकर यह उद्भिज्जाणु बढ़ते जाते हैं। यह तोड़ना ही पचाना है। मूलपदार्थों को अलगाकर यह उद्भिज्जाणु अपने लिये नये जीवनपक्ष बनाते हैं। यह सड़ना प्रकृति में अत्यन्त आवश्यक क्रिया है। यह न हो तो शीघ्र ही सृष्टि का अन्त हो जाय। यह कैसे, सो सुनिये।

जितने जीवधारी हैं सब को कर्बन, ओषजन, नोषजन, उज्जन, गंधक, स्फुर आदि भोजन के लिये चाहिये। परन्तु चाहिए प्रत्यमिनों के रूप में, और संसार में इनकी प्रचुरता है सही पर प्रत्यमिनों के रूप में नहीं है। कर्बन-द्वयोषिद, कर्बनेत, गंधेत, अमोनिया, नोषजन, ओषजन जल, उज्जन, स्फुरेत आदि रूपों में स्थल-जलवायु मंडलों में यह छहों मौलिक पदार्थ भरे पड़े हैं परन्तु जीवधारी इन रूपों में इन्हें आत्मसात् नहीं कर सकता। प्रत्यमिन के ही रूप में कर सकता है। जो प्राणी दूसरे प्राणी को खाकर प्रत्यमिन लेता है वह तो स्पष्ट ही वृद्धि में सहायक नहीं हो सकता। एक-मात्र सहायक उद्भिज्ज हैं। उद्भिज्जों की हरियाली एक अद्भुत काम करती है। वह सूर्य की किरणों के सहारे वायुमंडल के कर्बन-द्वयोषिद को तोड़कर कर्बन ले लेती है और ओषजन छोड़ देती है। कर्बन द्वयोषिद फिर भी कर्बनमय पदार्थों के जलने-पचने आदि से बनता है। इस तरह कर्बन-द्वयोषिद टूटता बनता रहता है। जड़ों के द्वारा धरती से रस चूसकर जल और अन्य मौलिक पदार्थों को उद्भिज्ज खींच लेता है और सब मिलाकर प्रत्यमिन बनाता है। उद्भिज्जों से अन्य जीवधारी प्रत्यमिन लेकर जीते हैं। परन्तु यदि जल-स्थलवायु-मंडलों से प्रत्यमिन के मूलपदार्थ ले तो लिये जाँय परन्तु लौटाये न जाँय तो धीरे-धीरे जल-स्थल-वायुमंडलों में इन वस्तुओं का उत्तरोत्तर ह्रास होता जाय और सृष्टि की परम्परा रुक जाय और संसार प्रत्यमिनों से भर जाय। इसीलिये प्रत्यमिनों को हरे उद्भिज्ज जैसे बनाते हैं उसी तरह सूक्ष्म उद्भिज्ज उन्हें नष्ट भी कर डालते हैं और मूल पदार्थों को फिर जहाँ-जहाँ से आये वहीं पहुँचा देते हैं।

बड़े प्राणियों की तरह उद्भिज्जाणु कर्बनद्वयोषिद और अमोनिया को खा नहीं सकते। कुछ ऐसे उद्भिज्जाणु जरूर हैं जो अमोनिया तिंतिडेन जैसे कम जटिल पदार्थों से भोजन ले लेते हैं। परन्तु अधिकांश तो ऐसे हैं जो बड़े-बड़े जटिल पदार्थों पर ही चढ़ाई करते हैं और खमीर या प्रेरकाणुओं के सहारे उन्हें तोड़कर पचा लेते हैं। यह खमीर या प्रेरकाणु उसी तरह पाचक खमीर हैं जैसे पेप्सिन, ट्रिप्सिन, आदि हैं जो पेट में ऊपरी तह की सेलों से ही मिलते हैं। यह प्रेरकाणु इन्हीं प्रत्यमिनवाले ही मौलिकों के बने होते हैं। पेट के भीतर उद्भिज्जाणु भोजन के पदार्थों में घुसकर अपने पिंड से प्रेरकाणु निकालते हैं और भोजन के पदार्थों को घुलनशील रसों में परिणत कर देते हैं। साथ ही यह अपनी वृद्धि भी कर लेते हैं।

सड़ने मे एक-एक करके अनेक तरह के उद्भिजाणु काम करते हैं। हर एक का अलग-अलग काम है। हर एक अपना काम पूरा करके अपना (एन्जाइम्) प्रेरकाणु उपजाकर, आगे का काम आनेवाले को सौंप देता है। मास के सड़ाने मे पहला काम "टोमेन" या "मत्स्यिन" जाति के यौगिकों का बनना है। इन मे दुर्गंध तो नहीं होती परन्तु इन मे से कई बड़े उग्र विष होते हैं। इस के बाद इडोल, स्कटोल आदि दुर्गंधमय पदार्थों के बनने की बारी आती है। इन का विश्लेषण हुआ है और इन की रासायनिक बनावट अच्छी तरह मालूम है। यह भी विषैले पदार्थ हैं। इन के बाद सड़न आगे बढ़ती है और तीसरे प्रकार के उद्भिजाणु, अमोनिया, उज्जनगंधिद और कर्बनद्वयोषिद बनाते है। इस प्रकार सड़कर धीरे-धीरे प्रत्यमिन से अमोनिया और कर्बनद्वयोषिद बन जाते हैं। पेशाब से इन्ही जीवाणुओं की क्रिया से अमोनिया की बदबू आने लगती है। अब और जीवाणु अमोनिया से नोषाइत और नोषाइत से फिर नोषेत बनाते है। अन्त मे इसी नोषेत के रूप मे फिर उद्भिज्ज नोपजन को आत्मसात् करते हैं और प्रत्यमिन बनाते है। प्राणिजगत् मे इसी तरह भोजन से ही सृष्टि, भोजन से ही पालन और भोजन से ही संहार होता रहता है। इसे अन्न-चक्र कहना चाहिये। इस चक्र मे एक भी कड़ी ऐसी नहीं है जो हटायी जा सके। इसी चक्र से मौलिक पदार्थ बराबर स्थान-परिवर्त्तन करते हुए इस संसार मे बने रहते और संसार को बनाये रखते है। उपनिषद् मे पृथ्वी से अन्न और अन्न से रेतस् की उत्पत्ति जो बतायी है, वहां अन्न का ऐसा ही महत्त्वशाली तात्पर्य है।

४—जीवाणुओं के प्रकार

जीवाणु-विज्ञानी अनेक विचारो से उद्भिजाणुओं का वर्गीकरण करता है। कुछ वर्ग आकार पर कुछ उन के गुणो पर कुछ उन की क्रियाओं पर और कुछ उन के स्वभावो पर बनाये गये हैं। अब तक मुख्य तीस जातियां मानी गयी हैं जिन की एक हजार से ऊपर उपजातियां मानी गयी है। हम यहां इतने विस्तार से तो वर्णन कर नही सकते। परन्तु उन की कुछ विशेष क्रियाओ की चर्चा करेंगे।

जीवाणुओ का कार्य्यक्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। हम यहा कुछ ऐसी क्रियाएं बतलाते हैं जिन से मनुष्य-जाति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्यमिन का सड़ना तो जीवन के लिये आवश्यक है और उस की चर्चा हो चुकी। छिद्रोज बराबर गड्ढों के जल मे सड़ता है और कई वायव्य बनते हैं। सिरके का बनना, दही का जमना और दूध का फटना, नील की पत्तियो के सड़ने पर नीले रंग का निकलना, चमड़े का कमाया जाना, रंगने की पपड़ी का बनना, कांजी की तैयारी, इत्यादि जीवाणुओ की ही क्रिया है। इन क्रियाओ से मनुष्य लाभ उठाता है। परन्तु सड़ने की क्रिया से हानि भी होती है जिस से बराबर बचते रहना भी पड़ता है कि सड़ना आवश्यकता से अधिक न हो। इष्ट हद तक पहुंचने पर क्रिया रोक दी जाती है। कहीं कहीं तो सड़ने का आरंभ ही भयानक होता है।

घाव को जीवाणुओ से बडी सावधानी से बचाया जाता है। यह सभी जीवाणु गरमी पैदा करते है। परन्तु कुछ ऐसे भी है जो तापहीन प्रकाश देते हैं। यह जीवाणु विशेषत. समुद्र मे अत्यधिक होते हैं और तटवाले प्रदेशो मे भोजन के पदार्थों मे सहज ही पड़ जाते हैं। परन्तु सब से वडे महत्त्व के जीवाणु हैं रोगाणु। यह भी प्राय. उद्भिज्जाणु ही होते हैं। इन के अन्वेषण मे पाश्चात्य डाक्टरी इन दिनो व्यस्त है। ऐसा जान पडता है कि छूत से फैलनेवाली सभी बीमारियो के कारण यही है जो परसत्वाद होकर प्राणियो मे विशेष रोग फैलाते है। कुछ जीवाणु कीट की तरह भी होते है जैसे फसली ज्वरवाले। परन्तु अधिकाश उद्भिज्जाणु ही होते है। मनुष्य की अँतडिया इन की वृद्धि के लिये अनुपम क्षेत्र है। अतड़ियों में तो आधे के लगभग उद्भिज्जाणु ही भरे हुए है। इन मे से अधिकाश कोई हानि नहीं पहुँचाते बल्कि पाचन मे सहायता देते है। कुछ विष भी बनाते है जिसे प्राणी सह लेता है। परन्तु कभी-कभी बाहरी भयानक जीवाणु प्रवेश करके भारी परिमाण मे विष बनाने लगते हैं जो घातक हो जाते है। आन्त्रज्वर, हैजा, आमातिसार संग्रहणी, जहरवाद, दाँत के रोग, राजयक्ष्मा, इत्यादि-इत्यादि अनेक रोग इसी प्रकार होते है। वैज्ञानिको ने रोगाणुओ को अलगाकर, पालकर, फिर स्वस्थ शरीर मे प्रवेश कराकर इस का निश्चय किया है कि अमुक रोगाणु अमुक रोग पैदा करते है। कोई प्राणी ऐसे भी होते है कि रोगाणुओ को पचा भी डालते है। रक्त के भीतर के श्वेताणु इसी पचाने के काम मे मनुष्य के सहायक होते है। हनुस्तभ के रोगाणु विगड़े हुए घाव मे पैठ जाते है, परन्तु श्वेताणु उन्हे तुरन्त हजम कर लेते हैं। सयोगवश उसी समय जो और प्रकार के रोगाणुओ का आक्रमण हुआ जिन से लडने को श्वेताणुओ की सेना दूसरी ओर लग गयी तो हनुस्तभ के रोगाणु बडे वेग से फैल जाते है, मैदान उन्ही के हाथ रहता है और रोग काबू से बाहर हो जाता है। लिस्टर ने यह पता लगाया कि घाव मे विष उपजानेवाले रोगाणु पैठकर उसे सडा देते है, इसी लिये मरहम पट्टी की ऐसी विधिया निकाली कि रोगाणु पडने न पावे और पडे भी तो मर जायें।

प्राणियो की ऊपरी खाल मे से रोगाणु शरीर के भीतर नहीं जा सकते। हवा मे मिलकर साँस से भीतर जाते हैं, पर स्वाभाविक भीतरी कफ के छत्ते मे फँसकर वहीं नष्ट हो जाते हैं। भोजन मे असावधानी होने से उस मे पडकर पेट मे जरूर पहुँचते है और आमाशय के रसो से यदि नही मरे रेचन-वमन द्वारा यदि बाहर फेंक नहीं दिये गये, और बढ पाये तो रोग पैदा करते ही हैं। शरीर के बाहर की जरासी खरोच, या किसी तरह के घाव सहज ही उनको मार्ग दे देते हैं। अथवा जूं, चीलर, मच्छर, पिस्सू, खटमल, किलनी, आदि के काटते ही उन के द्वारा रोगाणुओ का प्रवेश हो जाता है। अभी तक इन्फ्लुएजा, कुत्ते के काटने से पागलपन आदि कई रोगो के रोगाणुओं का पता नहीं लगा है। परन्तु इनके उपजानेवाले रोगाणु ही हैं इस मे सन्देह नहीं रह गया है।

जैसे भोजन की असावधानी से रोगाणुओं का शरीर के भीतर प्रवेश हो जाता है वैसे ही अनिष्ट भोजन से रोगाणु पलते और बढ़ते भी हैं। मक्खियाँ भोजन पर बैठ कर रोगाणु

भोजन मे डाल देती है। घाव पर बैठकर उसे बिगाड़ देती है। बिना अच्छी तरह हाथ धोये भोजन करने लग जाने से, बासी, जूठे और असावधानी से रक्खे हुए भोजन करने से, खाने के बरतन ठीक मँजे धुले और साफ न होने से, गन्दी जगह मे भोजन के रहने से, गन्दे कपड़े या वस्तुओं से छूजाने से भी, रोगाणुओं का प्रवेश हो जाता है। यद्यपि इनके मारने के लिये आमाशय के रस प्रायः पर्य्याप्त होते हैं तथापि जोखिम से बचने के लिये सफाई और सावधानी रखनी ही चाहिये। शुद्ध स्वच्छ रीति से बने, ताज़े गरम भोजन शुद्ध स्थान मे स्वय शुद्ध होकर शुद्ध धुले और धूप मे सुखाये हुए कपड़े पहनकर भोजन करने से मनुष्य जोखिमो से बचा रहता है। हिन्दुओं के चौके के नियमो मे इतनी बाते बहुत अच्छी और सभी मनुष्यो के लिये अनुकरणीय हैं। भोजन की ही अनिष्टता से कोढ़, क्षय आदि रोग बहुधा फैलते हैं।

५—पौधों का भोजन

धरती मे पौधो के भोजन के लिये खाद बनानेवाले जीवाणु मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं, गधकी लोही और नोपजनी। वानस्पतिक छिद्रोज जहाँ जल भरे गढो और दल-दलो मे सडते है और उज्जन गधिद वायु निकलती है, वहाँ इस वायु को ओषजन देकर गधकी जीवाणु तोड डालते हैं और इसमे से गधक निकालकर पचाकर अपने पक में मिला लेते हैं। गदले जलाशयो मे ऊपर शराब के रग की जो तह जमी रहती है वह इन्हीं जीवाणुओ की है। बैगनी लाल और बेरग के भी इसी जाति के जीवाणु होते हैं।

चहबच्चो मे और गढ्ढों मे जहाँ गदा पानी सड़कर काला हो जाता है वहाँ उज्ज-नगधिद की क्रिया से लोहे का काला गधिद बन गया होता है। जिन सोतो के जलो मे घुलन-शील लौह-द्विकर्बनेत होता है लोहे के मोरचे के रग की एक तह जम जाती है। पानी के नलो मे भी यह बात देखी जाती है। यहाँ लोही जीवाणु काम करते है। नोषजनीय जीवाणु का सबसे अधिक महत्त्व है, क्योंकि वायु मे स्वतत्र भाव से भरा हुआ नोषजन पौधो के भोजन के काम मे नहा आ सकता। सोतो नदियो आदि के जल मे तथा मिट्टी मे यह जीवाणु विशेष काम करते हैं। इन्हें खेती और पौधो की जान कहें तो अनुचित न होगा। एक प्रकार के जीवाणु अमोनिया से नोषाइत और दूसरे प्रकार के नोषाइत से नोषत बनाते हैं। यह नोषेत ही खाद के काम मे आते हैं। परतु हरे पौधे को नोषजन की रसद एक और विधि से मिल जाती है। वह है एक ऐसा जीवाणु जो सीधे वायु से स्वतत्र नोषजन को पकड़कर खाद नोषजन बना डालता है। यह खेतो में बड़ी बहुतायत से रहा करता है और अनेक दालो के पौधो की जड़ो पर घु डिया बनाता है, जिन मे वृद्धि पाता है। जब नोषेत नहा मिलते तब यह पौधे सीधे वायु से नोषजन चूस लेते हैं। इन जीवाणुओं को अब अलग उगाकर और बढा-कर खेती के काम के लिये रोजगारी लोग बेचने लगे हैं। इस समय कुछ ऐसे जीवाणुओ के ढूढ़ निकालने की कोशिश हो रही है जो उलटी क्रिया करते हैं। नोषेत से नोषाइत और नोषाइत से अमोनिया बनाते हैं और फिर अमोनिया को तोड़कर नोषजन वायु अलग कर

लेते हैं। बड़े भारी-भारी कारखाने केवल इस बात के लिए बने हुए हैं कि वह मैला इकट्ठा करके उसे उत्तम-से-उत्तम खाद के रूप में परिणत करें और यह सब केवल इन्हीं जीवाणुओं के सहारे। आजकल युरोपीय देशों में नदियों में मैला बहाना कानूनी अपराध बन गया है और नदियों की शुद्धता की रक्षा की जाती है और उन का जल पेय रखने के लिये सब ही रासायनिक साधन काम में लाये जाते हैं और मैले से खाद बनाने के कारखाने अलग बनाये गये हैं। और हमारे देश में बड़े-बड़े शहरों का सारा मैला गंगाजी में बहाये जाने के लिये नित्य नये प्रबन्ध किये जा रहे हैं, जिस से पानी भी खराब होता है और खाद की अनमोल सामग्री भी नष्ट होती है। मनुष्य अपनी परिस्थिति को ठीक समझ ले तो उस की आँखें खुल जायें और वह समझ जाय कि नदियों में मैला बहाना और ईंधन की जगह उपले जलाना सम्पत्ति की कितनी बड़ी बरबादी है और स्वास्थ्य के लिये कितना हानिकारक है।

छब्बीसवां अध्याय

वनस्पति-विज्ञान

२—जीवो जीवस्य जीवनम्। हरियाली का पराक्रम

जीवाणुओं के परिशीलन के आरम्भ में वैज्ञानिकों को यह समझने में कठिनाई थी कि विचार्य्य जीवाणु कीटाणु है वा उद्भिज्जाणु, क्योंकि दोनों के लक्षण रूप आदि समान दीखते थे। जैसे इन सूक्ष्म जीवों में यह प्रभेद भी अत्यन्त सूक्ष्म है वैसे ही कुछ बड़े जीवों में भी एकाएकी देखने में पता नहीं लगता कि यह जीव चर है या अचर, कीटों या विशिष्ट शरीर-धारियों में है अथवा उद्भिज्जों में है। जैसे कुकुरमुत्ता और स्पंज देखकर सहसा कोई यह विवेक नहीं कर सकता कि कुकुरमुत्ते की तरह यह अचर नहीं है। सृष्टि में बहुत सूक्ष्म सेलों में भी एक सीमा ऐसी है जहाँ दोनों का भेद होता ही नहीं। यहीं जीवन के वृक्ष का मूल समझना चाहिए। यहीं से जीवन की दो बड़ी शाखाएँ फूटकर अलग हो गयी हैं। एक शाखा तो चर प्राणियों की है और दूसरी अचर प्राणियों की। विकासवाद के सम्बन्ध में चर प्राणियों की शाखा का हम कुछ विस्तार से चर्चा कर आये हैं। अचर प्राणी उद्भिज्ज हैं। पौधों को उद्भिज्ज इसी लिए कहते हैं कि वह जहाँ जमकर वृद्धि पाते हैं वहाँ वह बीज और क्षेत्र दोनों का भेदन करके ऊपर की ओर निकले हुए होते हैं। पौधे अचर हैं इस लिए उन्हें उन की जगह पर ही भोजन और पानी मिलना चाहिए। उनके जीवन की सारी व्यवस्था उनके सुभीते से उनके पास पहुँचनी चाहिए। इसके लिए उनका जन्म ऐसी ही जगह पर होता है जहाँ सारी सामग्री उपलब्ध होती है। सामग्री ज्यों ही चुक जाती है त्योंही पौधे का अन्त हो जाता है। इसीलिये इन अचरों को खाद्य पहुँचाने का प्रबन्ध इन्हीं के सजातीय उद्भिज्जाणु करते हैं और यह अचर पौधे स्वयं जिस सामग्री को आत्मसात् करते हैं, पचाते हैं उसीसे अपने शरीर में ऐसी सामग्री तैयार करते हैं जो प्राणियों के जीवन का सहारा है, भोजन है। हरी पत्तियों के द्वारा सूर्य्य की किरणों के सहारे और जड़ों और रेशों के चूसने की क्रियाओं से कर्बोदेत

छिद्रोज, तैल, हरियाली (पर्णहरिन, क्लोरोफिल) और प्रत्यमिन बनते हैं और यही चर प्राणियों के भोजन हैं। इसी की चर्चा पिछले अध्याय में हो चुकी है। खनिजों को खाकर उद्भिज्ज और उद्भिज्जों को खाकर चर प्राणी जीते हैं, "जीवो जीवस्य जीवनम्" ।

सूर्य्य की किरणों से ही गरमी और शक्ति लेकर पौधे की सारी सामग्री बनती है । किरणें न हों तो उज्जन, कर्बन, ओषजन, स्फुर, गंधक,आदि सभी मूल पदार्थ अलग-अलग रह जायँ । कुछ बने ही नहीं। वस्तुतः सारी शक्ति सूर्य्य की किरणों से ही आती है कार्बोज आदि कर्बोज, सब तरह के तैल, सभी प्रत्यमिन और मूलपक मात्र इसी सूर्य्य की शक्ति से बनते हैं। सूर्य्य की शक्ति अचर प्राणियों में मानो जमकर ठोस रूप में मौजूद रहती है। चर प्राणी इन्ही अचरों पर जो निर्वाह करते है वह वस्तुतः सूर्य्य की शक्ति पर जीते हैं। लकड़ी जलाकर जो आग पैदा करते हैं वह भी सूर्य्य की शक्ति ही आग के रूप में प्रकट होती है । मिट्टी का तेल एक प्रकार से द्रव रूप में सूर्य्य की किरणें हैं जो प्रकाश देती हैं। पत्थर का कोयला भी जलता है तो आँच उसी सूर्य्य के ताप से देता है जो लाखों बरस पहले अपने में जमा कर रखा है। समस्त चर प्राणियों में भोजन के पदार्थों के पचा लेने पर जो शक्ति आती है वह भी उन पदार्थों में जमी हुई सूर्य्य की शक्तिही है। निदान इस भूतल पर वनस्पति के सहारे प्राणिमात्र में सूर्य्य की शक्ति ही काम कर रही है।

कुछ उद्भिज्ज ऐसे भी होते हैं जिन में हरियाली नहीं होती, जैसे कुकुरमुत्ते या फफूंदी की जाति के उद्भिज्ज। बासी रोटी आदि भोजन के पदार्थों में फफूंदी लग जाती है जो काली होती है। मुरब्बे पर नीली लगती है। गेहूं में लाल गेरुई लग जाती है। यह पौधे औरों के लिये भोजन के पदार्थ नहीं बनाते बरन् आप औरों से अपने लिये भोजन लेते हैं । इन में से जो फफूंदी जीवित पौधों में लगती है परसत्वाद या पराश्रित की तरह होती है और जिस पौधे पर होती है उसे खा जाती है। गेरुई ऐसी ही फफूंदी है। कोई-कोई फफूंदी काम की चीज़ होती है जैसे खमीर, जिस से शराब बनायी जाती है। फफूंदियां जड़ से भोजन चूसती हैं। रोशनी का सहारा नहीं लेती परन्तु जिस के सहारे जमती हैं उसे भी चूसती हैं।

कुछ ऐसे पौधे भी होते हैं जिन में हरियाली तो होती है और वह अपना भोजन रोशनी, वायु और पृथ्वी से लेते हैं, तो भी वह कीड़े-मकोड़े और कभी-कभी इन से कुछ बड़े चर प्राणियों को भी खाते और पचाते हैं। किसी-किसी में कीड़ों को पकड़ने के लिये पत्तियों के सिरों पर लम्बे-लम्बे रेशे निकले होते हैं और पत्ती पर लसदार पदार्थ लगा रहता है । रेशे पकड़ते हैं, लसी में कीड़े फँस जाते हैं, पत्तियां मुँद जाती हैं और जब कीड़ा पच जाता है तब फिर खुल जाती हैं। कुछ फेर-फार के साथ विविध आकार के अनेक प्रकार के मांस भोजी पौधे भी होते हैं।

२—चर और अचर में समानता

पिछले अध्याय में हम जिन उद्भिजाणुओं का वर्णन कर आये हैं उन में लेकर

बड़े-से-बड़े शाहबलूत या बड़ के वृक्ष तक सभी उद्भिज्ज या वनस्पति है। सभी भोजन पचाते हैं, सभी बढते हैं सब का जीवन है और सब के जीवन की अवधि है। सब अपनी परिस्थिति से रगड़ा करके अपने जीवन की रक्षा करते हैं, जहाँ सहायता मिल सकती है वहाँ पारस्परिक सहायता करते हैं, एक दूसरे का आश्रय लेते है। वृक्ष के सहारे लता रहती है, एक से दूसरा पौधा पोषण पाता है। जहाँ सहायता सहज मे नही मिलती वहाँ बरबस ली जाती है, आत्म-रक्षा के लिये आपस मे झगड़ा-रगड़ा भी होता है, एक दूसरे का नाश भी करते हैं। चर प्राणी दौड़ता है शिकार करता है, क्योंकि उस के भोजन के लिये सामग्री जलवायु धरती मे सब जगह नही मिलती। उसकी सामग्री तो विशेष प्रकार के वानस्पतिक और चर प्राणिया से प्राप्य पदार्थ हैं। वह शाक आदि उद्भिज्ज और मास आदि अडज और पिडज पदार्थ खाते हैं। मासाहारा प्राणी एक-मात्र मास ही खाना है। परन्तु मासाहारी पौधे मास न पावे तब भी जीते रहते हैं। तब भी वह चोरों की तरह छल-छद्म आदि से काम लेते हैं। अचर होते हुए भी अपना शिकार फँसाते हैं। जिस तरह चर प्राणी चलता है उस तरह पौधा चलता नही तो भी अपने भोजन की दिशा मे कुछ गति तो करता ही है। सूर्य की किरणों की दिशा मे बहुधा पत्तियाँ या फूल फिरा करते हैं। डालियाँ और पत्तियाँ इस ढग से निकलती हैं कि अधिक-से-अधिक रोशनी पा सके। एक दूसरे पर छाया पड़ती भी है तो एक तो सूर्य अपनी दिशा बदलता रहता है दूसरे हवा से पत्तियाँ हिलती रहती हैं जिससे पत्तियों को अधिक-से अधिक रोशनी पहुँचती रहती है। लताए पकड़ की दिशा मे लपटती हैं और अपनी नसे लपेटती है। पेड़ ऊपर की ओर और जड़ नीचे की ओर बढ़ता है। अमर बेल अपने आश्रयवाले पेड़ पर फैलती जाती है और उसकी हरियाली को नष्ट करती जाती है। कीड़े खाने वाले पौधे कीड़ों को पकड़ते ही छोप लेते हैं। यह तो उनकी गति हुई। साथ ही यदि कीडे खानेवाले पौधो को एकाध बार वैसा ही गीले कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया जाय तो धोखा खा जाते हैं। परन्तु दो एक बार ही यह धोखा चल सकता है। फिर पत्तिया नहीं छोपतीं और धोखा देना व्यर्थ हो जाता है। लाजवन्ती के पौधो से सैकड़ों प्रयोग आचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने किये हैं। और पौधो पर भी असख्य प्रयोग कर के यह सिद्ध किया है कि पौधो की रगे भी हमारी रगों की तरह काम करती हैं, उनके शरीर मे भी रस का उसी तरह चक्कर लगता है जैसे हमारे शरीर मे खून का। उनकी नाड़ी भी हमारी नाड़ी की तरह चलती है। हमारी तरह वह भी सास लेते हैं। हमारी आख से ज्यादा उनकी त्वचा काम करती है। त्वचा के सहारे वह प्राय. वह सब काम लेते हैं जो हम अपनी पाचो ज्ञान की इन्द्रियों से लेते हैं। पौधे समय पर भोजन करते हैं। समय पर आराम करते हैं। समय पर सोते हैं और समय पर जागते हैं। पौधो मे किसी मे अधिक और किसी मे कम अनुभव प्रवणता होती है, परन्तु होती है प्रायः समस्त पौधो मे। वटवृक्ष के एक नन्हे से बीज का छेदन कीजिये अथवा शाहबलूत जैसे विशाल वृक्ष के बीज का आणुवीक्षणिक विश्लेषण कीजिये तो पता चलता है कि बीज के भीतर एक डिम्ब है और यह डिम्ब एक आहित सेल है जो और प्राणियो के सेलो की तरह बढता है, बँटता है, एक से दो, दो से चार, चार से आठ होता चलता है। यह क्रिया चराचर मे एक सी है। कलमवाली क्रिया जैसे पौधो मे

है वैसे ही छोटी श्रेणी के चरो मे भी है। फूटकर अलग होना और व्यक्तित्व पाने की क्रिया भी जैसे पौधों मे है वैसे ही चरा मे। पौधों मे इन्द्रिया की बहुलता और विकास नही है। चर प्राणियों को अपनी रक्षा के लिये और गति के सुभीते के लिये आहार का पता लगाने के लिये और चुनने के लिये दृष्टि, श्रवण, रसन, घ्राण इन चारो के साधन जरूर चाहिए। टागे चलने को चाहिए। सरकने या उड़ने के साधन चाहिये। परन्तु पौधो को इन साधनों की अत्यत कम आवश्यकता है। इसी लिये इन मे यह इद्रियाँ नही है। भीतरी इद्रियो या यत्रो मे आमाशय पक्काशय, वृक्क, मूत्राशय, मलद्वार आदि पौधो को नही चाहिए क्योकि जहाँ चर प्राणी बहुत से पदार्थो को शरीर के लिए अनावश्यक देखकर निकाल डालने की जरूरत रखते हैं वहाँ पौधों को जगत् के हित के लिए चर प्राणियो के काम की सामग्री सचित कर रखना पडता है। चर प्राणी को चलने-फिरने के लिये जाग्रत दशा मे बहुत देर तक रहना पड़ता है, परन्तु पौधों को जाग्रत दशा मे रहने की उनकी अपेक्षा कम आवश्यकता पड़ती है। सक्षेप मे यो समझना चाहिये कि खनिज आत्यन्तिक सुपुप्त अवस्था मे हैं, तो पौधे सुपुप्त अधिक और कुछ स्वप्न की अवस्था मे हैं, पशु आदि मनुष्येतर प्राणी अधिक स्वप्न और कम जाग्रत अवस्था मे है, एव मनुष्य इस सृष्टि मे मुख्यतः जाग्रत अवस्था का प्राणी है।

३—जड़ की क्रिया

साधारणतया जड सीधे नीचे की ओर और धड़ सीधे ऊपर की ओर जाना चाहिए। परन्तु बीज उलटा पडता है या करवट हो जाता है तब जड़ और धड़ दोनो को घूमकर क्रमशः अपनी नीची और ऊँची दिशा को ग्रहण करना पड़ता है। इसीलिये बीज बोने मे उलटे सीधे का कोई विचार नही किया जाता। बहुतेरे बीजो मे तो गर्भ स्वय टेढा ही रहता है। उसे सीधे निकलना पड़ता ही है। जो धड पहले कुछ टेढा हो गया होता है उसे भी सीधा होना ही पड़ता है। परन्तु प्रधान जड़ नीचे की ओर जाते हुए भी अपना भोजन खोजने के लिये अगल-बगल रेशे फेकती है और पता लगाती है। जिधर कोई जोखिम मालूम होती है या चोट लगती है उधर से जडे हट जाती हैं और गति की दिशा बदल देती हैं। जहाँ भोजन के पदार्थ मिल जाते हैं वहाँ जड़ो के सिरो पर निमित्त के अनुकूल चूसनेवाली सेले बन जाती हैं और बढने लगती हैं। जड़ो का ठीक सिरा सब से अधिक सचेत होता है, यहाँ तक कि डारविन ने तो कहा है कि उद्भिजों का दिमाग यही है। इतनी बात तो प्रत्यक्ष ही है कि जड़े कहीं झुकती हैं, कहीं हटती हैं, कहीं जरा ऊपर को चल पडती हैं कभी फिर नीचे की ओर जाती हैं, निदान विविध दिशाओं और गतियो से यह स्पष्ट है कि धरती के भीतर भोजन की खोज मे जड़े कोई बात उठा नहीं रखतीं। ककडी के एक बडे पौधे की जड़ो की विविध दिशाओ मे गति और एचपेच को नापकर श्री क्लार्क ने अन्दाजा किया था कि कुल जड़े पचीस हजार की लम्बाई मे होगी। केवल साल भर के पेड की जड़े बारह गज तक लम्बी होती हैं।

गेंदे की तरह कई पौधो मे धड़ मे से भी जड़े निकलती है और धरती पाते ही अपना काम करने लगती है। ऐसे पौधो का कलम आसानी से लग सकता है। वटवृक्ष तो अपनी पुरानी शाखाओ से जड़े फेकता है। जो लटकते-लटकते धरती को पकड़ लेती हैं और अपना काम करने लगती है। इस तरह बड़ के पेड़ के अनेक धड़ पैदा हो जाते हैं।

४—धड़ की क्रिया

पेड़ के धड़ का मुख्य काम है पत्तियो को समालना और उन की रक्षा। ज्यो-ज्यो पेड़ बढता है त्यो-त्यो पत्तियाँ बढती जाती हैं। उन का बोझ समालने को उसी हिसाब से धड़ को पुष्ट होते जाना चाहिए। लताओ मे धड़ बहुत कमजोर होता है परन्तु किसी और पेड आदि के चारो ओर लिपटकर सँभलता है। किसी-किसी लता मे अधिक दृढ बन्दोबस्त रहता है, वह पतली परन्तु मज़बूत नसों से पास की चीज को जो बहुत मोटी न हो कसकर लपेट लेती है। कुम्हड़ा, घीया, घीया- तोरई, करेले, आदि अनेक तरह की तरकारिया इसी तरह की लताओ मे होती हैं। मालती केवल लिपटकर रहती है, नसे नहीं फेकती। माधवी-मल्लिका की पत्तिया बहुत होती हं, यह लिपटती भी नही परन्तु भीत आदि का सहारा ढ़ ढती है। पेड़ो के तने मोटे और सुदृढ होते हैं और अपने बल पर खड़े होते है। फिर भी जोर की आधी बड़े-बड़े दृढ वृक्षो को उखाड़ फेकती है, पर लताओ और नन्हे-नन्हे पौधो को कोई हानि नहीं पहुँचाती। बे-नस की लताओ की अधिकाश लम्बाई लपटने मे खर्च हो जाती है परन्तु नसोवाली लता नसो के सहारे सीधी बढ सकती है। इन नसो के अग्रभाग को जरा अगुली से छू दो और देखो कि कुछ मिनिटो बाद वह नस स्पर्श की ओर झुकता सा दीखता है। यह बात बूदो के स्पर्श से नही होती। ठोस वस्तु को पकडने को नसे तैयार रहती है।

जड का रेशा बहुत फूक-फूक कर कदम रखता है, चोट की जगह से हट जाता है, कडी जमीन या ककड पाकर मुड जाता है, नमी और नमक पाकर चाव से आगे बढता है। परन्तु बीज से ऊपर की ओर निकलनेवाला अकुर सीधे रोशनी का रुख पकडता है। वायु मे उसे कोई रुकावट नहीं मिलती। मिली भी तो वह मुड जाता है। जड के लिये धरती का गुरुत्वाकर्षण और अकुर के लिये सूर्य्य का प्रकाश मार्ग की ओर प्रवर्त्तक होता है। यही अकुर पेड का धड बनाता है।

पत्तिया ऐसे ढग पर फैलती हैं कि अधिक-से-अधिक तल प्रकाश की किरणो मे नहाता रहे। एक पर एक या आड़े-तिरछे रहने से प्रकाश का यह लाभ नहीं मिल सकता। पत्तियो का ऊपरी भाग प्रायः निचले भाग की अपेक्षा अधिक गहरा हरा रहता है। पत्तियो मे भी चेतनता मौजूद दीखती है। कुछ पौधो की पत्तिया सूर्य्यास्त के बाद मुरझा सी जाती हैं। लाजवन्ती की पत्तिया तो तनिक सा छू देने से सुकड जाती हैं। पत्तियो के बाद नीचे की टहनिया भी सुकड जाती हैं, पौधा मुरझा-सा जाता है। परन्तु पन्द्रह मिनिट बाद फिर ज्यो-का-त्यो हो जाता है।

माली कलम लगाने के अतिरिक्त पैवन्द भी लगाता है। वह एक पौवे के धड को काटकर दूसरे का धड़ बाध कर कुछ काल तक उस की सेवा कर के एक कर देता है। अथवा एक पेड़ मे दूसरा पेड़ इस तरह जोड देता है कि दोनो अपना-अपना जीवन-स्रोत एक ही जड़ो के समूह से सुरक्षित रखते हैं। यह विधि दो शरीरो को एक कर देने की तरह है। प्रकृति मे भी ऐसी घटनाए अपने-आप होती रहती हैं। किसी वड़ के पेड़ की धड की एक कोटर से पीपल का पेड निकल पड़ता है। फिर कुछ काल पीछे एक यही जड और धड़ से वड और पीपल दोनो ही निकले हुए दिखाई देने लगते हैं।

फल तो वस्तुतः अपने गूदे से वीज की रक्षा करते हैं। परन्तु अनेक ऐसे भी वृक्ष होते हैं जिन मे वीजो के रक्षक गूदे नहीं होते प्रायः वीज ही होते हैं। और वहुतेरे पौधो के वीज ही नही होते। कितने ही पौधो के वा घास के अत्यन्त वारीक वीज होते हैं जो रेणु की तरह होते हैं। यह रेणु एक ही सेलवाले पिंड होते हैं।

कितने ही पौवे केवल वार्षिक होते है जो वीज उत्पन्न कर के मुरझा जाते हैं। कई पौधे और वृक्ष वरावर अनेक वर्षों तक वने रहते हैं। कालीफोर्निया मे दो-दोहजार वरस पुराने पेड़ मौजूद हैं। श्रीरामेश्वरम् मे एक वृक्ष धर्मशाला के पीछे लगभग डेढ सौ गज पर है जो एक हजार वरसो से अधिक का अवश्य होगा। ऐसे पौधे और वृक्ष हर वर्ष के पतझड के लिये अपने शरीर मे मड और तैल की काफी रसद इकट्ठा रखते हैं जो वसन्त के आगमन पर नये पत्तो के लगने मे उन्हें भोजन का काम देते हैं। गिरने के पहले वृक्ष को पत्ते अपनी सारी सम्पत्ति दे डालते हैं और प्रायः ठटरी-मात्र रह जाते हैं। जब गिरकर धरती पर आ जाते हैं तव धीरे-धीरे प्राय. खाद वन कर फिर पौधो के ही काम आते हैं।

६—परसत्वादों का उपकार

हम यह दिखा आये हैं कि उद्भिज-ससार कर्वन-द्वयोषिद को तोडकर कर्वन पचाता है और ओषजन वायुमडल को देता है। नोषजनीय और अन्य पदार्थों को तोडकर और प्राणियो का भोजन तैयार करता है। शाकभाजी प्राणी उद्भिज्जो को खाकर जीते हैं और शाकभोजियो को मासभोजी खाकर जाते हैं। परन्तु सभी शाकभोजी मासभोजियो द्वारा ही मारे नही जाते। जब पशु अपनी मौत मरता है और उस के शव को बड़े प्राणी काम मे नही लाते तो वह सडने लगता है। पहले तो चील्ह, कौवे. गिद्ध आदि उसका मास खा जाते हैं, फिर उसके बचे हुए भाग को कीड़े मकोडे खाते हैं। उन से भी जो कुछ बचता है तो और भी छोटे प्राणी कीटाणु और उद्भिजाणु खाते हैं। बची हुई हड्डियाँ भी धीरे-धीरे गलकर मिट्टी मे मिलती हैं और उद्भिज्जो के लिये भोजन बनाती हैं। इसी तरह पत्तियाँ, डालिया, छाल. फल फूल लकडिया जो कुछ उद्भिज का शव उसकी व्यक्ति के मर जाने पर बचता है अन्य प्राणियो के काम आता है और अन्त मे अत्यन्त सूक्ष्म उद्भिजाणु उसे खाते हैं और सड गलकर वह सब भी खाद बन जाता है।

परन्तु इस अन्तिम अवस्था के आने से पहले ही, उद्भिज्जो का तो जन्म से ही असख्य परसत्वभोजी लाभ उठाने लगते हैं। जो आदमी लकड़ी काटकर अपने काम में ला रहा है, जो बकरी पत्तिया चबा रही है, जो बागवाला फलो को चुनकर बेच रहा है, जो माली फूलो से काम ले रहा है, सभी पौधो के परसत्वाद हैं। अनाज के खानेवाले भी परसत्वाद ही हैं। फिर चिड़िये घोंसला बनाकर रहती हैं, यात्री पेड़ की छाया में सुख से सोता है, कोटरो में अनेक प्राणी रहते हैं। यह सभी पेड़ से लाभ उठाते हैं।

पशु-पक्षी भी अपने लिये ही नहीं जीते। इस प्राणिमय ससार में वह भी अपनी-अपनी तौर पर कोई न कोई सेवा करते हैं। एक दूसरे का आश्रय ऐसा घनिष्ट है कि एक के बिना दूसरे का काम नहीं चलता। प्रत्येक प्राणी का एक-एक स्थान है। उसकी जाति के नष्ट हो जाने पर भी दूसरी जाति को उसका काम सँभालना पड़ता है। एक केचुआ भी इस जीवन ससार में अनावश्यक नहीं है। केचुआ न हो तो धरती ठढी, कड़ी, खमीर से रहित और अनुवर ऊसर हो जाय। चीटियाँ न हो गुबरैले न हो, तो कीड़ा मकोड़ो की लाशें और अनेक गदगियाँ बनी रहें। जिन कीड़ा मकोड़ो ने अपना काम कर लिया है और अब उनका जीवन अनावश्यक है उन्हे चिड़िया न खा जाय तो चिड़िया का जीना भी कठिन हो जाय और गदगी भी फैल जाय। शाकाहारी प्राणी घास पत्तियाँ आदि खाते रहते हैं, जिस से अधिक शाक और घास और पत्तियाँ उपजती हैं और फलादि को खानेवाले जीव उनके बीजो को बिखेरकर वृद्धि का सुयोग प्रदान करते हैं। मधु और मकरद के लोभ से मधु-मक्खियाँ और भ्रमर परागो को एक फूल से दूसरे पर पहुँचाते हैं। इकट्ठे किये हुए शहद का अपहरण करनेवाला मक्खियों को अधिक मधु-सञ्चय के लिये लाचार करता है। खेती को नष्ट करनेवाले अनेक कीड़ा-मकोड़ो को पक्षी खा जाते हैं और किसान को लाभ पहुँचाते हैं। परन्तु स्वार्थी किसान उन्हे मजूरी नहीं देना चाहता और मूस, घूस, तोता आदि से अपनी हानि समझता है। हमे अनेक घातक प्राणियो की उपयोगिता का पता नहीं है। हम नहीं जानते कि टिड्डियो की क्या उपयोगिता है। परन्तु प्लेग, हैजा आदि फैलकर प्राणियो की आबादी घटा देते हैं। शायद जीवन के रगड़े में अयोग्य प्राणी अत्यधिक हो जाते हैं उनका छाटा जाना जरूरी होता है। निदान प्राणिमय ससार एक दूसरे में बड़े विषम जाल में बँधा हुआ और अन्योन्याश्रित है और उद्भिज्जो का हम से अत्यन्त घनिष्ट और अनिवार्य सम्बन्ध है।

इस चित्र में जीवन के रगड़े की अच्छी मिसाल मिलती है। एक मक्खी पर एक छोटी मछली ज्यो ही टूटना चाहती है, त्यो ही उसी पर दो शत्रुओ की निगाह पड़ती है। तिमिंगल ताकता ही रह जाता है और छोटी मछली को जल-विहग उचक ले जाता है। परन्तु उसे भी खा जाने को ऊपर से बाज झपटा आ रहा है। जीवोजीवस्य जीवनम्।

७—ऋतुओं का हेर-फेर

मनुष्य और पशु-पक्षी हरियाली पर निर्भर करते हैं और हरियाली सूर्य्य की किरणो

पर निर्भर करती है और सूर्य्य की किरणे पृथ्वी की गति के कारण भिन्न-भिन्न देशो और कालो मे भिन्न मात्राओ मे आती हैं। धूल और हवा मे से छनकर तो धूप सभी ऋतुओ मे आती है परन्तु हवा और पानी के हेर-फेर से आधी और वादल और धूप तीनों मिलकर ऐसा जोड-तोड लगाते हैं कि स्वभाव से ही जाडा गरमी और वरसात इन तीन ऋतुओ मे स्थूल रूप से हमारे वर्ष का विभाग हो जाता है जिस का फल खेती और पौधे के जीवन पर प्रत्यक्ष रूप से पडता है, और शेष प्राणियो के जीवन पर अप्रत्यक्ष रूप से। जीवनमात्र ह्रास और वृद्धि का ही नाम है। एक समय प्राणी अपने शरीर मे वाहरी पदार्थो को मिलाकर उसे वढाने की कोशिश करता है, तो दूसरे समय भीतरी पदार्थ जो निकम्मे हो गये हैं वाहर निकालता है और घटा देता है। समय का यह फेरफार प्रतिक्षण भी होता रहता है और वडी अवधि मे भी होता रहता है। प्रकृति मे भी दिन और रात, अँधेरा और उँजाला, पाख, मास, ऋतु आदि के विभाग इन्ही विविध अवधियो के विभाग हैं।

जगतीतल के सभी भागो मे एक सी ऋतु नही होती। इसलिए हम प्रस्तुत प्रकरण में अपनी भारतीय ऋतुओ पर ही विचार करेंगे। हमारा देश भी इतना विशाल है कि उत्तर और दक्षिण प्रदेशो मे भी ऋतुओ का बड़ा अन्तर पड जाता है। पूस माघ के महीनो मे जब उत्तर मे कडा जाडा पडता रहता है, हैदरावाद से जितने ही दक्षिण जाओ सरदी घटती जाती है, यहा तक कि मदरास हाते भर मे रहनेवाले को उस समय एक कुरता भी पहनने की आवश्यकता नही रहती और बहुधा रात को मैदान मे सोने की भी ज़रूरत मालूम होती है। वरसात भी मदरास हाते मे कार्तिक अगहन पूस माघ तक हो जाती है। शेष वरस गरमी पडती है, परन्तु गरमी भी सह्य होती है। ऐसी भयानक गरमी नहीं पड़ती जैसी कि उत्तर प्रदेशो मे। इस का कारण यह है कि पूरव पच्छिम और दक्षिण तीनो ओर समुद्र है। वायु आर्द्र रहती है। फलो मे नारियल और केले की वहुतायत है। गेहूँ जौ विलकुल नहीं होता। चावल ही वहा का प्रधान भोजन है। यह सभी वाते प्रचुर आर्द्रता की परिचायक हैं।

उत्तर प्रात मे पजाव, सयुक्त प्रात और मध्य प्रदेश समुद्र से दूर हैं। इन मे जहा जैसी आवश्यकता है वहाँ वैसी आर्द्रता की कमी और वेशी है। पजाव मे गेहूँ के लिए भूमि अधिक उर्वरा है। सयुक्त प्रात और मध्य प्रदेश उस की अपेक्षा नीचे हैं। इन प्रानो मे गेहूँ और चावल दोनो होते हैं। परन्तु वगाल उडीसा ववई गुजरात आदि मे चावलो की ही प्रधानता है। नारियल और केलो की ही वहुतायत है।

यो तो प्रत्येक ऋतु मे विशेष अनाज विशेष फल विशेष फ़ल हुआ करते हैं जिन पर विस्तार करना यहाँ अभीष्ट नही है। तथापि जो फल फूल और बीज वार्षिक हुआ करते हैं उन के सम्वन्ध मे यह एक साधारण नियम है कि नयी हरी पत्तिया वसन्त ऋतु मे लगती हैं और फूल भी वसन्त मे ही आते हैं। चैत वैसाख वसन्त के महीने हैं। इस ऋतु मे शर्करा और कर्वोहेत अधिक वनते हैं। यही शर्करा मकरद और मधु के रूप मे दिखाई पडती है। गरमी के जेठ और आसाढ के महीने हैं। इस मे धूप की तेज़ी से रस सूखने लगता है, परन्तु यदि धरती मे आर्द्रता हुई तो पौधे की रक्षा रहती है। सावन-भादों की

वर्षा में आर्द्रता काफी मिल जाती है। फिर तो सूखे थानों में पानी पड जाता है। धरती से खाने योग्य पदार्थ भी नमी के साथ काफी मिल जाते है। बीच बीच में धूप मिलते रहने से बरसात में पौधे की सर्वांग वृद्धि होती है। कर्ब्वोदेत प्रत्यमिन, तैल सभी कुछ बनता है। इसी समय फूल के भीतर बीज भी पनपने लगता है और फल का आवरण धारण करने लगता है। क्वार-कातिक की शरद ऋतु में फलो की बहुतायत हो जाती है। आगहन पूस के हेमत मे फलो का समय समाप्त हो जाता है। फिर माघ फागुन की शिशर ऋतु में पत्तिया अपना स्वत्व पेड को देकर झड़ने लगती है। हमारे देश मे इस प्रकार छः ऋतुएँ होती हैं। इन सब की जान सबो का प्राण बरसात है। कवियो ने बसन्त को ऋतुराज कहा है, सही, परन्तु बसन्त यदि राजा है तो वर्षा जीवनदान करनेवाली, वनस्पति की प्रसविनी ऋतुओं की रानी है।

आठवां खंड

परिस्थिति पर विजय

से लकड़ी चीरता है और पन-भरा उसी शक्ति से गहरे कुए से पानी निकालता है और एक विद्वान् उसी शक्ति से पृष्ठ-पर-पृष्ठ लिखता और व्याख्यान-पर-व्याख्यान देता जाता है। लोहे मे उसी की शक्ति से काटने-पीटने का सामर्थ्य है। जितनी कले बनी हुई हैं सब मे उसी की शक्ति काम करती है।

कले या यन्त्र बल के प्रयोग के साधन-मात्र हैं। उन में अपना बल तनिक भी नही है। घड़ी में कमानी का बल है। कमानी कसनेवाला ही घड़ी को अपना बल देता है। कसनेवाले का बल अन्न से और अन्न का बल सूर्य से आया है। निदान, भूतकाल से लेकर वर्त्तमान काल तक धरती पर आनेवाली धूप ही हमारे सारे बल का मूल है चाहे वह यन्त्र-बल हो, और चाहे देह-बल हो। चतुर यन्त्रशास्त्री चाहे जिस साधन से और शक्ति से काम ले उस का उद्देश्य यही होता है कि कम-से-कम साधन लगाकर अधिक-से-अधिक काम में लाने लायक बल पावे और उस से अधिक-से-अधिक काम ले सके।

उसने आरंभ से इस तरह के प्रयत्न किये हैं। दो हजार बरस हुए अर्कमीदिस ने कहा था कि मुझे अगर कहीं पावँ रखने की जगह मिले तो मै धरती को टेकन के बल से हिला दू। लका मे जाने को सागर में सेतु बाधती बेर बड़े-बड़े यंत्र काम मे आये थे। मिश्र देश के सूचीस्तूपो के बनने मे भी यन्त्र का प्रयोग स्पष्ट है। यह सभी यन्त्र भार-वहन करने के काम में आनेवाले थे। जो काम हाथ से धीरे-धीरे होता उसे ही जल्दी-जल्दी कराने के लिये भी यन्त्र बने। तकली पर सूत धीरे-धीरे कतता है। चरखा इसी लिये बना कि काम जल्दी हो। वाट ने विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे भाफ से चलनेवाला यन्त्र बनाया जिस से बल लेकर अनेक काम लिये जाने लगे। पानी के नीचे आच देकर खौलाने से भाफ बनता है। भाफ फैलना चाहता है। सब ओर मजबूती से बन्द रहे और केवल एक ही ओर कुछ ढकना सा खुले तो भाफ के बल से ढकना हट जायगा। बस, हटाने-मात्र का ही बन्दोबस्त तो यन्त्र-निर्माण का मूल है। हटाने की क्रिया से तो लोग अनादि काल से काम लेते आये हैं। जैसे जल-धारा के बल से एक चरखी का पत्ता हटता रहता है जिस से चरखी घूमती रहती है। इसी से पत्थर की चक्की का सम्बन्ध कर देने से चक्की घूमती और आटा पीसती रहती है। इसी तरह वायु का पत्ता भी घूमकर चक्की चलाता है। पनचक्की और पवनचक्की तो अनादि काल से जाने हुए यन्त्र हैं। भाफ की कल के सहारे भी चक्की चलने लगी। इसी भाफ के इजन से चक्की के बदले जब पिचकारी के डाट सरीखे यन्त्रों का चलाना सभव हो गया तो रेल का इजन बना जो गाड़ी घसीटने लगा। कोयले को जलाने पर बहुत धुआ निकलता था। बन्द बरतन मे जलाने से उस मे से जलने के योग्य वायव्य निकले, असख्य काम की चीजें निकलीं और कोलतार निकला। वायव्य या गैसों से तो रोशनी का और ईंधन का काम लिया गया। कोलतार तो वस्तुतः कुबेर की निधि सिद्ध हुआ। यह सब गड़ा हुआ सौर-बल था जो धन के रूप मे प्रकट हुआ। तब मे आटे की चक्किया आदि
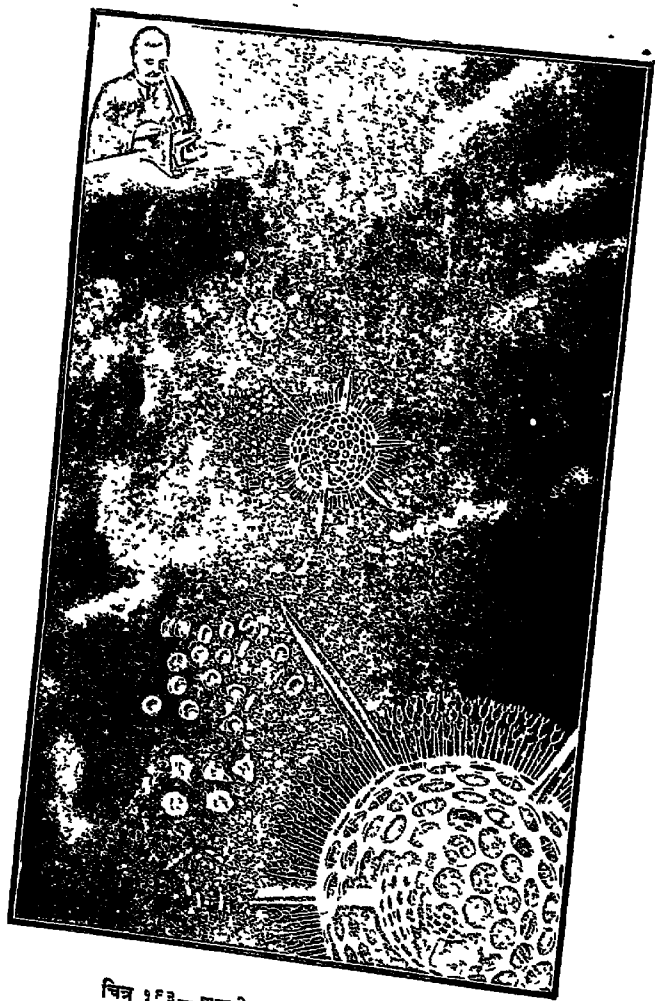
चित्र १८३—अणुवीक्षणयंत्र के चमत्कार [परिषत् की कृपा

को यथार्थरीत्या देख सका। घर की मक्खी की असख्य आखो का पता लगा सका। इतना ही नही। उस ने वह जीवाणु देखे जो भाति-भाति के रोग फैलाते है। वल्कि उस ने अणुओ के सूक्ष्म समूहों की चचल गति भी देख ली। उस ने दूरवीक्षण यत्र भी रच डाले। उसने दूर के तारो ग्रहो और नीहारकाओं तक के देखने के लिये बड़े-बड़े दूरवीक्षण यत्र निर्माण किये। उसने रश्मि-विश्लेपक यत्र बनाकर यह जान लिया कि दूर-से-दूर के तारे जिनकी किरणे यहा लाखो वरस मे पहुँचती हैं किन-किन मूल तत्त्वो के बने हुए है। उस ने अणुश्रावक यत्र बनाकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म शब्द सुनने की शक्ति पैदा की। टेलीफोन दूरश्रावक और तार एव बेतार के समाचारो मे हजारो मील की दूरी के शब्द सुनने के उपाय किये।
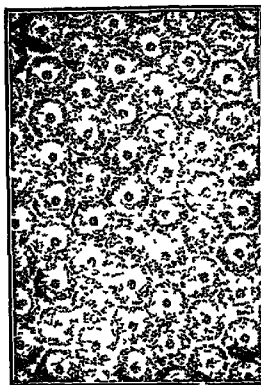
चित्र १६६—घरेलू मक्खी की असंख्य आँखें, अणुवीक्षण द्वारा देखी गयी।

उसने गानेवालो की एव बाजो की आवाजे रेकार्ड कर ली और रेकार्डो की हजारों नकलें तैयार की। ग्रामोफोन पर वह जब चाहे तब उन्ही आवाजों को बार-बार सुन सकता है वह मरे हुए स्वजनों की फोटो से रूप और रेकार्ड से उनके शब्द को अमर बना सकता है। स्पर्श के ज्ञान के लिये उसने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म यत्र बनाये। बोलोमीटर और तापमापक यत्र गरमी नापने के लिये हैं। ताप की मात्रा नापने के लिये कलारीमापक यत्र बना। पृथ्वी का सूक्ष्माति-सूक्ष्म कपन नापने को सैस्मोग्राफ बनाया। नाडी देखने के लिये यत्र बनाया जिस से रक्त का दवाव नापा जाता है। अपनी ज्ञानेन्द्रियों की सहायता के लिये जैसे यत्र बनाये उसी तरह कर्मेंद्रियो की सहायता के भी साधन बनाये। भार उठाने के लिये अद्भुत क्रेन बनाये जो बिजली के बल से कारखाने के एक भाग मे दूसरे भाग को हजारो मन का बोझ सहज मे उठा ले जाते हैं और निर्दिष्ट स्थान मे रख आते है। जमशेदनगर मे ताता के

लोहे के कारखाने मे यह तमाशे प्रत्यक्ष देखने मे आते हैं। अमेरिका मे बने बनाये लकड़ी के या कागज के मकान एक स्थान से दूसरे स्थान मे ले जाकर स्थापित कर दिये जाते हैं। जहाजों मे एक-एक बार मे ढाई-ढाई सौ मन कोयला क्रेन से ढुलकर लदता है। घटे भर में सवा सत्ताईस हजार मन कोयले की लदाई होती है। एक एक बार मे क्रेन के द्वारा ढोने वाली टोकरी साठ-सत्तर मन माल, जैसे कोयला, बटोरकर धर लेती है। आदमी के हाथ लगाने की जरूरत नही है। बड़े-बड़े कारखाना में प्रायः सभी काम कले करती है। इसी तरह सारा कारखाना कलों के जोर से चल रहा है। इस मे एक भी आदमी की जरूरत नही है।
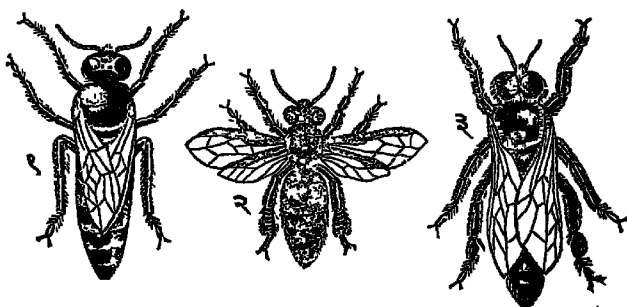
चित्र १६७—मधुमक्खी

निदान आदमी ने कलों के बनाने में वह कमाल पैदा किया कि करणों अर्थात् इन्द्रियों की जरूरत बाकी न रही और उपकरणों अर्थात् हथियारो से या कलों से वह सारे काम लेने लगा। टामसन ने यह सिद्ध किया कि केवल सूर्य्य ही हमे शक्ति दे सकता हो यह बात नही है। शक्ति का तो महासमुद्र यह ससार है और इस का एक-एक कण है। बात यह है कि वस्तु-सत्तामात्र बिजली ही घनरूप मे है और हम को वह रहस्य मालूम होना बाकी है जिस से कि एक-एक कण से बल लेकर हम सैकड़ो कारखाने एक साथ चला सके। हमारे हाथो के पास ही अनन्त बल का भडार है, परन्तु अपने अज्ञान के कारण हम उस से काम नहीं ले सकते।

३—शक्ति के कुछ विशेष प्रयोग

ऊपर हम क्रेनों की चर्चा कर चुके हैं। ऐसे-ऐसे क्रेन भी है जो अष्टपद हैं और अपनी टागो को उठा-उठाकर आगे बढ़ते जाते हैं। यद्यपि एक अष्टपद क्रेन घटे में

केवल तीस फीट की चाल से चलता है तथापि यह लगभग साढे पाच हजार मन के भारी है और काम पड़ने पर किसी भारी पुल को भी उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख सकता है। इस मे विजली का बल लगा हुआ है।

चित्र १६८—मधुमक्खी का डंक अणुवीक्षण द्वारा देखा गया।
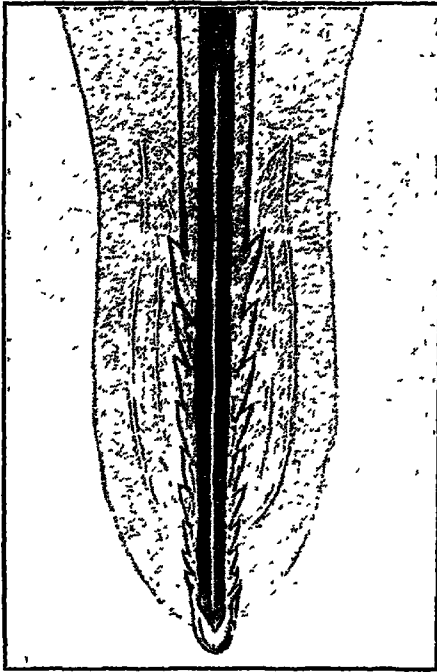
ब्यार्ज न्यून्स की कृपा] [टामपन से

विजली की शक्ति मनुष्य के हाथो मे आने से सभी तरह के यत्र के काम सहज हो गये। विजली के बल से वह सभी यत्र चलने लगे जो हाथ या भाफ या गैस के बल से चलते थे। आटा पीसने की चक्की, धान कूटने का यत्र, तेल पेलने का यत्र, कपड़ा कागज आदि छापने के यत्र, कपास ओटने की चर्खियां, सूत कातने के पुतली-घर, कपड़े बुनने की मिलें, सभी काम विजली के बल से होते हैं। घर-घर मे आज पखे चलते हैं और रोशनी होती है,

यह बिजली की ताकत के मामूली खेल है। अब बिजली की ताकत धीरे-धीरे और सब ताकतों को हटाकर उनका स्थान ले रही है। अब रेले भी बिजली की ही ताकत से चलायी जाने लगी हैं, क्योकि एक तो कोयले की खाने मुद्दत से खुदते खुदते खर्च हो चली हैं दूसरे उन के मुकाबले मे बिजली सस्ती हो गयी है, तीसरे कोयले की गदगी, बृहदायतन, धुआ आदि अनेक असुविधाओं से छुटकारा मिलता है। पहले जो काम किसी तरह मनुष्य से नहीं हो सकते थे या सहज से नही हो सकते थे, आज सहज मे होते है। बिजली का बल ऊचे पहाड़ो पर बीस-पच्चीस-हजार मन का बोझ उठा ले जाता है, रेलगाड़िया चढा ले जाता है। एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकड के वेग से बेतार की खबरे दस-दस हजार मील समुद्र-पार पहुंचाता है, आकाश मे उड़ते हुए विमानों से, जल मे सैर करते हुए जहाजो से बेतार के बात-चीत करा देता है, खानों मे कोयला काटता है, भारी बोझ ऊपर चढा देता है, निदान उसने पहले के अनेक असमव कामो को सभव कर दिया है। घरो मे बिजली झाड़ू देती है, बासन माजती है, खाना पकाती है, कपड़े धोती है, पखा हाकती है, चौकी-दारी करती है, निदान अपने घर की बादी हो गयी है।

परन्तु अनेक सस्ती चीजे पहले से मनुष्य के काम कर रही हैं। हवा के जिस विस्तीर्ण सागर या मडल मे हम रहते है, हर जगह मौजूद है। उस से अब तक जितना कुछ काम हम लेते रहे हैं वह बहुत थोड़ा है। विज्ञान के बढे हुए प्रयोग से अब हवा पहले से ज्यादा काम देने लगी है। पवन-चक्की यद्यपि पुरानी बात है तथापि उस से भी भारी-भारी काम लेने के उपाय किये गये ह। हवा निरन्तर तो चलती नही रहती। कभी जोर की चलती है और कभी धीरे। इसलिये कोई कारखाना उस से बराबर नही चलता रह सकता। परन्तु हवा के बल का सग्रह करने का उपाय किया गया है। यत्र लगाकर पवन-चक्की के बल से पहाड़ के नीचे का पानी ऊपर उठाया जाता है और उस से एक विस्तीर्ण जलाशय भरा जाता है। यह काम निरन्तर या रुक-रुक कर अपने आप होता रहता है। पहाड के ऊपर का भरा हुआ जलाशय उसी हवा के बल से भरा हुआ है। अब यह जल नीचे बहाया जाता है तो चक्की या डैनमो चल सकता है। डैनमो चलाकर यही बल बिजली मे परिणत होकर अनन्त और असख्य काम निरन्तर करता रह सकता है। इस तरह हवा की गति से बिजली बनायी जाती है। इसी सिद्धान्त पर चलते हुए जहाज मे हवा के ही बल से बिजली की बत्तिया जलती हैं। पहले के जहाज बादबान या पाल लगाकर हवा के बल से चला करते थे। परन्तु हवा के अनुकूल दिशा मे चलने पर ही यह सुभीते की बात थी। परन्तु हवा चाहे जिस दिशा मे चलती हो, उस की चक्की चलाकर आजकल बिजली बना सकते हैं और उसी बिजली के बल से जहाज को इष्ट दिशा मे सहज ही चला सकते हैं। इस तरह मनुष्य ने हवा को भी एक तरह से अपनी मुट्ठी मे कर लिया है।

हवा के दबाव से यत्र-निर्म्माण मे बहुत लाभ उठाया गया है। यह तो जानी हुई बात है कि हमारे ऊपर प्रति वर्ग-इच सात सेर के लगभग हवा का दबाव है। यदि हम किसी देश को वायु-शून्य कर दे तो उसपर चारो ओर से हवा का दबाव पड़ेगा। साथ ही हम चाहे तो किसी देश मे अत्यधिक वायु कसकर भर दे जिस से बाहरी दबाव का मुकाबला कर सके।

इसी प्रकार वायु के दबाव को तारतम्य से ठंडा और विस्तीर्ण करते हुए जमाकर द्रव रूप मे कर दिया जाता है। वायु का दबाव वर्ग-फल के हिसाब से यथेष्ट बढाया-घटाया जा सकता है। इस से हिलाने-हटाने का सभी तरह का काम ले सकते हैं। इसी सिद्धान्त पर भारी-भारी घन चलाये जाते हैं और वह आरे चलते हैं जो फौलाद को भी चीर देते हैं। चक्की आदि चलाने की तो कोई बात ही नहीं है। खानो के भीतर इसी सिद्धान्त पर कोयले की चट्टानों को काटने के लिये चक्र-यत्र घुमाया जाता है जिस मे आग का कोई काम नहीं है। छोटे-से-बड़े औजार तक इसी वायु-बल से चलाये जाते हैं। घर के झाड़-बुहार और सफाई के काम हवा के इसी सिद्धान्त पर लिये जाते हैं। वायु के बल से चलनेवाले बाजे को केवल हिलाकर एक अनजान बालक भी उत्तम-से-उत्तम गीत बजा लेता है। खबर पहुंचाने की नलिकाये इसी सिद्धातपर बनती हैं। पुल के लिये पानी के भीतर काम करनेवालो को इसी ढग पर यथेष्ट हवा पहुंचायी जाती है और पानी के ऊपर जहाज भी चलाये जा सकते हैं। पनामा की नहर के काटने में चट्टानो मे छेद करने के विशाल यत्र इसी वायु के बल से बने थे। दूर क्यो जाये, दबी हुई हवा के ही बल से रेल के सिगनल काम करते हैं और खतरे की जजीर जो हर डब्बे मे लगी रहती है इसी सिद्धात पर काम करती है। सारी गाड़ी की लम्बाई भर एक लोहे की नलिका लगी हुई रहती है जिस के भीतर जजीरे लगी रहती हैं। इस नलिका का सम्बन्ध शून्य-बकसो से होता है। इन बकसो मे पिचकारी की मुठिया रहती है जो ब्रेको से लगी हुई है। गाडी ज्यो ही चलने को होती है त्यों ही इजन इस सारी नलिका से हवा को चूस लेता है। इस से ब्रेक हट जाते हैं। परन्तु जजीर खीचते ही नलिका खुल जाती है और हवा भर जाती है। हवा ज्यो ही नलिका मे जाती है त्यो ही वह पिचकारी की मुठिया जोरो से चलती है और ब्रेक लगा देती है। गाडी रुक जाती है। आजकल थर्मोफ्लास्क फैशन की चीज हो गयी है। वह,एक शीशी के भीतर शीशी है। बीच में वायु-शून्य है। शीशी की भीत पर चादी की कलई है। वायु-शून्यता कलई और काच तीनो मिलकर भीतर और बाहर की गरमी का वह पारस्परिक सम्बन्ध तोड देते हैं जिस से गरम चीज ठढी और ठढी चीज गरम हो जाती है। इस शीशी मे रखी हुई चीज गरम या ठढी जैसी रखी जाती हैं वैसी ही बनी रहती है। इसी सिद्धान्त पर थरमो बक्स भी बनते हैं।

जल के प्रपात से बिजली के बनने और पनचक्की के चलने की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। नाव जहाज आदि का चलना भी जल के ही बल से होता है। इस के सिवा जल-बल का एक और प्रयोग ब्रह्मप्रेस मे होता है। लाखो मन रुई के गट्ठे विदेश जाते हैं। कसकर मजबूत गट्ठे का रूप देना इसी ब्रह्मप्रेस का काम है। रुई ऐसी कसी जाती है कि फौलाद की तरह ठस हो जाती है।

४—आग के गले में जुआ

जल, वायु, धूप, बिजली से जैसे भाति-भाति के काम मनुष्य लेता है उसी तरह आज वह भयानक आग के गले मे भी जुआ डालकर काम ले रहा है। यो तो वह अनादि

काल से रक्षा और विनाश दोनों के लिये अग्नि को काम मे लाता रहा है, भोजन भी पकाता रहा है और शत्रुओं को जलाकर राख भी करता रहा है परतु सभ्यता की बढन्ती के साथ-ही-साथ दोनो के साधनों मे भी वृद्धि होती गयी है। विनाश के लिये उस ने बहुत भयानक विस्फोटक बनाये। डैनामैट मे विस्फोटन की लहर सेकड पीछे पाच-हजार गज से अधिक चलती है। एक सेकड के चौबीस हजारवे भाग मे ही एक फुट लम्बा डैनामैट फट जाता है। एक मील लम्बाई के डैनामाइट के कारतूस एक सिरे से दूसरे सिरे तक चौथाई सेकड में फट जाते हैं। नोषि काम्लयुक्त ग्लिसरीन और रुई मे इस से भी तेज स्फोटन होता है। इस स्फोटन का कारण है आत्यतिक वेग से जल उठना और इस जल उठने मे जो पदार्थ आत्यतिक वेग से बनकर एकाएकी उसी वेग से फैलते हैं वह अपने चारो ओर के बाधक पदार्थों को तोड-फोडकर चूर-चूर कर डालते हैं। साधारण मिट्टी का तेल थोडी हवा पाकर धीरे-धीरे जलता है। परन्तु अधिक उडनशील मिट्टी का तेल पेट्रोल है। इसी पेट्रोल से बडी तेजी से जल्दी जल्दी ओषजन वायु मिलती है और विस्फोटन होता है तो उसके बल से मोटरकार और वायुयान भी चलते हैं। विस्फोटन जल्दी-जल्दी होते रहने से पिचकारी-वाली डाट जल्दी-जल्दी चलती है और उस से लगा हुआ पहिया घूमता है। हवा गाडी इसी लिये तेज दौडती है।

डैनामैट, कोरडैट, लिड्डैट आदि हैं तो भयानक विस्फोटक, परन्तु यदि इन्हें फाडने के लिये ऊचे दरजे की आच न मिले तो साधारण दियासलाई से जला देने से यह चुपचाप जलते हैं। विस्फोटन के लिये उत्तेजक की आवश्यकता होती है। रुई को नोषिकाम्ल मे तर करने से नोषोछिद्रोज बनता है। नोषो-छिद्रोज, पारदस्फुटेत अथवा रगड़ अथवा आच से विस्फोटन होता है। डैनामैट आदि सब से अधिक विस्फोटक पदार्थ पिक्रिकाम्ल के बने हुए होते हैं। एक भाग कारबोलिकाम्ल को आठ भाग धूमिल नोषिकाम्ल मे डालने से पिक्रिकाम्ल बनता है। यह चखने मे अत्यन्त कडवा, और देखने में पीला रवेदार पदार्थ होता है। यह बहुत तेज पीला रग है। इसे जब गलाते हैं तब शहद-सा लगता है और गली हुई दशा मे इसे सिरकोन या मद्यसार मे घुलाये हुए नोषोछिद्रोज के साथ मिला देते हैं तो आधुनिक बमगोले का फटनेवाला पदार्थ बन जाता है। पिक्रिकाम्ल के स्फोटक बदूक आदि मे रखकर चलाये जाने लायक नही होते। यह तो तोप के नल को चीथड़े-चीथड़े कर डालते हैं। हा, यह कोरडैट के साथ गोले मे रखकर बन्द किये जा सकते हैं, परन्तु गोला तब तक नही फटता जब तक ठीक जगह तक पहुंचकर काफी रगड़ न खाय या इतनी रगड़ न खा जाय कि उत्तेजक पदार्थ फट पड़े। आज-कल के प्रायः सभी भारी स्फोटक जो तोपों और गोलों आदि के काम मे आते हैं, रुई, ऊन, जूट, सन, मूज, आदि वानस्पतिक रेशों को नोषिकाम्ल मे गलाने और नोषो-मधुरिन के मिलाने से बनते हैं। मड, शर्करा, कोयला, शीरा आदि से भी यही काम लिया जा सकता है। यह सब शुद्ध पदार्थ हों, यह आवश्यक नहीं है। इसी लिये कूड़ा-करकट जो किसी काम मे न आवे इस काम में आता है। आर्द्रता इन के स्फोटक गुण को नष्ट कर देती है। जल-शोषण के लिये गधकाम्ल का भी प्रयोग करते हैं। इस तरह कूड़ा-करकट जैसी तुच्छ वस्तुए हजारो मनुष्यो के अनमोल प्राणों को

एक क्षण मे नष्ट करने के साधन बनाये जाते हैं। इस प्रकार विज्ञान को एक विपथ संसार अपने विनाश का साधन बनाता है।

परन्तु इन वस्तुओं से अच्छे काम भी लिये जा सकते है और लिये जाते भी हैं। जहा पहाड़ो को तोडकर कोई सुगम मार्ग निकालना है वहा सुरग बनाकर बड़े-बड़े विस्फोटक एक दम भीतर रख दिये जाते हैं और जब बिजली आदि किसी विधि से इन का प्रस्फोट होता है तो पहाड़ का भारी-से-भारी शिखर चूर्ण-चूर्ण हो जाता है। डैनामैट के बल से एक फलवाले वृक्ष को रोपने के लिये एक उपयुक्त गड्ढा बनाया जा सकता है अथवा यदि गहरी जोताई करनी हो जो हल बैल से सभव नहीं है तो खेत मे पाती बाधकर डैनामैट बो देने की जरूरत है। फिर प्रस्फोट होने से खेत अपने आप गहरा जुत जाता है। किसी नयी ऊबड़-खावड़ ऊसर धरती को गहरी खुदाई करके बिलकुल उलट-पलट देने की जरूरत है तो गहरे गाडने से यह प्रस्फोटक धरती का रूप गुण ही बदल देते हैं। इस तरह मनुष्य अग्नि से विनाश के बदले रक्षा का काम ले सकता है और अमेरिका आदि सभ्य पाश्चात्य देशों मे ले रहा है।

५—धन का कूड़ा और कूड़े का धन

मनुष्य उन्हीं वस्तुओं को कूड़ा करकट समझता है जिनका उपयोग नहीं जानता। जब तक पत्थर के कोयले का ठीक उपयोग उसे नहीं मालूम था तब तक जलाकर उसके धूए को बरबाद करता था और कोक को फेंक देता था। आज पत्थर के कोयले का एक रत्ती भर भी व्यर्थ नही जाता। मनुष्य को कोयले की खान जिस दिन मिली, समझना चाहिये कि उसको सभी अर्थो में उसी दिन हीरे की खान मिली। सोडा के बनाने मे लवणाम्ल वायव्य रूप मे निकलकर हवा मे उड जाता था और उससे आस-पास की धरती ऊसर हो जाती थी। जब नमक के तेजाब की उपयोगिता समझ मे आयी तो उसका कारखाना बन गया और उससे अपरिमित लाभ होने लगा। रेह और सज्जी से जमीन ऊसर थी। इनसे धोने का काम लिया जाने लगा। नोना लग-लगकर मिट्टी खराब हो जाती थी। नमक निकालने पर नोना उपयोगी बन गया। छिलके पत्ते आदि पदार्थो से मद्यसार, मिट्टी से चीनी के बरतन, मैले से खाद आदि उपयोग मे आने से इन चीजों की भी कीमत हो गयी। आजकल बहुधा समझदार म्युनिसिपलिटियों मे मैले की बिक्री होती है और किसी नदी को गदा करने के बदले मैले से खाद बनायी जाती है। मूत्र तो तुरत ही खाद के काम मे आता है। जो लोग मैले को बस्ती की हवा या जल बिगाडने देते है वह मूर्खतावश अपने अनमोल धनका केवल कूडा ही नहीं कर देते बल्कि उससे अपने ही विनाश के लिये विष तैयार करते हैं। जो लोग देहातों मे गोबर के उपले पाथते हैं और उसे ईंधन की जगह लगाते हैं वह प्रत्यक्ष ही अपने धन को फूक देते हैं। बुद्धिमानी इसी मे है कि कूडे को धन मे परिणत करे और एक कण भी व्यर्थ न जाने दे। शक्ति का ही दूसरा नाम धन है। खाद से हम

अन्न की वहुतायत की शक्ति पैदा करते हैं। कूड़े से काम लेकर हम कूड़े की शक्ति का उपयोग करते हैं।

वैज्ञानिक की बुद्धि सदा इस बात की खोज में रहती है कि कोई शक्ति वृथा न जाय। ईंधन में से धुएं का निकलना सिद्ध करता है कि ईंधन का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है, उस का एक बड़ा अंश धुआं बनकर निकला जा रहा है। जब रोशनी के साथ ही साथ गरमी भी पैदा होती है जिसकी जरूरत नहीं है और जो व्यर्थ ही जाती है तो उस गरमी का उपयोग नहीं हो रहा है बल्कि उसके उपजाने में व्यर्थ शक्ति लगायी जा रही है। मनुष्य इस कोशिश में है कि जितनी शक्ति लगाता है कि रोशनी हो उतनी शक्ति या तो लगानी न पड़े या उतनी ही शक्ति के लगाने में गरमी बिल्कुल न पैदा हो और रोशनी अधिक हो। परन्तु अभी तक उसे इसमें सफलता नहीं मिली है। गाड़ियों, ट्रामों और इंजनों के चलने में जो भयानक शोर होता है वह भी इन यत्रों के प्रयोग में ठीक विधि से काम लेने की कचाई है। रगड़ से ही आवाज होती है और रगड़ गति में बाधा डालनेवाली चीज है। रगड़ का मुकाबला करने के लिये भी कुछ आवश्यकता से अधिक शक्ति लग जाया करती है। यह शक्ति का अपव्यय है। विज्ञान बराबर इसी कोशिश में है कि इन व्यर्थ शब्दों से छुटकारा मिले, रगड़ कम-से-कम होते-होते मिट जाय और वृथा शब्द न हो, जिससे कि कम से कम शक्ति लगा कर अधिक-से-अधिक काम हो सके।

व्यवसाय में रद्दी कागज, चीथड़ों और पुराने टाट रस्सी आदि से कागज की लुगदी का बनना कूड़े के सदुपयोग का एक उत्तम उदाहरण है। इसके लिये शहरों में गूदड़ खरीदनेवाले अच्छा व्यापार करते हैं, यद्यपि इनके कारण इनके पड़ोस में गन्दगी फैलती है। पुराना लोहा और धातु की पुरानी चीज़ें तो काम में आती ही हैं। इन्हें गलाकर बड़े काम की चीज़ें बनती हैं।

सब से अधिक प्रचुरता से प्रकृति में जो अपरिमित और अनमोल शक्ति का अपार धन भगवान् भास्कर नित्य लुटाते हैं, वह है धूप। भारतवर्ष में हम धूप का धन हम लोग पाकर भी काम में नहीं लाते। ग्रेग् ने "खद्दर के सम्पत्ति शास्त्र"* में यह अटकल लगायी है कि भारतवर्ष के क्षेत्रफल पर धूप के द्वारा साल भर में जितनी सौर शक्ति आती है उसका मोटा हिसाब अश्वबल में करें तो ४६ सत्र ६६ पद्म अश्वबल होगा। इतने अश्वबल की शक्ति यदि हम कोयले से लेना चाहें तो सन १६२० में दुनिया भर में जितना कोयला निकाला गया उसके २६ हजार गुने कोयले की जरूरत होगी। इतनी अपार और अपरिमित शक्ति को हम कूड़ा कर देते हैं और सर्वथा खो देते हैं। प्रयाग के स्वर्गीय पंडित श्रीकृष्ण जोशी ने भानुताप-यंत्र लगभग तीस बरस पहले बनाया था। उससे भाफ का इंजन भी चलता था। इंजन भी चल सकता था। परन्तु भारतीय पूंजीपतियों ने उसे आश्रय न दिया। एक अत्यन्त उपयोगी आविष्कार व्यर्थ गया।

---

* ग्रेग् लिखित "खद्दर का सम्पत्तिशास्त्र" पृ० ३६।

भानुताप बहुत सीधी सादी चीज़ है। नतोदर दर्पण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर जितनी धूप पड़ती है सब उत्केन्द्रित होकर एक विन्दु पर इकट्ठी होती है। इसमे इतनी उग्रता होती है कि रुई आदि दह्य पदार्थ वहाँ रखने मे जल उठते हैं। यदि बहुत बड़ा नतोदर दर्पण हो तो वह उत्केन्द्र बहुत उग्र ज्वालावाला होगा। परन्तु जोशी जी ने यथेष्ट बड़ाई के दर्पण के मिलने की कठिनाई दूर करने के लिये एक ही नाप के अनेक छोटे दर्पण लेकर एक बड़े नतोदर चौकटे मे इस तरह लगाया कि सब दर्पणों की प्रतिफलित धूप उत्केन्द्र पर पड़ने लगी। इस तरह बड़े-से-बड़ा इष्ट नतोदर दर्पण बन गया। ऐसे बड़े-बड़े दो या अनेक महादर्पणों से एक ही जगह उत्केन्द्रित धूप के बल से यथेष्ट गरमी पैदा हो सकती है। परन्तु यह दर्पण जब तक सूर्य्य के सन्मुख होंगे तभी यह सुभीता हो सकेगा। इस लिये घड़ी के यन्त्रों का सा प्रबन्ध करके इन दर्पणों को घूमते हुए सूर्य्य के सम्मुख बराबर रक्खा गया। एक बार चाभी देने पर दिन भर एक ही स्थान पर बड़ी कड़ी धूप बनी रहती है जो यदि बैलट पर पड़े तो पानी खौले और भाफ बने और इस तरह भाफ का इजन और टरबैन चरखी चलाकर चाहे सीधे काम लिया जाय चाहे डैनमो चलाकर बिजली बना ली जाय और बिजली का सग्रह कर लिया जाय और जब चाहे जिस तरह उससे काम लिया जाय।

धूपकी ताकत से काम लेने की कोशिशें सवत् १९०७ से लेकर सवत् १९३७ तक बराबर होती रही। फिर इसकी चर्चा ही उठ सी गयी। सवत् १९५७ मे जोशीजी ने इस प्रयत्न को फिर से जाग्रत किया था। इस प्रयत्न के कई बरस पीछे अमेरिका के श्री शुमन ने एक दूसरे ढग पर सूर्य्य के ताप से सफलता पूर्वक काम लिया।

शुमन का यन्त्र इस सिद्धात पर बना कि जिस जगह सूर्य्य का ताप इकट्ठा हो उसी जगह भाफ तैयार करने का भी यन्त्र हो। इस उद्देश्य से काच जड़ा हुआ ऐसा बक्स बनाया कि उसके ऊपर काच लगा हो जिस पर से धूप पड के पानी को गरम करे। काच के दहने बाये दो और दर्पण जरा बाहर को झुके हुए इस तरह खड़े हैं कि उनकी धूप प्रतिफलित हो कर बक्सवाले काच पर पड़ती है। इस तरह काच मे इतनी गरमी हो जाती है कि भीतर का पानी खौलने लगता है। इस बक्स की एक ओर नलिका से पानी आता है दूसरी ओर नलिका से भाफ निकल जाती है। इसी तरह के सैकड़ों बक्स एक पक्ति मे लगा दिये जाते हैं। सब की मिलित शक्ति से बड़ी मात्रा में भाफ बनती है और उस से टरबैन चरखी और इजन चलता है और मन चाहा काम होता है। मिस्र देश मे इस यन्त्र को सफलता से चलाया गया है।

अमेरिकावाला धूपयन्त्र बहुत बृहदाकार है क्योंकि उस में उत्केन्द्रण का प्रबन्ध नहीं है। उसकी बृहत्ता के कारण उसका सारा प्रबन्ध बहुत व्ययसाध्य हो गया। जोशीजी का यन्त्र इतना व्ययसाध्य नहीं है। भानुताप मे एक और सुभीता यह है कि यह सदा सूर्य्याभिमुख रहता है। शुमन के यन्त्र मे यह सुभीता नहीं है। शुमन के यन्त्र मे जितने क्षेत्रफल की धूप से काम लिया जाता है उतने क्षेत्रफल से यदि भानुताप को चलाया

जाय तो भानुताप मे अधिक सुभीता दीखेगा। भानुताप के द्वारा भारत मे शायद अधिक सुभीते से काम हो सके यदि कोई पूजीपति उसे आश्रय दे।

भानुताप मे उन्नति और विकास की भी गुजाइश है। भारतवर्ष की ऋतु जिस मे लगभग आठ मास के धूप रहती है इस यत्र से काम करने से अनुकूल है। बिजली का सग्रह कर के भानुताप से सभी काम लिये जा सकते हैं। इस मे ईंधन के खर्च का भारी बचाव है। धूप से ही ईंधन का काम लिया जाता है।

चित्र १६२ की व्याख्या

अणुवीक्षण यंत्र के अंगों के

संकेताक्षर

क = चक्षुताल	ल = कमानी
स = मोटा पेंच	त = मंच
न = नाक	श = शीशी
व = वस्तुताल	ट = बड़ी नली
क = छोटा पेंच	प = शरीर

अणुवीक्षण-यंत्र के विविध भाग

अंग्रेजी नाम	हिन्दी नाम
मैक्रॉस्कोप	अणुवीक्षक, खुर्दबीन
आई-पीस	चक्षुताल
ड्रो-ट्यूब	भीतर की नली
बाडी-ट्यूब	बड़ी नली
कोअर्स-अडजस्टमेंट-स्क्रू	मोटा पेंच
फ़ैन अडजस्टमेंट-स्क्रू	छोटा पेंच
लो-पावर लेंस	छोटा वस्तु ताल
नोज़-पीस	नाक
हाई-पावर लेंस	बड़ा वस्तु ताल
इमर्शन-लेंस	तेलवाला वस्तु ताल
स्लाइड	पट्टी, काचखंड
क्लिप	कमानी
स्टेज	मंच
मिक्यनिकल स्टेज	मंच का पैमाना
डायाफ्रम	परदा
सेंटारंग स्क्रू	परदे का पेंच
बाडी	शरीर
कंडेंसर	उजाला बटोरने का शीशा
मिरर	शीशा
लेग	पैर
टिवूटिंह् स्क्रू	घुमाने का पेच
कवर-ग्लास	शीशे की पत्ती

पृष्ठ ३११ के सामने

अट्ठाईसवां अध्याय

देश और काल पर विजय

१—देश-काल का संकोच

यदि इस धरती पर किसी अन्य लोक को सौ बरस पहले गया हुआ प्राणी आज एका-एकी लौट आवे और एक बडे शहर मे उस की आँखे खुले तो वह एक दम चकित हो जायगा। अपने समय मे उसने उस शहर को जैसा देखा था उसे उससे इतना विभिन्न देख पडेगा कि वह पहचान न सकेगा। यदि वहीं का रहनेवाला हुआ तो उसे शायद अपने घर पहुँचना कठिन हो जाय। उस के समय मे बिजली की रोशनी और पखे आदि तो क्या, मिट्टी का [illegible] आज-कल की एवरेडी बत्तिया तो क्या, मिट्टी के तेलवाली लालटेनें भी न थीं। पुराने मकानो की जगह नये खडे होने की तो बात स्वाभाविक है, परन्तु वह तो बिल्कुल नये चिह्न पावेगा। लालटेनो के खभो की जगह तार के खभे और पानी के लिये जगह-जगह पेच और कल उसने कहा देखे थे? पहरावा बदला हुआ, छतरिया नयी बनावट की, जूतो का ढग नया, बाबुओ का ढाचा निराला, तेजहीनता और फैशन दोनो का असगत सम्बन्ध देखेगा। फिर वह सिगरेट बीड़ी देखकर हैरान होगा। बाबू जब दियासलाई की डिबिया निकालकर जलायेगा तो उसके आश्चर्य्य का कुछ ठिकाना न रहेगा। यह डिबिया के भीतर के तिनके से आग कैसे बन गयी? यह गधक मे डुबोई सनई के टुकड़ेवाली दियासलाई तो नहीं है जिसे उसके समय मे मेहतर बेचते थे और जो टाकी और पथरी से निकलती हुई चिनगारियो से जलती थी! इतने मे बैसिकिल पर चढे हुई दौडते हुए मनुष्यो को देखकर उसे काठ मार जायगा। दो पहिये आगे पीछे इस तरह चल कैसे सकते है! फिर मोटरकार और रेल देखकर तो उसे यह कभी विश्वास न होगा कि वह सौ बरस पहिले जिस लोक से विदा हुआ था उसी मे आया हुआ है। इस अविश्वास पर हवा मे उड़ता हुआ विमान मुहर लगा देगा। वह कहेगा कि अवश्य ही मेरी भूल है। मै उसी दुनिया में नहीं आया हूँ। मै देवलोक मे हूँ जहा के निवासी स्वर्ग-सुख

भोग रहे हैं। जहा के वैद्य नाड़ी नही देखते बल्कि सीने पर एक चोंगा और नली लगाकर आवाज सुनते हैं और काच की सुई लगाकर ज्वर नापते हैं, जहा एक शहर से दूसरे शहर वाले अपनी-अपनी बैठक मे एक दूसरे से हजारो मील पर बैठे मुँह के पास चोंगा और कान के पास एक डिबिया लगाये आसानी से बातचीत कर रहे हैं। उस के जमाने मे जब इलाहाबाद मे कोई घटना हो जाती थी तो बनारस से साड़नी-सवार दौड़ाये जाते थे जो कम-से-कम केवल १०० मील की दूरी की खबर बारह घंटे मे पहुँचाते थे। हाँ, डाक बैठी हुई थी। खर्च करनेपर घोड़ा-गाड़ियों पर चिट्ठिया, समाचार और आदमी भी आते-जाते थे। इन्ही को डाक-गाड़ी कहते थे। परन्तु आज तो अजीब हाल है कि श्री मेकडोनेल्ड लडन मे स्पीच देते हैं और उसे अमेरिका, जापान, भारतवर्ष आस्ट्रेलिया आदि सभी देशो मे लोग अपने-अपने घर बैठे सुनते हैं और चाहे तो इसी उपाय से बाते भी कर ले। कलकत्ते बम्बई के व्यापारी बाजार-भाव जानने के लिये इसी तरह बाते कर लेते हैं अथवा "तार" से समाचार मगवा लेते हैं। उस के समय में अखबार निकलते थे ज़रूर, परन्तु वह महीने मे कही एक बार निकलते थे सो भी कही-कहीं किसी बड़े शहर मे यह न[illegible]गी बात शुरू हो रही थी। परन्तु आज तो दिन मे दो बार ताज़ी खबरो के अखबार दरदर मारे [illegible] मारे फिरते हैं। सात समुन्दर तेरह नदी पार लन्दन मे सवेरे किसी मत्री ने कुछ कहा और श[illegible]म को हमारा दो पैसेवाला अखबार वह खबर हमारे पास ला रहा है। छापेखाने तो विचित्र [illegible] वस्तु हैं। इन से तो छपी पोथिया कौडियो के मोल बिक रही हैं। घटे-घटे मे चार-चार [illegible] हजार नकले छापकर फेक देते हैं। कटाई, भजाई, मोड़ाई, यहा तक कि लपेटकर कैदक[illegible] [illegible]गाकर अखबार को भेजने के लिये पूरी तौर पर तय्यारी भी कल हा करता है। [illegible] आदमी हाथ नही [illegible]ीं लगाता। रेल, तार, डाक, छापाखाना, मोटरकार, बैसिकिल, दियासलाई, लालटेन, फौंटेनपेन, पानी का नल, सभी कुछ नयी चीज़े हैं, चूल्हे का काम देने के लिये तरह-तरह के स्टोव और कुकर हैं। इन सब को देखकर उस मनुष्य को कभी यह विश्वास नहीं हो सकता कि हम उसी जगत् मे आये हैं जिस से सौ बरस पहले हम चले गये थे।

विज्ञान के बल से जगत् का बड़ी जल्दी-जल्दी परिवर्त्तन हो रहा है। कारखानों और मिलो मे जो कले आज चल रही हैं, कल ही वह बदलने-योग्य हो जाती हैं, क्योंकि उन्नति प्रतिक्षण हो रही है और ऐसे वेग से हो रही है कि हम समझ नही सकते। क्रिया से देश और काल का और देश और काल से क्रिया का मान होता है। नपे हुए समय में नपे हुए देश की लम्बाई मे गति का होना ही क्रिया का मान है। आजकल विज्ञान के विकास ने क्रिया के अनन्त सुभीते कर दिये हैं और बड़े वेग ने देश और काल की लम्बाई घटा दी है। परस्पर हजारो मील दूरी पर बैठे दो आदमी जब एक दूसरे से बातचीत कर सकते है तो न तो दूरी का भेद रहा और न समय का। यह दोनो घटक बातचीत रूपी क्रिया के लिये लगभग शून्य के बराबर है। इसी तरह घंटे में दो सौ मील चलनेवाले विमान पर यात्रा कर के एक आदमी काशी से हरद्वार सवा दो घंटे मे पहुँच सकता है और स्नान कर के लौटने मे उसे ढाई घंटे और लगेंगे। इस

सभी सभ्य देशों में रेलगाड़िया चलती हैं। अब तक सात लाख मील से अधिक रेल की पटरिया बिछ चुकी हैं। बहुत जगह भाफ के इजन के बदले बिजली के बल से रेलगाड़िया चलने लगी हैं। कई जगह एक ही पटरी या रेल पर चलनेवाली गाड़ियों का अनुभव हो रहा है। यह गाड़िया बहुत तेज चलती हैं।
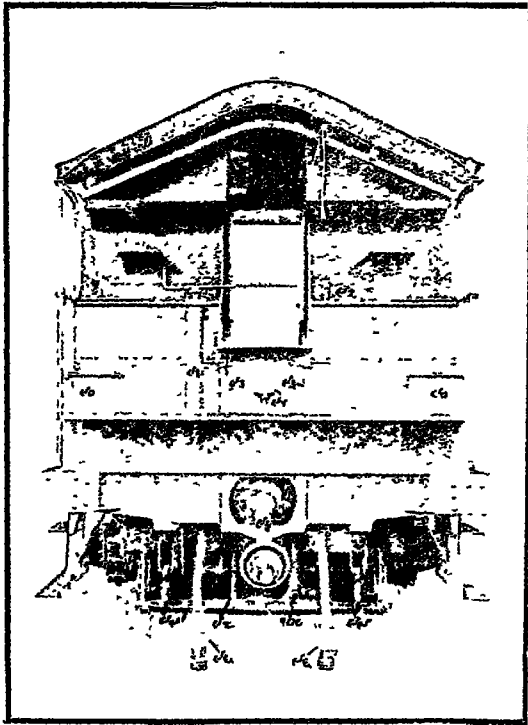
चित्र १७१-इंजन के पीछे का भाग [परिषत् की कृपा

रेलगाड़ियों के चलाने के लिये पटरियों की सड़क प्राय. सीधी और विशेषत. समतल चाहिये। परन्तु ऐसा सुभीता लम्बे फासलों में नहीं मिल सकता। इसलिये जगह-जगह मिट्टी के धुस, पुल, पुलिया आदि बनाकर लैन समतल पर ले आते हुए भी ऊची नीची धरती के अनुसार चढाव-उतार पड़ता है। यह चढाव उतार बहुत ज्यादा होने पर क्रमश. अधिक

बल या ब्रेक (रुकावट) लगाने की जरूरत पड़ती है। पहाड की चढाई मे एक से अधिक इजन लगाने की जरूरत पड़ जाती है। यही हाल सुरग|की रेलो का है। लडन और पारी (पेरिस) बड़े-बड़े नगर हैं जहा एक भाग से दूसरे की दूरी दस-दस बारह-बारह मील की होती है। धरती के ऊपर रेलगाड़िया चले तो बहुत सी जगह घेर ले और नगर का सौन्दर्य्य बिगाड़ दे। इसीलिये धरती के नीचे सुरग खोदकर रेलगाड़ियों की पटरिया बिछायी हैं। इनमे सुरग-गाड़िया चलती हैं। उनके स्टेशन जगह-जगह बने हुए हैं।

३—हवागाड़ी और पैरगाड़ी

हवागाडियों के बनाने की कोशिशे तो तब से हो रही हैं जब से भाफ के इजन का आविष्कार हुआ। विचार वही था जो रेलगाडी के निर्माण मे उत्तेजक हुआ, कि गाडी साधारण सडक पर इजन के बल से चले। कोई सौ बरस हुए कि पहली मोटरकार बनी जो सौ मन के लगभग भारी थी और भाफ के बल से घटे मे दस मील चलती थी। सवत् १६४७ मे डैमलर ने पेट्रोल जलाने का इजन बनाया और उसे एक (बैसिकिल) पैरगाडी मे लगाया। कोई पद्रह बरस तक इसका प्रचार रुका रहा। इस बीच पैरगाडी मे तेजी से उन्नति हुई। आज-कल जिस ढग की पैरगाडी प्रचलित है उसका आविष्कार सवत् १६४८ के लगभग हुआ। इसी पैरगाडी मे छोटा पेट्रोलवाला इजन लगाकर मोटर-पैरगाडी बनाने का प्रयत्न १६४२ से लगभग १६७२ तक जारी रहा। सवत् १६४८ के लगभग यही पेट्रोल इजन हवागाडियों मे लगाया गया और भाफ के इजन की चाल उठ गयी। आज-कल के ढग की हवागाडी का आरभ तभी से समझना चाहिये। आरभ में वेग घटा पीछे पन्द्रह मील था परन्तु वेग बढने लगा। पहले-पहल किराये की हवागाडिया लडन मे सवत् १६६० मे चलने लगी। सवत् १६६२ मे लदन मे कुल १६ हवागाडिया चलती थीं। १६६७ मे इनकी सख्या ४६४१ हो गयी थी।

कोई दस हजार के लगभग वस्तुओं के मेल से एक हवागाडी बनती है परन्तु शिल्पी का यह चमत्कार है कि ठीक घडी की तरह सब पुरजे बडी उत्तमता से बैठाये हुए रहते है।

जब इजन चलाया जाता है, बैठने की जगह के नीचे की टकी से पिट्रोल नली के द्वारा कारबुरेटर मे भेजा जाता है। इस जगह पेट्रोल एक छोटे छेद से घुस जाता है और हवा से मिलकर वायव्य बन जाता है। गाडी के आगेवाली मुठिया से जब घुमाकर इजन को "स्टार्ट" करते है, तब इस क्रिया का आरभ होता है। सुधरी गाडियो मे अपने आप "स्टार्ट" करने का प्रबन्ध होता है। इसी क्रिया से सारा यत्र चलने लगता है और चलना अपने आप जारी रहता है। "स्टार्टर" के चलाते ही चालकचक्र घूमता है। उस के घूमने से डाट ऊपर को उठती है और वायव्य को थोड़े-से-थोड़े स्थान मे बलपूर्वक चाप देती है और साथ ही भीतर लानेवाले पट को भी बन्द कर देती है जिस से गैस को निकलने का मार्ग नही मिलता। अब, बिजली की चिनगारीवाला

ढकना इस तरह पर लगा रहता है कि ठीक उसी समय चिनगारी निकाले जब वायव्य अत्यन्त दबी हुई दशा में हो, इस क्रिया से विस्फोट होता है जिसके बल से डाट फिर नीचे को तुरन्त ढकेली जाती है। इससे चालकचक्र घूम जाता है, जिससे चलनेवाले पहिये घूम जाते हैं और गाडी चल पडती है। अब फिर चालकचक्र डाट को ऊपर
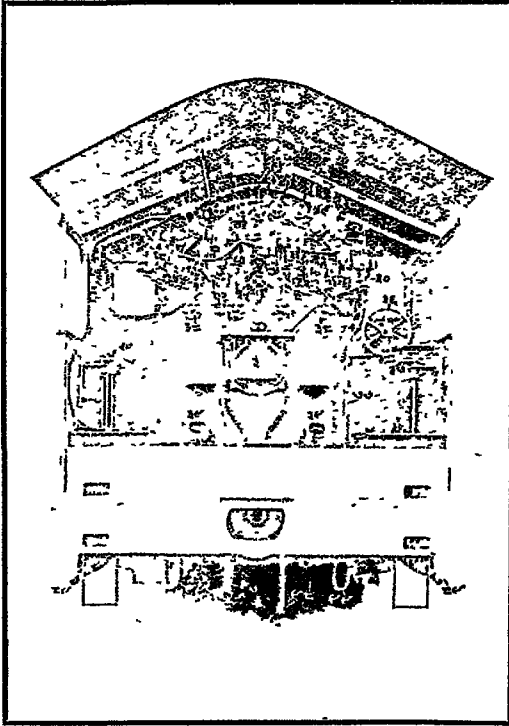
चित्र १७२-ड्राइवर के काम के सब यंत्र सामने लगे हैं।

[परिषत् की कृपा

की ओर ढकेल देता है और फिर वही क्रिया दोहरायी जाती है, जिससे गाडी का दौड़ना जारी रहता है। इसी क्रिया के दोहराये जाने के ठीक पहले इतना काम हो चुकना और जरूरी है कि विस्फोट के बाद भीतर ले जानेवाला पट अपने आप बन्द हो जाय और वायव्य को बाहर निकालनेवाला पट खुलकर उसे बाहर निकाल दे। इस तरह निकलनेवाली

नलिका से वायव्य भागता है और आवाज-नष्ट करने वाले यन्त्र से होकर बाहर निकल जाता है। पहले बहुत सा बे-जला बदबूदार वायव्य निकला करता था, परन्तु अब ऐसे सुधार हुए हैं कि पेट्रोल प्रायः पूरे तौर पर जल जाता है और बदबूदार वायव्य काम में आ जाता है।

हवागाडी इस समय स्थलचारी गाडियों मे सब से तेज सवारी है जो रेलवाली डाकगाडी को भी बहुत पीछे छोड देती है। दौड मे घटे मे दो सौ मील चलना विशेष प्रकार की गाडियां के लिये सभव हो गया है। परतु यह सवारी गाडिया नही होती। सवारी और बोझ ढोनेवाली लारियां भी इसी ढग पर चलायी जाती हैं। अब तो जहा रेलगाडी के जाने मे सुभीता नही है वहा मोटरलारियों ने यात्रा का सुभीता कर दिया है। मोटर-पैर-गाडिया भी चलती हैं जिनके साथ एक गद्देदार कुरसी गाडी भी जोड़ दी जाती है। इस मे खर्च कम पडता है और तेजी अधिक होती है।

४—जलयान

जल पर तैरनेवाले अनेक प्रकार के यानो को मनुष्य अनादि काल से काम मे ला रहा है। घड़नई, तुम्बेड़, डोंगी, नाव, बजरा, जहाज़, बेड़ा, सभी साधन देशकाल और वस्तु के अनुकूल काम मे आते रहे है। पहले जमाने में वायु की अनुकूलता इन जलयानों के लिए आवश्यक थी। पाल बाधकर वायु के बल से धारा के प्रतिकूल और अधिक वेग से नाव या जहाज़ ले जाते थे। परन्तु भाफ के इजन के आविष्कार के बाद जहाज़ भाफ के बल से चलने लगा और उनका वेग भी बढा। पाल बाधने की जरूरत इ जनवाले जहाज मे नहीं रही। इस तरह के जहाजो को धुआकश और बडी नौकाओ को अग्निबोट, स्टीमर आदि नाम दिये गये। स्टीमर भी पहले उतने तेज नहीं चलते थे जितने कि अब चलते हैं। उस का कारण यह है कि पहले इजनों को सीधे डाट को ढकेलना पड़ता था। यह डाट ही पहिये को घुमाती थी। इस तरह भाफ की ताकत घट जाती थी। यदि भाफ सीधे चक्कर देने का काम करती तो उसकी शक्ति पूरी-पूरी चक्कर देने मे लगती। पनचक्की चलानेवाले एक चरखी के फलों पर पानी गिरने देते हैं। पानी गिरने का भार फल को धकेल देता है और दूसरा फल सामने आ जाता है। गिरता हुआ पानी पड़कर उसे भी धकेल देता है। इस तरह चरखी घूमने लगती है। इ जीनियर पार्सन्स के मनमे पचास बरस पहले यह बात आयी कि अगर डाट पर बल लगाने के बदले सीधे चरखी पर या पहिये पर भाफ का बल लगे और पहिया घूमे तो सीधे पहिया का घुमाना ही अधिक सुभीते की बात होगी। पहले भाफ को बिजली मे बदलने के लिए डाट को चलाकर एक विकट यन्त्र से बिजली बनाते थे, क्योंकि डायनमो चलाने के लिए इ जन की शक्ति काफी तेजी से चक्कर को घुमा नहीं सकती थी। इसी पर विचार करके पार्सन्स ने एक ऐसी चरखी बनायी जिसपर भाफ अपने वेग से लगे और उस के फलक को हटा दे। उस के हटने पर दूसरा सामने आवे और वह फलक भी

हटाया जाय। इस तरह चरखी बड़े वेग से घूमने लगी। डायनमो में जहाँ साधारण इंजन उस के चक्कर को मिनिट पीछे १५०० बार घुमाता था और शक्ति का कुछ घाटा भी सहता था, वहाँ चरखीवाली विधि ने कितनी महाभयानक वेग से मिनिट पीछे अठारह हजार चक्कर के हिसाब से, चलाना शुरू किया। इसमे जोखिम यह थी कि डायनमो
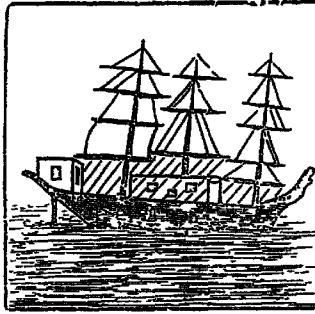
चित्र १७३ पुराने ढग का जहाज़ जो साधारणतया पालों के द्वारा चलता था। अब पालवाली नावे भारत में देखी जाती हैं। पालवाले जहाज़ों का रवाज अब उठ गया।

[परिषद की कृपा

का वेलन चीथड़े-चीथड़े होकर घातक वेग से चारों ओर छितरा जाता। पार्सन्सने इस कठिनाई से बचने के लिये डायनमो को ही बहुत मजबूत बनवाया जो ऐसे वेग को सह सके। इस तरह चरखी की विधि को डायनमो चलाने और बिजली बनाने में लगाया गया। चरखी में पार्सन्सने अनेक सुधार किये और अब जहाँ-जहाँ इजन के द्वारा चक्कर पैदा करने का काम लगता था वहाँ भाफवाली चरखी काम आने लगी। भाफ को बहुत पतली नलिका से बड़े वेग से निकालने और चरखी को वेग से चलाने की विधि अब फैलने लगी। पहले के इंजिनियरों ने भाफ के दबाव पर ध्यान दिया और उस के वेग पर नहीं। दबाव से डाट दबती और उठती थी। इसी से इंजिनियर काम लेते थे। पार्सन्सने देखा कि किसी नलिका से जिस वेग से भाफ निकलती है उस वेग से काम लिया जाय तो चरखी बहुत ही तेज़ चलती है। इस सिद्धान्त ने चरखी के यन्त्रों को जन्म दिया। पार्सन्सने तरह-तरह से चरखियों में परिवर्तन और सुधार किये। एक ही वाष्प-धारा से कई-कई चरखिया, चरखी के भीतर चरखी, भिन्न-भिन्न गतियों से चलायी।

इसी चरखी के बल से जहाजों का वेग बढाया गया। जहाँ साधारण इजन से अगिन-बोट अधिक-से-अधिक ३२ मील प्रतिघंटे चलती थी, इसने ४० मील जाना सभव कर दिया।

वाट ने भाफ के ढकेलनेवाले बल का उपयोग किया था, पार्सन्स ने उसके वेग से लाभ उठाया। भाफ के साथ चरखी ने बल के प्रयोग का एक अद्भुत साधन तैयार कर दिया जिसने जल मे जल यानों की गति और स्वतत्रता दोनो बढा दी। पनडुब्बियाँ निकली जो पानी के भीतर-ही-भीतर बड़े वेग से दौड़ कर बड़े-बड़े फासले तय करती है। अपने शत्रुओं पर बड़े वेग से चलनेवाले अग्निवाण (टारपीडो) छोड़ती हैं। चरखी ने जल-युद्ध की भीषणता बढा दी और युद्ध-पोता की गति अव्याहत बना दी।
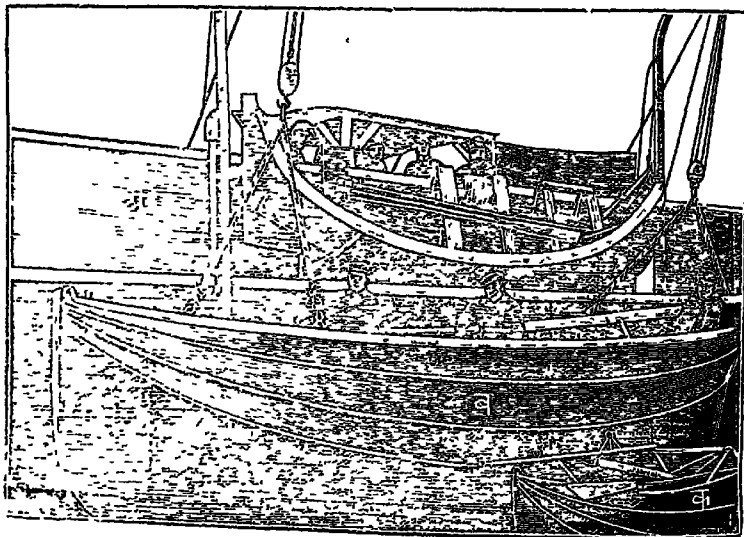
चित्र १७४—क = लिपटी हुई नाव। ख = जहाजों मे बँधी हुई नाव। ग = किरमिच की लपेटी हुई नाव जो समुद्र में तैरा दी गयी है। आजकल यात्री की रक्षा के लिये जहाज मे कई-कई फालतू नावें बँधी रहती हैं।

[परिषत् की कृपा

युद्ध-पोत फौलाद के पत्रों का बना जहाज होता है जो पानी से ऊपर उठा रहता है, जिसकी लम्बाई दो सौ गजों के भीतर-ही-भीतर और चौडाई तीस गज मुश्किल से होती होगी। दोनों सिरे पर बहुत तग हो जाना तो आवश्यक ही है। बिल्कुल ऊपरी भाग मे केन्द्रवाली रेखा के बराबर समानान्तर रूप मे जोडी-जोड़ी करके दस तोपे रखी हुई रहती हैं और हर जोडी के ऊपर उस के पास ही रक्षार्थ मडप सा बना रहता है। केवल बाहर निकले

हुए तोपो के मुहाने दिखाई पड़ते हैं। इन के सिवा बाहर मे केवल एक छोटे मस्तूल और कारखानो की कटी हुई चिमनी के शक्ल की चीज दिखाई पड़ती है।

चित्र १०९—उभययान, जलयान-वायुयान संयुक्त
[हचिसन से अनुकृत जार्ज न्यूनस की कृपा]
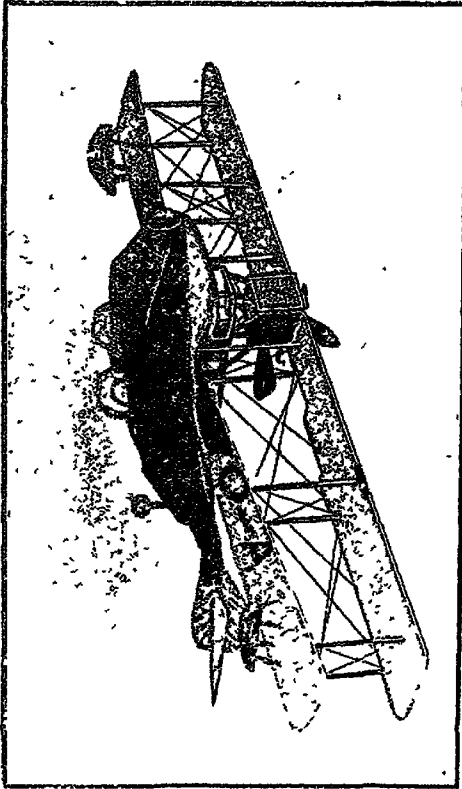
पनडुब्बी मे बैठे हुए जो लोग जल के भीतर उसे चीरते हुए चले जाते हैं वह बाह्यदर्शक (पेरिस्कोप) के द्वारा भीतर बैठे-बैठे यह देख लेते हैं कि ऊपर चारो ओर क्या हो रहा है। परन्तु पनडुब्बी का मुख्य काम टारपीडो या अग्निबाण छोडना ही होता है। अग्निबाण के भीतर घुमना पहिया होता है उसी के बल मे वह चलता है। यह छूट कर जिस जहाज को लगता है उसे छिन्न-भिन्न कर डालता है। अभी तक मनुष्य ने पनडुब्बियो

से सहार का ही काम लिया है। परन्तु इन पनडुब्बियों मे उचित और आवश्यक सुधार करने पर आगे बहुत सभव है कि समुद्र-तल का अनुशीलन करने मे ये सहायक हो। परन्तु अब तक तो इस दिशा मे मनुष्य ने अपनी इस बढी हुई शक्ति को विनाश मे ही लगाया है। उस ने जैसे पनडुब्बियो से अग्निबाण छोडवाये वैसे ही जहाजों को नष्ट करने के लिये विस्फोटक द्रव्यो से भरे पीपे समुद्र की तली मे बिछवा दिये। इस तरह उन्होने इन जल-यानो को विस्फोटको से सहज मे काम लेने का साधन बनाया। जल में उस की गति बढ़ गयी और अव्याहत सी हो गयी परन्तु उस ने अपने बढे हुए ज्ञान का सदुपयोग नही किया।

५—हवाई सवारियां

मनुष्य ने जल और स्थल पर अपनी गति के यात्रिक साधन बड़ी मुद्दत से बना रखे थे। परन्तु गुब्बारा के सिवा इधर ईसा की पिछली शताब्दी मे कोई साधन मालूम न

चित्र १७६—हवाई जहाजो में उदजन के बदले हीलियम भरने से आग लगने का डर नहीं रहता।
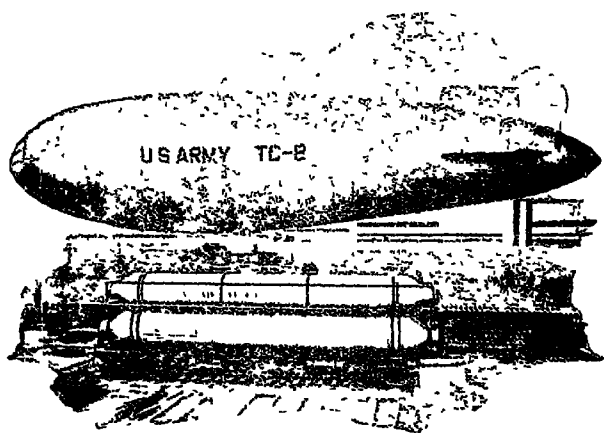
पापुलर सायस से] [सौर परिवार से

था। हिन्दू साहित्य मे प्राचीन काल मे विमानो का वर्णन आया है। रामायण से पता चलता है कि श्रीरामचन्द्रजी लका से पुष्पक पर चले और और अधिक से अधिक चौबीस घटे मे और कम से कम छः घटे मे अयोध्या जी पहुँचे। अतः लगभग अस्सी से लेकर तीन सौ मील प्रति घटे के हिसाब से पुष्पक चला होगा। यह वेग आजकल के वायुयानों के लिये भी बहुत असाधारण नहीं समझा जाना चाहिये। पुष्पक पर बैठे श्रीरामचन्द्र

सीताजी से बातें करते जाते थे। इससे स्पष्ट है कि शोर नहीं होता था। तेल भरने और विमान के रोकने की जरूरत न पड़ी। इससे प्रकट है कि पुष्पक विमान आजकल के विमानों के कई दोषों से मुक्त था। निस्सन्देह रचना का विवरण नहीं मिलता।

गुब्बारा बहुत काल से बनता आया, परन्तु उसे इष्ट दिशा में ले जाने का कोई साधन नहीं था। जब वाट ने भाफ का इंजन बनाया उस समय यह कोशिश की कि गुब्बारे को निर्दिष्ट दिशा में और इच्छित वेग से चलाया जाय। इसी प्रकार किसी यन्त्र में हाथ पैर और

चित्र ६७७—वायुयान की फंदेनुमा मंडलाती हुई गति जिसका शिक्षार्थियों से अभ्यास कराया जाता है।
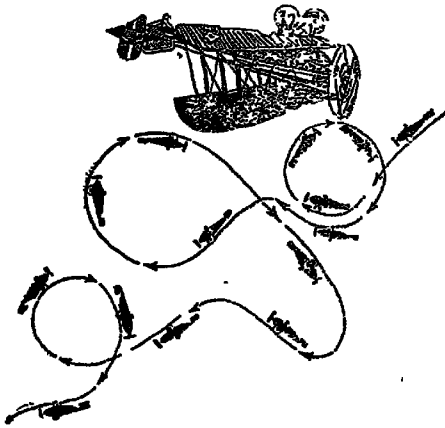
किसी में बिजली लगा कर भी यही कोशिश की गयी। जेपलिन ने हवाई जहाज बिजली से ही चलाने का पहले प्रयत्न किया था, परन्तु जब पिट्रोल का इंजन बना तब उसने ऐसा जहाज बनाया जिसमें साढ़े तीन लाख घन फुट गैस अमाये और ४०-४५ मनुष्य बैठ सके। लगभग ३५ हजार धनफुट उज्जन लगभग साढ़े सत्ताईस मन का बोझ उठा सकता है। इस तरह उस हवाई जहाज में पौने-तीन-सौ मन का बोझ उठाने की शक्ति थी। पेट्रोल इंजन इन पवनपोतों में ३५ से लेकर ४०० अश्वबल का लगता है। परन्तु उज्जन वायु से भग जाना ही इसका भारी दोष है क्योंकि उज्जन में आग सहज में ही लग जाती है और शत्रु इस का सहज ही विनाश कर सकता है। इसके बदले हीलियम भरना ही सुरक्षित है क्योंकि हीलियम हलका भी है और अदाह्य भी।

पवनपोत में भी नावों की तरह दिशा निर्देश के लिये पतवार लगी होती है। परन्तु

यह किरमिच की होती है और बहुत बड़ी होती है और जिस ओर फेरना होता है पतवार भी उसी ओर घुमायी जाती है। जलयानों की पतवारों से यही अन्तर होते हैं। ऊपर नीचे ले जाने को एक पड़ी पतवार काम में आती है। पवनपोतों को गति देने के लिये बिजली के पखे की तरह दो या चार फलकोंवाला एक प्रेरक चक्र होता है जो बड़े वेग से घूमता रहता है। फलक लकड़ी के कई टुकड़ों को जोड़कर बना होता है और बहुत बड़ा होता है। पेट्रोल के इजन के बल से ही चलता है। इस पखे के घूमने से वायु में वही क्रिया होती है जो लकड़ी के भीतर पेच के घूमकर प्रवेश करने की होती है। प्रेरक चक्र वायु को काटता हुआ उसमें घुसता जाता है। बस यही आजकल के पवनपोतों (पेप्लेन) विहगों, और (मानोप्लेन) पतगों के चलने का रहस्य है।

आरभ के विमान बनानेवाले पूछ की आवश्यकता पर ध्यान नहीं देते थे। परन्तु जब से विमानों में चिड़ियों की पूँछ की नकल होने लगी तब से उस का इष्ट दिशा में घुमाना अधिक सरल हो गया। एक सुभीता और हो गया है। इस तरह के विमान बनाये गये हैं कि वह यदि जल के ऊपर पड़े तो स्थल की तरह जल पर भी बराबर तैरते रह सके। इनका नाम हिन्दी में जल-विहग वा जल-पतग रखा जा सकता है।

यदि विमानों की होड पनडुब्बियों से लड़ाई की सामग्री की उपयोगिता में लगे तो निस्सन्देह बाजी विमानों के हाथ रहेगी क्योंकि जाच कर के यह बात निश्चय कर ली गयी है कि विमान पर बैठा मनुष्य तीन हजार फुट की ऊँचाई से पानी में अठारह फुट की गहराई में सरकती हुई पनडुब्बी को देख लेता है परतु पनडुब्बी में बैठा मनुष्य पद्रह सौ फुट से ऊँचे विमान को देख नहीं सकता।

हवाई सवारियों में विहगों और पतगों का प्रचार अधिक बढ़ रहा है। भारत में भी इस कला के सीखने-सिखाने के लिये संगठन हुआ है। सभव है कि भविष्य में बम गिराने और शत्रु का नाश करने के बदले यह हवाई सवारिया शाति और अहिंसावले ही कामों में लायी जायँ और इन की उपयोगिता ससार की उन्नति और रक्षा में ही समझी जाय।

विमानों में अभी बहुत उन्नति होनी है। इजन का भयानक शोर मिटाना है। पेट्रोल के बदले बेतार की बिजली की शक्ति से चलाने की जरूरत है। इन में ऐसा प्रबध करना है कि धरती पर उतरने या धरती छोड़ने के लिये मैदान की जरूरत न पड़े। चिड़ियों की तरह किसी मकान की छत पर भी उतर सके और छत से ही उड़ सके। अपने झोंके को इतना काबू में रख सके कि उतरने में आसानी हो। इन बातों के लिये कोशिश हो रही है, और किसी हद तक सफलता भी मिल चुकी है।

६—तार द्वारा और बिना तार के समाचार और बात-चीत

तार द्वारा समाचार भेजने के उपाय विक्रम की बीसवी शताब्दी के आरभ से चल रहे हैं और उस में बराबर उन्नति होती रही है। यदि किसी (गेलवेनोमीटर) धारामापक का सबध बिजली के किसी (सरकिट) चक्र से कर दिया जाय तो जिस दिशा में बिजली की धारा बहती होगी उसी के अनुकूल उसकी सुई दहने या बायें को घूम जायगी

और (स्विच) सूच के द्वारा जब चाहें तब दिशा बदल सकते हैं। इस तरह धारामापक की सुई को इष्ट दिशा मे घुमाकर हम दूरस्थ किसी को किसी बात की सूचना दे सकते हैं. यदि हम धारामापक की सुई की गति देखनेवाले से सकेत ठहरा ले कि किस दिशा मे किस-किस प्रकार से सुई के घुमाने का क्या अर्थ समझना होगा। आरभ मे इसी विधि पर तार समाचार अवलम्बित थे, पीछे विद्युत्-चुम्बकी काम में आने लगी। उसके वेठन में से होकर जब धारा बहती थी तब एक दड जो आर्मेचर का काम करता था उस से खिंचकर लग जाता था और जब धारा रुक जाती थी कमानी के खिंचाव से वह तुरत अपनी जगह पर आ जाता था। इस दड मे चिन्ह करने का साधन लगा होता था जिस से जितनी देर तक धारा चलती कागज पर उतना ही लम्बा चिन्ह बन
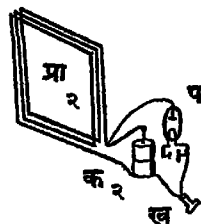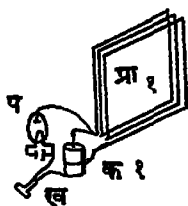
चित्र प्रापक चौक्टे १ और २ जिस देशतल में हैं उसी देशतल से समाचार प्राप्त कर सकते हैं। इन देशतलों से समकोण पर होनेवाले देशतलों से समाचार नहीं पा सकते। चित्र में दिये हुए वायुयान का ठीक स्थान इस प्रकार के दो दिग्तल प्रापकों द्वारा मालूम किया जा सकता है। दोनों प्रापकों तब तक घुमाये जा सकते हैं जब तक स्पष्ट शब्द न सुन पड़ें। स्पष्टता ही दोनों दिग्तलों के काटने के स्थान पर प्रेषक विमान का होना बताती है।

जाता था। इस तरह लम्बे और विन्दु-मात्र दो तरह के चिन्ह चल पड़े हैं परन्तु यह देखा गया कि पहले लिखकर पीछे पढने के बदले काम करनेवाले आदमी शब्द मे ही अन्तर परख सकते हैं। इस लिये शब्द सुनकर ही लिख लेने की रीति चल पड़ी जो इस समय अधिक प्रचलित है। तार समाचार इसी सिद्धात पर चलते हैं। सामान

भी बहुत नहीं चाहिये। बिजली की धारा के लिए बाटरी चहिए। चक्र को जोड़ने और तोड़ने का प्रबन्ध यंत्र चाहिए। तार का एक सिलसिला चाहिये। और फिर दूसरी ओर एक ग्राहक यंत्र भी चाहिए। जिस में प्रेषित शब्द दोहराये जाय। तार का सिलसिला या तो ऊपर हवा में रहनेवाला होता है या धरती के भीतर चलनेवाला चक्र पूरा करने को दूसरी धारा स्वयं धरती से होकर आती है। किसी विशेष यंत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी तार की पद्धति में सुधार करके ऐसे उपाय किये गये हैं कि एक ही तार में होकर एक साथ ही अनेक समाचार दोनों दिशाओं में भेजे जाते हैं।

धरती के ऊपर तार के प्रबन्ध तो प्रत्यक्ष हैं और उनमें कोई अनोखापन नहीं है। बिजली का वेग तो प्रकाश के वेग की तरह हमारे व्यवहार के लिये अपरिमेय है और प्रबंध सीधे सादे हैं। तार समाचार आजकल मनुष्य के लिये एक मामूली सी बात हो गयी है। समुद्र के भीतर उस की तली में से तार का जो रस्सा गया है वह इंजिनियरी की अद्भुत क्रिया है। यद्यपि बेतार के समाचार का विनिमय सभव होने से इन दानवी रस्सों की आवश्यकता आगे चलकर बिलकुल न रह जायगी, तथापि यह काम जो हो चुका है, मनुष्य के देश काल और वस्तु पर विजय पाने का एक नमूना है। बेतार के समाचारवाले आविष्कार ने तो कमाल कर दिया। तार और रस्सों के द्वारा जलस्थल से होकर स्थल पर ही समाचारों का विनिमय हो सकता था। परन्तु बिना तार के समाचार ने तो चलते हुए जलीय तथा हवाई जहाजों पर एवं विमानों पर भी समाचार-विनिमय सभव कर दिया है। आज एक जहाज किसी जोखिम में पड़ा हो तो अपने स्थान का पूरा पता और जोखिम की पूरी सूचना उसके चारों ओर के जहाजों को पलक भाजने में दे सकता है। इस सुभीते ने जलयात्रा को अत्यन्त सुगम और सुरक्षित बना दिया है। लंडन में क्राइडन में उतरती बेर कुहरा होगा या नहीं, विमान को इस का पता बेतार द्वारा बराबर लगता रहता है। विमानों पर बैठे दूर-दूर उड़ते हुए मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय कर सकते हैं।

इस विधि से समाचार भेजनेवाला एक यंत्र (इंडक्शन कोइल) आवेश-वेठन है। इस में तांबे की दो घुंडियां रुद्ध मुठियों के सिरों पर इस तरह लगी रहती हैं कि जब धारा चलती होती है तब इन दोनों के अन्तरवकाश में से, एक से दूसरे की ओर चिनगारियों की एक धारा चटचट शब्द करती हुई बहने लगती है। इनमें से एक घुण्डी को धरती से सम्बद्ध कर देते हैं और दूसरी का सम्बन्ध एक सीधे लम्बे तार से कर देते हैं जो ऊँचे खंभे में लगा होता है और जिस का ऊपरी सिरा रुद्ध रहता है। जब चिनगारियां निकलती हैं तब बिजली इस तार के ऊपर-नीचे लहराने लगती है और फल यह होता है कि बिजली की लहरों के लच्छे निकलने लगते हैं जो दसों दिशाओं में चलने लगते हैं। भेजनेवाला चाहे तो इन लहरों के छोटे या बड़े लच्छे अपनी इच्छा के अनुसार भेजे। इसी के अनुसार संकेत निश्चित कर लिये जाते हैं। मार्स के संकेत जैसे तार में चलते हैं उसी तरह बेतार में भी काम आते हैं। समाचार को ग्रहण करने के लिये (कोहियरर) संकोचक से काम लेते हैं, जिस का एक सिरा धरती में और दूसरा हवाई तार से उसी तरह सम्बद्ध रहता है जैसे

भेजनेवाले यन्त्र का। जो बिजली की लहरे हवाई तार पर लगती हैं उस के भीतर कम्पन उत्पन्न करती हैं जिन का प्रभाव सकोचक पर पड़ता है। सकोचक से बाटरी का और बाटरी से तार-समाचार के से ही ग्राहक यन्त्र का सम्बन्ध रहता है। ग्राहक यन्त्र में उसी तरह समाचार ग्रहण किया जाता है जैसे तारवाले प्रबंध मे।

टेलीफोन, दूरश्रावक या तारवाणी दूर से बैठे-बैठे बाते करने का यन्त्र है। इस यन्त्र के दो भाग होते हैं, एक प्रेषक दूसरा ग्राहक, सुभीते के लिये दोनो ओर दोनों एक साथ लगे होते हैं। प्रेषक में मैक्रोफोन (सूक्ष्म श्रावक) रहता है जिस में दो विद्युत् पट रहते हैं। दोनों के बीच कर्बन के टुकड़े होते हैं। परदे में जो स्फुरण पैदा होता है वह कर्बन को भिन्न-भिन्न दबावों से स्पर्श करता है जिस से कि चक्र के वैद्युत बाधा में विविध परिवर्त्तन उत्पन्न होते हैं जिन के ज्यो-के-त्यो प्रभाव ग्राहक यन्त्र के चुम्बक-वेठन पर पड़ते हैं। चक्र के लिये बिजली की धारा किसी केंद्र-कार्य्यालय के डैनमो से ली जाती है। जो प्रभाव प्रेषक के पर्दे पर बोलने से कम्पन का पड़ता है, बिजली की धारा दूसरी ओर ग्राहक यन्त्र पर भी ठीक वैसा ही कम्पन उत्पन्न करनेवाला प्रभाव डालती है। इस मे ग्राहक यन्त्र से वैसे ही शब्द सुन पड़ते हैं जैसे बोले गये थे। जहाँ बहुत से घरों या कार्य्यालयों मे टेलीफोन लगे होते हैं वहा एक विनिमय-कार्य्यालय भी होता है। सभी लोगों के तार वहा आये हुए हैं सब के नम्बर लगे हुए हैं। वहा जिस नम्बर से जिस का सम्बन्ध करना होता है उन उनके तार जोड़ दिये जाते हैं। तब दोनों पक्षवाले बाते कर लेते हैं।

अब बहुत दूर-दूर से बैठे-बैठे बाते हो सकती हैं। कलकत्ता और बम्बई के बीच भी बाते कर सकते हैं। परन्तु खर्च तार की अपेक्षा अधिक लगता है।

जैसे विना तार के समाचार का आना-जाना होता है उसी तरह विना तार के बैठे-बैठे बातचीत भी हो सकती है। पहले तार के सहारे ही समुद्रपार से बात-चीत सभव थी। परन्तु अब तो तार के विना ही दक्षिण अमेरिका मे मौजूद राजकुमार से इगलैण्ड का राजा लडन से बातचीत कर सकता है।

बिजलीवाले कर्बन के लम्पों के बीच की ममार्ग और अनवरत बहती हुई बिजली की धारा के बीच कुछ ऐसी कारवाई पहले का जाती है कि लम्प की शिखा कर्बन की नोको के आगे-पीछे चलने लगती है। इस गति के कारण उसमे से शब्द निकलने लगता है। उस समय हवाई तार में उसके कारण बहुत द्रुत अनवरत बिजली की तरंगमालाएं पैदा हो जाती हैं। इन्हीं तरगमालाओं में मनुष्य की वाणी के जाने का मार्ग बन जाता है। आदमी जब टेलीफोन के प्रेषक मे बोलता है तब विविध तीव्रताओं की विद्युत्धारा चला देता है। यह धारा एक वेठन मे से होकर बहती है। अब जो तार कि कर्बनलम्पों को बड़ी शक्तिमती धारा देते हैं वह जिस वेठन से सम्बद्ध हैं उस के ऊपर पहले वेठन का प्रभाव पड़ता है। फल यह होता है कि बोलनेवाले के हर एक शब्द का शब्दवाले लम्पों के कम्पन पर विशिष्ट प्रभाव पडता है। प्रेषक के पास बिजली की धारा में जैसा परिवर्त्तन होता है ठीक-ठीक वही परिवर्त्तन ग्राहक यन्त्र की धारा में भी होता है। साधारणतया तारवाले टेलीफोन में

जो ग्राहक यत्र काम मे आता है वही इसमे भी काम मे आता है। परन्तु अब कर्बन लम्पो-वाली विधि बहुत काम मे नहीं आती। अब रेडियो की विधि ही बहुत बरती जाती है।

रेडियो सब से बड़ा चमत्कार है। आजकल सभ्य ससार भर मे "प्रचार" (ब्राड-कास्टिग) कार्य्य के लिये अन्ताराष्ट्रीय सघ बन गया है। इस से ससार के एक स्थान मे कोई अच्छा गवैया गाता है तो ससार भर मे उस के गाने का प्रचार हो जाता है।

अब कोई बड़ा आदमी व्याख्यान या सदेश देता है तो ससार सुन लेता है। अब वेतार के टेलीफोन के काम के लिये साधारण टेलीफोन की विधि बरती जाती है, केवल तार के द्वारा सम्बन्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। भेजनेवाले की ओर के स्थिर झोटे की लगातार लहरो की माला पहले रवाना होती है जिसे अक्रमोनगत तरगमाला कहते हैं। परन्तु इस में बड़े वेग के स्फुरण होते हैं ,इसलिये यह स्वय ग्राहक यत्र को प्रभा-वित नही करती। परन्तु भेजनेवाले चक्र के बीच मे टेलीफोन का एक प्रेषक यत्र लगाकर स्फुरणों को इसी मे से होकर बहाया जाता है और जब हम प्रेषक यत्र मे बोलते हैं तो जो स्फुरण हम भेजते हैं उस के बल को हम उसी तरह घटा-बढा सकते हैं जिस तरह साधारण तारवाले टेलीफोन के चक्र में चलनेवाली धारा के बल को घटा-बढा सकते हैं। जैसे तार में नियमित तरगमाला के चलते हुए स्वरों के उतार-चढ़ाव का उत्पन्न किया जाना सभव है, उसी तरह वेतार मे भी सभव हो जाता है। जो लहरे भेजी जाती हैं उन मे बोले जानेवाले शब्द से उतार-चढाव पैदा हो जाता है, लहरों का बल घट-बढ जाता है और इस तरह अनुकूल की हुई तरगमालाए इष्ट स्थान पर ग्राहक यत्र मे पहुँचती हैं और मानव कठानुरूप शब्द बनकर सुन पड़ती हैं। व्यवहार मे विशेष कठिनाई प्रेषक यत्र के बनाने में पड़ती है, क्योंकि साधारण तार टेलीफोन की धारा की अपेक्षा बेतारवाली धारा बहुत बड़ी होती है। इस से साधारण प्रेषक यत्र अत्यन्त गरम होकर व्यर्थ हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के कई उपाय हैं। एक यह है कि कई प्रेषक जोड़ दिये जाते हैं और पानी से ढके रखे जाते हैं।

प्रेषक और ग्राहक यत्र मुँह और कान के पास ही रखकर काम मे आते हैं। प्रेषक यत्र मे अब ऐसी उन्नति हुई है कि बोलनेवाला (लौड-स्पीकर) तारोच्चारक के सान्निध्य मे बोलता या गाता है। वही प्रेषक यत्र का काम करता है। प्रेषक यत्र से चली हुई नियमित और अनु-कूलीकृत तरग मालाए वेतार की विधि से चारों ओर जाती हैं और जिन-जिन स्टेशनों से स्वर मिला हुआ है उन-उन स्टेशनों के हवाई तारो के द्वारा ग्राहक यत्रों में शब्दानुरूप स्फुरण होता है। उन-उन रेडियो स्टेशनो पर भी तारोच्चारक की ही विधि के यत्रों के सहारे धीमे शब्दों को ऊचा कर दिया जाता है। इस विधि से किसी रेडियो स्टेशन पर इकट्ठे मनुष्य दूसरे साधारण दूरी के स्टेशन पर की किसी वक्तृता के शब्दों को स्पष्ट सुनते हैं अथवा सगीत का आनन्द उठाते हैं। कोई बारह तेरह बरसों से यही बात अत्यन्त दूर-दूर के स्थानो के बीच, धरती के एक छोर से दूसरे तक भी सभव हो गयी है।

संवत् १९७५ वि० के पहले रेडियो का यह चमत्कार संभव ही न था। बात यह है कि ज्यो-ज्यों दूरी बढती थी शब्द धीमा होता जाता था, और सुन नही पड़ता था क्योंकि

कम्पन का वेग दूरी से घटता जाता है। उस साल फारेस्ट नामक इजीनियर ने बिजली के लम्पों मे दोनों तारों के सिवाय उनसे अलग एक बारीक सी जाली और उसके बाद एक धातु के पत्र का धनोद इस ढग पर लगाया कि विद्युत्कण की धारा जाली से छनती हुई धनोद पर पड़े। इस प्रबन्ध मे यदि बिजली का कम्पन जाली पर पड़ता है तो धातु-पत्र-धनोद पर आकर उस का वेग आठ-दस गुना बढ जाता है। यह लम्प "वाल्व" या पट कहलाते हैं। इन के आविष्कार ने बिजली के सारे कामों को बहुत ही सरल कर दिया। प्रेषक और हवाई तार के बीच ऐसा लम्प एक लगा दे तो कम्पन यदि दस गुना बढे तो दो लगा देने से सौ गुना, तीन लगा देने से हजार गुना, चार से दस हजार और पाच से लाख गुना बढ जायगा। इस तरह बीच बीच मे इन लम्पों के लगा देने से बड़ी दूर-दूर तक शब्द का सुन पड़ना सभव हो गया। इसी तरह हवाई तार और ग्राहक यत्र के बीच ऐसे ही लम्प लगाने से सुनना भी सभव हो जाता है। अब तो सकोचक की जगह इस लम्प को ही काम मे लाते हैं। पहले बहुत दूर तक टेलीफोन नहीं लग सकते थे। अब कलकत्ता-बबई के बीच बातचीत इसी लम्प के सहारे सभव हो गयी है। इसी से और भी सुभीते आगे संभव हैं। अब तक दूरश्रवण अनवरत धारा से ही सभव था। इस के लिये अलग-अलग तारों की जरूरत थी। अब तो एक ही तार मे एक ही समय मे विविध कम्पनों की धाराए् प्रायः चल सकती हैं। इस सम्बन्ध में दिनों-दिन खोजों के द्वारा उन्नति हो रही है।

अब बिजली के द्वारा चित्र भेजने की विचित्र बात भी जानने योग्य है। प्रकाश के प्रभाव से सेलेनियम के पट पर वैद्युत बाधा में विविध परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। यदि अधेरी डिबिया मे सेलेनियम (शशिम्) रखकर उस मे से दो तार निकाले जायँ और इस डिबिया के बारीक छेद को किसी चित्र के सामने धीरे-धीरे चलावें तो उस की विद्युत-बाधा छाया और प्रकाश की कमी-बेशी के अनुसार घटती-बढती जायगी। इसे तार या बेतारवाली धारा के प्रेषक यंत्र से लगाकर चित्र भेज सकते हैं। ग्राहक यत्र मे एक विद्युतलम्प लगा रहता है जिसमें बाधा की कमी-बेशी के अनुसार प्रकाश मे भी कमी-बेशी होती रहती है। यह भी सब ओर से ढका रहता है। इस के सूक्ष्म छेद के सामने घूमनेवाले बेलन के सहारे अकग्राही पत्र बराबर चलता रहता है और चित्र बनता जाता है। तार और बेतार दोनों विधियों मे इसी तरह चित्र भेजे जाते हैं।

बिजली की तरगों का यह अद्भुत चमत्कार है। आगे बिना तार के सहारे चलनेवाली बिजली की लहरों से और भी काम सभव हो सकते हैं। भारतीय योगियों मे यह क... [illegible]ता है कि योगबल से वायुमडल मे स्थित परमाणुओं को अनुकूलता पूर्वक एकत्र कर के विविध इष्ट वस्तुओ की रचना की जा सकती है। तरगों के द्वारा चित्र-प्रेषण इसी प्रकार की क्रिया है। इस मे और भी उन्नति हो सकती है। कौन जाने कभी ऐसा भी सभव हो जाय कि आवश्यकता पड़ने पर किसी विशेष वस्तु का भी प्रेषण हो सके।

बेतार के तार का बल अभी जितना चाहिये उतना आजमाया नहीं जा सका है। यह बहुत सभव है कि भविष्य मे रोशनी हो, पखे चले, बड़े-बड़े कारखाने बेतार की विद्युत् धाराओं के बल से चलने लगें। रेलगाडिया चलें। मोटर गाड़िया चलें। हवाई जहाज

चले । निदान जहा कहीं शक्ति लगाने की आवश्यकता पड़े वहा बिना तार के बिजली की धारा से काम लिया जाने लगे ।

विक्रम की बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे दो महत्व के आविष्कारो का आरभ हुआ । एक तो विमान आदि वायुयान और दूसरे बेतार का तार । दोनो के विकास के साथ ही साथ पारस्परिक अटूट सम्बन्ध भी देखने मे आया । जैसे रेलगाड़ियो के सचालन मे विनिमय के साधन तारवाले तड़ित् समाचार भी साथ-ही-साथ आविष्कृत हुए और बड़े सहायक सिद्ध हुए उसी तरह हवाई यानों के साथ ही साथ बेतार का तड़ित् यत्र उन के लिये परम सहायक सिद्ध हुआ । जल के जहाजों के लिये भी बेतार के यत्र परम सहायक सिद्ध हो रहे हैं । निदान जल और स्थल और वायुमडल तीनो मे मनुष्य की विजय-पताका फहराने मे हवाई-वाले बेतार के यत्र ने दड का काम दिया है ।

उन्तीसवां अध्याय

शरीर पर विजय

१—भोजन की शक्ति

जन्म, व्याधि, जरा और मृत्यु इन चारों से कोई प्राणी बचा नहीं है। यह निश्चय है कि इन से मनुष्य को कष्ट होता है। इन से छुटकारा पाने के लिये मनुष्य अनादिकाल से विचार करता और उपाय सोचता आया है। हमारे देश के प्राचीन विद्वानों ने आयुर्वेद में व्याधियों के निवारण के उपाय बताये हैं और ऐसे-ऐसे रसायनों के प्रयोग दिये हैं जिनसे जरा और व्याधि दोनों के कष्ट दूर करने का दावा किया जाता है। फिर भी सफलता कहीं देखी नहीं जाती। योग-साधन के लिये कहा जाता है कि व्याधि जरा और मृत्यु तीनों से रक्षा करता है, परन्तु उस पर विचार करना यहा इष्ट नहीं है। आयुर्वेद में स्वास्थ्यरक्षा के अनेक उपाय बताये हैं जिन के व्यवहार में लाने से मनुष्य स्वस्थ और सुखी रह सकता है। वर्तमान प्रसग में हम उन वैज्ञानिक उपायो पर विचार करेंगे जो स्वास्थ्यकर हैं और जिन से मनुष्य रोगों से बचा रह सकता है।

विज्ञान की दृष्टि से स्वस्थ मनुष्य वह है जिस के शरीर की गरमी ९८.४° फ है, जिस के हृदय की गति नियमित है और उस से शब्द ठीक-ठीक आता है, जिस का रक्त शुद्ध है, जिस की शिराओं मे कोई बाहरी जीवाणु नहीं हैं, जिस की नाड़ी एक मिनिट में ७२ के लगभग चलती है और उस की गति भी नियमित और सुस्थ है, साथ-ही-साथ जिस का मस्तिष्क शुद्ध है और जो सुख से आहार-विहार, काम-काज करता है।

स्वस्थ मनुष्य भोजन नियम से करता है। जितना काम-काज करता है, खेलता या व्यायाम करता है सब मे शक्ति लगाता है। बल का व्यय करता है। यह बल आता है उस के भोजन से। यदि वह भोजन न करे तो निर्बल हो जायगा और काम-काज करने का सामर्थ्य उस मे न रह जायगा। यदि भोजन से मिल सकनेवाली शक्ति का हम अन्दाजा लगाना चाहें तो उस से मिलनेवाली गरमी की मात्रा से जान सकते हैं। यह बात हम अन्यत्र

बता आये हैं कि गरमी, गति, प्रकाश, शब्द, बिजली, चुम्बकत्व आदि प्रत्येक सामर्थ्य या बल के किसी न किसी रूप का नाम है जो एक दूसरे में परिणत हो सकते हैं। अतः भोजन में जो शक्ति मौजूद है वही शरीर मे जाकर विविध रूपों मे बदल जाती है और खानेवाले मनुष्य की विविध चेष्टाओ और कर्म्मो में दिखाई पड़ती है। मनुष्य का शरीर दिन-रात लगभग ९८.४° फ की आच देता रहता है और सास लेने का और रक्त उछालने का, भोजन के एक स्थान से दूसरे तक पहुँचाने का, रसों के बनाने का, एव मलों और विषो को बाहर निकालने का शरीर के भीतर काम का निरन्तर होता रहता है। मनुष्य के बाहरी काम जैसे चलना-फिरना, हाथ के काम करना, व्यायाम करना इत्यादि पहले बताये हुए दिन रात होनेवाले कामों की अपेक्षा बहुत थोड़े हैं। तो भी शरीर की गरमी के रूप मे निरन्तर बहुत सी शक्ति बिखरती रहती है।

वैज्ञानिक विधि से हर एक जल सकनेवाले पदार्थ से मिल सकनेवाली तापमात्रा कलारीमापक के द्वारा निकाली जा सकती है। इस तरह यह मालूम किया गया कि भोजन के किस पदार्थ से कितनी तापमात्रा निकलती है। एक साधारण जवान भारतीय जितना भोजन करता है उससे लगभग सवातीन हजार कलारी तापमात्रा निकलती है। एक कलारी तापमात्रा उतने सामर्थ्य के बराबर है जितने से चार-सौ-साढे-पचीस ग्राम का भार एक मीटर ऊंचा, अथवा नम्बरी सेर भर (८० तोले भर) भार बजाजे के बड़े गज भर ऊचा उठाया जा सकता है। परन्तु मनुष्य भोजन के द्वारा जितनी गरमी अपने शरीर मे ले जाता है, उतनी सारी मात्रा कभी खर्च नही करता। शरीर के भीतर जितने काम होते रहते हैं उन के लिये साढ़े अट्ठाईस सौ कलारी के लगभग तापमात्रा खर्च करता है। शेष मे से वह अधिक-से-अधिक पचमाश खर्च कर लेता है। इससे मासपेशियों और विविध अगो के हिलाने का काम लेता है। बाकी चार भाग तापमात्रा गरमी के रूप मे चारो ओर बिखर जाती है।

२—स्वाभाविक और अस्वाभाविक जीवन

जो जितना काम करता है उतना ही अधिक भोजन के पदार्थों को काम मे लाता है। जो लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं उन्हें अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। उन से भी अधिक कसरती पहलवानो को जरूरत पड़ती है। जो लोग दिमागी काम करते हैं उन्हे कम भोजन से ही काफी खूराक मिल जाती है। परन्तु न तो कसरती पहलवान का जीवन स्वाभाविक है और न मेज-कुरसी से लगे हुए दिमागी काम करनेवाले का। स्वाभाविक जीवन उसी मजूर और किसान का है जो खुले मैदान खेतों और बागो मे वह काम करता है जिस से उस के शरीर की सभी मासपेशिया खूब हिलती डोलती हैं, और अग-अग को पूरा और आवश्यक परिश्रम करना पड़ता है। लकड़ी काटने मे घन या फावड़ा चलाने मे, पानी खींचने मे, धरती खोदने में हल जोतने मे जो परिश्रम पड़ता है उस मे सभी अशो की पूरी कसरत हो जाती है और वह कसरत होती है काम की। इसलिये उसे इससे अधिक व्यायाम की कोई आवश्यकता नही पड़ती। साथ ही अन्न

उपजाने मे जितनी बाते उसे सोचनी पड़ती हैं, कृषिकला मे जितनी जानकारी चाहिये वह सब प्राप्त करने मे, उस के दिमाग को भी काफी कसरत मिल सकती है। मजूर भी किसी वस्तु की तैयारी मे जो कलाकौशल का काम करता है अपने मस्तिष्क से काम लेता है। हलवाहो और मजूरो के द्वारा खेती करनेवाले रईस आराम-तलब किसानों, और खानो और कारखानो के दूषित वायुमडल और अस्वाभाविक परिस्थिति मे काम करनेवाले मजूरो को हम स्वाभाविक किसानो और मजूरों मे नहीं गिनते।

शहरो का जीवन बिलकुल अस्वाभाविक है। पास-पास सटे मकान, हवा की गदगी, आरामतलबी का जीवन, सभी कुछ अस्वाभाविक है। इसीलिये शहरवालों को नित्य नियम से व्यायाम की जरूरत है। वह मोटा अन्न नहीं खाते इस से उन के पाचन-यन्त्रो मे भी निर्बलता आ जाती है। रोग फैलता है तो घनी बस्ती मे सब पर चढाई करता है। यही हाल गन्दे गावो का भी है। जहा गन्दगी है, फिर चाहे वह शहर की बस्ती हो या गॉव की, वहीं अस्वाभाविकता है। इसीलिये स्वाभाविक जीवनवाले मजूर और किसान जिन गावों मे रहने हैं उन की दशा भी आदर्श सफाई की होनी चाहिये।

अस्वाभाविक जीवनवाले लोग भोजन से प्राप्त होनेवाली गरमी को कम काम मे लाते है। फल यह होता है कि शरीर उतना भोजन ग्रहण नही करता जितना वह खाते हैं। इसी को अपच कहते हैं। गरमी को कम काम में लाने का यह भी अर्थ है कि भीतर की पूरी सफाई नही हो पाती। गहरी सास कम लेने से खून की सफाई कम होती है। श्रम न पड़ने से सारा पाचन-यत्र शिथिल सा रहा करता है। इसीलिये कभी कब्ज होता है और कभी दस्त आते हैं। मन्दाग्नि अर्थात् गरमी की कमी की शिकायत रहा करती है। रक्त के दूषित होने से सैकड़ो तरह के शारीरिक रोग हो जाते हैं। कुछ ऐसे भी अस्वाभाविक जीवन-वाले हैं जो भोजन की गरमी को सामान्यतर अधिक काम मे लाते हैं। पहलवान और अत्यधिक व्यायाम करनेवाले मात्रा और गुणों में अपरिमित भोजन भी करते है और अति व्यायाम से उसे पचाते हैं। इस विधि से उन की मासपेशिया खूब तय्यार और मजबूत हो जाती हैं परन्तु वह भीतरी शक्तियो से और अगो से अत्यधिक काम लेकर उन्हें थका डालते हैं। यह जीवन भी इसीलिए अस्वाभाविक है। मनुष्य का जीवन युक्त हो तभी स्वाभाविक कहला सकता है। आहार, विहार, चेष्टा, सोना, जागना, सभी अपनी हद के भीतर होना चाहिये। यही युक्त जीवन है। बाल्यावस्था से युक्त और स्वाभाविक जीवनवाला सयमी मनुष्य रोग और बुढापे का कष्ट न उठाकर सौ बरस तक जी सकता है, ऐसा भारतीय ऋषियों का भी विश्वास है।

३—भोजन की कौन सामग्री किस काम आती है ? विटामिन।

मनुष्य जितनी कुछ चीज़े खाता है रासायनिकों ने उन सब का विश्लेषण किया है और कुल छः प्रकार के पदार्थ पाये हैं, (१) जल (२) कई प्रकार के लवण, (३) प्रोटीड वा प्रत्यमिन, (४) चरबी और तेल अथवा चिकनाई या मेद, (५) शकर, मड आदि

गाय बैल
सुअर
घोड़ा
मुर्गा
मछली
बकरा
हिरन
खरगोश
खोल सहित अंडा
अंडे की सफेदी
अंडे की जरदी

प्रोटीन
वसा
शकराद्रि
लवण
जल

चित्र १७९—मांस और डिम्ब की सामग्री
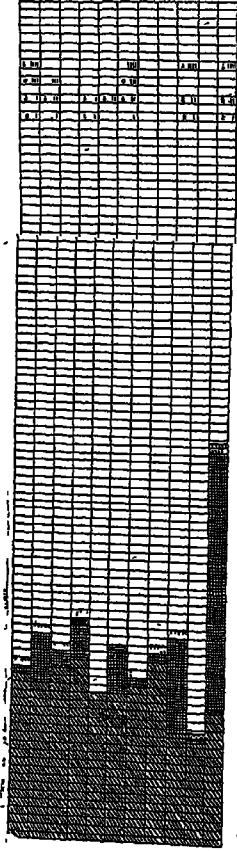
ऊपर के नक्शे से यह पता चल जायगा कि कुल मे कितने भाग प्रोटीन या प्रत्यामिन, कितने भाग वसा, कितने भाग शर्करा या कर्बोदेत, कितने भाग लवण और कितने भाग जल है। जलवाले सादे अंश में अंत मे विटामिन या खाद्योज के प्रकार और मात्रा का भी निर्देश है। बहुत बारीक अंकों मे १, २, ३, ४, आदि से खाद्योज ए, बी, सी, डी आदि की क्रमशः सूचना होती है। और ı, ıı, ııı, से प्रत्येक खाद्योज की मात्रा सूचित होती है। चित्र १८०, १८१, १८२, १८३ और १८४ मे भी पाठक इन्हीं संकेतो को प्रयुक्त समझे। चित्र मे संकेतों की व्याख्या दहनी ओर दी हुई है।

चित्र १८०—कुछ मेवों में भोजन-सामग्री [रा० गौ०

चित्र १८१—दूध और पायसों की भोजन-सामग्री [रा० गौ०
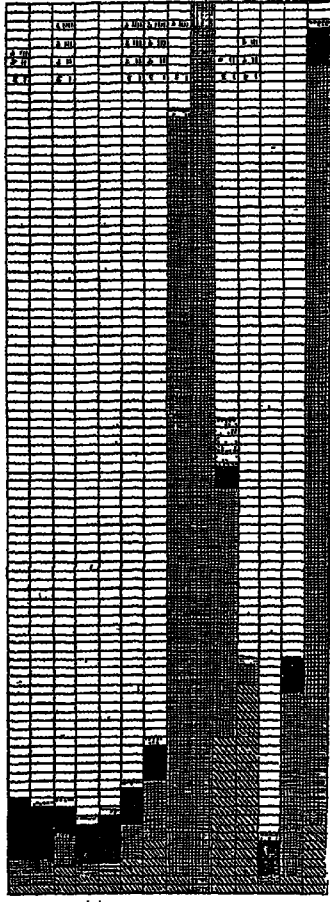
कर्बोदेत और (६) विटामिन नाम के सूक्ष्म अवयव। जैसे गेहूं मे अधिक अश कर्बोदेत और प्रत्यमिनो का है और थोड़े-थोड़े अश मे शेष चारो पदार्थ हैं। दालों मे प्रत्यमिन अधिक होते हैं। शेष थोड़े-थोड़े। जल तो सब मे होता ही है परतु भोजन के पदार्थों की तैयारी मे तो जल मिलाना भी जरूरी होता है। जल की जरूरत शरीर के एक-एक कण को है। फिर खाल फेफड़ों और वृक्कों से जो जल निकलता रहता है उस की कमी को पूरा करने के लिये भी जल की जरूरत होती है। शरीर के सभी अवयवो को अनेक तरह के नमक चाहिये। इन नमको में कमी आने से उन का कारबार बद हो जाता है। रक्त में तो खाने-वाले नमक का घोल ही है। प्रत्यमिनो के दो काम होते हैं। एक तो क्षीण अवयवो की मरम्मत या वृद्धि के काम मे आते हैं और अवयवों की रचना करते हैं, दूसरे बल और गरमी पैदा करने के लिये जलन के काम आते हैं। स्नेहों और कर्बोदेतों का भी यही काम है कि जलकर गरमी और बल उत्पन्न करे। विटामिनो की मात्रा इतनी सूक्ष्म होती है कि अब तक रासायनिक कई को अलगा कर अच्छी तरह विश्लिष्ट नही कर पाया है. परन्तु इन पदार्थों के बिना स्वास्थ्य रह नहीं सकता और वृद्धि हो नही सकती, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। यह सभी पदार्थ वनस्पति से मिलते हैं और वनस्पति मूर्तिमान सूर्य्य की शक्ति है। इसलिये एक तरह से यह कहना बिलकुल सच है कि भोजन द्वारा हम सौर शक्ति को शरीर के भीतर ले जाते हैं और शारीरिक बल और चेष्टा में उसे परिणत कर देते हैं।

खोज से यह बात बराबर जानी जा रही है कि किन-किन वस्तुओं में किन-किन प्रकारो के विटामिन हैं और कैसी कैसी अवस्था में बने रहते हैं। किन अवस्थाओ मे नष्ट हो जाते हैं और उनके अभाव से क्या-क्या और कैसे-कैसे भयानक परिणाम होते हैं। बहुत बासी भोजन करने से जहाज़ पर महीनों की यात्रा करनेवालों को खाज हो जाया करती थी। पता चला कि विटामिनों के अभाव से यह रोग फैलता है। भारत मे जब पहले-पहल धान कूटनेवाले इजन चले तो वह चावल का ऐसा पालिश कर देते थे कि ऊपर के अश मे रहनेवाले विटामिन नष्ट हो जाते थे। इन चावलो को खाकर लोग बीमार पड़ने लगे। इस मे टागें फूल आती हैं या एक प्रकार का सन्यास रोग हो जाता है और लोग इस वेरी वेरी कहलाने वाले रोग मे मर जाते हैं। सुनते हैं कि अब इन मशीनो में परिवर्तन कर दिया गया। यह दूसरे प्रकार के विटामिन थे। तीसरे प्रकार के विटामिन घी चरबी आदि में मिलते हैं। सब से अधिक काड मछली के यकृत से निकाले हुए तेल मे काडलीवर ओइल में पाये जाते हैं। भोजन मे इन के रहने से हड्डियों की बाढ ठीक होती है और ढाचा ठीक बनता है। कई प्रकार के स्वच्छ ताजे भोज्य पदार्थ जो साधारणतया खाकर मनुष्य रहता है ऊपर बताये गये छःहों प्रकार के पदार्थों के मिश्रण होते हैं। इनमे चारों प्रकार के विटामिन होते हैं। तो भी कभी-कभी मनुष्य भूल से इस मिश्रण में किसी-न-किसी प्रकार के विटामिन की कमी कर देता है और बीमार पड़ जाता है। इस लिए भोजन के पदार्थों की जाच करते रहना चाहिए। चौथे प्रकार के विटामिन कच्चे दूध मे मौजूद हैं। परन्तु उबालने से नष्ट हो जाते हैं। कच्चे दूध में रोगाणुओं का डर रहता है। ६६° श तक गरमाने से विटामिन नष्ट नहीं होते और रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। मक्खन

चित्र १८२—कुछ अन्नों की भोजन-सामग्री
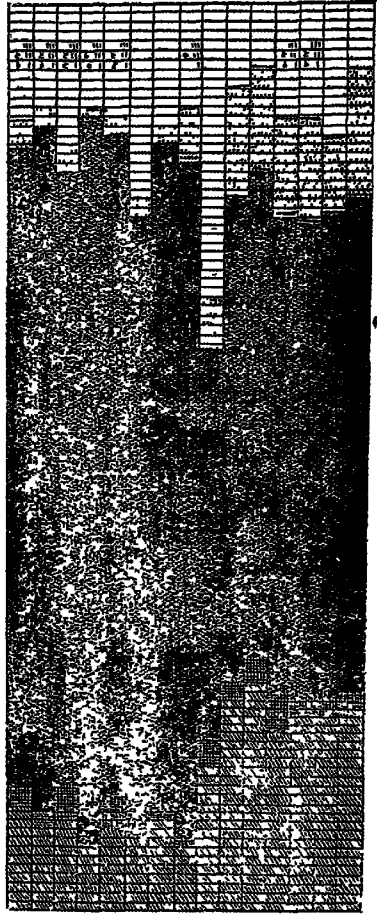
[रा० गौ०

घी मे भी वही विटामिन हैं। फलों और बीजों के छिलके और गूदे के बीच के अश विटामिन से भरे होते हैं। धूप मे पके फल और तरकारियों मे विटामिन सुरक्षित रहते हैं। भोजनो मे विटामिन न हो तो कितनी ही मात्रा मे खाये जायँ, उनसे कितनी ही गरमी और शक्ति पैदा हो सकती हो, उनमे कितना ही घी, कर्बोदेत और प्रत्यमिन मौजूद हो, स्वास्थ्य-रक्षा नही कर सकते।

भोजन की एक सबसे महत्व की सामग्री है जिस के बिना विटामिन भी अपना पूरा प्रभाव नही डाल सकते। यह सामग्री है स्वाद का सुख। भोजन स्वादिष्ट तो होना ही चाहिए। उसमें सुगन्ध का होना भी आवश्यक है। वह सुगन्ध कृत्रिम न हो, भोजन का स्वाभाविक सुगन्ध हो। उग्र न हो, बहुत ही मृदु मधुर हो। ऐसा हो कि दूर से घ्राण होते ही मुँह मे पानी भर आये, आमाशय मे उसकी भीतो से रस टपकने लगे या कम-से-कम आर्द्रता बढ जाय। यह अत्यन्त आवश्यक है। जब हम उस के ग्रास को मुँह मे डाले तो उस के स्वाद से मन प्रसन्न हो जाय। भोजन प्रसन्न मन से ही होना चाहिये और एक-एक ग्रास का पूरा आनन्द लेना चाहिये। इस आनन्द मे किसी तरह की बाधा न होनी चाहिये, बल्कि सभी इद्रिया और मन एकत्र होकर इस आनन्द को पूर्ण करने मे लग जायँ। आखों के सामने जो दृश्य हो स्वच्छता और रमणीयता का हो, परिस्थिति उस आनन्द के सर्वथा अनुकूल हो। कानों को प्रिय और मधुर शब्द या सगीत सुनने मे आ रहे हो। हर ग्रास को उस के स्वाद का आनन्द लेने के लिये अच्छी तरह देर तक चबाते और लाला से लपेटते हुए मुँह मे रखना चाहिये क्योंकि पचाने की क्रिया यही शुरू होती है। यह प्रसन्नता और स्वाद का आनन्द मानसिक सामग्री है और अत्यन्त आवश्यक सामग्री है जिस के बिना यथोचित रीति से न तो पाचन हो सकता है और न भोजन शरीर मे "लग" सकता है। प्रसन्नता और आनन्द से भोजन के अवयव ठीक-ठीक स्थानो मे पहुंचते हैं और नाड़ीमडल की क्रियाए यथावत् होती हैं।

कितने मनुष्य कम खाते हैं, बहुत से अधिक खा जाते हैं। परतु भोजन जरूरत भर ही करना चाहिये। कम करने से आमाशय भर नही पाता इस से उस की गति अच्छी नही होती और जठर रसो से पूरा मिश्रण नहीं हो पाता। अधिक करने से भोजन के लिये पर्याप्त रस नही मिलता, पेट के यत्र को प्रमाण से अधिक काम मिलता है। दोनों दशाओ मे अपच हो जाता है।

४—आयाम

शुद्ध स्वच्छ वायु और प्रकाश, अनुकूल परिस्थिति मे आनन्दपूर्वक सुख से सुगन्धित और स्वादिष्ट भोजन एव खेतो मे और बागों मे कृषिकलाभिज्ञता के साथ श्रम-पूर्वक काम तथा साधारण निश्चिन्त रखनेवाले मनबहलाव मनुष्य के शरीर को शुद्ध स्वच्छ और स्वस्थ रखने के साधन हैं। ऐसे मनुष्य को दड-बैठक आदि व्यायाम करने की जरूरत नही है। शहर के मनुष्यो को खेतो और बागो मे मेहनत करने का मौका नही
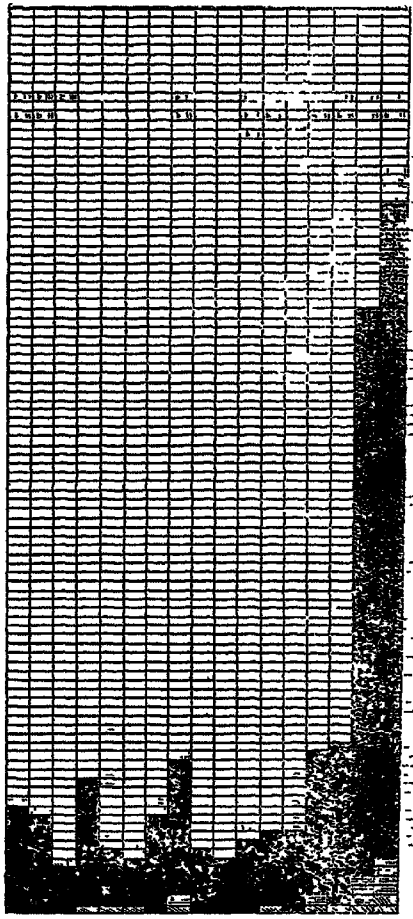
चित्र १८३—कुछ फलों की भोजन सामग्री
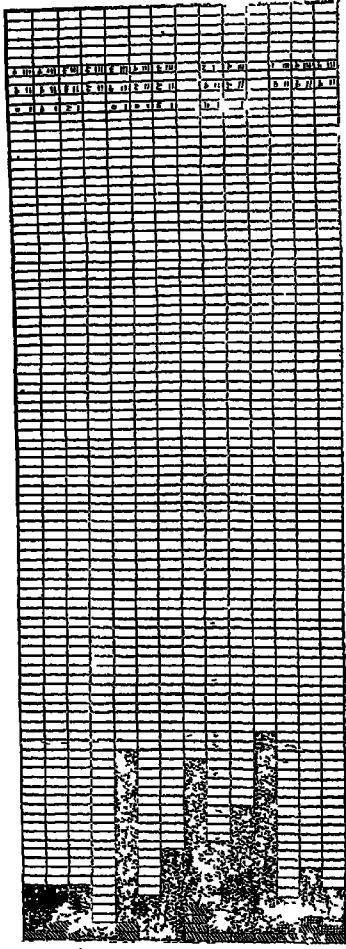
करमकल्ला
फूलगोभी
टोमाटो
खीरा
आलू
शलजम
गाजर
हरीमटर
प्याज
मूली
केला
बैंगन
भिंडी
मीठा कद्दू

चित्र १८४—कुछ तरकारियों की भोजन-सामग्री [रा० गो०

मिलता इसलिये उन्हें नित्य नियम से कुछ व्यायाम करने चाहिये। अत्यधिक व्यायाम अनुचित और अस्वाभाविक है। व्यायाम वहीं तक उचित है जहा तक उस से थकान न पैदा हो और अधिक मेहनत करने की ओर अरुचि न उत्पन्न हो। खेल, कूद, कबड्डी, फुटवाल, हाकी, क्रिकेट, दौड़ तैरना, घुड़सवारी, टहलना आदि अच्छे व्यायाम हैं जिनसे मासपेशियो और सभी अगों को काम भी मिलता है और चित्त मे उत्साह और आनन्द भी रहता है। व्यायाम करने की जगह खुला मैदान है जहा बराबर ताजी हवा मिलती हो और सास से दूषित वायु बदलती जाती हो। बद जगह मे दड-बैठक करने से मासपेशिया अवश्य ही विकसित और दृढ होती हैं, परन्तु ताजी हवा नहीं मिलती। मैदान मे व्यायाम करने से शुद्ध वायु भीतर जाती और मैली वायु सास से बाहर निकलती है। इस क्रिया से रक्त का शोधन होता है। बन्द जगह मे व्यायाम से रक्त शुद्धि नहीं हो पाती। व्यायाम की सिद्धि खुले मैदान मे ही होती है। रक्त शुद्धि के साथ-ही-साथ शरीर के भीतर की सभी क्रियाए उत्तेजित हो जाती हैं, मनुष्य मे काम करने का अधिक उत्साह हो जाता है, अधिक शक्ति आ जाती है, पाचन ठीक रहता है, रक्त का सचार उचित रीति पर होने लगता है। निदान शरीर के सारे कल-पुरजे आसानी से चलने लगते हैं, मानो सब मे तेल लग गया है और सभी ठिकाने-ठिकाने हो गये हैं।

व्यायाम करने मे मनुष्य को लाचार होकर गहरी सास जल्दी-जल्दी लेनी पड़ती है। गहरी सास लेने से रक्त शुद्धि सहज मे होती है। प्राच्य योग्यसाधन की विधियों मे प्राणायाम को बड़ा महत्त्व दिया गया है। मोटी रीति से इस की विधि यह है कि सीधे पद्मासन बैठकर पहले सास धीरे-धीरे खींचे, फिर रोक रखे और फिर धीरे-धीरे निकाल बाहर करे। खींचने मे जितना समय लगे उसका दूना रोकने मे और चौगुना निकाल बाहर करने मे लगना चाहिये। लिंडलार का मत है कि रोकने की कोई आवश्यकता नही। स्वास्थ्य के लिये केवल चढाना-उतारना काफी है। प्रत्येक व्यायाम मे यदि इस तरह प्राणायाम की विधि बरती जाय तो सारे शरीर का बहुत उत्तम व्यायाम हो जाता है। आजकल व्यायामों के विशेषज्ञ साथ-ही-साथ प्राणायाम पर भी बड़ा जोर देते हैं और उचित जोर देते हैं। सडाउ और मूलर की विधियों मे भी गहरी सास का बड़ा महत्व है। इन विधियों से मनुष्य अपने शरीर को मनचाहे रूप में विकसित कर लेता है। इन सब के सिवा तरह-तरह की कसरते और खेल हैं जिनमे व्यायाम-कला के अद्भुत चमत्कार देखे जाते हैं। हठयोगियो के आसनो मे तो बड़ी विचित्रता पायी जाती है। जान पड़ता है कि व्यायामी के शरीर मे हड्डिया हैं ही नहीं। सरकसों मे व्यायामियों के अद्भुत खेल देखे गये हैं। इन सब से यह स्पष्ट है कि मनुष्य अभ्यास से अपने शरीर को सब तरह से अपने बस मे कर सकता है।

मन शरीर का ही अश है। तो भी इस को वश मे करने का विशेष अभ्यास आवश्यक है। इस के लिये लोग मन. सयम का साधन करते हैं। मन बड़ा ही चचल है। विषयभोगवाले पदार्थों पर दौडता रहता है। थोड़ी सी प्रतिकूल बात पर बिगड़ बैठता है और क्रोध के वश

हो जाता है। पराया धन देखकर लालच करने लगता है। सुदर रूप देखकर मुग्ध हो कामवश हो जाता है। इन सब बातो से मन को रोककर काबू मे रखने का अभ्यास भी मनुष्य करता है। अच्छे-अच्छे अभ्यासी इस बात मे भी सफल होते हैं। मन पर जो विजयी होता है वह आधे ससार पर विजयी हो जाता है। मनुष्यो ने इस तरह अपने आपे पर भी अभ्यास के द्वारा विजय पायी है। इस तरह के अभ्यास को मानसायाम कह सकते हैं। व्यायाम, प्राणायाम और मानसायाम थोड़ा-थोड़ा करके प्रत्येक मनुष्य अपने स्वास्थ्य को ठीक अवस्था मे रख सकता है।

५—शरीर का ताप और कपड़े

भोजन से जितनी शक्ति और गरमी मनुष्य को मिलती है उस का सौ मे अस्सी भाग गरमी के रूप मे निकलता रहता है। स्वस्थ शरीर निरन्तर ९८.४° फ तापक्रम पर गरम रहता है। इस का अर्थ यह है कि शरीर निरन्तर इतनी आच बाहर फेकता रहता है। अब जितना ही परिश्रम हम अपनी मासपेशियों से लेते हैं उतनी ही अधिक गरमी भी पैदा होती है और उस गरमी का बाहर निकल जाना भी जरूरी है। अगर ऐसा न हो तो शरीर का तापक्रम बढ़ जायगा। मान लो कि २०० कलारी शारीरिक बल लगा, तो ८०० कलारी आच बढेगी और अगर यह आच बाहर न निकल जाय,—फिर वह चाहे पसीने को भाफ बनाने मे खर्च होकर निकले या आच के रूप मे ही बिखर जाय,—तो भयानक ज्वर के रूप में शरीर की गरमी बढी हुई दिखाई पडे। सार यह कि शरीर-बल जितना ही लगता है उतनी ही गरमी बढती है और खर्च होती है। इसीलिए परिश्रम करने से पसीना होता है। जितनी ही अधिक मेहनत करे उतना ही अधिक पसीना होता है। परिश्रम से तापक्रम या गरमी में जो वृद्धि होती है वह आच होकर जब काफी बिखर नही पाती तब खाल मे नमी आती है कि वह अपने उड़ने मे फालतू गरमी को खर्च करे। परन्तु यदि बाहरी वायुमडल भी उतना ही या अधिक गरम हो और नम हो और हवा थमी हुई हो तो शरीर की आच न तो बाहर निकल पायेगी और न पसीना ही उड़ पायेगा। बरसात में ऐसी ऊमस की दशा का हमारे देश मे सब को अनुभव है। लू चलनेवाली तेज गरमियो मे हमे वह कष्ट नहीं होता जो ऊमस में होता है, क्योंकि लू मे पसीना उड़ता रहता है और ठढक आती रहती है। ऊमस में पसीना नही सूखता और आच भी निकल नही पाती। जब ऐसी ऊमस की बाहरी दशा होती है तब प्रकृति भीतर से बल का काम बन्द कर देती है। आदमी शिथिल हो जाता है। उस से कोई काम किया नही जाता। उस की भूख मारी जाती है। और यदि वह ऐसे समय मे जबरदस्ती मेहनत करता है तो उसे गरमी लग जाती है और बीमार पड़ जाता है। जैसे बाहरी ऊमस से तकलीफ होती है उसी तरह कपड़ों के भीतर या कमरे के भीतर की ऊमस से भी कष्ट होता है। आदमी कपड़े ज्यादा पहनता है तो उस के चमड़े और कपड़े के बीच का वायुमडल, स्थिर गरम और नम हो जाता है। तब भी काम बन्द हो जाता है। भूख रुक जाती है। शिथिलता आ जाती है। कमरे के बन्द रहने से भी यही

बढती ही गयी तो विष अधिक पैदा होता है जो प्रतिविष के द्वारा उदासीन होने पर भी अपना घातक परिणाम उत्पन्न करने को बच जाता है। आलपीन के चुभने से जो घाव हुआ उससे सारा रक्त विषाक्त हो गया और मनुष्य चल बसा।

शरीर बाहरी रोगाणुओं के उँडेले हुए विष का मुकाबला करने के लिये प्रतिविष भी बनाता है। प्रतिविष विविधि प्रकार के होते हैं। कुछ तो विष ही है जो बाहरी विष को मारते हैं। लाइसिन और अग्लुटिनिन जाति के प्रतिविष सीधे रोगाणुओ को ही मार डालते हैं। आप्सोनिन जाति के पदार्थ चटनी की तरह होते हैं जिन के सहारे श्वेताणुओ को रोगाणुओ के चट कर जाने में सुभीता होता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रोग के एक आक्रमण से शरीर उसका मुकाबला करने को अभ्यस्त हो जाता है और जब कभी दूसरी चढाई होती है तो आरभ मे ही शरीर उस रोग को नष्ट कर देता है। यह स्वभाव स्थायी रूप से विशेष रोगों से शरीर की रक्षा करता रहता है। यह ठीक पता नही चला है कि इस अभ्यास मे क्या क्रिया होती है अथवा इस का रहस्य क्या है। इतना तो मालूम है कि रोगाणुओ को मारने के लिये शरीर प्रतिविष बनाता है। परन्तु यह प्रतिविष बनाता है देर मे, और चढाई करनेवाले रोगाणु अपना काम आन-की-आन मे पूरा कर लेते हैं। वैज्ञानिकों ने इस पर यह विचार किया है कि क्या यह प्रतिविष पहले से शरीर के भीतर नही बन सकता, अथवा बाहर ही बनाकर आवश्यकता पड़ने पर काम मे नही लाया जा सकता। शरीर के भीतर प्रतिविष बनाने की विधि तो हमारे देश में शीतला के टीका के रूप मे अनादिकाल से बरती जाती रही है। शीतला के विस्फोटक से मवाद लेकर टीका लगाते थे। डाक्टर जेनर ने गोस्तन से मवाद लेकर टीका लगाने की विधि तो कोई सवा सौ बरस से ऊपर हुए निकाली है। प्लेग आदि के टीके हमारी पुरानी विधि के उदाहरण हैं। आन्त्रज्वार से रक्षा के लिये गरमी से मारे हुए रोगाणुओं से ही टीका लगाते हैं। इस तरह विष की परिमित मात्रा शरीर में पहुँचायी जाती है, क्योंकि विष को बढानेवाले रोगाणु तो मारे गये होते हैं। इस विधि से कुछ वर्षों के लिये ही रक्षा होती है। शरीर से बाहर प्रयोगशाला मे भी प्रतिविषो के निर्म्माण की चेष्टा होती परन्तु लाचारी यह है कि जो प्रतिविष शरीर के भीतर बनते हैं उन की रासायनिक रचना अभी तक समझ में नहीं आयी है। इसीलिये अभी तक यही उद्योग हुआ है कि विष जानवरो के शरीर मे ही पहुँचाकर प्रतिविष बनाये जायँ और उन से लेकर सुई पिचकारी द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुँचाये जायँ। अभी तक जितने प्रतिविष इस तरह बने हैं उन मे सब से अच्छा उदाहरण वलयरोग का प्रतिविष है। यह रोगी को किसी तरह की हानि नहीं पहुँचाता और रोगाणुओं को मारता भी है। कई ऐसे प्रतिविष भी हैं जो रोगाणु और उन के विष दोनो के मारक होते हैं। निदान अनेक रोगों को सह जाने के लिये स्वाभाविक और कृत्रिम दोनो तरह के उपाय मनुष्य जानता है। वह बराबर और सभी रोगों को सह सकने के उपायो की खोज मे रहता है। जब ससार मे रोगाणुओं को और मनुष्यो को दोनों को रहना ही है तब सहिष्णुता के सिवा आत्मरक्षा का और कोई समुचित उपाय हो भी नहीं सकता।

८—बुढ़ापे से छुटकारा

हम अन्यत्र प्रणाली-विहीन ग्रंथियों की चर्चा कर आये हैं। यह ग्रंथिया हारमोन नाम के सूक्ष्म पदार्थों की रचना करके सीधे रक्त में उँडेलती रहती हैं। इन में से अनेक हारमोन ऐसे भी हैं जिन का शरीर की बाढ पर, उस की चेष्टा की गतिविधि पर और उस के अंग-अंग की पारस्परिक सहकारिता पर, बड़े महत्त्व का प्रभाव पड़ता है। इन ग्रंथियों में से कोई अगर अपने काम मे शिथिलता करे या रुकावट डाल दे तो बड़े कष्ट की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। सारे शरीर की रासायनिक प्रक्रिया गड़बड़ा जाती है। स्वास्थ्य चौपट हो जाता है। कभी-कभी जानवरों की ग्रंथियों से बने हारमोनों के व्यवहार से इस तरह के उपद्रव की शांति हो जाती है। ग्रंथियों की क्रिया मे गड़बड़ होने से भी इस तरह के अनेक रोग हो जाते हैं। चुल्लिग्रंथि जो कौवे के पास होती है एक तरह से जीवन की कुञ्जी कहला सकती है। इस में कमी हो तो शरीर की आग धीमी हो जाती है और ऐसा रोग हो जाता है जिस से विजातीय द्रव्यों से विविध अंग बेढंगी रीति से फूल आते हैं और शारीरिक और मानसिक सारी क्रियाएं शिथिल पड़ जाती हैं। यदि इस मे बेशी हो तो भूख के बढे हुए होने पर भी शरीर-क्षय होता जाता है, नाड़ी का वेग बढा रहता है और वातविकार बढा हुआ रहता है। चुल्लिग्रंथि की कमी और बेशी दोनों से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और बुढापा जल्दी आ जाता है। जननेन्द्रियों का ही भाग है अन्तराल-तन्तु। यह भी ग्रन्थि की ही तरह काम करता है और एक प्रकार का स्राव बनाता है जो स्त्रियों मे स्त्री के और पुरुषों मे पुरुष के अनुकूल सभी विशिष्ट अंगों की बाढ पर अपना प्रभाव डालता है, मस्तिष्क को उत्तेजना देता है, मन को उभारता है और दाम्पत्य भाव को चेष्टित करता है। वीना के एक वैज्ञानिक स्टैनाख ने कुछ बूढे होते हुए चूहों की परीक्षा करके देखा है कि अंतराल-तंतु पर शल्य क्रिया करके उसे उत्तेजित करने से अथवा उन के शरीर में जवान चूहों की जननेन्द्रिय लगा देने से वह फिर से जवान हो गये। उसने यह देखकर शरीर की और प्रणालीहीन ग्रंथियों को उत्तेजित किया। इस तरह क्षीण होता हुआ मस्तिष्क और मुरझायी हुई मानसिक शक्तिया और सारा शरीर फिर से जवानी के लक्षण दिखाने लगे। इतना ही नहीं। चूहों की आयु सैकड़ा पीछे चालीस के लगभग बढ गयी। अभी हाल मे एक वैज्ञानिक ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आल्फा बीटा और गामा (अ, ब और ग) किरणों के द्वारा छीजते हुए परमाणुओं को फिर से नया किया जा सकता है और इस प्रकार बुढापा और मृत्यु को बहुत काल तक टाल दिया जा सकता है। इस तरह के और भी उद्योग हो रहे हैं। इन प्रयोगों की अभी पर्य्याप्त परीक्षा नहीं हुई है। जब तक बहुत काल तक बहुत से मनुष्यों पर इस तरह की परीक्षाएं न हो जायँ तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य बुढापे पर विजय पा सका है। परन्तु संयमी लोग विशेषतया जो योग-साधन मे सफल समझे गये हैं अपनी जवानी और जीवन दोनों को बहुत काल तक सुरक्षित रखने में समर्थ देखे गये हैं। यह कहना कठिन है कि कौन से विशेष साधन मे यह क्षमता है परन्तु संभव है कि संयमी जीवन ही इन ग्रंथियों को बहुत काल तक कार्य्यक्षम रखने में समर्थ हो। यही स्वाभाविक भी है।

९—वातसंस्थान का स्वास्थ्य

मनुष्य का शारीरिक बल अक्षुण्ण रहना ही स्वास्थ्य का लक्षण नहीं है। उस बल का स्वस्थ मन के आदेश से उपयुक्त रीति पर काम करते रहना स्वास्थ्य के लक्षणों के अन्तर्गत है। शरीर में अपरिमित बल मौजूद हो परन्तु नाड़ीमंडल में कुछ ऐसा गड़-बड़ पड़ गया हो कि सहकारिता न हो सके तो कोई काम न हो सकेगा। शराबी के पाँव इसलिये लड़-खड़ाते हैं कि उस के पावों के नाड़ीमंडल में सहकारिता कुछ ही घट गयी है। मासपेशियों का का हिलना-डोलना भी नड़ीमडल पर निर्भर है। सच पूछो तो वास्तविक बल तो नाड़ियो में ही है। यदि केवल शरीर भर की नाड़ी का ही ढाचा हो और उसे किसी प्रकार भोजन और ओप्रजन दिया जा सके तो उस के मनुष्य प्राणी हो जाने में कोई कसर नहीं रह जाती। तात्पर्य्य यह कि नाड़ीमंडल के सिवा मानव शरीर का शेष ढाचा केवल अन्न और प्राण-वायु को उस में पहुंचाने के लिये है। कुछ अश सम्पूर्ण ढाचे की रक्षा के लिये भी है। अत: स्वस्थ शरीर में स्वस्थ नाड़ी-संस्थान का होना अनिवार्य्य है। परन्तु नाड़ी-संस्थान तभी स्वस्थ रह सकता है जब शरीर स्वस्थ हो। नाड़ीमंडल का इस तरह शरीर के साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इतनी बात अवश्य है कि शरीर को पोषण चाहे न भी मिले तब भी अन्त तक नाड़ीमडल जवाब नहीं देता। शरीर के रोगी होने का प्रभाव नाड़ीमडल पर अन्तिम दशा में ही पड़ता है। तभी बेसुधी और बकझक की नौबत आती है। मकस्वीनी और जितेन्द्रनाथ-दास ने अन्न छोड़कर शरीर छोड़ा परन्तु अंत तक इन दोनों के होशहवास बिलकुल दुरुस्त रहे, क्योंकि इनके शरीर नीरोग थे, नाड़ीमडल वा वातसंस्थान क्यों रोगी होता।

वातसस्थान का प्रधान केन्द्र मस्तिष्क है और मस्तिष्क का स्वास्थ्य केवल अन्न जल और वायु पर निर्भर नहीं है। उस का स्वास्थ्य बहुत कुछ शिक्षा पर भी निर्भर है। सद्विचार भी उस की स्वस्थता के लिये आवश्यक हैं। किसी पुस्तक की एक पंक्ति उसे कई दिनो तक उलझाये रख सकती हैं। तार-समाचार के चार शब्दों से हजारों कलारी ताप और बल शरीर से निकलकर काम करने लगते हैं। उस की सहयोग-शक्ति, निर्देश-शक्ति, मौलिकता, आमोद-प्रमोद की शक्ति और दूसरों को सुखी करने की क्षमता, शिक्षा के बल से हजार-गुनी बढ़ सकती है। तन की तरह मन को भी व्यायाम चाहिये. आराम चाहिये, उपयुक्त भाव और विचार रूपी भोजन चाहिये।

जब थकान का ख्याल नहीं किया जाता और शरीर काम में लगातार जुता रहता है अथवा जब नाड़ीमंडल निर्बल होता है जिस से बाहरी उत्तेजना का उत्तर उस की नाड़िया सहज में और उपयुक्त रीति पर नहीं देतीं तब वातसंस्थान भी रोगी हो जाता है। इन्हीं अवस्थाओं से मिली-जुली अवस्था योषापस्मार मूर्च्छा उन्माद आदि की है। नाड़ीमडल जन्म से जैसा होता है उसी के अनुसार मनुष्य को वातजनित रोग भी प्रायः हुआ करते हैं। तो भी संकल्प शक्ति के अभ्यास से, उस की ठीक शिक्षा से, और स्वास्थ्य के नियमो के पालन से नाड़ीमडल सुधर सकता है।

रोग और बुढापा नाडीमडल के प्रधान दोष हैं। यदि नाडीमडल रोग और बुढापे से बचा रहे तो मनुष्य न तो रोगी हो न बूढा। यह दोनों बाते प्राप्त करने मे मनोविज्ञान की अभिनव रीतिया लगी हुई हैं जिन का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है।

१०—सर्वतोभद्र विकास

मनुष्य का शरीर दार्शनिक दृष्टि से पाच भूत, पाच ज्ञानेद्रिया, पाच कर्मेन्द्रिया, मन बुद्धि, चित्त, अहकार यह चार भीतरी इद्रियाँ, और जीवात्मा, इन बीस तत्त्वो का बना हुआ है। शरीर विज्ञान, व्यवच्छेद, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण और परान्वेषण द्वारा मनुष्य ने इन सब तत्त्वो का अध्ययन किया है और योगसाधन द्वारा इन को अपने वश मे किया है। जिन दुर्गम स्थानों मे कर्मेद्रियो की पहुच न थी, जिन कर्मों के करने मे उन की क्षमता न थी, जो साधारणतया असभव प्रतीत होते हैं, उन्हें सभव करने के लिये उसने यत्र विद्या के बल से नाना प्रकार के यत्र बनाये और शारीरिक शक्तियों के बदले प्रकृति के शक्ति समुद्र मे शक्ति ले लेकर उन्हे मनचाही रीति पर चलाया और चला रहा है। इस मे उसने भौतिक विज्ञान, यत्र-विज्ञान रसायन-विज्ञान, गणित-विज्ञान, आदि से काम लिया। इन विज्ञानो का उसने सैद्धानिक और व्यावहारिक परिशीलन किया। ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति बढाने और ज्ञान के विकास के लिये उसने अनेक उपयुक्त यत्र और उपकरण बनाये जिन मे उस ने फिर उन्ही विज्ञानो की जानकारी से काम लिया और उन्ही के सहारे उन्ही की जानकारी का अधिकाधिक विकास किया। उसने भौतिक और रसायन विज्ञानो के द्वारा पाचो महाभूतो का भी पूरा परिशीलन किया, और व्यावहारिक विज्ञान मे उनके गुणो की जानकारी के बल मे एक तरह से पाचो महाभूतो को अपने वशीभूत कर लिया है। उस ने अन्त.करण के परिशीलन से ही मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण पर विचार किये और इन दोनो विज्ञानो का विकास किया। उसने परान्वेषण द्वारा मरणोत्तर अवस्था का पता लगाया और मनस्तत्त्व की भीतरी तहों तक गोता लगा कर उसने खोज की, उसने समुद्र की तह मे तत्त्व की तलाश की आकाश मे उड़कर अनन्त की अजेय और अगम सीमाओं को पार करने की कोशिश की, भूगर्भ का पता लगाया, अपने ब्रह्माड का अनुशीलन किया और अनन्त विश्वो के दर्शन किये। देश काल और वस्तु को उस ने अपने हाथो मे लेकर मानो हिला-डुलाकर उलट पलटकर देखा। उसकी जाच अभी पूरी नहीं हुई। वल्कि सच पूछो तो अभी शुरु हुई है। प्रकृति के रहस्य की तहें अब उस के सामने खुलनी शुरू हुई हैं। प्रकृति के तत्व कितनी गहराई रखते हैं, उनका कितना विस्तार है यह जानना तो अभी दूर की बात है। अभी तो उसे अणुवीक्षण-शक्ति को इतना बढाना है कि वह सूक्ष्म विद्युत्कणो की भी धज्जिया उडा सके और टुकड़ो को देख सके, उसे दूरवीक्षण शक्ति को इतना बढाना है कि वह विश्वो का दर्शन करने की पूरी क्षमता प्राप्त कर सके, उसे हवा और बिना हवा के उड़ने की शक्ति यहा तक बढानी है कि वह सहज मे अपने ब्रह्माड के भीतर जिस ग्रह मे चाहे जाकर सैर कर सके। उस को ऐसे साधन उपजाने हैं जिनसे उसे

हमीभूत उज्जन का आत्यन्तिक शीत और सूर्य्य का आत्यन्तिक ताप असमर्थ न कर सके। उसे भूगर्भ के अन्तराल मे उसके केन्द्र मे घुसकर देखना है कि वहा क्या है। निदान, उसे अणोरणीयान् महतोमहीयान् को हाथ मे के आवले की तरह अच्छी तरह परीक्षा की कसौटी पर कसना है। अभी तो वह कैलाश, गौरीशकर, कंचनगगा आदि शिखरो के ऊपर चढ़ने, मेरुप्रदेश को देखने, समुद्र के भीतर की सैर करने मे लगा है। चन्द्रमा की सैर के लिये राकेट बना रहा है। आगे चलकर उसकी सर्वज्ञता के हौसले कहा तक पूरे होंगे, यह देखना है। कौन जाने कोई ईर्षालु परमेश्वर ज्ञान के वृक्ष के किसी फल के खाने पर उस से चिढ जाय और उसे ससार की इस मनोरम वाटिका से, जिस मे उस ने सारे भूगोल को समेटकर अपनी आखों और कानो के पास कर लिया है, निकाल बाहर कर दे, गिरा दे, एकदम निर्मूल कर दे। बाबा आदम के पतन की इस कहानी को याद कर के ही शायद उसके दार्शनिक भाई उस परमात्मा की खोज मे भी लगे और अद्वैत वेदान्तवादी ने तो यही पता लगाया कि यह जगत् जिस के तत्वों की खोज मे विज्ञान हलाकान हो रहा है मिथ्या है, मृगमरीचिका है, तत्व-हीन है। एक ब्रह्म ही सत्य है और खोजनेवाला चेतन आत्मसत्ता भी उस ब्रह्म की सत्ता से अलग नही है। यदि वेदान्तो का यह कथन सत्य है तो सचमुच ज्ञान के वृक्ष का फल खाकर मनुष्य को नशा हो गया है और इस नशे मे उसका ऐसा पतन हुआ है कि वह प्रकृति की गहराई मे डूब रहा है। वह मायाजाल मे ऐसा उलझ गया है कि अपने आपे की भी उसे सुधि नहीं रही है। वह परमात्मा तो क्या आत्मा की ओर भी भूलकर निगाह नही डालता। उसे प्रकृति की मोहिनी छवि ने, उस के मुग्धकारी नाच ने, उसके मायावी हावभाव ने अपना पालत् मेढा बना लिया है। उसे प्रकृति के सिवा कुछ नहीं सूझता। वह उसी के पीछे मतवाला है, हैरान है। उस से परमात्मा की चर्चा चलाओ भी तो वह कुढ़ जाता है। इस खयाल से भी घबराता है। वह प्रकृति के रहस्यो पर ऐसा रीझा हुआ है कि परमात्मा की सत्ता से भी इनकार करता है, क्योंकि उस को इतनी गहरी और विस्तृत तलाश मे परमात्मा का तो कहीं पता नहीं लगा। परन्तु इस मे उस का कोई दोप नहीं, क्योंकि आरभ से ही उस ने प्रकृति को ही जानने की कोशिश की, पुरुष का ज्ञान उस का उद्देश्य भी न था। उस की सर्वतोभद्र विजय है, वह जिधर जाता है उधर ही विजयी होता है। वह जिस वस्तु पर अगुली रखता है, सोने की हो जाती है, जिधर निगाह डालता है उधर ही सत्यं शिव सुन्दरम् देखता है। क्या अजब है कि उस के ही रूप मे पुरुप स्वयं अपनी अनूढा नायिका प्रकृति की तलाश मे निकला हो और प्रकृति और पुरुप के बीच यह आखमिचौनी का खेल हो जिस मे प्रकृति, और असख्य रूपो मे होकर परमपुरुप, खेल रहे हों और इस खेल का आनन्द इस मायावी जगत् के हम सभी प्राणी उठा रहे हों। अथवा यह अखिल विश्व उसी कन्हैया की अखड रासलीला हो जो सब को नचा रहा है और सब के बीच मौजूद होते हुए भी सब की आखों से ओझल है।

तीसवा अध्याय

विजय के साधन और साधक

१—विज्ञान की परिभाषा

मनुष्य की सर्वतोभद्र विजय जिन साधनों से हुई है उन पर भी कुछ निगाह डालने की जरूरत है। उस ने जिस बुद्धि और विवेक से काम लेकर, शक्ति, देश, काल और अपने शरीर पर भी विजय पायी है उस का विकास जीवन के आदिकाल से होता आया है। विकास के प्रकरण मे सहज और अर्जित बुद्धि पर विचार करते हुए हम ने देखा है कि कि किस प्रकार मानव शरीर मे अर्जित बुद्धि ने प्रत्यगात्मा की प्रेरणा के रूप मे विकास पाया है। बाहर के परीक्षण-निरीक्षण आदि से अर्जित बुद्धि ने विचार और विवेक का जैसे विकास किया है उसी तरह नैसर्गिक बुद्धि ने श्रद्धा, विश्वास और सद्प्रवृत्ति का विकास किया है। विचार और विवेक ने परीक्षण और निरीक्षण ही अपनी कसौटी बनायी है। परीक्षण और निरीक्षण से ही तर्क-बुद्धि की उत्पत्ति हुई। तर्क के विकास की भी दो विधिया बनी। एक आदर्शकल्पना की और दूसरी वास्तविकता की। तर्कशैली दोनो का आश्रय लेती रही, कभी एक विधि की प्रबलता होती थी कभी दूसरी की। आदर्श कल्पनाओं ने दर्शनशास्त्रों को जन्म दिया। वास्तविकता की प्रबलता ने विज्ञान को पैदा किया। आदर्शकल्पनाओं का उड़ान आत्यन्तिक जड़वाद से उठकर अद्वैतवेदान्त के "सर्वखल्विद ब्रह्म" "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या" तक पहुंचा और ब्रह्म से जगत् का अभेद दिखाया। वास्तविकता के मार्ग से गोचर और अगोचर सृष्टि का परिशीलन हुआ। साधारण जड़ पदार्थों के रासायनिक और भौतिक गुणो का, प्रकृति की शक्तियो और उसके विविध रूपो का, अनुशीलन हुआ। धीरे-धीरे सूक्ष्म-से सूक्ष्म विद्युत्कणो से लेकर बड़े-बड़े ब्रह्माडो और विश्वो का अध्ययन हुआ। आदि-जीवा से लेकर आजकल की मानव जाति तक का पूरा इतिहास पढा गया। फिर भी वास्तविकता के मार्ग से प्रकृति की पोथी समाप्त नही हुई है। अभी तो उस के थोड़े से ही पन्ने उलटे गये हैं। उन्हीं का समझना कठिन हो रहा है। दोनो मार्गों से मनुष्य के ज्ञान

३—साधन की कठिनाइयां और साधक

विज्ञान के परिशीलन मे कुछ अनिवार्य्य कठिनाइया भी है। पहली तो यह कि लाचार होकर अनेक कारणा से अलगाये हुए काल्पनिक कार्य्य का अध्ययन करना पड़ता है, क्योंकि बहुत से कारणो के मिलने से ठीक निष्कर्ष निकालना कभी-कभी असभव हो जाता है। अत: विज्ञान लाचार होकर काल्पनिक अवस्थाओं का अनुशीलन करता है। दूसरी यह कि बहुधा ऐसे विचारो वा शब्दों को मानकर चलना पड़ता है जो स्वत: सिद्ध नहीं है और अगर उन्हें मानकर न चलें तो एक पग आगे बढना कठिन होता है। यद्यपि आगे चलकर वही स्वत: सिद्ध माने हुए तथ्य सिद्ध कर लिये जाते हैं, तो भी अनेक अज्ञात बाते रह ही जाती हैं। तीसरी कठिनाई यह है कि कभी-कभी कार्य्य कारण के सम्बन्ध के गड़बड़ को भी सहना पड़ता है। कारणों की व्याख्या बहुधा अशत: ही ठीक हुआ करती है। चौथे जिस मूल से वैज्ञानिक आरभ करता है वह स्वय बहुधा अज्ञात अथवा अज्ञेय रहता है परन्तु उस के माने बिना गति ही नही है। इस तरह की कई कठिनाइयों के होते हुए भी वैज्ञानिक की प्रगति रुकने नहीं पायी है। वह विकास के मार्ग मे पहले तो धीरे-धीरे चला, फिर छलागे भरीं, और अब तो सरपट दौड़ता दीख रहा है।

साधको ने बुद्धि और विवेक से भरपूर काम लिया। करणो और उपकरणो से बाहरी और भीतरी जगत् की पूरी जाच की और करते जा रहे हैं। उन्होने उपकरणो की विचित्र रीति से रचना की और अब तक ज्ञान के साधन के सुभीते के लिये उपकरण-पर-उपकरण बनाते जा रहे हैं। ऊपर जो मोटे-मोटे विभाग बताये गये हैं उन के सिवा अनेक शाखाए और उपशाखाए बनायी हैं जिन का विस्तार यहा करना अनावश्यक है। उन्होंने अपने उपकरणो से जाच-पर-जाच करके अनेक निष्कर्ष निकाले और उन्हें उन्हीं के विभागा मे यथोचित स्थानो मे बाटा। उन्होने बड़े परिश्रम से अर्जित ज्ञान का उचित वर्गीकरण किया और ठीक ठीक रूप दिया। प्रत्येक साधक जी-तोड परिश्रम करता गया और जानकारी के खजाने मे अपना-अपना अर्जित धन डालता गया। अन्त मे आज हम देखते हैं कि कितने विज्ञान बन गये और कितने नये विज्ञानों की नीव पड़ गयी है। आज मनुष्य ने अपने को अपनी परिस्थिति का जो स्वामी बना रखा है आज जो वह परिस्थितियो पर विजयी की तरह काबू पाये हुए है, वह इन्हीं साधको की बदौलत है जिन्होंने विविध विज्ञानों के साधनो से और मूलत. अपनी बुद्धि और विवेक के बल से परिस्थिति को मुट्ठी मे कर लिया, अपनी दासी बना ली।

४—कुछ साधकों की चर्चा

मनुष्य की सर्वतोमुखी विजय मे वास्तविक काम तो अनेक ऐसे सिपाहियो ने किये हैं जिन का किसी को नामोनिशान भी नहीं मालूम है। अनेक महत्व के मोरचे बड़े-बडे सेनानियो ने सर किये हैं परन्तु उन की गणना भी हजारो है। उन की जीवनियो के

लिये तो अलग हजारो पृष्ठ चाहिये। स्थान के आत्यतिक सकोच के कारण अकारादि क्रम से यहा कुछ के ही नाम दिये जाते हैं।

अरीनिउस—स्वान्ते अरीनिउस का जन्म स० १६१६ के लगभग हुआ। स्कन्दनवीय थे। अपने देश की राजधानी स्टाकहोल्म मे भौतिक शास्त्र के आचार्य थे। "विश्व-भारसाम्य और अकर्मण्य तमोगुण की ओर प्रवृत्त है" इस प्रचलित मत का आपने विरोध किया है। अयन-वाद द्वारा आपन सिद्ध किया है कि "सृष्टि की घड़ी चलते-चलते रुक नही सकती क्यो कि इसके रुकने की क्रिया भी साथ-ही-साथ चलती रहती है।" स० १६८४ मे इन की मृत्यु हो गयी। चित्र पृष्ठ २५२ पर देखिये।

अकमींदिस—कलिसवत् २८१४ मे जन्म और २८८६ मे एक मूर्ख सैनिक के हाथों वीर गति। शत्रुसेना से घिरे अपने नगर सैराक्यूज की अपनी विद्या, कौशल और कला से मृत्यु से पूर्व तीन बरस से रक्षा करता आया था। भौतिक, यत्र और गणित विज्ञान के उसने अनेक आविष्कार किये। जल मे तौलकर खोटे-खरे सोने की परखने की विधि उसी ने निकाली थी।

आर्यभट—आर्यभटीय नामक ग्रथ के रचयिता प्रथम आर्यभट ज्यौतिष के बड़े भारी आचार्य थे। इन्होंने उक्त ग्रथ मे अपना जन्मकाल इस प्रकार दिया है।

> षष्ट्याब्दाना षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
> त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनो ऽ तीताः॥
> कालक्रिया पाद, १०

अपने जन्मस्थान के सम्बन्ध मे यह लिखते हैं—

> आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरे ऽ भ्यर्चितं ज्ञानम्॥
> गणितपाद १४, उत्तरार्द्ध

कुसुमपुर को लोग पटना कहते हैं।

इन्होंने १२० आर्या छन्दो मे ज्यौतिषसिद्धात और इससे सम्बन्ध रखनेवाले गणित को सूत्ररूप मे लिखा है। परतु इतने मे ही कई नवीन बातो की चर्चा भी की है जिसे पीछे के ज्यौतिषियो ने शास्त्र विरुद्ध समझकर उन की निंदा की है। इनमे से दो-तीन बातें महत्त्व की हैं। पहली तो यह कि इन्होंने सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग को समान माना है और युगसधियो की कोई चर्चा नही है। इन के अनुसार १ कल्प मे १४ मन्वतर और १ मन्वतर मे ७२ महायुग(चतुर्युग) तथा १ चतुर्युग मे सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग समान हैं।

दूसरी बात यह लिखी है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है जिस से नक्षत्र-चक्र उलटे घूमते हुए देख पड़ते हैं। यह समझाने के लिए इन्होंने चलती हुई नाव का उदाहरण दिया है।

अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥
गोलपाद, ९॥

सख्या लिखने की रीति भी इन की विचित्र है पर विस्तार भय से नहीं दी जाती। किसी वृत्त की परिधि और व्यास का जो सम्बन्ध होता है उसे इन्होने इस प्रकार प्रकट किया है—

चतुरधिकंशतमष्ट गुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणां।
अयुतद्वय विष्कंभ स्यासन्नो वृत्तपरिणाह॥
गणितपाद, १०॥

जिस से परिधि और व्यास का सम्बन्ध ६२,८३२ : २०,००० आता है जो ४ दशमलव स्थान तक शुद्ध है।

--महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य

एडिसन—[स० १९०४—१९८८ वि०]—टामस अलवा एडिसन अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कारक थे। ओहिओ राज्य के मिलान नगर मे सवत् १९०४ मे पैदा हुए। बारह बरस की अवस्था मे गाड़ी मे अखबार बेचा करते थे। उन्होंने मालूम किया कि भिन्न तीव्रता की दो धाराए एक साथ एक ही समय एक ही तार में चल सकती हैं। इस खोज के आधार पर उन्होंने तार भेजने की दोहरी चौहरी और छहरी पद्धति बनायी। कम्पनी कागज के बाजार-भाव के समाचार को तारद्वारा छपे रूप मे प्रचार करने की विधि के आविष्कार पर सवा लाख रुपये इनाम मे मिले। यह उन का पहला आविष्कार था जिस ने धन का द्वार खोल दिया। फिर तो उन्होंने फोनोग्राफ आदि सैकड़ो आविष्कार कर डाले हाल तक इस बुढापे मे भी असख्य आविष्कार करते आये। स० १९८८ मे उन्होने अपने कामो से अवकाश ग्रहण किया। इसी साल उनका देहान्त भी हो गया।

ऐन्स्टैन—अलबर्ट ऐन्स्टैन का जन्म स० १८३६ मे हुआ। यह जर्मन यहूदी हैं। इनकी शिक्षा स्वीरिख मे हुई। अठारह वर्ष की अवस्था मे इन्होंने अपने प्रसिद्ध सापेक्षवाद पर विचार करना आरभ किया। इनका विशेष सापेक्षवाद स० १९६२ में और साधारण सापेक्ष-वाद दो बरस बाद प्रकाशित हुआ। सवत् १९७१ से यह बर्लिन मे अपनी खोजों का काम कर रहे थे। गणित विद्या के प्रसिद्ध आचार्य्य हैं। राजनीतिक कारणों से आजकल इगलिस्तान में रहते हैं।

कुरी— [स० १९२४–१९९१ वि०] मेरी कुरी के पिता पोल जाति के थे। वारसा मे प्रोफेसर थे। यह वारसा मे ही स० १९२४ मे पैदा हुई और पिता की प्रयोगशाला मे ही बचपन में खेलीं। बडी होने पर फ्रास की राजधानी पारी मे पढने को गयी। वहीं अपने प्रोफेसर (आचार्य्य) कुरी से विवाह कर लिया। दम्पति ने बेकरेल से युरेनियम के रश्मि-विकीरण का हाल समझा। फिर स्वयं खोज करने लगे। अपनी दरिद्र प्रयोगशाला मे

इन्होंने अट्ठाईस मन पिचब्लेंडी से विश्लेषण कर के कई रत्ती रेडियम के लवण निकाल पाये। प्रोफेसर कुरी जब जगद्विख्यात हो गये तभी स० १९६३ मे अकस्मात् उन की मृत्यु हो गयी। इस दुर्घटना के बाद ही देवी कुरी ने पोलोनियम और रेडियम दो धातुए अलग निकाल लीं। इनकी भी सवत् १९९१ मे मृत्यु हो गयी। चित्र पृष्ठ २८० पर देखिये।

केलविन—लार्ड विलियम टामसन केल्विन (वि० स० १८८१–१९६४) बेलफास्ट के रहनेवाले एक गणिताध्यापक के पुत्र थे। दस बरस के भी नही हुए थे जब वाल्टेई बाटरियो के प्रयोग किया करते थे। केम्ब्रिज में शिक्षा पाकर ग्लासगो आये और वहा के विश्वविद्यालय मे चौअन वर्ष तक प्राकृतिक विज्ञान के आचार्य्य रहे। सामुद्रिक तार इन्ही की बदौलत है। इन्होंने अनेक सामुद्रिक यत्र आविष्कृत किये। भौतिक विज्ञान के सभी अगो का इन्होने गभीर अनुशीलन किया था। इन का चित्र पृ० ६७ पर देखिये।

क्रुक्स—सर विलियम क्रुक्स (वि० स० १८८९–१९७६) जन्म से लडनी थे। रसायन पढाते थे और विज्ञान की त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन किया करते थे। इन्हीं ने पहले-पहल विद्युत्कणो का टूटना और उनकी गति का निरीक्षण किया था जिसे उन्होंने पदार्थ की चौथी अवस्था ठहरायी थी। इन की खोज विज्ञान की सभी शाखाओं में बड़े महत्व की हुई। परलोक-विद्या मे भी इन के अन्वेषण बड़े महत्व के हैं। चित्र पृष्ठ २६३ पर देखिये।

गणेशप्रसाद—[स० १९३३–१९९१ वि०]—डाक्टर गणेशप्रसाद का जन्म स० १९३३ वि० के अगहन मास मे एक प्रतिष्ठित श्रीवास्तव्य ब्राह्मण कुल में बलिया में हुआ। स० १९५१ मे म्योर कालिज से सायस लेकर विश्वविद्यालय मे प्रथम श्रेणी मे बी० ए० मे सर्व-प्रथम हुए। आप प्रयाग के पहले डी० एस-सी होकर सरकारी छात्रवृत्ति से केम्ब्रिज गये। फिर वहा से जर्मनी मे अध्ययन किया। स० १९६२ से अन्त तक बराबर गणित विषय के आचार्य्य रह आये। इधर सर तारकनाथपालित के सायस इस्टिट्यूट कलकत्ता मे हार्डिज गणिताचार्य्य थे। आपने बनारस की गणित परिषद् स्थापित की। ससार की बड़ी-बड़ी गणित-परिषदो के सदस्य थे। आप के गणित-विषयक अन्वेषण असख्य हैं, और अन्त समय तक जारी थे। बड़े-बडे गणित शास्त्रियो ने अपने ग्रन्थों मे आप की अनमोल खोजो के प्रमाण आदरपूर्वक और उद्धरण सम्मानपूर्वक दिये हैं। अन्त समय मे आप कलकत्ता, और बनारस की गणित परिषदो के तथा प्रयाग की विज्ञान परिषत् के सभापति थे। आपने भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयो के उच्च गणित के छात्रो को गणित-सम्बन्धी गवेषणाओं की शिक्षा दी और खोज के काम की एक परम्परा स्थापित कर दी। आप के गवेषणात्मक निबन्ध पचास से ऊपर हैं और दस पुस्तके भी प्रकाशित हो चुकी हैं जो ससार के प्रमुख विद्यापीठो मे पाठ्य ग्रथ हैं। आप अँगुलियो पर गिने जानेवाले विश्वविख्यात गणिताचार्य्यों में थे। जीवन अत्यन्त सादा, घोर परिश्रमी, शुद्ध ब्रह्मचर्य्य-पालन के साथ-साथ अखड सयमी, परन्तु सरल, था। शिक्षा अन्तःस्तल मे प्रवेश करनेवाली और धारणा अद्भुत थी। परिशीलन ही व्यसन था। छात्रों को आप का सदेश चार शब्दों का था "अपना लक्ष्य ऊचा रखो"। भारतीय युवकों की तन-मन-धन से सभा समिति विद्यालय घर जागते सोते सहायता करने का सदा ध्यान रहता था।

इसी ध्यान में सौर २६ फाल्गुन (६ मार्च) संवत् १९९१ वि० को आगरा-विश्व-विद्यालय की कौंसिल में अचानक बैठे-बैठे ही बेहोश हो गये। फिर होश में न आये। सात बजे शाम को शरीर छूट गया। आप का चित्र पृष्ठ १५५ पर देखिये।

टामसन—सर जोजफ जान टामसन मंचेस्टर के पास संवत् १९१३ के लगभग पैदा हुए, और हाल में ही केम्ब्रिज विद्यापीठ के केवेंडिश आचार्य्य की गद्दी के अवकाश ग्रहण किया है। यह प्रायौगिक भौतिक विज्ञान पढाते थे। इनकी महत्व की खोज यह है कि डाल्टन के परमाणु वादवाला परमाणु अखड नहीं है, प्रत्युत एक-एक परमाणु अनेक विद्युत्कणों का बना होता है, और यह विद्युत्कण प्रकाश के वेग से अपने परमाणु के भीतर चक्कर मारते रहते हैं। इन्होंने मूल पदार्थों की पारमाणविक सख्या निकाली और रासायनिक योगशक्ति की विविधता की व्याख्या की। इन्होंने यह भी दिखाया कि मूल पदार्थ के परमाणु में विद्युत्कणों की अत्यधिकता उन की अस्थिरता का कारण होती है। यह विद्युत्कणवाद के विधाता समझे जाते हैं।

डारविन—(सवत् १९६६–१९३९) इन का जन्म श्रूसवरी में हुआ था। जब आठ बरस के थे तभी प्रकृति के अनुशीलन की इन की सुरुचि का विकास हो चुका था। केम्ब्रिज में पादरी का काम सीखते थे तभी उन्होंने हम्बोल्ट और हर्शेल का अध्ययन किया। यह पाश्चात्य विकासवाद के विधाता थे। इन्होने यह सिद्ध किया है कि एक सेल-वाले अणु से विकास करते-ही-करते बड़े-बड़े वर्त्तमान प्राणी बने हैं। एक प्रकार के 'वानर" से ही मनुष्य का विकास होता आया है। अब उस "वानर" का लोप हो चुका है। चित्र पृ० १६४ पर देखिये।

नोबेल – आलफ्रेड वर्नहार्ड नोवेल (सं० १८९२-१९५३ वि०) स्टाकहोल्म के एक यत्रशास्त्री के लड़के थे। सयोग से बहुत सा नोपो-मधुरिन बालू में बह गया था। इसी पर प्रयोग करते-करते उन्होंने एक विस्फोटक बनाया जिसका नाम डैनामाइट रखा। इस से तथा अन्य विस्फोटको से शिल्पियों और यत्रशास्त्रियो ने बडा लाभ उठाया और नोवेल को अपार धन मिला। इस धनराशि के सूद से उस ने वार्षिक पारितोषिक रखे जो नोवेल पुरस्कार के नाम से प्रसिद्ध है।

न्यूटन—सर आइजक न्यूटन (सं० १६९९-१७८४ वि०) एक किसान के घर लिंकन शहर के वुल्सथार्प गॉव में पैदा हुए। इन्होंने केम्ब्रिज में शिक्षा पायी। चलन-कलन श्वेत प्रकाश का विश्लेषण, गुरुत्वाकर्षण आदि अनेक बातें खोज निकालीं। गणित और विज्ञान में इन ने नया युग स्थापित कर दिया।

पास्त्यूर—लूई पास्त्यूर (सं० १८७९-१९५२ वि०) फ्रास के डोल नामक स्थान में पैदा हुए. पारी में शिक्षा पायी और सोरबोन में स० १९२४ में रसायनाचार्य्य नियुक्त हुए। इन्होंने यह सिद्ध किया कि खमीर उठना रासायनिक क्रिया नहीं है। यह जीवाणुओं के कारण होता है। उस ने उन रोगाणु का पता लगाया जो रेशम के कीडों पर परमत्वाद की तरह आक्रमण करता था। इससे फ्रास को अपरिमित लाभ हुआ। उस ने भांति-भांति की

रोगाणु-निवारक और नाशक ओषधिया निकालीं । ससार रोगाणु सम्बन्धी सैकड़ों खोजों के लिये इनका ऋणी है । चित्र पृ० १७७ पर देखिये ।

फेरेडे—माइकेल फेरेडे (स० १८४८-१६२४ वि०)। यार्कशहर के एक लोहार के घर पैदा हुए । सर हम्फ्रे डेवी के यहा बोतल धोने पर नौकर हुए । धीरे-धीरे यह ऐसे कुशल वैज्ञानिक हो गये कि जब सर हम्फ्रे डेवी ने रायल इस्टिट्यूशन नामक विद्यालय के आचार्यत्व से स० १८८४ वि० मे अवकाश ग्रहण किया तब उन की जगह पर इन की ही नियुक्ति हुई । इस पद पर यह चौअन वरस तक रहे और रसायन, विद्युत् और चुम्बकत्व पर सोलह हजार के लगभग खोजे की । कपड़े के कारबार के लिये हरिन् सबधी उस की खोज सब से अधिक महत्व की थी । उस के व्याख्यान सुबोधता के आदर्श होते थे । यह इंगलिस्तान का बहुत बड़ा खोजी विद्वान् हो गया है । चित्र पृ० ४४३ पर देखिये ।

फ्रइड—सिगमुड फ्रूइड स० १६१३ वि० मे मोरेविया देश के फ्रेईबर्ग नामक नगर मे पैदा हुए । वीना विश्वविद्यालय मे यह ओषधि-विज्ञान के आचार्य्य डाक्टर हैं । मनोविश्लेषण द्वारा मानसिक और वातजनित रोगों की चिकित्सा-विधि के यह आविष्कारक हैं ।

बरबक—लूथर बरबक (जन्म स० १६०६ वि०) अमेरिका मे मासाचुसेट्स् जिले के लाकास्टर गाँव मे पैदा हुए । साधारण शिक्षा पायी परन्तु उद्भिज्ज विज्ञान का बड़ा शौक था । स्कूल से निकलकर बाप के कारखाने मे काम भी करते थे और बागबानी भी करते थे । इनकी प्रतिभा तभी चमकी । आलू के एक विशेष बीज तैयार करने पर इन्हे उस के दाम तभी ४५०) के लगभग मिले थे । कुछ काल पीछे स्वास्थ्य के कारण लाचार होकर अपने आलू और थोड़े से रुपये के बल पर किस्मत की बाजी लगाकर कालिफोर्निया गये । वहा कुछ दिनो तो भूखों तड़पे, परन्तु फिर भाग्य चमका । इनकी चीज़े धीरे-धीरे बिकने लगी । यश फैला । स० १६५० से इन्होंने बीज आदि बेचने का काम छोड़कर केवल नये पौधे, नये फल और नये बीजों के पैदा करने का काम उठा लिया और अनेक काम ऐसे किये कि इन्हे अभिनव विश्वामित्र कहे तो अनुचित न होगा । स० १६६२ मे कारनेगी सस्था ने इन्हें चिन्तामुक्त होकर खोज का काम करने के लिये दस बरस तक तीस हजार रुपया सालाना देने का निश्चय कर लिया । इस समय मे इन्होंने जो काम किया वह वनस्पतिविद्या के इतिहास मे बिलकुल अनोखा और अत्यन्त विस्मयकारक है । नागफनी के काटे और चेपे दूर करके इन्होने खाने योग्य गूदेदार अच्छी निर्दोष नागफनी की एक जाति पैदा की । नागफनी मरुस्थल मे होती है । अतः अनुर्वरा धरती मे इसे इतना उपजाया जा सकता है कि ससार भर के मनुष्यमात्र के इसीपर जीवन व्यतीत करने पर भी इस के भडार मे टोटा नहीं हो सकता । इन्होने ऐसे पेड़ उपजाये जिन की पत्तिया कलिया और फूल पाले से नही मरते, जो फूलते जल्दी हैं और फलते बहुत देर मे हैं । बेर और खूबानी का मेल करके गुठलीहीन "बेरानी" नाम का नया फल रचा । सेबों और नासपातियो के

अनेक किस्म पैदा किये। तीन लाख तरह के बेर बनाये, पांच हजार तरह के बादाम। किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा न पाकर भी केवल पोथी के ज्ञान से इन्होंने वह काम किये जो सुशिक्षित उद्भिज्ज विज्ञानियों से न बन आयी।

बोस—सर जगदीशचंद्र बोस का जन्म सं० १९१५ वि० में ढाका जिले के प्रसिद्ध विक्रमपुर के राड़ीखाल स्थान में हुआ था। इंग्लिस्तान में अपनी शिक्षा पूरी कर के डाक्टर का पद लेकर भारत आये तो प्रेसिडेन्सी कालेज में भौतिक विज्ञान के आचार्य्य नियुक्त हुए। बेतार के तार के एक यंत्र की परीक्षा में इन्हें पता चला कि धातें भी "थक" जाती हैं। इन्होंने इस थकान पर खोज की। सं० १९५९ में इन्होंने अपने ग्रंथ रेस्पांस् इन् दि लिविङ् एंड नानलिविङ् द्वारा यह प्रकाशित किया कि चेतन की तरह धात्वादि जड़ पदार्थ भी थकते हैं, चंचल होते हैं, विष से मुरझाते हैं, मर जाते हैं, नशे से मस्त हो जाते हैं। निदान वह भी जीवन की तरह काम करते हैं। इस के बाद उन्होंने उद्भिज्जों पर इतनी परीक्षाएं कीं कि शरीरविज्ञान की एक अलग शाखा ही स्थापित हो गयी। इन्होंने यह दिखाया कि चर प्राणियों की तरह अचर प्राणी भी बाह्य जगत् का अनुभव करते हैं, बाहरी मात्रा-स्पर्श से प्रभावित होते और चर प्राणियों की तरह उत्तर देते हैं, खाते, पीते, सोते हैं, काम करते हैं, आराम करते हैं और मरते हैं। सुखी और दुःखी होते हैं। इन्होंने यह स्थापित किया है कि जड़चेतन एक ही नियम पर चलते हैं, सभी जीवित हैं और सब का विकासक्रम एक सा ही है, सबके शरीर भी आवश्यक बातों में एक से ही हैं। सत्ता एक ही जीवन की है, विविध नामों से पुकारी जाती है। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"। इनकी खोजों की पहले विज्ञान जगत् ने अवहेलना करनी चाही परन्तु लाचार होकर मानना पड़ा और अंत को इनका पूरा सम्मान करना पड़ा। सारे सभ्य संसार ने इन का लोहा माना। इन्होंने अपना गवेषणालय कलकत्ते में स्थापित किया है जहां संसार के चुने हुए विद्वान आकर इस सम्बन्ध की खोज करते रहते हैं। इन्हें अमेरिका और यूरोप की प्रमुख संस्थाओं ने निमंत्रण देकर सम्मानपूर्वक बुलाया, व्याख्यान सुने। यथोचित आदर किया, डिग्रियां दीं। रायलसोसायटी ने अपना सदस्य बनाया और ब्रिटिश राज्य ने इन्हें "सर" की उपाधि दी और प्रेसिडेंसी कालिज ने आजीवन सम्मान्य आचार्य्य का पद प्रदान किया। चित्र पृ० ३८८ पर देखिये।

भास्कराचार्य्य—(सं० ११७१-१२३६ वि०) दक्षिणी ब्राह्मण, कवि और ज्योतिषी महेश्वर उपाध्याय इन के पिता स्वयं आचार्य थे। लीलावती बीजगणित, सिद्धान्तशिरोमणि आदि अनेक गणित ग्रंथ लिखे। इन्होंने अनेक भावी पाश्चात्य अन्वेषणों को पहले से ही खोज लिया था। व्यावहारिक ज्योतिष में यंत्रों के प्रयोग का एक ग्रंथ भी इन्होंने लिखा था।

मारकोनी—गुग्लिएल्मो मारकोनी सं० १९३१ वि० में बोलोग्ना में पैदा हुए। बेतार के विद्युत् समाचार भेजने का प्रबन्ध इन्हीं के उद्योगों का फल है। जो बातें पूर्वगामी वैज्ञानिकों को मालूम थीं उन्हीं के व्यावहारिक प्रयोग का इन्हें श्रेय है। चित्र पृष्ठ ४४५ पर देखिये।

मारगन—टामस हंट मारगन सं० १९२३ वि० में उत्पन्न हुए। यह कोलम्बिया

विद्यापीठ मे प्रायौगिक चरप्राणि विज्ञान के आचार्य्य हैं और मेंडेलवाद एव ड ५
विकासवाद के सब से बड़े प्रमाण माने जाते है। यह कहते हैं कि दम्पति के रजस और
मे 'जनि'' नामक एक सूक्ष्म कण होता है जो सन्तान के शील और भावी चरित्र को प्र
करता है।

मेंडेल—ग्रेगर योहन मेंडेल (स० १८७६-१९४१ वि०) आस्ट्रिया के सैलेशि
पैदा हुए थे। शायद एक यहूदी किसान की सन्तान थे। ब्रून के मठ मे पादरी
हुए। फिर वीना विद्यापीठ मे पदार्थ-विज्ञान की शिक्षा ग्रहण की। इन्होने मठ के
मे मटर पर अनेक प्रयोग कर के विकासवाद के बड़े महत्व के नियम और सिद्
निकाले। चित्र पृष्ठ १६८ पर देखिये।

मेंडेलेएफ—द्मित्रि इफानोफिच मेंडेलेएफ (स० १८९१-१९६४ वि०)
मे टोबाल्स्क नामक स्थान मे जन्मे थे। इन के पिता शिक्षक थे। इन्होने ने भी इसी
की शिक्षा ली। रूस की राजधानी के विद्यापीठ मे रसायनविज्ञान की शिक्षा पायी।
निक मूल पदार्थो के आवर्त्त-सविभाग के नियम को स्थापित करके पहले-पहल सब
पदार्थो के पारस्परिक पारिवारिक सम्बन्ध का पता इन्हीं ने लगाया।

मैअर्स—फ्रेडरिक विलियम हेनरी मैअर्स (स० १९००-१९५८ वि०) स्कूल
इन्स्पेक्टर थे। साथ ही कवि और साहित्यसेवी भी थे। इन्होने अपने जीवन का एक
अश व्यक्ति की मरणान्तर अवस्था की खोज मे लगाया और इसी उद्देश्य से लडन
इन्होने परान्वेषणपरिषत् की स्थापना की और अन्त समय तक उस के प्रधान रहे। इन्है
परलोक विषयक बहुत से अन्वेषण किये। (चित्र पृष्ठ २५७ पर देखिये)

रदरफ़ोर्ड—लार्ड अर्नेस्ट रदरफोर्ड स० १९२८ वि० मे निउजीलैंड मे पैदा हुए
स० १९५१ मे केम्ब्रिज की केवेंडिश प्रयोगशाला मे सर जे० जे० टामसन की अधीनता
नियुक्त हुए। युरेनियम के यौगिकों से निकलनेवाली किरणो का ठीक पता इन्होंने पहले
पहल लगाया। स० १९५७ मे इन्होने थोरियम से वायव्य की उत्पत्ति का पता लगाया और
फ्रेडरिक साडी के सहयोग से मालूम किया कि थोरियम टूट रहा है। इसके बाद तो दोनो
ने परमाणुओ के बिगड़ने और बनने के सम्बन्ध की सैकडो बाते ढूढ निकाली जिससे कि
विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण नया विभाग ही बन गया। अन्त मे जब सर टामस ने अवकाश
ग्रहण किया तब ये ही उन के स्थान पर आचार्यत्व के पद पर आये। (चित्र पृष्ठ २८७
पर देखिये।)

रामजे—सर विलियम रामजे (स० १९०९-१९७३ वि०) ग्लासगो में पैदा हुए
और केल्विन की अधीनता मे शिक्षा पायी। टुबिंगेन से डाक्टर की पदवी लेकर पहले ग्लासगो
मे सहायक और फिर ब्रिस्टल विद्यापीठ मे रसायनाचार्य्य और अन्त मे लडन विद्यापीठ मे
रसायनाचार्य्य रहे। इन्होंने साधारण वायुमडल मे पाच अकर्मण्य वायव्यों का पता लगाया
और रश्मिविकरण सम्बन्धी अगणित अन्वेषण किये। डेवी के सौ बरस बाद इन्हीं का काम
उन की बराबरी के महत्त्व का समझा जाता है। (चित्र पृष्ठ २९० पर देखिये।)

प्लेटो का पैकट था। प्लेट धोने पर चाबी का चित्र आ गया। इसी आकस्मिक प्रयोग से एक्स किरणों का पता लगा जिन्हें उन्हो ने १६५२ वि० मे प्रकाशित किया।

लनकेस्टर—सर एडविन रे लनकेस्टर का जन्म स० १६०४ वि० में हुआ, यह एक वैज्ञानिक के पुत्र हैं और बराबर विज्ञान का आचार्यत्व करते आये हैं। स० १६५५ से १६.४ तक ब्रिटिश सग्रहालय के अध्यक्ष रहे हैं। इनका परिशीलन समस्त चर-ससार के सबध में बहुत विस्तृत रहा है। इन्होंने आदि जीवाणु और अपर जीवाणुओं का अच्छा अनुशीलन किया है। गर्भ विज्ञान और वर्गीकरण विषयक इन के अनेक अन्वेषण हैं। यह प्राणि-विद्या के प्रामाणिक आचार्य्य माने जाते हैं। (चित्र पृष्ठ २२५ पर देखिये)

लाज—सर आलिवर जोजफ लाज एक कुम्हार के घर स० १६०८ मे स्टाफर्ड के जिले में पैदा हुए। टिंडल से लडन-विद्यापीठ मे शिक्षा पायी। पहले लिवरपूल मे भौतिकाचार्य्य थे। फिर बरमिंघम मे मुख्याचार्य्य हो गये। बेतार की बिजली की इन्होंने एक विशेष विधि निकाली। स० १६५८—१६६१ तक यह परान्वेषण परिषत् के सभाध्यक्ष थे। इन्होंने पारलौकिक विषय मे अनेक खोजे की और कई पुस्तके लिखी। चित्र पृष्ठ २६२ पर देखिये।

लिन्निउस—करोलस लिन्निउस (स० १७६४–१८३५ वि०) स्वीडेन के रशुट नामक स्थान के एक पादरी के बेटे थे। लुंड और उपसाला के विद्यापीठो मे शिक्षा पायी। उपसाला मे ही एक वाटिका के अध्यक्ष हुए। इन्होंने वनस्पतियो का वर्गीकरण करके वनस्पति विज्ञान की नींव डाली। इसी प्रकार प्राणिविद्या का भी इन्होंने वर्गीकरण किया। एक प्रकार से जीव-विज्ञान के यह पिता थे।

लिस्टर—लार्ड जोजफ लिस्टर (स० १८८४–१६६६ वि०) एसेक्स जिले के उपटन स्थान के एक भक्त ईसाई परिवार मे जन्मे, लडन मे शिक्षा पायी, और एडिनबरा, ग्लासगो एव किंग्स कालेज मे नौकरिया की। पास्च्यूर की रीतियों का अनुशीलन करके रोगाणुनाशक और निवारक विधियों की शल्य-चिकित्सा निकाली। यह बड़े हट्टे-कट्टे मोटे ताजे मजबूत तैराक थे। इन का सम्मान इनकी खोजों के कारण यहा तक हुआ कि यह लार्ड बना दिये गये। चित्र पृष्ठ २३५ पर देखिये।

लेनार्ड—फिलिप लेनार्ड सवत् १६१६ में जन्मे। यह हर्ट्ज़ के शिष्य हैं। इन्होंने सवत् १६५१ वि० मे ऐसी बलवती अणोद किरणें निकाली जो कई धातुओं मे इस तरह प्रवेश कर जाती हैं जैसे सूर्य की किरणें अल्प पारदर्शी सगमर्मर के पत्र में से प्रवेश करती हैं। इनका नाम लेनार्ड-किरणे पडा। स०१६६२ मे इन्हें भौतिक विज्ञान के लिये नोबेल पुरस्कार मिला। इन्होने हर्ट्ज़ की खोजो को जारी रखा है।

वाट—जेम्स वाट (स० १७९३–१८७६ वि०) लड़काई मे मरियल से थे, गणित सम्बन्धी उपकरण बेचने का रोजगार करते थे। भाफ का इञ्जन बनाकर इन्होंने पाश्चात्य ससार मे युगान्तर उत्पन्न कर दिया। इन्होंने और भी वैज्ञानिक अन्वेषण किये थे।

वाऽल्स—युवानेस डिडरिक फन डेर वाऽल्स सवत् १८९४ वि० मे जन्मे थे। इन्होंने द्रवो और वायव्यो की अभेद दशा, वैद्युत विश्लेषण और विघटीकरण इत्यादि सम्बन्धी

कई महत्व के अन्वेषण किये और एक अत्यत महत्व का समीकरण निकाला जो इन्हीं के नाम मे चलता है। इन्हें स० १६६७ वि० मे भौतिक विज्ञान के लिये नोवेल पुरस्कार मिला।

साडी—फ्रेडरिक साडी इग्लिस्तान मे ईस्टबोर्न मे स० १६३४ वि० में जन्मे। माट्रीअल (कनाडा) के विद्यापीठ मे रदरफोर्ड से अन्वेषण-विधि सीखी, फिर लडन मे रामजे से शिक्षा पायी। पहले ग्लासगो मे भौतिक रसायन के उपाचार्य्य हुए, फिर अबर्डीन में रसायनाचार्य हुए। अब आक्सफर्ड मे अनागारिक और भौतिक रसायन के आचार्य्य हैं। रश्मिविकिरण सबधी खोजों के द्वारा इन्होंने एक नया साहित्य पैदा कर दिया है। इन्हे इसी सेवा के लिये नोवेल पुरस्कार मिला। चित्र पृष्ठ १४७ पर देखिये।

साहा—डाक्टर मेघनाथ साहा (जन्म स० १६५० वि०) इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग के आचार्य्य और प्रधान है। इन्होंने ज्यौतिष सम्बन्धी भौतिक विज्ञान मे बड़े महत्व की खोज की जिस के उपलक्ष्य मे लडन की रायल सोसायटी ने आप को अपना सदस्य बनाया है। यह कलकत्ता विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हैं। इनकी शिक्षा इग्लिस्तान मे पूरी हुई। इनका चित्र पृष्ठ ३८५ पर देखिये।

स्पेसर हर्बर्ट स्पेसर (स० १८७७-१६६० वि०) डार्बी मे एक शिक्षक के घर पैदा हुए थे। कुछ काल तक रेलवे इञ्जिनियर थे। फिर छत्तीस बरस तक उन्होंने इस मडनात्मक दर्शन का निर्म्माण किया कि विकासवाद का प्रयोग समस्त ज्ञानो विज्ञानो मे हो सकता है। उन्होंने वस्तुतः ससार की सभी बातों मे दार्शनिक ढग से विकास-विचार का प्रयोग किया। अंग्रेजों में यह सब से बड़े वैज्ञानिक दार्शनिक समझे जाते हैं।

हक्सले—टामस हेनरी हक्सले (स० १८८२-१६५२ वि०) ईलिंग में जन्मे, चेरिंगक्रास अस्पताल मे शिक्षा पायी, और वहीं पता लगाया कि बाल की जड़ों में एक विशेष तह होती है। इसका नाम हक्सले-तह पड़ा। पीछे डारविन के विकासवाद के बड़े प्रचारक और समर्थक हो गये। यह बड़े अच्छे चर-विज्ञानी थे, अद्वितीय व्याख्याता थे, और निर्भीक वक्ता थे।

हर्टज—हैनरिख रुडोल्फ हर्टज (स० १६१४-१६५१ वि०) हाम्बुर्ग-निवासी जर्मन थे और बर्लिन विद्यापीठ मे हेल्महोल्ट्ज के सहायक नियुक्त हुए। इन्होंने मैक्सवेल के स्वच्छन्द चलनेवाली बिजली की लहरोंवाली धारणा को ठीक सिद्ध किया और प्रमाण दिये कि प्रतिफलन, भोटन और दिग्प्रधानता से ठीक ताप और प्रकाश की लहरो की तरह बिजली की लहरें भी प्रभावित होती हैं।

हर्शेल—सर विलियम हर्शेल (स० १७६५-१८७६ वि०) हनोवर के एक बजनिये के यहा उत्पन्न हुए और इग्लिस्तान में लड़काई मे ही आकर बाथ मे एक बजानेवाली मडली के अध्यक्ष हो गये। पीछे ज्यौतिष शास्त्र पढने से उन्हें इस विज्ञान का शौक हो गया। उन्होंने अपने हाथ से दूरबीन और दूरबीन के दर्पण बनाये। इस काम मे वह इतने कुशल हो गये कि उन्होंने अपने ढग की एक नयी दूरबीन का आविष्कार किया। उन्होंने अपनी नयी दूरबीन के सहारे ज्यौतिष में इतनी खोजें की और विज्ञान को इतना समुन्नत किया कि यह आधुनिक ज्यौतिष के विधाता समझे जाते हैं।

इति शम्

परिशिष्ट

सुबोध वैज्ञानिक ग्रंथावली

हिन्दी

विज्ञान प्रवेशिका भाग पहला और दूसरा -- (विज्ञान परिषत्)
ताप—(प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी) (विज्ञान परिषत्)
मनोरञ्जक रसायन—(प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव) (विज्ञान परिषत्)
सूर्य्य सिद्धान्त—विज्ञान भाष्य (विज्ञान परिषत्)
सुवर्णकारी—(विज्ञान परिषत्)
चुम्बकत्व—प्रो० सालिगराम भार्गव (विज्ञान परिषत्)
वैज्ञानिक परिमाण—प्रो० सेठी तथा डा० सत्यप्रकाश (विज्ञान परिषत्)
वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द—प्रथम भाग (विज्ञान परिषत्)
कार्बनिक रसायन—प्रो० सत्यप्रकाश (विज्ञान परिषत्)
साधारण रसायन—प्रो० सत्यप्रकाश (विज्ञान परिषत्)
पशु-पक्षियों का शृंगार-रहस्य—(विज्ञान परिषत्)
हमारे शरीर की रचना—भाग १ और २—डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा कृत—(मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त)
सौर-परिवार,—प्रो० डा० गोरखप्रसाद (अकाडमी)
फोटोग्राफी—प्रो० डा० गोरखप्रसाद (म० प्र० पारितोषिक प्राप्त)
स्वास्थ्य और रोग—डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा।
साधारण रसायन—भाग १-२ प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्मा, हि०-वि०-वि०

अंग्रेजी

सर राबर्ट बाल—(१) स्टारलैंड
(२) दि स्टोरी आव दि हेवेन्स्
लवेल—मार्स ऐंड इट्स कैनेल्स
लल्ल—अर्गेनिक एवोल्यूशन्
ई० क्लाड्—स्टोरी आव् क्रिएशन्
जे० ए० टामसन्—दि वडर आव् लैफ़
सर् आर्थर् कैथ्—अंटीक्विटी आव् मैन्